

सहजानंद शास्त्रमाला

प्रवचनसार प्रवचन

भाग-4

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी “सहजानन्द” महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

प्रवचनसार प्रवचन

तृतीय, चतुर्थ व पंचम भाग

प्रवक्ता:

अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ
पूज्य श्री गुरुवर्य मनोहर जी वर्णी
“श्रीमत्सहजानन्द महाराज”

प्रकाशक:

खेमचन्द जैन सराफ,
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ (उत्तर प्रदेश)

स्वाध्यायार्थी बन्धु, मन्दिर एवं लाइब्रेरियोंको
भारतवर्षीय वर्णी जैनसाहित्य मन्दिरकी ओरसे अर्धमूल्यमें ।

आत्म-कीर्तन

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री शान्तमूर्ति पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी
“सहजानन्द” महाराज द्वारा रचित

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आत्मराम ॥८॥

अन्तर यही ऊपरो जान, वे विराग यहं रागवितान ।
मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह हैं भगवान ॥१॥

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अज्ञान ॥२॥

सुख दुःख दाता कोइ न आन, मोह राग दुःख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नाँह लेश निदान ॥३॥

जिन शिव ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुँचूँ निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ॥४॥

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, ‘सहजानन्द’ रहूँ अभिराम ॥५॥

[धर्मप्रेमी बंधुओं ! इस आत्मकीर्तनका निम्नांकित अवसरों पर निम्नांकित पद्धतियों में भारतमें अनेक स्थानोंपर पाठ किया जाता है । आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

- १—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोंके बीचमें श्रोताओं द्वारा सामूहिक रूपमें ।
- २—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरमें ।
- ३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समयमें छात्रों द्वारा ।
- ४—सूर्योदयसे एक घंटा पूर्व परिवारमें एकत्रित बालक, बालिका, महिला तथा पुरुषों द्वारा ।
- ५—किसी भी आपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छंदका पाठ शान्तिप्रेमी बंधुओं द्वारा ।



प्रवचनसार प्रवचन चतुर्थ भाग

प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी सिद्धान्तन्यायसाहित्य शास्त्री, न्यायतीर्थ

पूज्य श्री गुरुवर्य मनोहर जी वर्णी

धर्ममार्गकी प्रमुख विशेषता—धर्ममार्गकी यदि कोई विशेषता है तो वह वस्तुस्वरूप की है। एक वस्तु ले लो और उसका वर्णन करते चले जाओ। एक वस्तु कितनी है? इतनी कि जिसका दूसरा हिस्सा न हो सके। जिसके हिस्से हो जायें, समझो वह वस्तु एक नहीं थी, वह अनेक थी एक पिण्डमें। पुद्गलमें मूर्तत्व कारण है जिससे स्कंध बन जाता। साधारणतया जिसमें स्पर्श, रूप, रस, गंध हों, वह पुद्गल है तथा वही मूर्तत्व है, इससे रहित मूर्तत्व नहीं है। मूर्तत्वकी यह व्याख्या है जो सम्बंधित होकर इकट्ठे होवें। मूर्तत्व—जिसके कारण वस्तु मिल जाय, एक स्कंध हो जाय याने मूर्तरूप धारण कर ले उसे कहते हैं। परमाणु अन्य स्वरूपमें न कभी मिलेगा और न बिछुड़ेगा, यह वास्तविकता तो स्कंधमें रहते हुए भी चल रही है। परमाणु एक द्रव्य है, उसमें शक्तियाँ हैं, वह खत्म नहीं होतीं। द्रव्य, गुण, पर्याय उसमें तीनों तत्त्व पाये जाते हैं। वह द्रव्य क्या नष्ट हो जाता है, क्या नया उत्पन्न होता है? यह दोनों विशेषतायें नहीं होतीं, फिर भी पर्याय बदलती रहती है अर्थात् पुद्गलमें बनना, बिगड़ना और बना रहना पाये जाते हैं। ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो बनती और बिगड़ती तो नहीं हो, पर बनी रहती हो। ऐसा भी कुछ नहीं है, जो बिगड़ती तो हो नहीं और बनती व बनी रहती हो। ऐसा भी कुछ नहीं है कि जो बनी रहती तो हो नहीं और बनती बिगड़ती हो। बनना, बिगड़ना बना रहना—ये तीनोंकी त्रितयात्मकता वस्तुका स्वरूप है। जैसी शक्ति वाला है वह वैसा बनेगा। आत्मामें दर्शन, ज्ञान, चारित्र्य गुण हैं, उनमें भी नये भाव पैदा होना पुराने भाव विलीन होना पाये जाते हैं।

भारतीय राष्ट्रध्वजका संकेत—साहित्यमें बनने वाले पदार्थका वर्णन हरे रंगसे होता है और बिगड़ने वालेका लाल रंगसे किया जाता है। स्थिरताका वर्णन सफेद रंगसे होता है।

इस तरह राष्ट्रीय तिरंगे भंडेमें भी यही बात ध्वनित होती है। बनेका सूचक हरा रङ्ग प्रतीत होता है और अवनति या व्ययका सूचक लाल केसरिया रङ्ग। मध्यावस्थाका प्रतीक सफेद रङ्ग है। जिसपर हरा एवं केसरिया रङ्ग समय-समयपर अपना प्रभाव डालता रहता है। सफेद रंग बना रहना, लाल रङ्ग बिगड़ना तथा हरा रङ्ग बनना हुआ। अवस्थायें प्रत्येक पदार्थमें घटती हैं, इसके बिना गति नहीं है। स्वयंके बारेमें अच्छापन बन सकता है, बुरापन बिगड़ सकता है तथा मध्यकी अवस्था तो चल ही रही है। इस प्रतीतिमें ही तो उठना होगा। इस तरह जैनदर्शनमें बड़ा ही हृदयग्राही ठोस स्याद्वादका रोचक और सत्य वर्णन है। राष्ट्रीय भंडेमें चौबीस आरे भी सफेद रङ्गके मध्यमें होते हैं। जो चौबीस तीर्थङ्कर इस युगमें मोक्ष गये इसके संकेतका सूचक है। श्रद्धा ज्ञान चारित्र्य मिलकर मोक्षके मार्ग प्रदाता हैं। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य यह प्रत्येक पदार्थमें हैं। इनसे रहित होना अग्निको शीतल कहनेके समान है तथा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यको छोड़कर कोई भी जायेंगे कहाँ, किन्तु किन्हींने सिद्धान्त इसका नहीं माना। वस्तुस्वरूपका यथार्थ वर्णन करना जैनदर्शनकी सबसे बड़ी विशेषता है। आत्माका वर्णन भी जैनदर्शनमें द्रव्य, गुण, पर्यायको लेकर है। दर्शन, ज्ञान, चारित्र्यकी भी इसीसे विशेषता है। वस्तुस्वरूपको निकालनेपर जैनधर्ममें विशेष रहेगा भी क्या? इसीसे जैनधर्मका विशद महत्त्व है। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यका मनन सही-सही हो तो तत्त्वज्ञान विकसित होता है। कहा है 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' गम धातु सकर्मक मानी गई। मुझे अंधकारसे निकालकर ज्योतिमें ले जाओ। अंधकारका बिगड़ना हुआ और प्रकाशका (ज्योति) बनना हुआ तथा मेरी जो इस समय सत्ता है वह अनादिसे ही है, वह मध्य अवस्था हुई। जीवनकी शिक्षा किस स्थानपर नहीं लिखी है, पत्थरोंमें हमें वह मिल जायगी, खाइयोंमें वह हमें उपलब्ध हो जावेगी, वृक्षोंसे हम सीख सकते हैं। किस तत्त्वसे किस वस्तुसे शिक्षा लेकर जीवनको सुवासित नहीं कर सकते? करने वालोंकी कमी है। राष्ट्रीय भंडा हमें शान्ति पथका प्रदर्शन कर रहा है। जीवनके सारभूत तत्त्वको देखो, विप्लव एवं कलहसे सुख नहीं मिलनेका। भोगसामग्री पग-पगपर चलकर कर्तव्य सूचित कर सकती है, किन्तु सोचें कि आज तक हमारा इसने स्थायी एवं लौकिक व पारलौकिक हित नहीं किया, तब हम क्या हाथ मलकर इसके ही पीछे पड़े रहें? शान्तिका प्रतीक स्वयंका जीवन है, उसको खोजनेके लिये अन्य पदार्थ नहीं चाहियें, केवल विवेकरूपी लगामको सम्हालना है।

ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन—इस ही वस्तुस्वरूपका मुख्यरूपसे वर्णन प्रवचनसारके द्वितीय महाधिकारमें किया गया है। पहिले महाधिकारमें ज्ञान व आनन्दके स्वरूपका विस्तृत वर्णन है। ज्ञान व आनन्दकी प्राप्तिके उपायभूत ज्ञेयज्ञानकी स्पष्ट करनेके लिये श्री कुन्दकुन्द प्रभु करुणा कर रहे हैं—अर्थ शब्द किसी वर्णनके बाद आता है। इससे ज्ञात होता है कि इसके

पहले सम्बंधित एवं भिन्न किसी अन्य तत्त्वका वर्णन था, वैसे तो किसी भी एक तत्त्वका विस्तृत वर्णन कर दो, उसमें अन्य तत्त्वोंके वर्णन भी कुछ आ जाते हैं। जहाँ मुख्य एक तत्त्वका वर्णन प्रतिभासित होता हो, उसमें भी ज्ञानतत्त्व आदिका वर्णन साथमें चलता है। ज्ञानकी महिमा बताते हुए कहा है कि जितने द्रव्य गुण पर्याय हैं, उनको एक साथ जानता है। यह सब बताने के लिये वह कैसे समझमें आवे ? अतएव साथमें अब ज्ञेयतत्त्वका वर्णन चलता है। जैसे ज्ञेय-तत्त्व आत्मा है तब और भी अनेक पदार्थ हैं, वे कैसे समझमें आवें ? कोई कहे धर्ममें ऐसी क्या विशेषता है जिसका आराधन किया जाय ? तब उसका उत्तर है—धर्ममें वस्तुस्वरूपकी विशेषता है। अन्य भी अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, धृति, क्षमा आदि मानी हैं। अन्य साधु भी परिग्रहरहित एवं नग्न मिल सकते हैं, तब जैनधर्म ही क्यों महत्त्वपूर्ण है ? जैनधर्ममें विशिष्ट वर्णन केवल वस्तुस्वरूपका है। जिसके आधारपर अन्य विशिष्ट वर्णन भी हो जाते हैं। यह विभाव कैसे मिटे ? वस्तुके स्वरूपको यथार्थ जानकर परपदार्थका भी सही सही ज्ञान होना चाहिये अर्थात् विधिरूपसे निषेधरूपसे भिन्न-भिन्न जानना बने, तब विभाव मिटे। यह ज्ञान ज्ञेयतत्त्वकी समस्या हल किये बिना हो नहीं सकता।

आत्मकल्याणके लिये आवश्यक ज्ञेयतत्त्वकी विज्ञप्तिका यत्न—आत्मकल्याणके लिये ज्ञेयतत्त्वको समझना आवश्यक है। ज्ञेयतत्त्वकी सूक्ष्मता जाने बिना अपने भावका वर्णन कर देना, ज्ञानतत्त्वकी चर्चा कर लेना, धर्ममार्गमें रुचि हो जाना असंभव है। इसके पूर्व भी ज्ञान-तत्त्वके वर्णनमें साधारणरूपसे ज्ञेयतत्त्वका वर्णन कर दिया था, फिर भी विशेष वर्णनके लिये, सूक्ष्मतासे जाननेके लिये ज्ञेयतत्त्वका वर्णन किया जाता है—“पदार्थस्य सम्यग्द्रव्यगुणपर्याय-स्वरूपं उपवर्णयति।” पदार्थके द्रव्य गुण पर्यायका वर्णन करते हैं अथवा सम्यक् जो द्रव्य गुण पर्याय स्वरूप पदार्थ हैं उनका वर्णन करते हैं। उपवर्णयति शब्दसे द्योतित होता है कि अपने आपको समीपमें लगाते हुये, रखते हुये वर्णन करते हैं।

अथो खलु द्रव्यमग्नौ द्रव्याणि गुणप्पगाणि भण्णिदाणि।

तेहि पुणो पज्जाया पज्जयमूढा हि परसमया ॥६३॥

अर्थका परिभाषण—अर्थ तो द्रव्यमय है, द्रव्य गुणात्मक है, द्रव्यसे अथवा गुणसे पर्यायें होती हैं। जो पर्यायमें ही मूढ़ हैं, उन्हें परसमय कहते हैं। अर्थ द्रव्य, गुण व पर्यायमें व्यवस्थित है। यद्यपि द्रव्य और अर्थ बराबरीके हैं तब भी अर्थ विशेष्य और द्रव्य विशेषण है। इस दृष्टिसे अर्थ द्रव्यमय बन जाते हैं। द्रव्य गुण वाला है, और द्रव्य व गुण दोनोंसे पर्यायें होती हैं। पर्यायदृष्टिसे जो समझमें आया वह पर्याय है। जो निश्चयपरक दृष्टिसे समझ में आया वह हुआ द्रव्य। जैसे तना, शाखा, डालियां, टहनियों एवं पत्तोंसे युक्त वृक्ष है, उसे यों कहना चाहिये—शाखा, पत्ता आदि बराबर वृक्ष। जैसे गणितमें २ सही ३ बटा ४ =

१३ बटा ४ या $५ + ५ = १०$ होता है, इसी तरह वृक्षका उत्तर है—जिसमें डालियाँ, शाखायें आदि पाई जावें वह वृक्ष । इसे गुण पर्यायात्मक लक्षण कहते हैं । इसी प्रकार अर्थका लक्षण किया जायगा । द्रव्य, गुण व पर्याय = अर्थ । अर्थमें ये सब भिन्न-भिन्न नहीं हैं । द्रव्यके ढंगसे, गुणके ढंगसे जो एक ढंगसे जो एक जाना जायगा, उस द्रव्यका व गुणका अर्थ बतला रहे हैं । इसका जानना अत्यन्त आवश्यक है । इससे मोह कटता है एवं जो हमें दृष्टिगोचर होता है, यही सार है, इस अज्ञानताका नाश होता है एवं अनादि अनन्त पदार्थ हैं और सब अत्यन्त स्वतंत्र हैं, यह बोध भी उसका सार है । सारभूत दृश्यमान यह नहीं है, जो अज्ञानदृष्टिसे अज्ञाणियोंने समझ लिया है, अनित्यको नित्य अनादि कालकी भूलसे मानते आ रहे हैं, लेकिन वह आँखोंमें सामने ही देखते-देखते ओभल हो जाता है ।

जानकारीका फल स्वयंपर प्रयोग करना—आत्मतत्त्वका स्वरूप जानकर अपना परिचय न पाया तो क्या वह तत्त्वज्ञान कहलावेगा ? जो अनुभूति दूसरेके शरीरको जलते देखकर होती है, क्या वह दृश्य देखना अपने शरीरके भी बारेमें किया है ? अथवा 'राम नाम सत्य है' की ध्वनि भङ्कृत होते संसारकी असारताका दृश्य नेत्रोंमें झलक जाता है, उस तरहका उदाहरण स्वशरीरके बारेमें लक्ष्य रखा जाय, तो क्या यह भोला प्राणी असंयत जीवनमें भी सुखकी झलक पावेगा ? जो समागम मिला है, वह सुखदाई है, पतिको पत्नी, पत्नीको पति तथा दोनोंको पुत्र-पुत्रियाँ आदि जो हैं, वे सुख देते हैं, यह भूल तत्त्वज्ञानसे मिट जाती है । इस तरहसे जानकर आत्महितके कार्योंकी चिन्ता विरलोके ही उत्पन्न होती है । यद्यपि यह पद्धति याने हितचिन्ता सब जीवोंकी समान तौरसे किसीके हीनाधिक रूपसे चल रही है, किन्तु उपाय समझमें नहीं बैठा है । जो कुछ जाननेमें आने वाला पदार्थ है वह द्रव्यमय है । गुणको कोई नहीं जानता, पर्यायको कोई नहीं जानता । यदि इनको जाने भी तो वहाँ वस्तुतः अर्थको जानता है । अर्थको ही गुणरूपसे या पर्यायरूपसे जानता है । ज्ञानी अज्ञानी दोनों द्रव्योंको किसी न किसी रूपमें जान रहे हैं । आमको रसमुखेन जानता है, केवल रसको कोई नहीं जानता । रूपमुखेन आमको कोई जानता है, केवल रूपको कोई नहीं जानता; रूप एवं गुण कोई सत् नहीं हैं । सत् तो अर्थ ही है, ये अर्थकी विशेषतायें हैं । द्रव्यको भेदमुखेन सत्मुखेन जाना जाता है या विवेक करके जो जाना जाता है याने जो परिच्छेदमान पदार्थ है वह सत् कहलाता है । सत् उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक है । पदार्थका सब ओरसे निर्णय करना चाहिये । निश्चयनयसे समझानेका प्रयोजन यह है कि तुम्हें शांति मिलेगी । पदार्थको चतुर्मुख तो देखा जाय, पुनः सत्यका सिद्धान्त दृढ़ किया जाय तब निरपेक्षता लाई जावे तो कुछ निर्विकल्पता आयगी । व्यवहारनयसे जो है, वह असत्य है, यह बात नहीं है, सब है, किन्तु केवल जाननेमें जो पदार्थ आवेगा उसपर दृष्टि एकाग्र करके सोचना होगा, तब द्रव्यका निरपेक्ष तत्त्व ज्ञात

होगा। निश्चयदृष्टि एवं पर्यायदृष्टिसे दोनोंको भिन्न-भिन्न करके कैसा यथार्थ समझा जावे ? जो भी परिच्छिद्यमान पदार्थ है वह द्रव्यमय है। वह पदार्थ द्रव्यमय क्यों है, द्रव्य करके कैसे जाना जाता है ? यह सब विशेषण हैं।

पदार्थके शुद्ध नामकरणकी अशक्यता—जितने नाम हैं वे सब द्रव्यके विशेषण हैं याने चीजके विशेषण हैं। जैसे वस्तु—जो अर्थ क्रिया करे या जिसमें गुण बसैं सो वस्तु। द्रव्य—जो द्रवणशील हो याने परिणामनशील हो सो द्रव्य। अर्थ अर्थते निश्चीयते यः स अर्थः, जो निश्चित किया जाये वह अर्थ है इत्यादि। जो उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक सत्तासे अनुस्यूत हो, वह सत् है। सद्भूत हम हैं तो किन्तु हमारा वास्तवमें नाम नहीं है। जो नाम रखें, हम हमारा विशेषण है। जैसे आत्मा कहा तो आत्माका अर्थ है—अतति सततं गच्छति जानाति इति आत्मा। जो निरन्तर जानता रहे सो आत्मा। ब्रह्म—स्वगुणैर्वल्लाति इति ब्रह्म। जो अपने गुणोंसे वर्द्धनशील हो वह ब्रह्म है। जीव—जो प्राण धारण करे सो जीव है। ज्ञायक भी शुद्ध नाम नहीं है, वह भी तो विशेषण है। अब ऐसी स्थितिमें नाम तो लिया नहीं, पर शुद्ध क्या है ? परिच्छिद्यमान अर्थात् जाननेमें आया हुआ। छिद्यमान अर्थात् टुकड़े-टुकड़े करके याने स्वतंत्र स्वतंत्र सत् रूपसे जाना हुआ। परिच्छिद्यमान अर्थात् एक करके अनेकको जानने वाला तथा एक वह जो एकको जाने। यह मेरी स्त्री, पुत्र हैं, तो इस दृष्टिसे सब कुछ ज्ञान नहीं हुआ।

अब इसीको इस तरह जानना, जो-जो स्कंध पदार्थ हैं या यह जो शरीर है वह अनेक परमाणुओंका पिण्ड है, उनका भी वास्तवमें सही नाम कुछ नहीं है। किताबको पुस्तक, बुक, पंजिका आदि नामोंसे बाह्य अर्थोंको पुकारते हैं। व्यवहारके लिए चेतन, आत्मा, जीव, ब्रह्म आदि नाम रख लिए। निश्चयसे नाम कुछ नहीं है। जैसा-जैसा एक-एक सत् है, परमाणु एक वस्तु है। बालूका एक घर बना दिया, वह कुछ समयमें ही नष्ट होने वाला है। उसी तरह स्वशरीरमें वर्गणायें हैं। परमाणुओंका जो समूह है, उसमें जितना एक-एक स्वतन्त्र है, वह सत् है। विषयकषायके परिणामकी पीड़ा हमको भी होती है, अन्यको भी होती है, किन्तु कोई इन्हें छीन नहीं सकता है। सबकी उनकी केवल वृत्तिमात्र है। इसी दृष्टिसे पर्यायके समा-गमको जानो, किन्तु सोचो, इसमें क्या स्थायी रहनेका है एवं उससे क्या लाभ मिलनेका है ? सारभूत तत्त्व द्रव्य है, सो द्रव्यका द्रव्यके साथ बतावि नहीं है। मनुष्य दूसरोंकी प्रशंसा करते समय कहता है—बड़े दानी हो, आपके बड़े भाग्य हैं, यह सब व्यवहारसे कहता है। इसी तरह व्यवहार एवं निमित्तमात्रको अन्य पदार्थ मिले हैं, ऐसा सोचे तो यह नीरस मालूम पड़ने लगेंगे। परपदार्थोंकी रुचि अंतरसे निकल जानेपर कौन आसक्त होकर सेवन करेगा ? विस्तार, आयत, सगुदयरप द्रव्यसे रचा गया अर्थ है। यहाँ द्रव्य बन गया विशेषण व अर्थ

बन गया विशेष्य । अर्थ शब्द भी विशेषण है । विशेष्य जो है प्रकृतमें वह मैं हूं, अनंत-अनंत शक्तियोंका पिण्ड हूं, ऐसे ही अन्य सब हैं । हम बाह्यकी आशा करके अन्यसे रागद्वेष करते हैं । यह क्यों होता है, क्योंकि अपने आपकी शक्तिपर विश्वास नहीं है ।

कार्य अकेलेमें ही होगा अन्य कोई कुछ नहीं करेगा—सीताके जीवन रामचन्द्र जी को तपस्या करते समय प्रयत्न भर फुसलाया कि यह पहले मोक्ष नहीं चले जावें, साथ ही साथ मोक्ष जावेंगे, किन्तु सीताका जीव प्रतीन्द्र अपने कार्यमें विफल रहा । भैया ! यदि कोई सफल हो भी सके तो नरकमें साथ जानेमें हो सकता है या निगोदमें । वस्तुतः वहाँ भी नहीं, किन्तु लोकप्रवृत्ति देखकर कह दिया । धर्मपर किसीकी बपौती नहीं है वह स्वात्माकी वस्तु है उसे ज्ञानी क्यों खोवेगा ? हाँ, पापवृत्तियोंमें भले ही सहयोग कर लेवे मोही । स्वार्थता तो वस्तुके स्वरूपको जाननेमें है, इससे अपना ही प्रयोजन सिद्ध होगा । अपनी विषय कषायकी पुष्टि की तो संसार ही बनेगा, और कुछ नहीं । स्वका हितार्थ प्रयोजन सर्वत्र है । रामचन्द्र जी के परिणामोंमें निर्मलता हुई, उन्होंने मोक्षरमणीको पा लिया । सुख, दुःख, पाप, पुण्य, धर्मके साथ-साथ भले करें, साथ-साथ भोजन करना, साथ-साथ चलना, साथ-साथ मरना, शृङ्गार युक्त मिल-जुलकर रहना आदि दुर्गतिका ही कारण हो रहा है । पाप करके एक साथ शरीर रहता मानो निगोदमें भी संयोग बना रहे, इसलिये यह कोशिश की जाती है । क्योंकि वहाँ भी कुछ फर्क न पड़ जावे, साथ-साथ जीने, मरने, दुःख उठानेका कार्य करेंगे ना, सो अभ्यास यहाँ मोहवश हो रहा है ।

सब द्रव्योंकी स्वतंत्रता—यह जीव अनादिकालीन भूलसे दूसरेके परिणामनको अपना आश्रय बना रहा है । अपनी योग्यताके अनुसार बाह्य पदार्थोंको निमित्त बनाकर सुखी दुःखी मान रहा है । जो जैसे संस्कार वाला होता है तैसी उसकी वृत्ति होती है । एक कथा है तीन चोरोंके साथ एक व्यक्ति, चोरी करनेमें अनभिज्ञ साथमें लग जाता है । वह सब चोरी करते हैं, इतनेमें मालिककी नींद खुल गई । तीनों पूर्ण चोर भाग गये, चौथा नेचा (मचान) के ऊपर चढ़कर छिप जाता है । इतनेमें पड़ौसी मनुष्य आकर कहते—चोर कौन थे, कहाँसे आये थे, क्या ले गये ? मालिक कहता है मैं क्या जानूँ, ऊपर वाला जाने । तब चौथा चोर अपनी महिमा समझा । वह क्या कहता है—मैं ही क्यों जानूँ वह तीनों भी जानते हैं । इतने पर वह पकड़ा जाता है । यह सब अपनी बुद्धि अनुसार होता ही जाता है । प्राणियोंने अपने को परपदार्थमें आसक्त एवं मोही समझ लिया है कि यह मुझे नहीं छोड़ते स्वयं फंसकर । कोई भजनमें या भाषणमें कहे कि कोई पुत्रोंको देचकर विवाह करते हैं तो जो यह कार्य करने वाला होगा वह ऊपरको देखकर फीका मुंह बना लेगा और सोचेगा कि हम ही को कहा है, अगर कोई सदैया, भरैया, लरैया और भरैयाकी निन्दा कर रहा होगा तो जो उस

तरहका होगा वह अपनेको उस तरहका महसूस करके लड़ने तकको तैयार हो जायेगा ।

देखो सभी पदार्थ अपनी-अपनी क्रिया करते हैं, किन्तु जिसका जैसा भाव है अपनी कल्पनाके अनुसार अपना विकल्प बनाते । जिसमें जो अपराध होता है वह अपने अपराधवश शङ्कित रहता है । वह किसी भी घटनाको अपने अभिप्रायमें ढालता है । हालांकि यथार्थमें उस चोरका जिक्र नहीं किया जा रहा था जो कि स्वयं चोर होनेसे पकड़ा जाता है । उसी तरह न पुत्र बेचने वालेको व्यक्तिगत नाम लेकर पुकारा जा रहा है और न भदैया, तरैयाका भी नाम लेकर दोषारोपण किया जा रहा है, किन्तु उन्होंने स्वयंकी कल्पनासे अपने सच्चे दोषोंको जाहिर कर दिया । इसी प्रकार प्रत्येक प्राणीकी दशा हो रही है । इससे यह भी सिद्ध होता है कि प्रत्येक प्राणी अपने कर्मानुसार कर्मोंके फलको भोगता है, ईश्वर कुछ नहीं करता है, भ्रम बुद्धिसे वैसा मान रहा है । यही मोही जीव अनादि कालसे परको निमित्त पाकर अपना परिणामन अनुकूल या प्रतिकूल कर लेता आ रहा है ।

इस समस्तका परिचय — जो कुछ भी जाननेमें आने वाला पदार्थ है वह द्रव्यमय है, द्रव्यसे रचा हुआ है । द्रव्य क्या है ? जिसका सामान्य विस्तार, सामान्य आयत इस समुदायात्मक रूपसे जो जाननेमें आवे वह द्रव्य है । उसमें कुछ मिश्रित नहीं है तथा वह किसी विशेषतासे युक्त होकर भी अनेक नहीं होता । द्रव्य अनन्त शक्ति वाला है । वह शक्ति द्रव्यके एक-एक समयमें भी साथ-साथ रहती है । वस्तुतः गुण स्वतन्त्र सत् नहीं है, किन्तु इस तरह पदार्थका विश्लेषण करके जाना जाता है । प्रति समय जो रहने वाले हैं, अनन्त हैं, उन्हें विस्तार कहते हैं । समयभेदसे होने वाले भावको आयत या लम्बाई कहते हैं ।

आयत विस्तारके परिचयमें अंगुलिसंकेतकी सहायता—विस्तारका संकेत समान अंगुली उठानेसे होता है । आयतका संकेत नीचेसे ऊपर अंगुली उठानेसे होता है । पर्यायोंका संकेत ऊपर अंगुली उठानेसे होता है, अतः उसे लम्बाईके रूपकमें बताया है । एक ही समयमें रहने वाले पदार्थोंके संकेतमें अंगुली समान चलती हैं, अतः उसे विस्तार कहते हैं । आयत कालभेदकी अपेक्षाका ही वर्णन करता है । जैसे चीन, जापान आदि विदेशका वर्णन करनेपर देश, शहर, ग्राम, मुहल्लाके वर्णन करनेपर वह सब विस्तारका वर्णन कहलाता है, वह सब प्रतिसमय है । द्रव्यमें एक साथ एक ही समयमें रहने वालेको आचार्य विस्तार कहते हैं । आत्मामें दर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्य एक साथ विद्यमान रहते हैं । यह द्रव्यका विस्तार है । और जब कालभेदसे वर्णन करेंगे तो तिर्यच, मनुष्य या देवगति या नर्कगति जीवके बताने वाले होते हैं । विभिन्न समयोंकी सभी परिणतियाँ आयत हैं । जो जीव प्रतिसमय अपने सुख या दुःखको भोगा करता है, वे आंतरिक परिणतियाँ भी आयत हैं । देखो विस्तार व आयत की दृष्टिमें स्वयं उठाने वाला संकेत स्वतः चलता है । तिरछी उंगली, सीधी उंगली द्रव्यके गुण

के लिए उठती है और ऊपर नीची पर्ययके लिये । द्रव्य गुणपर्यायात्मक है, उसीको द्रव्य कहा है ।

पर्यायिकी गौणतामें गुणका सुपरिचय तथा गुण एवं पर्यायिकी गौणतामें द्रव्यका सुपरिचय—द्रव्यको जाननेके लिए अभेददृष्टिसे जाननेका यत्न किया जाता है । गुणोंमें भी जब तक भेददृष्टि है तब तक एक-एक गुणोंके जाननेमें यत्न रहता है । द्रव्यका जैसा स्वरूप है, द्रव्यके उस अनुरूप दृष्टि नहीं हुई तब तक उसे जाननेमें समर्थ नहीं होता है । कोई गुणोंको अभेद कर या जो सामान्य कर पहिचानमें आने वाला है, वह द्रव्य है । विस्तार सामान्य, आयत सामान्यरूप समुदायात्मक जो है, वह द्रव्य है । एक अभेदके तरीकेको अपनाये बिना अनुभवादिकी बातको नहीं जाना जा सकता । यह तो विस्तारआयतसमुदायात्मक, आयत-विस्तारसमुदायात्मक इसकी व्याख्या हुई । विस्तारविशेषमें आयतविशेषको ही गौण किया और द्रव्यमें दोनों विशेषोंको गौण किया । इस दृष्टिसे अनेक जानकर उनके समुदायको एक और अनेकरूपसे जाने । द्रव्य गुणसे रचा हुआ होनेसे उसमें रहने वाली अनन्त शक्तियाँ हैं । वह सब है द्रव्यके आधारमें । द्रव्य विविनिषेधात्मक है । पर्यायतः स्थायी न रह करके भी द्रव्य उन्हीं उपायोंसे जाना जाता है तथा उन उपायोंसे स्थिर जाना जाकर टिकता भी नहीं । आत्मामें ज्ञान, दर्शन न माननेपर आत्मामें क्या रह जाता है ? स्वरूपभेदके कारण इन सबको भिन्न-समझ लिया किसीने व थोड़ी देर बाद तीनों कालोंमें ज्ञान, दर्शनकी दशा रहे । इस अभिप्राय में कोई ख्याल बना लेते हैं कि ज्ञानके समवायसे आत्मा युक्त है । भेददृष्टिसे आत्माको व ज्ञान को पृथक्-पृथक् कहा जाता है । विशिष्ट ज्ञान साथमें चलने वाले न होनेसे ही यह कहते हैं । वस्तुतः आत्मा ज्ञानात्मक है ।

वस्तुकी भेदाभेदात्मकता—जितने दर्शन धर्म प्रचलित हैं, उनमें प्रधान हैं वैशेषिक, जितने ग्रंथ पढ़ाये जाते, प्रायः वे भी वैशेषिक हैं याने वैशेषिक मिलेगा । सांख्यका सिद्धान्त थोड़ेमें पूर्ण हो जाता है । धर्म और शैव, राधावल्लभ, ईसाई, इस्लाम एवं पारसी आदि हैं दार्शनिक । यथायोग्य प्राचीनतापर रहने वाला वैशेषिक है । वह क्या है ? एक नयमें जैनधर्म है । केवल नय भरकी भूल है । वैशेषिकोंने ७ पदार्थ माने हैं—द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव । जैन सिद्धान्तमें सबका मूल द्रव्य है । आत्मद्रव्य स्वभावतः सहज अनन्त गुणात्मक है, क्रियाशील है । एक दृष्टिसे द्रव्य सामान्य रूप है, एक दृष्टिसे विशेष रूप है । इन सबका एकमें अभेद रहना वह समवाय तादात्म्य स्वरूप है । एक दूसरेका अभाव रूप है, यह अभाव है । उनमें विवक्षित एकके अतिरिक्त अन्य सबका अभाव है । द्रव्य अनन्त-गुणात्मक है । जो द्रव्यका स्वरूप है वह गुणका नहीं, और जो गुणका स्वरूप है वह द्रव्यका नहीं । इस दृष्टिसे ही भेद माना जाता, अत्यंत पृथक् रूप नहीं । जो विशेष-विशेष भेदको माने

उसे वैशेषिक कहते हैं। द्रव्य इसकी मुख्य वस्तु है, परिणति जुदा है। मगर द्रव्यको सामान्यसे देखनेपर कुछ और ही चमत्कार होता है और विशेषसे देखनेपर कुछ और ही चमत्कार होता है। यह सब क्या बिखरे हैं? यदि हाँ, तब बहुतसे गुणोंका विभिन्न पदार्थोंमें जिस किसीसे समवाय क्यों नहीं हो जाता? वैशेषिक भेदका ऐकान्तिक है। भेददृष्टि करके जो जो दिखे वह उनकी प्रधान समस्या है। गणेश बननेकी इच्छा होनेपर भी नहीं बन सके। गणेशके नीचे चूहा, ऊपर हाथीकी सूंड है। उनके मतसे तत्त्व भेदात्मक और अभेदात्मक होना चाहिये। चूहे के समान जो कतर-कतरकर कहे तथा हाथी जैसा मस्ताना जानवरकी सूंड समान फिट बैठकर रहे। कोई जिसे हटा नहीं सके, उसकी याने अभेदकी प्रतीक सूंड है। यदि चूहेका कार्य देखना है तो किराने वालोंकी दुकानपर या कपड़े वालोंके यहाँकी कुतरन भी देखी जा सकती है। चूहा भेदका प्रतीक है, सूंड अभेदकी प्रतीक है।

जैनसिद्धान्त भी द्रव्यके प्रदेश भेद बतला देते हैं। किस दृष्टिसे भेद हैं? उसे जानना चाहिए। आत्मा असंख्यात प्रदेश वाला है, असंख्यात प्रदेश वाला नहीं भी है। एकप्रदेशात्मक है। जैनसिद्धान्त वैशेषिकोंसे अधिक भेदसहित जानता और अभेदयुक्त भी जानता है। वैशेषिक भेद करके जानता है, प्रेम करना नहीं जानता। जैनसिद्धान्त भेद करके अभेद करना जानता है। गुण एकके आश्रय रहने वाले हैं, वे विस्तारविशेष कहलाते हैं। आत्मामें दर्शन, ज्ञानगुण भिन्न-भिन्न हैं, वह अपने-अपने स्वरूपसे युक्त हैं। आत्मामें बाहरसे कोई पदार्थ नहीं आता है, सो सब निज स्वरूपात्मक पूर्ण हैं। जैनसिद्धान्तमें सबका रहस्य जानकर, स्वतंत्र अर्थ स्वरूप जानकर उपेक्षावृत्तिसे रहो, अन्य कुछ न चाहो, देखो। सब कुछ चाहिए या कुछ? अन्य कुछ में पड़ गये तो सब कुछसे वंचित रहना पड़ेगा।

कुछकी हठमें कोयला हाथ—एक सेठ नाईसे हजामत बनवा रहा था। सेठको नाई पर सन्देह था। वह सोचता इस समय हमारे प्राण नाईके हाथमें हैं। अगर कहीं इसने उस्तरा नीचे लाकर छातीमें घोंस दिया तो जान निकल जायेगी। अतएव सेठजी ने कहा—हजामत बना चुकनेपर सेठजी ने चवन्नी, अठन्नी, रुपया सब कुछ देनेको कहा। पर वह “कुछ” ही माँगे, इसके अतिरिक्त वह और बात न कहे। सेठजी परेशान हो गये, तब दूध दूर रखा था, उसे नाईसे लानेको कहा। वह आते समय बोला—सेठजी! इसमें तो कुछ पड़ा है। तब सेठजी ने कहा—वह कुछ तू ही ले ले। कहाँ उसने अशर्फी नहीं ली थी, और कहाँ दूधमें पड़ा कोयला हाथ पड़ा। अपने आपको सर्वाङ्ग श्रद्धापूर्ण करो, अपनी जांच करके देखो हममें कहाँ अधूरापन है? पूर्णताकी श्रद्धा करके पर्यायिके गुणविकासके अधूरेपनको समाप्त करो। बाह्यमें यदि कुछ चाहा तो पापका कोयला ही हाथ लगेगा।

पदार्थकी आयतविस्तारामकता—जो कुछ भी परिच्छद्यमान पदार्थ है वह क्या है?

विस्तारसामान्य (गुणसामान्य) व आयतसामान्य (पर्यायसामान्य) — इनका समुदायरूप द्रव्यसे रचा गया है, अतः द्रव्यमय है। पदार्थमें गुण तो सामान्यरूप इस तरह हैं कि वहाँ परमार्थसे कोई भेद नहीं है, वे सब गुण अर्थस्वभाव हैं। पदार्थमें पर्यायसामान्य इस तरह है कि पदार्थ में पर्याय प्रतिक्षण रहना ही चाहिये तो परिणमन सामान्यकी विवक्षा है। इस तरह द्रव्यगुण-पर्यायसामान्य समुदायात्मक होता है अथवा पदार्थमें विस्तार आयतरूप स्वक्षेत्र होता है, उस दृष्टिसे भी द्रव्यमय है। अब भेददृष्टिसे देखो—एक वस्तुके आश्रय विस्तारविशेष अनेक हैं, उन्हें गुण कहते हैं। जैसे आत्मा में श्रद्धान, ज्ञान, चारित्र आदि; पुद्गल में रूप, रस, गंध आदि। इन गुणोंसे अभिनिर्वृत्त हैं याने सदा सर्वत्र रचा हुआ है अर्थात् तन्मय है, अतः द्रव्य गुणात्मक हैं। अब पर्यायोंको देखो—जो पर्यायें विस्तारायतात्मक क्षेत्र प्रधान द्रव्यसे रचित हैं, वे तो द्रव्यात्मक पर्यायें हैं अर्थात् द्रव्यपर्यायें या व्यञ्जनपर्यायें हैं, और जो गुणोंसे रचित हैं, वे गुणात्मक पर्यायें हैं अर्थात् गुणपर्यायें हैं। ये पर्यायें हैं, अध्रुव हैं, इनमें जो स्वत्वका व्यामोह करते हैं वे पर्यायसूढ़ हैं, परसमय हैं।

पर्यायोंका विवरण—पर्यायें दो प्रकारकी होती हैं—(१) द्रव्यपर्याय, (२) गुणपर्याय। द्रव्यपर्याय दो प्रकारकी है—(१) एकद्रव्यपर्याय (शुद्ध व्यञ्जनपर्याय), (२) अनेकद्रव्यपिण्ड-पर्याय। अनेकद्रव्यपिण्डपर्याय दो प्रकारकी है—(१) समानजातीय द्रव्यपर्याय, (२) असमानजातीय द्रव्यपर्याय। गुणपर्याय दो प्रकारकी है—(१) गुणात्मकस्वभावपर्याय (स्वभावगुण-पर्याय), (२) गुणात्मकविभावपर्याय। इनका अनुक्रमसे वर्णन किया जाता है—

द्रव्यपर्यायोंका परिचय—(१) एकद्रव्यपर्याय—असंयुक्त एक ही पदार्थका निजक्षेत्र जिस विस्तार आयतरूप है, वह एकद्रव्यपर्याय है। जैसे एक पुद्गल (परमाणु) का एक प्रदेश रूप क्षेत्र, धर्मद्रव्यका लोकाकाशप्रमित (असंख्यात प्रदेशरूप) क्षेत्र, अधर्मद्रव्यका भी इतना ही, आकाशद्रव्यका अनन्त प्रदेशरूप क्षेत्र, कालद्रव्यका एक प्रदेशरूप क्षेत्र। जीवद्रव्यका क्षेत्र जिस चरम शरीरसे मुक्त हुए हैं, उस प्रमाण व (शक्तिसे लोकाकाश प्रदेशपरिमाण असंख्यात प्रदेश रूप) इस एक द्रव्यपर्यायमें व्यामोह उत्पन्न नहीं होता। (२) समानजातीय द्रव्यपर्याय—दो तीन आदि संख्यात, असंख्यात या अनन्त अणुओंका पिण्डरूप स्कंध समानजातीय द्रव्यपर्याय हैं। समानजातीय द्रव्यपर्यायोंमें मिथ्यादृष्टि व्यामोह करते हैं, जैसे मकान, धन आदिका व्यामोह। (३) असमानजातीय द्रव्यपर्याय—जीव व पुद्गलका विशिष्ट एकक्षेत्रभावगाह्रूप पिण्ड असमानजातीय द्रव्यपर्याय है। जैसे मनुष्य, पशु, पक्षी, कीड़े, मकोड़े, वृक्ष आदि भव।

गुणपर्यायोंका परिचय—स्वभावगुणपर्याय—उपाधि, संसर्ग आदि दोषोंसे रहित पदार्थके गुणोंका जो स्वभावसे ही परिणमन है, वह स्वभावगुणपर्याय है। जैसे धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य व कालद्रव्य—इनका तो स्वभावगुणपर्याय ही होता, विभावगुणपर्याय होता

ही नहीं; जीवका स्वभावगुणपर्याय के तल्लन आदि है व पुद्गलका स्वभावगुणपर्याय शुद्ध परमाणुका गुणपरिणामन है। इनमें भी जीव व्यामोहको प्राप्त नहीं होते। विभावगुणपर्याय—उपाधि, संसर्ग आदि दोषोंके निमित्तसे निज साम्यसे प्रतिकूल परिणामन होता, सो विभावगुणपर्याय है। जैसे जीवमें होने वाले कषाय आदि परिणामन व पुद्गलमें काला, पीला, खट्टा मीठा आदि विचित्र परिणामन। मिथ्यादृष्टि जीव इनमें व्यामोहको प्राप्त हो जाता अर्थात् इनमें स्वत्व, हित आदिकी कल्पनासे मूढ़ हो जाता है।

अपनेको जब अमर अनुभव कर लो तभी अमर हो—प्रत्येक गुण परिपूर्ण है। स्वभावसे भी परिपूर्ण है। भूख, प्यास २४ घंटे नहीं महसूस होती। स्त्री, पुत्र भी २४ घंटे साथ नहीं रहते। दुकानपर भी २४ घंटे नहीं रहना पड़ता, फिर हमेशा साथ नहीं रहते तो उसीका विकल्प क्यों किया जाय? परपदार्थ जिसके अनुभवमें नहीं हैं उसे तत्त्वज्ञान जल्दी आ सकता है। तत्त्वज्ञान आनेपर उपेक्षा करनेका महासाहस स्वयं आ जाता है। जैसे जब तक बुखार नहीं आता तब तक बुखारसे डर लगता और जब आ ही पड़ता है तब उस बुखारके सहनेका साहस हो जाता है ना। जब आपत्ति सिरपर आ पड़ती है तो साहस बढ़ जाता है। बुखार आनेपर उसे भेलेनेकी शक्ति आ जाती है तथैव मरणावस्था भी निकट आ जाय तो साहसी हो जाता है और जीने वाले मृत्युसे भयभीत रहते हैं। फोड़ा या कांटा दूसरेके हाथोंसे फोड़ने या निकलनेमें डरेगा, किन्तु स्वयं फोड़ देगा या कांटा निकाल लेगा उसे डर नहीं होता। जो अपनेको अमर अनुभव करते हैं वे अमर हैं। भैया! अमर तो सभी हैं किन्तु अनुभव नहीं करते, सो देह छोड़ते समय क्लेश होता है। मरनेपर केवल छूटने वाले पदार्थोंका दुःख रहता है। वह न रहे तो क्लेश नहीं होवे। मरते समयकी साधना अभीसे की जाय। मरनेके समय समाधिमरण करनेकी अपेक्षा जीवित रहनेपर ही उसकी साधना, ५ घंटे पहलेसे करनेकी अपेक्षा, ५ माह या ५ वर्ष पूर्व अथवा एक युग पूर्व अर्थात् १२ वर्ष पूर्व करनेकी अपेक्षा बिना समयके विकल्पके अभीसे अस्तःसाधना क्यों न की जाय? समाधि नाम तो समताका है वह सदैव अमृतरूप है। जीवमें जैसे समाधि हो वह कार्य किया जाय। जो यह समझ गये कि मरते समय मोह छोड़ देना, उसका मोहरूपी जहर से पिण्ड शुरूसे ही क्यों नहीं छुड़ाया जाय?

अत्रायोजनिक विकल्पोंका निवारण—भैया! इतना ही कोई ठान ले कि जो जीवन के लिये व धर्मके लिये आवश्यकीय हो इस पदमें उन विकल्पोंको तो कर लिया जाय और बाकी तो सब छोड़ देवे, तो इसमें भी भलाई कुछ निकल आवेगी। गृहस्थोंको धर्म, अर्थ, काम ये त्रिवर्ग तो बताये, सो धर्म तो पड़वश्यक हैं। अर्थ है अर्थोपार्जन। काम हुआ बाकी सब कार्य। कामका अर्थ विषयभोग ही नहीं होता, किन्तु धन उपार्जन एवं धर्मको छोड़कर

बाकी भरणपोषण सम्बन्धी कार्य करना, देशसेवा, परोपकार करना। आदि सब सद्गुण गर्भित होते हैं। तन्दुल मत्स्यका विकल्प भी केवल उसके सप्रयोजनताकी दृष्टिसे ठीक है उसे केवल खानेका विकल्प है। किन्तु हमारे विकल्प तो निष्प्रयोजन ही चलते रहते हैं। इनसे क्या धर्मसाधन होता है, धनमें काम आते नहीं, केवल यह विकल्प कलहमात्र है, इससे विश्राम लो, क्योंकि बुद्धि तो उतनी ही है, उसे किसी भी कार्यमें लगा दो। जैसे चक्कीमें अच्छा अनाज पीसनेपर भी पिस जाता तथा घुना बीभा भी। इसी तरह जीवमें अच्छे विचारोंको स्थान दिया जाय तो वह घुल मिल जाते हैं या खोटे विचारोंको स्थान दिया जाय तो वे भी तन्द्रा मचाते रहते हैं। क्षयोपशम तो उतना ही है, उसे तत्त्वज्ञानमें लगाओगे तो श्रेष्ठ है, संसार के कलहरूपी विकल्पजालसे बचोगे।

स्वरूपनिर्णयसे अन्तः निर्भयता—द्रव्यका स्वरूप है, वह गुणात्मक है, वह गुणों कर अभिनिवृत्त है, सर्व प्रत्ययोंकर सहित है और वह गुणोंसे रचा गया है, सो नहीं है, किन्तु अनन्त गुणोंका समुदाय द्रव्य है। अपने आधीन किसीको न मानो। व्यवहारमार्गकी बात व्यवहारमें है। विनय तो व्यवहारमें भी है। निश्चयमें श्रद्धा होनी चाहिये। मुझमें कुछ भी अधूरा नहीं है, अन्यत्रसे पूर्ति नहीं होना है। आत्मा गुणोंसे परिपूर्ण है तभी यह सम्भव है कि उसका विकास हो जायगा। बाहरी वस्तुसे कुछ नहीं आनेका अपना खजाना अपने पास ही सुरक्षित है।

गुण सामान्यरूप है, अभेददृष्टिसे देखो और निविकल्पताका आनन्द लो—द्रव्य वह है जो सदा रहता है। द्रव्य शक्ति, गुणसे सहित पाया जाता है। भेददृष्टिसे द्रव्यको देखो कि गुणभेद हो जाते हैं। सरलतामें यों समझें कि पर्याय वह है जो बदलती है, जो नष्ट हो जाय उसे पर्याय कहते हैं। जो दिखनेमें आता है वह पर्याय है, नष्ट होती रहती है। रागद्वेष भी नष्ट हो जाते हैं। जिस तरहका राग या द्वेष पहले होता है वह समय पाकर बदल जाता है, अन्य तरहका होने लगता है। पूर्ण वस्तुको देखकर कहे वह द्रव्य है तथा वस्तुके धर्मोंको कहे वह गुण है। आत्मा नष्ट नहीं होता वह द्रव्य है। दर्शन, ज्ञान, सुख और वीर्य ये गुण हैं, क्योंकि ये नष्ट नहीं होने वाले हैं। गुण वह है जो द्रव्यमें सदैव रहे। ज्ञान, दर्शन, शक्ति भी है, उसके परिणामनमें भेद है। शक्तिके विकासको पर्याय कहते हैं। परिणामनको पर्यायको ही बतला रहे हैं कि वह आयतविशेष है। आत्माकी जितनी पर्यायें हैं वे इसी तरहसे जानी जा सकती हैं अथवा एक समयमें एक पर्याय देखी जा सकती है तथा एक ही समयमें अनन्त पर्यायें देखना, क्योंकि गुण तो अनन्ते हैं। अनन्त गुण परिणामन कर रहे हैं। अनन्ते गुण भिन्न-भिन्न समयमें न होकर एक ही समयमें पाये जाते। ज्ञान आनन्द आदिकी पर्याय एक ही समयमें है।

एक समयमें एक पर्याय है। जैसा-जैसा उसका योग आवेगा, उसी-उसी तरहकी

पर्यायें आती रहेंगी । अनन्ते गुण जब लम्बाईको लिये होते हैं वही पर्यायें हो जाती हैं । जो नष्ट न हो वह द्रव्य है । पर्यायें द्रव्योसे रची हुई होती हैं तथा वह गुणोसे सहित होती हैं । पर्यायें द्रव्यात्मक और गुणात्मक दोनों हैं । द्रव्यात्मक पर्यायें लेनेपर प्रदेशमुख्यताकी बात आ जायगी । जैसे स्कन्ध में द्रव्यपर्याय तो आकार है तथा गुणपर्याय रूप, रस, गंध, वर्ण, स्पर्श के परिणमन हैं । द्रव्यपर्यायका दूसरा नाम व्यञ्जनपर्याय भी है और गुणपर्यायका दूसरा नाम अर्थपर्याय भी है । द्रव्योंसे जो रचा गया है वह द्रव्यपर्याय है, और जो गुणोंसे रचा गया है वह गुणपर्याय है । ज्ञानद्वैतवादियोंने धर्मको माना है, किन्तु धर्म नहीं माना है । प्रदेश और गुण दोनोंका अविनाभाव है, किन्तु प्रदेश व प्रदेशवानका यहां अभाव माना । सब सिद्धान्तोंमें भेदाभेदका अन्तर है । ज्ञानाद्वैतवादमें जो भी पदार्थ दिखता है वह ज्ञान है । मिट्टी है वह भी ज्ञान है, क्योंकि वह उनके ज्ञानमें दिख रही है । पदार्थको जाननेके लिये ज्ञान ही इस शकलमें है । ज्ञेयाकारको भी वह नहीं मानते अन्यथा उनकी बात उनके ही मुंहसे असिद्ध हो जायगी । कपिल, बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक आदि मूर्ख तो थे नहीं, वह भी यथार्थ तत्त्व चाहते थे । उन्होंने भी हितके भावसे कल्याणभावसे न्यायशास्त्रोंकी रचना की है । उन्होंने अपनी मतिसे खोटे या मिथ्या सिद्धान्त नहीं बनाये हैं, उन्होंने ईमानदारीसे ही उनकी रचना की है । उनमें भी वही तत्त्व निकलता है जो जैनदर्शनमें निकलता है, सिर्फ उनमें स्याद्वाद नहीं रहा, जिससे जैनदर्शनसे मिलान नहीं खाता तथा उनका अनेकान्तवादसे निरसन हो जाता है ।

पर्यायकी बातको अपना स्वभाव मत मानो—द्रव्यमें गुण व प्रदेश दोनों हैं । आपको दिखने वाली रूपकी बात गुण पर्यायमें है तथा आकारकी बात द्रव्यपर्यायमें है । द्रव्य जो है वह प्रदेशात्मक और गुणात्मक होता ही है । गुण अनन्त हैं, हे भगवन् ! आपके गुण गिननेमें नहीं आवेंगे, पर उन्हें देख सबको लेंगे । प्रचण्ड वायुसे जिसका जल अन्यत्र चला जाय, ऐसे समुद्रमें के रत्न देख तो सब लेते, किन्तु उन्हें गिन नहीं सकते । द्रव्यपर्याय दो तरहका होता है—(१) स्वभावद्रव्यपर्याय और (२) विभावद्रव्यपर्याय । एकद्रव्यकी प्रदेशरचना तो स्वभावद्रव्यपर्याय है व अनेक द्रव्योंमें ऐक्यकी व्युत्पत्तिका जो कारण है वह विभावद्रव्यपर्याय है । वहां अनेक द्रव्योंमें एकताकी व्युत्पत्ति होती है । वह सब अनेकमूलक है । जैसे देह, चौकी आदि ये स्कन्ध पूरण करने वाले व गलने वाले और व्यक्त पूरण नहीं करने वाले तथा न गलने वाले भी उन्हीं-उन्हीं परमाणुओंके पिण्ड हैं । अनेक परमाणुओंका मिलकर देह बना है । पुद्गल क्या है, जो पूरे और गले । स्पर्श, रूप, रस, गंध और वर्णसे जो सहित हो वह या मिलकर जो एक पिण्ड बन सके वह मूर्तिक । धर्म, अधर्म, आकाश और कालद्रव्यके पिण्ड नहीं बनते । इसी प्रकार आत्मा आत्मा मिलकर एक पिण्ड नहीं होते । मूर्तिकता वह शक्ति है, जिस शक्तिके कारण द्रव्य स्कन्ध बन सके । जिन्हें अरूपी कहते हैं, उसका अर्थ रूपी नहीं, यह

नहीं, किन्तु मूर्तिक नहीं, यह अर्थ आत्मामें है। दो कभी मिलकर एक पिण्डरूप नहीं होते हैं, अतः वे मूर्तिक नहीं। जिस शक्तिके प्रतापसे एक अनेक पिण्ड बन सके, उसे मूर्तिकता कहते हैं। वह अनेकमें एकताकी प्राप्ति का कारण है। यह तो समानजातीय द्रव्यपर्याय है। असमानजातीय द्रव्यपर्याय मनुष्य, तिर्यञ्च आदि पिण्ड हैं।

असमानजातिक पर्याय—मनुष्य व्यवहारमें कहते हैं शरीर जुदा-जुदा है, किन्तु आत्मा एक है। यह कहने वाला कितनी विकट भूल करता है? कारण यह है कि वह सदैवसे यह सुनता आ रहा है, इसलिये ऐसा कहनेमें नहीं चूकता, परन्तु कहना यह चाहिये कि कभी शरीर दोनोंका एक हो सकता है, किन्तु आत्मा एक नहीं हो सकती। कारण शरीर पुद्गलका पिण्ड होनेसे किसी समय दोनों शरीर बिखरकर भले पुनः उनका इकट्ठा पिण्डाकार हो जाय, किन्तु दो आत्माओंका इकट्ठा मिलना असम्भव है। शरीरमें मूर्त धर्म है, आत्मामें नहीं है। पर्यायें दो प्रकारकी हैं—(१) समानजातिक, (२) असमानजातिक। प्रत्येक परमाणु अपने स्पर्श, रूप, रस आदि गुणसे परिणम रहा है। अनेक द्रव्य जो समानजातिक हैं, उनका एक पर्याय होता है। पर्याय क्षणिक है। जो नष्ट होता है वह पर्याय है। वह सब दृश्यमान ठाठ समानजाति पुद्गलका है, २ अणु, ३ अणु, ४ अणु, संख्यात अणु, असंख्यात अणु अनन्त परमाणुओंका पिण्ड स्कंध पर्याय है। जो पुद्गल स्कंधका पिण्ड बंधनरूपसे बना, वह समानजातिक है, किन्तु निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धवश हुआ यह जीवच्छशरीर असमानजातिका है। चलते, बैठते आदि सब समयोंमें असमानजातिका मेला हमेशा लग रहा है। द्रव्यको अज्ञानी कहाँ जानता? इन्हीं पर्यायोंमें पर्यायबुद्धि करना पर्यायमें आत्मबुद्धि, द्रव्यबुद्धि करना जब तक है तब तक उद्धारका मार्ग सुगम नहीं है, असम्भव है। कीड़ा, पतंगा, वृक्ष, चींटी, लट आदि असमानजातिकी पर्याय हैं।

आयत, विस्तार व स्रोत समझनेकी महिमा—ज्ञानाद्वैतीने अपनी समझमें भूल नहीं की। उनका लक्षण है—‘यत् यत् प्रतिभासते तत् तत् प्रतिभासान्तः प्रविष्टम्’ जो जो प्रतिभास में आता है वह वह प्रतिभास है। ज्ञान किया तो खम्भा आ गया, दीवार ज्ञानमें आ गई। यह तो केवल धर्म मानने वालोंकी बात ज्ञानाद्वैतरूपमें है। अब जरा धर्मी मात्रका एकान्त जो करें, उनकी चर्चा सुनो। मूल मानने वाले मिले तो कहते केवल एक ब्रह्म है। चेतन, ज्ञान, आत्मा, जीव, द्रव्य आदि यह सब एक ब्रह्मके बिना भी कुछ हुआ है? यह नहीं हो सकता। जो भी दृष्टिगोचर होता है वह ब्रह्मका विकार है। जितना विकार दृष्टिगोचर होता है, वह जीवके सम्बन्धको छोड़कर निर्माणित नहीं हुआ। मेज, कागज, पेंसिल, दवात आदि जीवको छोड़कर बना नहीं है। संख्यातों या असंख्यातों वर्ष पहले जीव वार्यके रूपमें था, इस दृष्टिको लेकर कहा सब ब्रह्मके विकार हैं। जैनधर्मानुयायी कहते हैं द्रव्यके विकार हैं। अमुक वस्तु

इस पदार्थका परिणमा है, अमुक इसका । दो बातें समझनी जरूरी होंगी ।

गुणके द्वारसे जो आयत जाना जाय, वह समझमें जैसी होने वाली अनेक पर्यायें हैं । अनेकोंमें एकताकी बुद्धिका कारण पुद्गलका विकार है । स्कंधोंका जो समूह है, वह महास्कन्ध है । गुणपर्याय दो तरहकी है—(१) स्वभावपर्याय, (२) विभावपर्याय । परनिमित्तके बिना जो सदैव एकसा रहता है वह स्वभावपर्याय है । केवलज्ञान आदि शुद्ध परिणामन स्वभावपर्याय हैं । जो परउपाधिका संसर्ग पाकर स्वभावप्रतिकूल विविध भाव हो वह विभावपर्याय है । रागद्वेष आदि विभावपर्याय हैं । पर्यायमें मूढ़ न हो जावें । यद्यपि पर्यायको द्रव्य बिना नहीं कह सकते, गुणको पर्याय बिना नहीं कह सकते तथापि ध्रुवकी दृष्टि हितकर है । गुणपर्याय क्या हुई ? जो समयभेदसे पर्यायें चलती हैं । सब पर्यायोंमें रहने वाला द्रव्य अनन्तशक्ति वाला है । भेददृष्टिसे गुण समझमें आता है, अभेददृष्टिसे द्रव्य समझमें आता है ।

अभेददृष्टि व भेददृष्टिसे देखनेका प्रभाव—स्थूल परिणमन तो कोई समझमें आता है, किन्तु सूक्ष्म परिणमन मालूम नहीं पड़ता । समस्त द्रव्योंमें अगुरुलघुगुण हैं, उनमें हानि वृद्धि होना वह स्वभावपर्याय है । ज्ञानकी बढ़ती घटती इस समय अपने लिये मालूम पड़ती है । स्वभावपर्यायमें हानि वृद्धि होनेपर भी मालूम नहीं पड़ती । जीव और पुद्गलमें स्वभाव व विभावपर्याय दोनों हैं । स्वभावपरिणमन सूक्ष्म होनेके कारण इष्ट नहीं होगा । भेददृष्टिसे देखनेपर यह विभाव विशद दिखता है कि अमुक विभाव अमुक गुणकी पर्याय है, और अमुक विभाव अमुक गुणकी पर्याय है, किन्तु अभेदरूपसे द्रव्यको देखनेपर विभावपर्याय नहीं मालूम देगी । चमत्कार ही विलक्षण है । वृद्धि हानिरूप परिणमन तो सर्वत्र चलता रहता है । श्रद्धा गुणको घातने वाली सात प्रकृतियाँ हैं । भिन्न-भिन्न गुणोंमें ऐसी बातें कही जा सकती हैं, किन्तु द्रव्यमें यह बात घटित नहीं होती । द्रव्य एक है और वह परिणमता है । अविभागी बूँदें जितनी समुद्रमें हैं वह सब जल है । अनेक जल होनेपर विभिन्न बातें न देखी जायें तो एक जलके स्वभावमें विभिन्नता नहीं होगी । स्वभाव विभाव होते हुए भी एक समयमें एक स्वभाव या एक विभाव पर्याय होगी । अविरत क्षायिक, सम्यग्दृष्टिके सम्यक्त्व तो पूर्ण प्रकट है, किन्तु चारित्र अप्रकट है । इसको अभेददृष्टिसे न देखकर भेददृष्टिसे कहेंगे । पुद्गलमें रूप, रस, गंध, स्पर्शकी विभावपर्यायें हैं । जीवमें स्वभावादिकी अपेक्षा चेतनपर्याय और भेदमें ज्ञान दर्शनादि पर्याय हैं ।

विभावपरिणामकी कहानी—विभावरूपसे जो परिणमा है वह अपनी शक्तिसे परिणमा है । वह प्रभाव किसका है, असर व चमत्कार भी किसका है ? परिणमने वालेका । चौकोको निमित्त पाकर बँठ गए तो हमने असर किया । अगर जहाँ है वहाँकी वह पर्याय है । हम उपादान बैठे हैं तथा चौकी निमित्त है । अगर चौकी हाररी कर्त्री है तो सदैव हमारी

कर्त्री रहनी चाहिए। कोई पदार्थ ऐसा भी नहीं है कि निमित्त पाये बिना त्रिभवरूप परिणाम जावे, यद्यपि निमित्तकी शक्तिसे नहीं परिणामा, परिणामने वाला स्वयंकी कलासे परिणामा है, यह सर्वत्र उसकी विशेषता है। पहली अवस्था और अंतिम अवस्थामें रहने वाला तारतम्य जिससे ध्वनित हो वही तो पर्याय है। दृश्य जितने परिणामन हैं वे सब विभाव ही हैं। विवेक यह कहता है, उन सबकी दृष्टि गौण करके स्वभाववृत्ति अपनाई जावे। पराधीनताके परिणामन में भी वस्तुतः स्वतंत्रतासे निमित्त पाकर पदार्थ परिणामे हैं, किन्तु निमित्त उसरूपनहीं होगा।

द्रव्यमें ताना बाना—ताना बाना बुनने वाला पहले ताना पूर्ण कर लेता है, यह स्थायी अवस्था है। बाना क्रम-क्रमसे पूरा जा रहा है। इन्हीं दोनोंका समुदाय कपड़ा है। इसी प्रकार जितने भी पदार्थ हैं वे ताना बाना रूप हैं। गुण ताना है, पर्याय बानाकी तरह है। गुण विस्तार हुए तथा पर्याय आयत। गुण स्थायी है, किन्तु पर्याय अस्थायी। वे बानाके समान दौड़ते रहते हैं। द्रव्य तो अस्थायी है, किन्तु समय-समयमें पर्याय दौड़ती रहती है। एक बालक ७ वर्षका है, एक वर्ष बाद ८ वर्षका हो जाता है। १ वर्षमें ८ अंगुल बढ़ा तो क्या वह ३५६ दिन, २३ घंटा, ५६ मिनटके बाद १ मिनटमें ८ अंगुल बढ़ गया? नहीं, वह प्रत्येक समय परिणामन करता रहा, इसलिए पर्यायें दौड़ती रहीं तब वह पूरे एक वर्षके समय में जाकर उतना कदमें बढ़ गया। द्रव्य शक्तिपुञ्ज है। ऐसा गुणसामान्य, आयतसामान्य समुदायात्मक रचा हुआ है, इसीलिए द्रव्यमय है। हम हैं सो वही रहेंगे, वह द्रव्य नष्ट कभी होता नहीं। परिणतियां बदल जावेंगी, किन्तु सब द्रव्य मूलतः नष्ट नहीं होता।

हमें अपनी निजी घटनाओंमें से एक घटना पूर्ण याद है। हमारी ७ वर्षकी उम्र थी। उस समय सब लड़कोंके साथ मदरसामें पांडेजी के पास पढ़ने जाया करते थे। उस समय कक्षायें नहीं होती थीं, पहली दूसरी आदि किताब क्रमसे पढ़ाते रहते। पांडेजी को १) २० महीना और १५ दिनमें एक सीदा दिया करते थे। एक दिन एक लड़केने लिखनेमें कुछ गलती कर दी, जिससे पटवारी मास्टरजी ने रूलसे उसे खूब पीटा, वह चीखकर रोने लगा। मुझे बहुत डर मनमें बैठ चुका था, इसलिये दूसरे दिन पढ़ने नहीं गया। घरपर मां ने ठंडा परांठा छाछ बिलोनेका समय होनेसे साथमें भक्षन दिया। मैं चैनसे खा रहा था, उसी समय मां ने कहा—आज पढ़ने क्यों नहीं गये? तब मैं डरसे उस पिटाईका भी उत्तर न दे सका, चुपचाप रहा। इसपर मां ने मुझे पीटा। मैं उस समय रोते-रोते सोच रहा था कि अगर मैं इस मट्ठा बिलोनेका काठका खम्भा होता तो पिटता नहीं और न दुःखसे रोना पड़ता। इसी तरह यदि ऐसा हो कि मैं नहीं हूं तब तो भला है, दुःख ही नहीं होगा, किन्तु ऐसा है तो नहीं; मैं तो हूं ही और यह तो रहेगा ही। इस समय जिसे अन्याय, अभक्ष्य भक्षण करना सो कर लेवे, फिर देखा जायगा, तो यह हो नहीं सकता कि उसका फल नहीं मिले। कुकृत्योंका फल नियमसे

भोगना हो ॥ है । पर्याय बदल जावेगी तो भी हम किसी अन्यरूपमें मौजूद रहेंगे । मैं समूल नष्ट नहीं हो सकता ।

खुदकी करनी खुदकी भरनी—सोचना चाहिये तब किसके लिये इतना आडम्बर करूं, यह सब यहीं छोड़कर अकेला जाऊंगा । ऐसा मैं अकेला हूं, जिसका न कोई साथी है और न बन्धु ही । एक राजा जंगलमें पहुंचा । वहाँ एक मुनि गौरवर्ण, हृष्टपुष्ट छोटी अवस्थाके बैठे थे । उसने सोचा महाराजजी को बड़ा क्लेश है । राजाने पूछा—आप बड़े दुःखी हो रहे हैं, आपका नाम क्या है ? मुनिने कहा—मेरा नाम अनाथ है । राजाने कहा—आप दुःखी न होवें तथा मेरे यहाँ चलिये, वहाँ सुखी हो जावेंगे, मैं आपका नाथ हूं । मुनिने कहा—तुम्हारे पास क्या है ? हमारे पास राज्य, महल, खजाना, नौकर, हाथी, घोड़े एवं भोगोपभोगकी सामग्री है । मुनिने कहा—यह सब मेरे पास भी थे । राजा बोला—फिर अनाथ क्यों कहते ? मुनि बोले—बात यह है कि मेरे सिरमें जोरसे दर्द हुआ, उस समय वैद्य, डाक्टर, कुटुम्बी जनों एवं माता-पिता सभीने उपचार किये और सान्त्वना दी । लेकिन उससे नाममात्र भी लाभ नहीं हुआ और न कोई दर्द जरा भी बाँट सका । तब सोचा संसारमें कोई किसीका नहीं है, मैं तो अनाथ हूं । मेरा चित्त तब कहीं न जमकर यहाँ जमा । राजन् ! आपका नाथ आपके पास है, अपना स्वभाव अपनी दृष्टिमें रहे तो उसे कुछ नहीं चाहिये ।

सर्वोत्कृष्ट प्रोग्राम आत्मरसविभोरता—यदि आत्मरसविभोर हो जायें, फिर अन्य प्रोग्रामकी क्या जरूरत ? भाई जिनेश्वरदास स्वाध्याय कर रहे थे, साढ़े छः बजेपर इशारा किया तो उनकी स्वाध्यायवृत्तिकी तन्मयता हट गई । मुझे पता चला तो दुःख हुआ कि क्यों टोका इन्हें । लेकिन उस समय दूसरे कार्योंका समय हो चुका था । कहीं इनको ही पीछे कुछ ख्याल न आवे, इस दृष्टिसे टोका । किन्तु यदि ध्यान जमे तो वहाँ उसकी तन्मयता कार्य देती । हितार्थीको चाहिये क्या ? दो आँखें । पूजाका समय निकल जानेपर भी एकाग्रताका आत्म-ध्यान मिले तो यह पूजा ही है, किन्तु पूजन करते समय चिन्ता सता रही होवे, मुझे घरका कार्य पड़ा है, पूजनमें क्या रखा है तो पूजा करते समय भी स्वभाव अमृतका पान नहीं कर पाता । यदि मैं अपना कार्य एकाग्रतासे करता हूं कहीं भी, तो वहीं अमृतका पान होता है । सत्में चाहे अन्तर पड़ जावे, पर स्वभावदृष्टिका ध्यान रहे । भगवान् आपका क्या स्वरूप है ? आपका पर्याय ऐसा नहीं है, जो द्रव्य गुणके प्रतिकूल हो । द्रव्य, गुण, पर्याय जहाँ सब एक सम हो जायें, ऐसा मेरा भी स्वभाव है । हम वहाँ स्वभावके कितने विरुद्ध जा रहे हैं ? यह अन्तर मुझमें और भगवान्में है । जो भीतर बाहर समान है, यह भगवान् है । बाहर भीतर समान न रहने वाले संसारी जीव हैं ।

स्वभावदृष्टि अमृत है, जिसके पानसे अमृत हो लिया जाता—जिसकी मान्यतामें आ

गया—मैं नहीं मरता, वह अमर है। जिसके पास करोड़ोंकी संपत्ति पड़ी है और उसे ज्ञात नहीं कि मेरे ही घरमें इतना धन है, वह दरिद्र है तथा जो दरिद्र है, फिर भी उसे ज्ञात हो गया, मेरे घरमें इतनी संपत्ति गड़ी है और उसे निकालनेकी चेष्टा शुरू कर देता है। यद्यपि उसे अभी वह मिली भी नहीं, फिर भी वह धनाढ्य है। मैं अमर हूँ, पर उसका अनुभव नहीं करता। अमर होनेकी प्रतीति होनेपर मरते समय भी मरता नहीं। लोग दूसरोंको चोला बदलते समय समझाते रहते हैं—नये महलमें जा रहे हैं, स्वर्गमें गये तो वहाँ शतगुणो भोग, परिकर, स्थान, समागम, महल (विमान) तथा कोई गुणी आयु मिलेगी। किसी व्यापारीको थोड़ा नुकसान उठानेके बाद लाभ अधिक हो तो वह पहले नुकसानकी परवाह नहीं करता, उसी तरह इस नश्वर शरीरसे थोड़ा कष्ट उठाकर अतुल मोक्षरूपी लक्ष्मी या स्वर्गशोभा पाई जा सके तो पूर्वके कष्टको साम्यभावसे सहन कर लेना चाहिये। ऐसी समझावट अपने लिये मरण समयमें रहे तब बुद्धिमान्नी है। जीवनका लक्ष्य संयम होना चाहिए। ज्ञानीको अपने संयमका भी मालूम नहीं। अज्ञानीके व्रत भी अब्रत रहते हैं। ज्ञानीके व्रत रहते हैं, किन्तु इसका उसे विकल्प नहीं। अज्ञाननिवृत्ति ही ज्ञानीके मुख्य फल रह जाता है। उसे हेय उपादेयका विवेक करना श्रेयस्कर है। वहाँ भी वह ज्ञाताद्रष्टा रहता है। समागम छोड़नेमें दुःख नहीं मिलते और न सुख। वस्तुस्वरूपको समझते हुए स्वयंके ज्ञाताद्रष्टा रहो तो निश्चयसे भगवानके भक्त हो। व्यवहारसे अरहंत सिद्धके भक्त हो, आनन्दके तो अधिकारी हो ही।

आत्महितोद्देश्यके निर्णयीको असारसंगमें बेअटकी—जैन कहलाना सरल है, असली जैनत्व कठिन है। जैनत्व वहाँ सफल है जहाँ स्वका ज्ञान हो गया। अन्यथा अन्य जन जैसे रहते हैं उसी तरह मैं भी रहता हूँ तो क्या लाभ हुआ, जीवन बिताना मात्र रहा। मैं चैतन्य-मात्र हूँ—इस तत्त्वका अनुभव तो यह जीव कर नहीं सका तथा परपदार्थोंमें भूल गया। तपस्या भी कर रहे हैं, फिर भी अपनेको व्रती मानकर उसका पर्यायबुद्धिका कार्य चालू है। वहाँ व्रतोंकी अहंबुद्धि स्वस्वरूपका भाव नहीं होने देती है। व्रत निर्दोष पालना चाहिए, किन्तु उन्हींमें सर्वस्वबुद्धि आ गई तो बहिरात्मत्व आ गया। ये व्रत तो परिणामन हैं वे नहीं रहेंगे। यह मुनिपर्याय भी नहीं रहेगा, वह या तो मुक्त हुए पर समाप्त हो जाय या निगोदिया आदि जीव हो जावे तब समाप्त हो जाय। आत्मा चैतन्यस्वरूप है उसकी साधनामें चलते हुए समय व्यतीत होना चाहिए। ध्येय कभी न भूलो। किसी व्यक्तिको बम्बई जाना है, वह बम्बईका टिकट लेकर रेलमें बैठ गया। रास्तेमें दिल्ली, आगरा, भोपाल, भाँसी आदि भी मिलेंगे। बम्बई जाना है, जाने वाला व्यक्ति बीचमें ही साफ सुथरे, कंगूरों वाले स्टेशनको देखकर उतर जावे तो वह बम्बई नहीं पहुँच सकता। उसी तरह जिसे मोक्षमहलमें जानेका लक्ष्य है, किन्तु इन्हीं मनुष्य, मुनि, राजा, महाराजा जैसी पर्यायोंमें भूल गये तो उसका मूल

लक्ष्य यहीपर समाप्त हो गया, जिस तरह बम्बई जाने वालेका उद्देश्य खत्म हो गया। आत्म-स्वरूप, निजतत्त्वको जाननेके बादमें स्थिरता बना लेवे, यहां वहांके संकल्प छोड़ देवे। इस तरह जानता रहे तथा परमें अपनेको नहीं लगावे तो उद्देश्यपथपर स्थित समझे, और कार्य करते हुए भी उनमें श्रेष्ठ कार्य चुन लो जिनके द्वारा यथार्थ हित साधन हो सके। जो मूल उद्देश्यको ही जड़से खत्म करने वाले हों, उन्हें हेय समझकर छोड़ दिया जावे। तथा जो उद्देश्यको न भूल सकें वह ब्रती हैं। व्रतपालनमें भी कषाय है, अव्रतमें तो कषाय है ही। व्रतमें मन्दकषाय, अव्रतमें तीव्रकषाय। मान लो टैक्समें १०००) लग रहे हों, और १००) खर्च करनेपर वह कार्य निकले तो १००) खर्च करके ६००) बचा लेता है। यह लौकिक उदाहरण मात्र है। इसी तरह मन्दकषायोंके काम करके तीव्रकषायोंसे बच जाते हैं तो वह हमारा लाभ ही है। जैसे रुपया देने वाला चाहता तो यह ही है कि १००) भी न देना पड़े, फिर भी अपनी स्थिति व वातावरण देखकर १००) देता ही है। इसी तरह संस्कारोंको देखकर ज्ञानी जीव भी मन्दकषायमें लग जाता है, परन्तु लाभ समझता है विषय कषायसे छूटनेमें।

वस्तुतः किसी भी पर्यायमें अहंबुद्धि न हो वही लाभ है—शास्त्रोंमें कहीं लिखा रहता है कि द्रव्यलिङ्गी मुनि कोल्हूमें पिल जाने जैसे भी उपसर्ग समतासे सह लेता है, फिर भी द्रव्यलिङ्गी रह जाता है। उसमें अन्तर क्या पड़ता है? यह सूक्ष्म विचारसे जाना जा सकता है। इतना विकट उपसर्ग बहुत विशुद्ध भावोंके बिना नहीं सहा जा सकता। उस सम्बन्धमें द्रव्यलिङ्गी साधु यही सोचा करता होगा कि मैं मुनि हूं, मैंने महाव्रत धारण किये हैं, किसीपर द्वेष करना मेरा कर्तव्य नहीं है। समतासे सह लेनेपर मोक्षमार्ग मिलेगा, मुझे साधु व्रत निर्दोष निभाना चाहिए। अब आप सोचो कि इन भावोंमें गलतियाँ क्या हैं? मोटे रूप से कुछ भी गलतीसी नजर नहीं आती, किन्तु सूक्ष्मतासे देखो तो समझमें आवेगी कि उसे पर्यायमें अब भी अहंबुद्धि है। उसे साधुपर्यायमें इतनी दृष्टि न गड़ाकर कहाँ दृष्टि लगाना चाहिए, इस बातको संक्षेपमें कहते हैं—मैं शुद्ध चैतन्यमात्र हूं, चैतन्यवृत्ति ही मेरा कार्य है, मैं अपने स्वभावमात्र हूं। इस तरह आत्मस्वभावपर ही दृष्टि रखना साधु परमेष्ठीका मुख्य कार्य है। आत्मस्वभावका अनुभव न होनेसे किन्तु साथ ही आत्महितकी वाञ्छा होनेसे शुभ भाव आते हैं। आत्मस्वभावका परिचय होनेपर उन शुभ भावोंकी रुचि भी ज्ञानीके नहीं होती। यह उद्धारका उपाय कैसे बने? इसके लिए द्रव्य गुणपर्यायका सम्यक्परिचय करना आवश्यक है। द्रव्य गुण पर्यायके परिचय बिना शास्त्र लेखोंके अनुसार तीन लोककी रचना व विविध जीवस्थान आदि भी जान जाय तब भी निर्विकल्प स्थिति तक पहुँचनेका पात्र नहीं होता, द्रव्य गुण पर्यायके यथार्थ परिचय होनेपर अन्य विविध ज्ञान न हो तो भी उद्धारका

पात्र बन सकता है ।

पर्यायोंका सुगम लाञ्छन—पर्यायें क्या हैं ? जो विनाशकी हैं वे सब पर्याय हैं, और जो विनाशकी नहीं वे या तो गुण हैं या पर्याय हैं । तत्त्वको भेददृष्टिसे देखो तो वह गुण है और अभेददृष्टिसे देखो तो वह द्रव्य है । पर्यायें दो प्रकारकी कही थीं—(१) द्रव्यपर्याय, (२) गुणपर्याय । द्रव्यपर्याय दो प्रकारकी है—(१) स्वभावद्रव्यपर्याय, (२) विभावद्रव्यपर्याय । स्वभावद्रव्यपर्याय तो उपाधिके बिना स्वयं जो प्रदेशोंकी अवस्थिति है वह है और विभावद्रव्यपर्याय उपाधि संयोग होनेपर जो प्रदेशोंकी अवस्थिति है वह है । विभावद्रव्यपर्याय दो प्रकारकी है—(१) समानजाति द्रव्यपर्याय, (२) असमानजाति द्रव्यपर्याय । समानजाति द्रव्यपर्याय तो इस तरह है । जैसे कि अनेक सूती कपड़ोंको सीमकर एक चादर या चंदोवा बनाया जाय, इसमें समानजातिके याने सूती कपड़ोंका समुदाय है । यह दृष्टान्तमात्र है । प्रकरणमें तो जितने भी स्कन्ध हैं, चाहे वह दो अणुओंका हो, संख्यात, असंख्यात, अनन्त अणुओंका हो वह सब समानजाति द्रव्यपर्याय है अर्थात् इन स्कन्धोंमें पुद्गल परमाणुओंका ही पिण्ड है, किन्तु असमानजाति द्रव्यपर्यायमें दृष्टान्त यह बैठेगा । जैसे सूती रेशमी आदि असमानजातीय कपड़ोंको सीमकर चंदोवा बनाया जाता है अथवा कोई कपड़ेका थान ऐसा बुना हो, जिसमें ताना तो रेशमका किया हो व बाना सूती तंतुओंका किया हो या ताना सूतीका व बाना रेशमका तो वह कपड़ा दृष्टान्तमें असमानजातीय द्रव्यपर्याय है । प्रकरणमें असमानजाति द्रव्यपर्याय मनुष्य तिर्यञ्च आदिक हैं, क्योंकि वे जीव पुद्गलके संयोग होनेपर ही बने हुए हैं । अनेक आकारोंसे सम्बन्ध रखते हैं, इनका नाम द्रव्यपर्याय है ।

अब गुणपर्याय कही जाती है । गुणपर्यायें दो तरहकी हैं—(१) स्वभावगुणपर्याय, (२) विभावगुणपर्याय । जिसमें कर्म नोर्कर्मका सम्बन्ध न हो, ऐसा जो परिणामन है वह स्वभावगुणपर्याय हुई । दूसरेका निमित्त पाकर द्रव्य परिणमता है, यह विभावगुणपर्याय हुई । रागादिक न जीवका कार्य है, न पुद्गलका कार्य और न दोनोंका कार्य है । वह कार्य हो ही नहीं, ऐसा भी नहीं । बच्चेको ऊधम करता देखकर मां कहती है, शोर मत करो, नहीं तो हौवा आ जायगा । बच्चा हौवाका नाम सुनकर चुप हो जाता है । हौवा बच्चे और मां दोनों ने मान लिया है अन्यथा उसकी कोई शक्ल नहीं है । जीवमें राग आवे तो परमात्माके राग आना चाहिए और कर्ममें राग आवे तो पुद्गलके राग आना चाहिये । राग निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध पाकर हुआ है । दर्पणके सामने घड़ी रख देनेसे दर्पण घड़ी आकारके प्रतिबिम्बरूप हो गया । निमित्तकी अपेक्षा छोड़कर देखो—घड़ी दर्पणमें से आई या दर्पणको छोड़कर आई । बाहरी कारण तो निमित्त है । घड़ीके प्रतिबिम्बका रक्षक कौन है ? उस रागका रक्षक भी कोई नहीं है । यह राग तो मरनेको ही फिर रहा है । हम राग करते, वह वर्तमान भलक

दिखाकर चला जाता है, फिर भी जो होता भलेके लिए यदि तत्त्वज्ञान हो तो ।

ज्ञानीकी सर्वत्र भलाईकी ओर अभिमुखता—दो भाइयोंमें लड़ाई हो रही होवे और वे समझानेपर भी न मानें तेजीसे पेश हों तो वह देते हैं—तुम अपने मनकी भरी बुझा लो, कषाय निकल जायेगी । राग भी भलेके लिए है, किन्तु उसमें अहंबुद्धि न करे । एक समय राजा और वजीर जंगलमें जा रहे थे, वह रारता भूल गये । वजीर कहता जो होता भलेके लिये । राजाने वजीरसे पूछा—हमारी ये छः अंगुली कैसी हैं ? वजीर बोला—बहुत अच्छी हैं । राजाने सोचा, मैं छिगा हूँ अर्थात् अधिकांग हूँ, उसपर कहता बहुत अच्छी हैं । यह सुनकर राजाने गुस्सेमें आकर वजीरको कुर्वेमें ढकेल दिया । राजा आगे चला तो किसी देशमें नरमेघ यज्ञ हो रहा था, जिसमें मनुष्योंको पकड़-पकड़कर यज्ञमें होमा दिये जाते थे, वहाँके पंडा लोग चारों ओर दूर-दूर तक मनुष्योंको पकड़नेके लिए तैनात थे । राजाको आता देखकर पंडा पकड़ ले गया और खूँटेसे बाँध दिया । राजाको होमने ही वाले थे कि इतनेमें एक पंडाकी दृष्टि उसकी ६ अंगुलियोंपर पड़ गई तो कहा—ठहरो, ठहरो, यह यज्ञमें होमने लायक नहीं है छिगा होनेसे, अन्यथा सारा यज्ञ खराब हो जायगा । राजाने सोचा, आज मेरी जान बच गई और भाग चला । कुर्वेके पास आकर वजीरको निकाला तथा कहा—तुमने अच्छा कहा था ६ अंगुलियों को जिससे मेरे प्राणोंकी रक्षा हुई, किन्तु वजीर यह तो बताओ—तुम्हें कुर्वेमें पटका सो कैसा रहा ? वजीर बोला—यह मेरी भलाईके लिये कार्य हुआ । अगर दोनों साथमें जाते, तो आप तो बच जाते और मैं पकड़कर यज्ञ आहुतिमें होम दिया जाता ।

उद्धारमार्गमें सरलताकी प्राथमिकता—भैया ! एक ही बात आ जावे कि मायाचार न हो तो भी उद्धारका मार्ग मिलेगा । आपसी व्यवहारमें भी मायाचार नहीं रखना चाहिए । यदि किसीसे कुछ कहना हुआ तो स्पष्ट वह दिया । भैया ! हमारे परिणाम ऐसे हुए, इसलिए आपसे ऐसी बात कह ली । इतने प्रेमपूर्ण बर्तावमें भगड़ा निपट गया । व्यवहारमें भी जब तक यह श्रद्धा है, मायाचार बिना रोजगार नहीं चलता तभी तक ऐसा करेगा । लेकिन विश्वासपूर्ण उचित मुनाफा लेकर व्यापार करे तो कार्य चलेगा ही । जैसे कोई वस्तु ६) २० में खरीदी है और उसपर २ आने २० लाभ लेकर ६।।) २० हुए तो ग्राहकसे एक दामका व्यवहार करे या देहाती मनुष्य बिना भाव-ताव किये नहीं लेते तो १०) २० में भी ६।।।) २० की वस्तु बतावे, और ग्राहक यहाँ ५) २० से शुरू करे तथा ७।।) २० तक भी आ जावे तो ७।।) २० लेकर ।।।) २० वापिस कर देवे व कहे—तुम एक दाममें विश्वास नहीं करते, इसलिए इतना दाम बताया था । सही कीमत ६।।।) २० है । चलो यह भी आन्तरिक सत्यता है । उत्तम तो एक ही सत्य बात है । किसीसे लड़ाई हो जानेपर या छोटे वचन निकल जाने से बैठे-बैठे सोचा करते हैं—क्या करना, क्या नहीं करना है ? इस सोचनेकी अपेक्षा अन्तरङ्ग

का भाव सरलतासे प्रकट कर दिया—आपके प्रति हमारा ऐसा भाव है। सरलता कपटसे बचा देती है और सुख शान्तिसे रहने देती है। दूसरेको मूर्ख बनानेसे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है? बादमें कलई खुल जानेसे कोई इस तरहके मनुष्यका विश्वास भी नहीं करता। कपट करके किसे प्रसन्न करना? अपनी प्रसन्नतासे ही शान्ति मिलेगी।

दिखावट व बनावट मत करो—बुन्देलखण्डके एक गाँवमें सुनार और उसकी पत्नी थी। पत्नी सुनारसे बोली—मुझे अमुक-अमुक हाथ, गले, नाक, कान आदिके गहने चाहिए। बहुत दिन तकादा किया। सुनार ईमानदार था, वह सर्राफके यहाँ गया और २०) ६० किराये पर १०० तोला सोना लाया। पत्नीके पास सोना लाया तथा ऊँचे तरीकेसे गहने बनाने वाले सुनारको बुलवाया और कहा—अमुक-अमुक गहने इस सोनेके तैयार कर दो। सब तय हो गया। बादमें सुनार अपनी पत्नीसे बोला—गहने तो तुम्हें बनेंगे ही, किन्तु यह तो बताओ कि यह गहने हमको खुश करनेको बनवा रही हो या दुनियाको खुश करनेको। यदि दूसरोंको खुश करनेके लिए बनवाती हो तो बनवा लो और यदि मुझे खुश करनेको बनवाती हो तो सुनो—मेरी ३-४ हजार रुपयेकी कुल स्थिति है, उसमेंसे अपना व बच्चोंका पेट काटा जावेगा तब कहीं कर्ज चुक पावेगा। वर्तमान समयमें बढ़िया-बढ़िया साड़ियाँ चप्पल, बेग, आभूषण तथा अनेक प्रकारकी भड़कीली वेशभूषा रखना क्यों ग्राह्य हो रहे हैं? इससे हम पेट काटकर ऋण चुकावेंगे तो हम खुश होंगे तुम्हारे प्रति या अप्रसन्न? तब स्त्रीने कहा—हमें अब गहने नहीं बनवाने हैं। यह दिखावट क्यों करूँ, जो स्वाभाविक रूप है, उसपर ही क्यों न मैं सन्तोष करूँ? किसके लिये बनावट करना? जिसकी यह दृष्टि हो जाय तब क्या वह भड़कीले गहनों एवं कपड़ों आदिसे अपनेको सजावेगा? कदापि नहीं। वह सादी वेशभूषामें ही प्रसन्न रहेगा। वेश तो प्राकृतिक ही सुन्दर है।

आपत्तिमूलक बनावटीपनका विनाशक सहज स्वतत्त्वका अनुराग—जो बनावटी भेष रखता है, उसके कान पकड़े जाते हैं तथा उसे चांटे खाना पड़ते हैं। गुरुजी और चेला थे, दोनों राजाके बागमें जाकर ठहर गये। गुरुने वहाँ कह दिया तुम यहाँ बनावटीपन मत दिखाना। वे दोनों कोठरियोंमें जा बैठे। इतनेमें पहरेदारने आकर देखा तो उसने राजासे जाकर कहा—कोठरियोंमें दो मनुष्य बैठे हैं। राजाने सिपाहीसे कहा—उन्हें निकाल दो। तो सिपाहीने जाकर चेलेसे पूछा—तुम कौन हो? चेलेने कहा—मैं साधु हूँ। सिपाहीने कहा—बड़ा कहींका आया यहाँ साधु, उसे तो चांटे मारकर तथा कान पकड़कर निकाल दिया। अब गुरुके पास सिपाही पहुँचा तथा पूछा—तुम कौन हो? गुरुने कुछ उत्तर नहीं दिया। तब यही वृत्तान्त राजाके पास ले गया। राजाने कहा—कोई तपस्वी होगा, बैठा रहने दो। बादमें गुरु और चेला मिले तो चेलेने कहा—हमें तो कान पकड़कर निकाल दिया। गुरुने कहा—तुमने

हमारा कहना नहीं माना होगा कि यहाँ बनना नहीं। चेला बोला—मैं तो कुछ नहीं बना। सिपाहीने पूछा कौन हो? मैंने कहा साधु हूँ। तुम साधु अपने मुँहसे बन गए, इसलिए निकाल दिये गये—ऐसा गुरुने समझाया। द्रव्यलिंगी मुनिकी चर्चा चल रही थी। बनावटीपन व निरुद्देश्यपन सभीको क्लेशदायक हो जाता है। द्रोणाचार्यने सब शिष्योंको कागजकी चिड़िया की आँख बेधनेकी परीक्षा की तो कोई शिष्य बोला—मुझे पेड़ दिखता है, मुझे चिड़िया दिखती है, मुझे पत्ते दिखते हैं, किन्तु अर्जुनसे पूछा गया तो बोला—गुरुजी! मुझे केवल आँख दिखती है। अर्जुन परीक्षामें पास हो गया, यह तो दृष्टान्तकी बात है। तात्पर्य यह है कि बिना यथार्थ लक्ष्यको समझे व बिना जीवनमें यथार्थता उतारे कोई लाभ नहीं होता। इसी तरह ज्ञानीको केवल आत्मस्वभाव दिखता है। उसे द्रव्य, गुण, पर्यायके विकासोंकी भी जरूरत नहीं रहती, किन्तु उसकी व्यवस्था जाने बिना सभी तत्त्व समझमें नहीं आते हैं। पं० दौलतरामजी ने भी छहदालामें इस त्रिषयपर एक पंक्तिमें क्या ही मार्मिक बात कही है—‘चित् पिंड अखंड सुगुण करड’ परिणामोंमें निर्मलता आई तब चैतन्यद्रव्यका पिंड अभेद मालूम होता है तथा आत्म-ध्यानरूपी ज्योति स्वयंमें प्रदीप्त हो जाती है।

सृष्टि तो सृष्टिके आधारकी है—ज्ञानगुणका जो विकास है वह ज्ञानगुणकी पर्याय है। दर्शनगुणका जो विकास है वह दर्शनगुणकी पर्याय है। चारित्रगुणका जो विकास है वह चारित्रगुणकी पर्याय है। द्रव्यपर्यायके दो भेद हैं—(१) स्वभावद्रव्यपर्याय, (२) विभावद्रव्यपर्याय। (१) परद्रव्यको निमित्त पाये बिना अपने आपका जो प्रदेश परिणमन है वह स्वभावद्रव्यपर्याय है। (२) जो परद्रव्यको निमित्त पाकर प्रदेशपरिणमन होता है वह विभावद्रव्यपर्याय है। इसी प्रकार गुणपर्यायके भी दो भेद हैं—(१) स्वभावगुणपर्याय, (२) विभावगुणपर्याय। विपरीत परिणमन तो जल्दी समझमें आ जाता है, किन्तु स्वभावको समझनेमें देर लगती है। सूक्ष्म अगुरुलघुगुणोंमें जो हानि वृद्धि होती है, उसे स्वभावगुणपर्याय कहते हैं तथा जो स्थूल रूपसे गुणोंका परिणमन होता है उसे विभावगुणपर्याय कहते हैं।

भागवतीचर्चामें वस्तुत्वका निर्णय—यह भागवतीचर्चा परमेश्वरके द्वारा कही गई है। यह व्यवस्था अनादिकालसे ही है। यह चर्चा द्रव्यस्वभावका प्रकाश करने वाली है। यह परमेश्वरी व्यवस्था ही नहीं है। अन्यत्र भी ब्रह्माने विष्णुको ज्ञान दिया। सूर्य, चंद्रमा आदिसे महादेवकी, उनसे बाल्मीकिको ज्ञान मिला। इस प्रकार किसी तरहसे चर्चा पाई जाती है। आपके यहां जैनधर्ममें सर्वज्ञदेवकी दिव्यध्वनि खिरी, उसे गणधरने प्राप्त किया, गणधरने प्राणी मात्रको उपदेश दिया। गणधरसे अन्य आचार्योंको ज्ञान मिला, उनसे परम्परापूर्वक आचार्य लिखते आये, परम्परासे कहनेकी बात दोनोंमें है। पूजनमें जैनियोंके यहां बोलते—‘अपवित्रः पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा। ध्यायेत् पंचनमस्कारं, सर्वपापैः प्रमुच्यते॥’ औरके यहां

इसी तरह होते हुए 'ध्यायेत् पंचनमस्वार' के स्थानपर 'ध्यायेत् पुण्डरीकाक्षं' दिया है। आपके यहाँ भी तो विशेषणोंसे युक्त वर्णन करते हैं। उनके यहाँ भी विशेषणों सहित वर्णन करते हैं, किन्तु वर्णन तो कर जायेंगे, परद्रव्यको नहीं छुड़ेंगे। द्रव्य व्यवस्था कैसी है? वैज्ञानिक ढंग से समझी जावे। लेकिन ब्रह्मा, विष्णु या जिनके उपदेशोंको या विशेषताओंको कहेंगे। द्रव्य क्या है, कितना है, वैसा है? उसका परिणमन क्यों होता है आदि बातें द्रव्योंमें देखें, सो वहाँ कुछ बुद्धिका जोर लगाना पड़ता है। इसलिये ही द्रव्य, गुण, पर्याय व्यवस्थाकी समझकी आपत्ति से बचनेके लिये कुछ लोगोंने सरल तरीका निकाल लिया। वह क्या? प्रथम ईश्वर ही था। उसने ऐसी इच्छा की। अकेलेसे बहुत बन जाऊँ और सारा जगत बन गया। भैया! आपका भी तो कोई साथी नहीं है, अकेले ही तो हैं। आपको यह इच्छा हुई, बहुत बन जाऊँ सो वही हो गये अर्थात् बड़ा भारी कुटुम्ब बसा लिया। नर, पशु आदिरूप धारण कर लिये। मनुष्य होनेका विकल्प छोड़कर चिद्रूप हूँ, चैतन्यमात्र हूँ, ऐसा अनुभव करें तो फिर वह मनुष्य नहीं है, वह आत्मदेव है। आपको तो मनुष्य नहीं प्रतीत होगा। दुनिया ही देखकर कहेगी—यह मनुष्य बैठा है। जो जीव परद्रव्यमें लगने वाले व्यवहारका विरोध न करे, केवल शुद्ध द्रव्य अर्थात् एक ही का निरूपण करे तो उसे स्वसत्ताका ज्ञान हो जायगा। सब मेरे हैं, यह विकल्प समाप्त कर देवे, शुद्ध आत्मामात्रका अनुभव करे तो शुद्ध आत्माकी प्रतीति होवे।

भगवानकी उपासनामें तुम वस्तुतः क्या करते हो—भगवान तीन प्रकारके हैं—

(१) शब्दभगवान्, (२) अर्थभगवान् और (३) ज्ञानभगवान्। इन तीनोंसे कार्य पड़ता है। (१) शब्दभगवान् अर्थात् 'भगवान्' शब्द जो पढ़ने या लिखनेमें आता वह शब्द-भगवान् हुआ। लिखकर या बोलकर देख सकते हो। अर्थभगवान्—जिन्होंने कर्मोंको नष्ट कर दिया है। जहाँ कर्म नोकर्म रहे नहीं, केवल शुद्ध ही है वह एक अर्थभगवान् है। शब्दों द्वारा जिस अनन्तचतुष्टय परमात्माको निश्चय किया, यह अर्थभगवान् है। ज्ञानभगवान्—अनन्तचतुष्टयसे संयुक्त है, कर्म नोकर्मोंसे रहित है। ऐसे निश्चय करनेको याने इस ज्ञानको ज्ञानभगवान् कहते हैं। ज्ञानभगवान् तो यहाँ है। अर्थभगवान् सिद्धशिलापर विराजमान है और ज्ञानभगवान् आत्मामें है। आत्मभगवानका पूजन नित्य करते हैं। पूजा करना हमारी क्रिया है, वह हममें व्याप्त है। अन्यमें व्याप्त तो नहीं हो सकती। इसका मतलब हमने अपनी पूजा की। खोटे विकल्प करें तो खोटी पूजा कर ली। निर्विकल्प समाधि ही तो असली पूजा हो गई। विषय कषायमें भी हम अपने को करते हैं वह कुपूजा हुई, दूसरेका न कुछ किया और न कर सकते हैं।

प्रत्येक द्रव्य स्वयं सत् रूप है—माँ कब चाहती मेरा बच्चा गुजर जाय। गोदमें लिये है, खिलाती चूमती है, फिर भी जीव निकल जाता है। मनुष्य वृत्ते हैं, हम पर बड़ी जिम्मे-

वारी है। दस या पन्द्रह छोटे बड़े गृहस्थीमें है, उनका पालन-पोषण करना है। यह दूसरी की जिम्मेवारी क्या ले सकता है, अपनी आत्माकी क्रियाकी जिम्मेवारी है। छोटा बच्चा है, उसकी पुण्यवर्गणायें आपसे प्रबल हैं तो उसीके पुण्योदयसे आप कमा रहे हैं। तभी जुड़ता भी है। एककी भी जिम्मेवारी आपपर नहीं है। केवल हमपर हमारी जिम्मेवारी है। बच्चे जिन्दा होनेपर भी तो सेवा नहीं करते, मरनेपर तो करेंगे क्या? जीते समय अनुकुल नहीं चलते। बापको जिन्दगीमें तो सुख नहीं देना चाहता, मरनेपर कोई कोई तो कनाःत (तेरहवीं) श्राद्ध करते हैं। जीतेमें बाप कहे तुम जो कुछ हमारे मरनेपर करना चाहो उसके बदले जिन्दामें ही कर लो, मरनेपर श्राद्ध वगैरा नहीं देना। दुःख तो भैया! अपने आप बना लिया। बाप कहता है, पाँच वर्ष, १० वर्ष लड़केको मैंने पढ़ाया, बी० ए०, एम० ए० करा दिया। इसको इतना रुपया महीना प्रति माह देता था। कुल इतना रुपया खर्च कर दिया, किन्तु यह हमारी बात भी नहीं पूछता। यह सब कल्पनाजाल है, उसका निमित्त ऐसा ही था इसलिए आपने ऐसा किया। कदाचित् यह लड़का प्रतिकूल भी निकल जाय तो भी ज्ञानीके ऐसा भाव नहीं आयेगा। सोचो मैंने इसका क्या किया? बी० ए०, एम० ए० आपने थोड़े बना दिया। उसका ज्ञान उसमें था, निमित्त पाकर प्रकाशित हो गया। बच्चा पढ़कर जो करता ठीक करता है। उसकी समालोचना करनेसे क्या भगवान्की भक्ति आ जावेगी? मिथ्यात्वके उदयमें विपरीत ही कार्य किये जाते हैं। मिथ्यात्वके उदयमें बलि देता है। खोटे अभिप्रायमें उसके लिए ऐसा ही ठीक प्रतीत है, इसलिए उसे ऐसा ही चाहिये। अन्य आत्मायें सब स्वतन्त्र हैं। मुझे क्या चाहिये? उनके विकल्पोंमें क्यों पड़ रहा है? यह विकल्प क्यों रहे, गुजारा कैसे हो? इसकी चिन्तामें ही क्यों दिन रात पड़े रहते? जितना धन हो उसे या उसमेंका माफिक हिस्सा रख लीजिये, फिर धर्मसाधनमें रत हो जाइये। तब क्या संक्लेश होता है? बच्चे या अन्य स्त्री भाई आदि प्रतिकूल चलते हों तो अपने कार्यमें लग जाओ। हमें तत्त्वज्ञानपूर्वक वैराग्य आता है तो कोई संकट नहीं आवेगा, भले ही चाहे वह बोल कर नहीं जाने। सन्तान हमारे प्रतिकूल चले, मुक्का, घूँसा मारे, अपमान करे, तब भी हम उन्हींके बारेमें सोचते हैं। जब उन्हें संभाल सकते तो उपेक्षा कर देना चाहिये। दुःख तो उसी मोहमें है। हम ही कहते शास्त्र पढ़ना भी मोह है। जब न कोई सुनने सुनाने वाला है, फिर भी चेष्टा। रागी हैं दशों जगह गालियाँ मिलती हैं—क्या बेवकूफी करके परपदार्थों में रल रहे, नालायकी करके आत्मतत्त्व विस्मरण कर रहे आदि। द्रव्य, गुण, पर्यायको ममभनेके कारण हम मूर्ख बन रहे हैं। जब तक परिणति मलिन रहेगी तब तक ऐसा ही होगा। जब तक परपदार्थों की ओर आकर्षण होगा तब तक विपत्ति ही मिलेगी। ऐसा देखा जाता है घरमें सम्पन्न होते हुए, करोड़पति होकर भी दीक्षा लेते हैं। कई लोग छोटेसे

साधु हो जाते हैं। अनेकोंके कोमल आचरण हैं, क्योंकि उन्हें इसीकी शिक्षा मिली है। तब जो द्रव्य, गुण, पर्यायकी चर्चामें आनन्द मिलता है वह क्या अन्य कथाओंमें है ?

द्रव्य, गुण, पर्यायको किस पद्धतिसे समझना चाहिये—भगवता प्रोक्तम् ! भगवानके द्वारा जो कहा गया हो वह भागवत है। यह पारमेश्वरी व्यवस्था ऐसी ही है। हमें देखना क्या है, द्रव्य, गुण और पर्यायको किस तरह देखना ? पर्याय किससे प्रगट हुई ? गुणोंसे। कोई पूछता है—लड़का किसका है ? वहाँ लड़केपर गौण दृष्टि है, लड़केके संरक्षकपर मुख्य है। सुनने वालेने कहा—फलाने चन्दका। यहाँ फलानेको ही मुख्य जानना हुआ। यह पर्याय किस गुणकी है ? इसमें गुण मुख्य है, पर्याय गौण है। यह गुण किस द्रव्यका है तो गुण गौण हो गया, द्रव्य मुख्य हो गया। पर्यायको गुणमें लीन कर दिया, गुणको द्रव्यमें लीन कर दिया। यह पारमेश्वरी व्यवस्था ठीक है, दूसरी नहीं। अगर आप अन्य व्यवस्था बनाओगे तो पर्यायमात्रको आलम्बन कर लोगे। परमें समय याने आत्मबुद्धि करनेका नाम परबुद्धि है, पर-समय है। मैं लड़के वाला हूँ, घरका पालन करता हूँ, यह विकल्प क्या हितरूप है ? न विकल्प रहेंगे, न विकल्पके पदार्थ रहेंगे, किन्तु विकल्पोंकी उत्पन्नकी परम्परा रही आवेगी जिससे संसारका बखेड़ा बना ही रहेगा।

ज्ञानकी माया भी बड़ी धनाढ्य हो रही है—एक था श्मश्रुनवनीत अर्थात् मूँछमें मक्खनवाला एक आदमी था। वह जैनोके यहाँ छाछ पीने गया। भैया ! शुद्ध भोजनका स्वाद विलक्षण है। टोकमगढ़में राजाके यहाँ यह बात चल पड़ी। शुद्ध बढ़िया भोजन जैनके यहाँ बन सकता है, अन्यके नहीं। राजाने कहा—अच्छा, तो हम जीमेंगे। राजघरानेमें तो मिलका नौकरके द्वारा आटा तथा बाजारका घी आवेगा आदि, किन्तु जैनोके यहाँ मर्यादाका, हाथका पिसा आटा होगा, घी हाथका निकला, अन्य सामग्री भी शुद्ध लाई होगी। राजा साहबको भोजन कराया गया, वह बड़ा प्रसन्न हुआ। जैनो जैसा उत्तम भोजन अन्यत्र नहीं मिल सकता ऐसी प्रशंसा की गई। हाँ, वह श्मश्रुनवनीत नामका आदमी जैनके यहाँ छाछ (मट्ठा) पीने गया तो मूँछपर मक्खनके कण लग गये। उनको घर आकर इकट्ठे करके रख दिया तथा सोचा—इस तरह दिनमें ७-८ बार मट्ठा पिया करूँगा, ऐसा किया। कुछ समय बाद उसके आधा सेर घी हो गया, उसने सोचा—इसे बेचकर एक बकरी लूँगा, फिर गाय और भैंस खरीदूँगा, फिर आमदनी होनेपर मकान बनवाऊँगा, शादी करूँगा, तब बच्चे होंगे, वह मुझे भोजन करनेको बुलाने आवेंगे। बच्चा आकर कहेगा—पिताजी ! भोजन करने चलो, तो कहूँगा—अभी नहीं चलता। दूसरी बार बुलावेगा तो कह दूँगा—अभी नहीं चलता। तीसरी बार बुलाने आवेगा और बोलेगा—पिताजी ! माँ ने भोजन करनेको बुलाया तो कहा—अबे हट, कहकर लात मार दी। घी का डबला खटियाके पास रखा था, वह गिर गया। नीचे आग थी, इससे घी फैल

गया आगमें और भोंपड़ीमें आग लग गई। आग लगनेपर चिल्लाता है—दौड़ो, मेरे सभी बच्चे, मकान, धन सब जला जा रहा है। वहाँ मनुष्य कहें—यह कैसा मूर्ख है ? अभी इसके कुछ था नहीं और कहता है—मेरा सब धन, बुटुम्ब जला जा रहा है। लोगोंने कहा कि यह बड़ा मूर्ख है। एक तो समझाने लगे कि कुछ तो था नहीं, भूठ क्यों चिल्लाता है ? तब श्म-श्रुनवनीतने अपनी सारी कहानी सुनानी शुरू कर दी। वहीं अन्य मनुष्य एक सेठजी से कहने लगे—यह तो नहीं होनेपर कल्पनासे मानकर चिल्लाता है कि मेरा सब कुछ जल गया, किन्तु आपके जो संयोग है, वहाँ भी कल्पनासे मान रहे हो कि मेरा है। यथार्थमें किसीका कुछ नहीं, कल्पनापिशाचिनीके द्वारा अपना परको मान लिया है। तेरा क्या था, विषयकषायोंके योगसे परमें बुद्धि भ्रमा रहा है, संसारमें अनन्त जीवतत्त्वके यथार्थ स्वरूपको न जानकर, पर्यायमात्र को ही आत्मसर्वस्व समझकर मोहको प्राप्त हो रहे हैं और परसमय बन रहे हैं। अब इसी प्रसङ्गमें इसी बातका स्वसमय व परसमयका स्वरूप व्यवस्थित करके उपसंहार करते हैं—

ये पज्जयेसु एणिरदा जीवा परसमय गित्तिणिदिट्ठा ।

आदसहावम्मि टिदा ते सगसमया मुणेदव्वा ॥६४॥

पर्यायनिरततामें अहित—जो जीव पर्यायोंमें लीन हैं वे परसमय हैं और जो आत्म-स्वभावमें स्थित हैं वे स्वसमय हैं। ये पर्यायें जीवपुद्गलात्मक हैं, अतः असमानजातीय द्रव्य पर्यायें हैं। ये पर्यायें समस्त अविद्याकी जड़ हैं। जब जीव इन अविद्यामूलोके ही परिचयमें रहते हैं तो ये वास्तविक आत्मस्वभावको कैसे स्वीकार कर सकते हैं ? यही कारण है कि वे पर्याय में ही आसक्तिको प्राप्त होते हैं। उनकी ऐसी एकान्त दृढ़ प्रतीति होती है कि मैं यह मनुष्य ही हूँ, यह ही हूँ, मेरा ही यह ठाट-बाट है। इस विपरीत प्रतीतिमें यह बिल्कुल विस्मृत हो जाता है कि मैं चैतन्यस्वरूप ध्रुव आत्मतत्त्व हूँ। उन्हें तो पर्याय व समागममें अहङ्कार व ममकार हो जाता है। ऐसी परिस्थितिमें आत्मव्यवहार तो छूट जाता है और सारी प्रवृत्तियाँ मनुष्यत्व के अहङ्कारवश स्वभावविपरीत होने लगती हैं। इससे रागद्वेषकी पुष्टि होती चली जाती है, कर्मोंकी संगति बराबर बनी रहती है। आकुलता तो उनके दृढ़ बस जाती है। ऐसे जीव पर-समय कहलाते हैं।

भैया ! किसका अन्य क्या है ? साफ दीखता है, समझमें आता है। फिर भी प्यारे ! क्या हो गया, सुखकी बात जो सुगम है वह कठिन लगती। समस्त परद्रव्योंसे उपयोगको बिल्कुल निवृत्त करो। परकी ओर लगे रहनेमें हित कुछ नहीं, अहित ही है। प्रियतम नाथ ! असारका स्वाद छोड़, निज सारतत्त्व सहज स्वरूप चैतन्यभावका उपयोग कर। तू सत् है, एक है, अभेद है और परिणमता रहता है। परिणमनोंके ये प्रकार भिन्न-भिन्न अनुभवमें आने वाले भेद नाना शक्तियोंका अनुमान कराते हैं। तू अनन्तशक्तिमान है। प्रत्येक शक्तियोंका

निरन्तर परिणामन होता रहता है। वे सभी परिणामन अध्रुव हैं। तू शाश्वत त्रिकालान्वयी है। सबसे विविक्त केवल चेतनामात्र अपने आपका प्रत्यय कर और इस यथार्थ प्रत्ययरूप अमृतके पानसे तृप्त होकर निराकुल होओ। वस्तुतः परपदार्थसे अपना कोई सम्बन्ध नहीं। कुछ भी परिणामन हो, वहां अपना ही अनुभव किया जाता है। धन भी ३ तरहका है—शब्द-धन, अर्थधन, ज्ञानधन। शब्दधन शब्दमें 'सोना' है। अर्थधन—सोना और ज्ञानधन, धन-विषयक अभिप्राय है। भगवानकी त्रिविधता तो पहिले कही ही है यथार्थ व्यवस्था जाननेसे ज्ञान भगवान जाना जा सकता है जो सही काम देगा। यहांपर बुद्धि वाला जीव यह नहीं समझता कि मैं तो ज्ञानधनसे ममता कर रहा हूं या ज्ञान भगवानकी पूजा कर रहा हूं या ज्ञान चौकी आदिको जान रहा हूं। उसकी परिणति ज्ञेयज्ञायक संकरकी हो रही है।

पर्यायबुद्धिमें विडम्बना—पर्यायोंमें निरत होनेसे पर्यायबुद्धि आत्माको परसमय कहते हैं। कषाय करने वालेको कितना ही समझाओ कि न करो यह कषाय, किन्तु वह कहेगा कषाय छूटते तो हैं नहीं। ऐसी व्यवस्था जो अनुभव की जाती है वह पर्यायनिरत परबुद्धिका संकेत है। जब हम महाराज जी (गणेशप्रसाद जी वर्णी) के साथ सागरमें रहते थे तो आपस में तात्त्विक बातचीत करनेमें भय नहीं करते थे। सुबह बागसे मन्दिरजी को चले। रास्तेमें एक स्त्री बच्चेको लिए खिला रही थी। वह बच्चा अत्यन्त रोगी तथा निर्बल था। शरीरकी हड्डियाँ तक दीखने लगी थीं। फिर भी वह स्त्री कहती 'बन्दरिया मोरी बन्दरिया' कहकर खिला रही थी। मैंने कहा देखो महाराजजी मोहमें यथार्थ बन्दरिया दूसरेको कहकर स्वयं बन्दरिया जैसी नाच रही है। महाराजजी को भी खूब हंसी आई तथा मुझे भी तथा बीच में और भी हंसी आई, पर बात कह गया। अब तो महाराजजी को इतनी हंसी आई कि पेट दर्द करने लगा। इसपर उन्होंने मुझे एक रापट (धक्का) मार दी। यह मर्म स्पर्शक थप्पड़ संसारके पदार्थोंसे मोह हटानेका संकेत तथा दूसरेपर हंसनेका पश्चात्तापका था। मोह तो देखो कि शरीरकी हड्डियाँ भी दिखने लगी तब भी बन्दरिया बन्दरिया कहकर संसारकी मायामें मन बहला रही है। कुछ सोचते हैं मोहके बिना जीवन नहीं। किसीकी स्त्री मर जाय तो कहता है अकेला होनेसे बेकार जिन्दगी हो गई। उसकी दृष्टिमें द्रव्य ही बेकार हो गया। दृष्टि इस ओर नहीं जाती कि विकारके साधन हट गये। फिरसे दूसरी शादी कर लेता है अगर वृद्धावस्था नहीं हुई तो वह। वर्तमान स्थितिमें सन्तोष न कर सके तो संतोषकी क्या आशा की जाय ?

मूर्च्छाका क्लेश—एक बुढ़िया थी। जिसके छः लड़के थे। उनमें एक मर गया तो रो रोकर चिल्लाने लगी हाय मेरे पुत्र ! वह पाँचों लड़के समझाते, एक मर गया तो हम पाँच तो हैं। बुढ़िया कहती, पाँचपर दृष्टि नहीं जाती, दृष्टि तो उस एकपर जाती है, फिर एक

और मर गया तो ४ बच्चोंके सम्झानेपर भी कहती दृष्टि उन ही पर जाती है। होते होते पांच लड़के मर गये। अब वह अबेला समझावे कि मैं तो हूं। तब भी वह वही दृष्टि उन्हीं पांचपर जाती है। यह मोहकी पराकाष्ठा है, जो है उसपर सन्तोष नहीं है। किसीके पास एक लाख रुपया होवे और उसमें से एक हजारका घाटा पड़ जावे तो उन्हीं एक हजारका पश्चाताप करेगा। ६६ हजारपर सन्तोष नहीं है। मोही जीव कहता है औरोंके तो इतना है, हमारे पास तो है ही नहीं। यही सोचते सोचते गुजर जाते हैं, किन्तु तृष्णा मरनेपर भी साथ जाती है। यहांसे मर गये, दूसरे भवका परिग्रह ले लिया। जब तक पर्यायबुद्धि न छूटे तब तक निजपर दृष्टि ही नहीं जाती है। जिसके बच्चे पिताके प्रतिकूल चलते हैं वह स्वयं गलती करते हैं। उन्हें चाहिये कि पिताजी के हाथ जोड़ लिये, प्रेम भरे वचन बोल दिये तथा ज्यादासे ज्यादा चरण छू लिये तब तो पिता और खुश होकर खूब कमावेगा या कमानेके पीछे अपनी दशा कैसी ही करेगा। मतलबसे जोड़ो, तुम तो आगे सुखी हो जाओगे। पिताको अब अपना कल्याण करना है तो सोचे ये पुत्र तो मतलबके लिये बोलते हैं, सेवा करते हैं। मुझे तो अपना कल्याण करना है। अंतएव सावधान ! शोधक मानव सोचे परपदार्थ भिन्न हैं। समस्त परिग्रह क्लेशके ही निमित्त हैं।

पुत्र परिग्रहका असर—अनगारधर्माभूतमें पुत्र परिग्रहका वर्णन किया है। पुत्र गर्भमें आया तो स्त्रीका रूप बिगाड़ दिया, गर्भसे स्त्रीको अनेक प्रकारके वष्ट सहन करने पड़ते हैं। जब गर्भ पूर्ण माहोंका हो चुका तथा बच्चा पैदा होनेको हुआ तो पिताको चिन्ता बढ़ गई कि कहीं स्त्रीकी मृत्यु न हो जावे, स्त्रीको अपने प्राणोंकी पड़ती है। पुत्र पैदा यदि निश्चित तौरसे हो गया तो उसकी अनेक आशाओंमें पिताको धन कमानेकी पिक्र बढ़ जाती है। मां को पुत्र की प्रतिसमय सेवा करनी पड़ती है। मल-मूत्र साफ करना, बीमारियोंसे बचाना, बड़ा होनेपर उसके पढ़ानेका प्रबंध करना, विवाहकी तैयारी करना आदि अनेक कष्ट उठाये जाते हैं। विवाह होनेपर पुत्र धनपर कब्जा कर लेता है, माता-पितासे मुख मोड़ लेता है। पिता निराश्रित हो जाता है। इस तरह बड़े-बड़े संकट सहना पड़ते हैं। परिग्रह जितने भी हैं, सब विष-वमन करते हैं।

भगवानकी आज्ञाका पालन ही भगवानकी सच्ची पूजा है—भगवान जिनेन्द्रकी क्या पूजा करते हो, उसकी कुछ आज्ञा भी तो मानो। उन्होंने सर्वपरिग्रह छोड़ दिया। यह आदर्श था, उस पथपर कुछ भी चलो। कितने ही मनुष्य परिग्रहमें सुखी रहते हैं। जो दुःख है वह परिग्रहमें है, जितना अज्ञान है वह पदार्थोंमें आत्मबुद्धि करनेसे है तथा वह भीतरसे ही दुःख का कारण रहता है। मेरा है और मेरा या मेरा होगा, मिथ्याशयका यह प्रयत्न कैसे मिटे ? किसीने पूछा। उत्तर—द्रव्य, गुण और पर्यायको यथास्वरूप जाने और वैसा ही उनका चिंतन

वरे तो ममता मिटे । आत्मज्ञान बढ़ाने वाले ग्रंथोंक, अध्ययन करें व हृदयमें उतारें तो मोह मिटेगा ही । सब द्रव्य स्वतंत्र हैं, अपने परिणमनसे परिणम रहे हैं, हमारे कैसे होंगे ? इतना ज्ञान हो जाय तो मोहका नाश होगा । परद्रव्यमें आत्मबुद्धि कोई नहीं करता । एक-एक परमाणु द्रव्य है, उसे कौन देखता है ? जो कुछ देखता है पर्याय देखता है, उसीमें आत्मबुद्धि कर ली है, परन्तु गुणोंमें या स्वरूपमें आत्मबुद्धि होती नहीं । पर्याय ही समझमें आ रही है ।

जिसकी निज स्वभावमें बुद्धि वह निज समय—जिनेन्द्रके शासनका शरण मिलना कोई सरल बात नहीं । इसके मिल जानेपर इन्द्रपना तथा राजा महाराजापना भी कुछ महत्त्व नहीं रखता । अपने स्वभावकी दृष्टि जिसकी आ गई वह छोटे भगवान हैं । उन्हें जिनेश्वरका लघुनन्दन कहा भी है । ज्यादासे ज्यादा परिश्रम करके यह बात प्रतीतिमें आनी चाहिए कि कोई मेरा नहीं है । जब स्वार्थ नहीं सधता है तो चमड़ेसे प्रेम करने वाले थोड़े हैं कोई ? ऐसा कोई नहीं मिलेगा जो ऐकान्तिक प्रेम करता हो । स्वार्थमें भूल चुके । वैसे तो स्वरूप ही ऐसा है कि सभी अपने-अपने खुदगर्ज हैं । प्रत्येक द्रव्य अपना ही तो कार्य करता है । बड़े-बड़े महापुरुष श्री राम, सीता, लक्ष्मण, लव, कुश, तीर्थङ्कर व उनके परिवार भक्त, मित्र जन सब अपने आपमें प्रेम करते थे । श्री रामके बन जाते समय सीताजी से नहीं रहा गया, सीता साथमें चल दी । रामके प्रेमसे सीता नहीं गई । सीताजी की ही वह प्रेमपर्याय थी । सीताके प्रेमसे राम भी रावणसे नहीं लड़े, क्योंकि कोई वस्तु किसी अन्य वस्तुरूप नहीं परिणमती । रामको अपनी बात रखनी थी । प्रेम तो पर्याय है—जो उसीमें व्यापार करता रहेगा जिसकी पर्याय है । मेरे बारेमें कुछ सोचोगे तो तुम अपना निर्माण कर रहे हो । आपके बारेमें कुछ सोचूंगा तो वह मैं अपना निर्माण करता हूं । बड़े-बड़े मिलोंमें सब अपना-अपना कार्य करते हैं और व्यवस्था पूरी चलती है । वे दूसरोंके कार्यको नहीं देखते । धागा जोड़ने वाला अपना धागा जोड़ेगा, बुनने वाला बुनेगा, सफाई वाला सफाई करेगा आदि । इसी तरह जगतके जीव अपना-अपना ही कार्य कर रहे हैं । अपने-अपने परिणामोंके अतिरिक्त और कुछ नहीं कर सकते । पारमेश्वरीय व्यवस्था भागवत शासन ही ऐसा है ।

जो भागवतके हुक्मको नहीं मानते वे परद्रव्यको अपनानेके कारण चोर हैं—चोर तभी तक चोरी कर रहे हैं जब तक कोई चेतता नहीं । तत्त्वज्ञान तो करें, यथार्थस्वरूपको जानें । बैठे-बैठे ही तो करना है । विचार ही से संसार बनाया था, विचार ही से छूटना है । विचारका परिवर्तन मात्र करना है । कहते हैं—अपवित्रः पवित्रो वा, सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा । ध्यायेत् पञ्चनमस्कारं, सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थांगतोऽपि वा । यः स्मरेत् परमात्मानं, स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥ इसका अर्थ यह नहीं कि अपवित्र पवित्र (नहाये या बिना नहाये) कैसे ही हो और भगवानको जाकर छू लो । जो भगवान परमात्माका स्मरण करे वह बाहर भी पवित्र और भीतरसे भी पवित्र है, चाहे वह शरीरसे अपवित्र हो या

लौकिक शुद्धि किये हुए हो। इतना ही नहीं, कहीं भी विसी जगह हो, वहां भी स्मरण करे तो बाहर भी पवित्र और भीतर भी पवित्र है।

जो पर्यायमें निरत है उसे कहते हैं परसमय—किसीके यहाँ इष्टवियोग हो गया तो उसे पर समझकर मान लो तुम्हारे सौभाग्य हुआ ही नहीं था, लोग समझाते भी इसी तरह है—जो हम कहते उसे मान भर लो सुखी होता कि नहीं, जो नहीं मानते वह जान दे देकर परको अपना समझ रहे हैं। इसीको तो मिथ्यात्व कहा है। धर्म होता है तो इस पर्यायमें भी आत्मकल्याण करके स्वभावदृष्टिसे होगा। व्यवहारधर्म यहाँ है, निश्चयधर्म चैतन्यस्वरूप है, वह धर्म मूर्ति है। पूजा करके सन्तुष्ट हो गये, आगे कुछ विचार नहीं, यह स्वकी भूल है। धर्म करे किन्तु पर्यायमें ही न उलझ जावे; धर्मपद्धतिमें भी लोग व्यवहारमें उलझते। इन्द्र, जिसे पंच कल्याणकमें बनाते हैं, उसे धर्मात्मा देखकर थोड़े ही बनाते हैं। अ आ लिखकर भी नहीं जाने वह भी बन जाता है। जिनकी ऊंची बोली होती है वे बन जाते हैं। उसमें यह प्रतीति रहती कि मैं इतना बड़ा इन्द्र हूँ, लो पर्यायबुद्धि हो गई। प्रतिष्ठाओंमें पंडित जन तो उपदेश देते हैं, वह निमित्त पढ़ते हैं, सत्मार्गपर लगने वाले आप हैं। मैं चैतन्यमात्र हूँ, इस प्रतीतिमें देहका मान भी नहीं रहता। जिस तरह प्रतिदिन नये-नये व्यञ्जनोंके लिये जीभ लालायित रहती है उसी तरह जिनेन्द्रशासनमें जो स्वाद है, उसे भी चखना चाहिए। इसी भाव से तो धर्मात्मा जन मन्दिरोंमें रोज आते हैं। वास्तविक धर्मविकास यदि होने लगे तो इसमें वह स्वाद है कि सुकुमाल मुनिको गीदड़ी भी खा रही तो उन्हें दुःख नहीं है। उस समय यह तो नहीं सोचते कि मैं मुनि हूँ, खाने दो। वहां तो स्वात्परस चख रहे हैं। मच्छर काटे तो काटने दो, यह सोचनेके बदले विचारे मच्छरका काटना स्वभाव है, मैं तो उससे भिन्न हूँ, वह शरीरको ही तो काट रहा है, मेरी आत्मापर तो हमला नहीं कर रहा है। यह विकल्प करे भी तो ठीक है, किन्तु इसमें भी सामायिक तो बिगड़ ही गई, जबरदस्ती बैठे रहे सो बात दूसरी। जब तक पर्यायबुद्धि नहीं छूटती तब तक परसमयता है। यही दुःखका कारण है।

पर्यायको आत्मा मानना ही क्लेश है—जो जीव इस असमानजातीय पर्यायको प्राप्त हुए अर्थात् नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव इनमें आत्मबुद्धि हुई जिनकी, इन्हींको सर्वस्व समझा जो अज्ञानका मूल है। जो शरीरमें आत्मबुद्धि, उसकी ही सेवा करना, चर्चा करना यह सब वृत्तियाँ, प्रवृत्तियाँ करते हैं वह सब अज्ञान है। मनुष्य पर्याय जीव और पुद्गलके संयोगसे हुई है। वह दोनों नहीं ऐसा भी नहीं, फिर भी दो के सम्बंधसे होने वाली हैं। दो को छोड़ तीसरीको भी नहीं है। ऐसी विचित्र देहकी खोजमें बड़े-बड़े वैज्ञानिक परेशान हो गये हैं। इस परेशानीमें जिन्होंने माना कि इसमें और किसीकी सामर्थ्य नहीं, ईश्वर ही बनाता है। वैज्ञानिक अन्य पदार्थोंको खोज लेते, किन्तु इस देहका भी हल है क्या? हाँ जैनदर्शनने निमित्त-नैमित्तिक सम्बंधको इसके हल करनेका मार्ग बताया है, जो ठीक है। अग्निपर बटलो एव

पानी होनेपर गर्म हो जाता है, इसी तरह सैकड़ों, हजारों सम्बंध हुए देखते हैं। जीव पुद्गल का सम्बंध होनेसे यह देहादि परिणामन हो गया है। यह जलरूप, मलरूप आदि परिणमता देखते हैं। सो योग्य सन्निधान पाया, सो परिणम जाते हैं। परिणमाने वाला और हो तो सब बड़ी बाधाये पावे, अन्धेर मच जाय, अव्यवस्था हो जाय। जो जिसके सन्निधानमें जैसे परिणम सकता है वैसे परिणमता है। संयोग जीवके भी नहीं, पुद्गलके भी नहीं। यह पर्याय ही निमित्तरूपमें समस्त अज्ञानोदयका मूल है। मोह, रागद्वेष यह समस्त अज्ञानका परिणाम है। जिसकी पर्यायमें आत्मबुद्धि है वह आत्मस्वभावके समझनेमें कायर हो जाता है। जिनकी पर्यायमें आत्मबुद्धि होवे और आत्मस्वभावका अनुभव आ जावे, यह तो बात नहीं हो सकती।

आत्मस्वभावमें पहुंचे हुए की सुस्थिति—जो जीव भगवान् आत्मस्वभावके पास पहुंच लेते हैं वे आत्मस्वभावकी भावनामें समर्थ हो जाते हैं। यह भगवान् आत्मस्वभाव समस्त विद्याओंका एक मूल है। इस विभक्त एकत्वस्वरूप आत्मस्वभावकी भावनामें समर्थ पुरुष (आत्मा) पर्यायमात्रकी आसक्तिका परिहार करके आत्मस्वभावमें ही स्थितिको सूतते हैं अर्थात् स्वभावमें ठहरते हैं या लक्ष्य रखते हैं। इन अंतरात्मावोंने जो आत्मतत्त्व देखा वह परमार्थतः तो अनिर्वचनीय है, परंतु जब उसका विवरण करनेकी करुणा की तो सहज ही बढ़ी हुई समर्थ अनेकान्तदृष्टिसे अनेकान्तस्वरूप पाये हुए आत्मतत्त्वका स्याद्वाद पद्धतिसे प्रकाशित किया। इस ही कारण ज्ञानी अंतरात्माके समस्त एवांत परिग्रहरूप पिशाच दूर हो जाते हैं। ऐसे विशुद्ध द्रष्टा पुरुषोंका मनुष्यादिविग्रहोंमें अहंकार व ममकार नहीं रहता। वे अपने आत्माको वहाँ ऐसा पाते हैं जैसे कि अनेक कमरोंमें ले जाया गया रत्नप्रदीप एक है, वह भिन्न-भिन्न कमरोंमें रहनेसे भिन्न नहीं हुआ, इसी तरह अनेक भावोंमें रहकर भी भगवान् आत्मा एक है, एक स्वभाव है। अब ये तत्त्वज्ञ आचरण, व्यवहार भी अविचलित चेतनामात्रके विकासरूप करते हैं अर्थात् आत्मव्यवहार करते हैं, पर्यायव्यवहार नहीं करते हैं। इन प्रभुके रागद्वेष विश्रान्त हो जाते हैं, परम उदासीनता प्राप्त होती है, समस्त परद्रव्यकी संगति छूट जाती है। अब ये केवल स्वद्रव्यसे ही संगत होते हैं। अतः ये अन्तरात्मा स्वसमय कहलाते हैं। उपयोग व श्रद्धान जहाँ विशुद्ध हो गया, वहाँ दुरभिप्राय ठहर नहीं सकता।

एक उपयोगमें मुक्तिपथ व संसारपथका विरोध—किसी एक मतमें उन्हींकी बात है। रात्रिको भी श्रीकृष्ण आते थे व भोजन करते थे। श्रीकृष्णजी जैसे विवेकी महापुरुष नारायण रात्रिको भोजन नहीं करते थे, यही ठीक जंचता है, किन्तु कथाका सार ही यहाँ बताना है। हाँ तो जब एक दिन श्रीकृष्णजी को देर हो गई आनेमें तब कुछ नींदसी आनेपर राधा कहती है कि—‘अरी नींद आवन चहत, यहाँ बसत हैं श्याम। कहुं धरी देखी, सुनी, दो असि एक श्याम ॥’ क्या दो तरवारें एक श्याममें समा सकती हैं? उसी तरह एक उपयोगमें दो

चीजें बस सकती हैं क्या, कि श्याम भी रहें और नींद भी आ जाय ? क्या एक उपयोगमें ऐसी दो बुद्धि हो सकती हैं जो परमें भी अपनेको बसा ले और आत्मस्वभावको भी परख ले ? जो पर्यायमें आत्मबुद्धि करते हैं वे आत्मस्वभावको तो जान नहीं सकते, बस उसीमें आसक्त हो जाते हैं । संपूर्ण पदार्थोंसे भिन्न अपनेमें ही परिणामने वाला आत्मा मोहमें स्वतः उसके समीप उपगत होता है । जो पर्यायके पास ही उपयोग बनाकर जानते रहते हैं, वे पर्यायमें ही आसक्त रहते हैं, इससे निरर्गल दृष्टि हो जाती है । इसके अतिरिक्त कुछ समझना ही नहीं आ सकता । एकान्तदृष्टि हो जाती है । 'मनुष्यः एव अहं'—मनुष्य ही मैं हूं । मनुष्य कुछ और चीज, मैं कुछ और चीज, सो नहीं समझना । मेरा यह शरीर है, इस तरह अहङ्कार और ममकार दोनों हो जाते हैं । अहं रूपसे तो मैं हूं आ गया तथा ममरूपसे दूस पदार्थ मेरे हैं यह आ गया । इस तरह अहङ्कार ममकार इन्हींमें ठगाये जाते हैं, पर्यायके निक्ट ही बने रहते हैं । उन्हें क्या विपत्ति आ गई, जो उन्हींमें आसक्त हो जाते हैं ? मनुष्य ही मैं हूं उससे जो ठगाये तथा आत्माको विस्मरण कर गये वे अच्छा काम जो था उसे कर न सके और बुरे कार्योंमें लग गये ।

अपनेको जैसा माने तैसा काम होता—मैं अविचलित चेतनामात्र हूं । आत्माका विकास करना, उसकी दृष्टि करना, उसके आनंदका अनुभव करना, यही तो आत्माके व्यवहार हैं, सो आत्मव्यवहारसे तो गिर गये और परमें उपयोगरत हो गये । जो विषय किया है वह अपनेसे भिन्न है तथा जिसे अपना बनाया है वह अपना हो नहीं सकता, फिर भी परमें मोह करे तो वह अपनी परिणतियोंसे आकुलित रहता है । यही बाहरमें परिणमना है । इस अवस्था में आनन्दकी आशा करें सो व्यर्थ है । परिवार बनाकर, धन कमाकर, ऊँची नौकरी करके आनन्दकी आशा करें सो व्यर्थ है । जिससे जैसा उपयोग बनता है वैसा करता है । एक आधा शीशी कांच आता है, उसे इस ढंगसे रूईके ऊपर करता है कि उस कांचमें सूर्यकी किरणें इकट्ठी हो जायें । सूरजकी किरणें कांचपर संकुचित होनेसे रूईमें आग लग जाती है । कांचका मुख्य स्थान सामने होनेसे रूई जलने लगती है । यह सब कार्य कांचका निमित्त पाकर व सूर्यका निमित्त पाकर हुआ है । आत्मउपयोग बने, आत्मस्वभावकी भावना जागृत होवे (आत्माको आलम्बन बनाना यह उपयोगको संकुचित करना है) तब ध्यानरूपी आग सुलग उठेगी, जिसमें कर्मरूपी ईंधन जलने लगेगा तथा बाहरमें जो बुद्धि, उपयोग दे रहे थे, वह जानकारीमें रहे ही नहीं । बाहरी उपयोगका संकोच करे, उसे मेटे तो आत्मस्वभाव जाननेकी कला आती है । जब जब बाहरमें उपयोग किया तब तब खेद ही हुआ । इससे ऐसी निरर्गलता आ जाती कि संसार-रोग ही बढ़ जाय । गृहस्थ जनोंमें जो विकल्प आवश्यक हैं, आवश्यक आपको कहे हैं—धर्म, अर्थ, काम इसके अतिरिक्त अन्य विकल्पोंसे क्या लाभ ? धनके और कामके भी विकल्प कम

करे तब आत्मव्यवहार क्या करेगा ? किन्तु जो आत्माके स्वभावको नहीं समझा वह आत्म-व्यवहार क्या करेगा ? किन्तु जो आत्माके स्वभाव को नहीं समझा वह आत्मव्यवहार क्या करेगा ? सारे कुटुम्बको ऐसा फंसा लिया कि मैं इनका दादा हूँ तथा अपनी सुध ही भूल चुका । करना यह चाहिये—यह मनुष्यव्यवहार ही तो दुःखोंकी जड़ है । दूसरोंपर दया करते, दान देते, भरण-पोषण करते, तीर्थयात्रा करते, ये लौकिक प्रशंसाके कार्य हैं, किन्तु ये भी आत्माके व्यवहार नहीं, मनुष्यबुद्धिके व्यवहार हैं ।

ममताके फंसावका जाल विकट है—ममता और मोह अच्छे और बुरे सब मनुष्योंको फंसाये हैं । उनका जिसने आश्रय कर लिया, वह राग करेगा और मोह करेगा । मिथ्यादृष्टियों से लेकर प्रमत्त मुनियों तक यह अपना अड्डा जमाये है । किसीको किसीरूप और किसीको किसीरूपसे धनीसे लेकर गरीब तक तथा नेतासे लेकर साधारण प्रजाके सदस्यको देख लो । रागद्वेष उनमें आवेगा ही । गोष्ठी, पार्टी वालोंको देख लो, जहाँ मनुष्यव्यवहारका आश्रय हुआ वहाँ रागद्वेष हो गया । परद्रव्य क्या हुआ ? अन्य संग हैं । परके उपयोगमें परसमय हो जाते हैं, उसमें बुद्धि लगाते हैं और उन्हींके बनकर रह जाते हैं । उसका फल जन्म और मरण है । इसी भूलभुलैयामें पड़े रहते हैं । हमारे व्यवहारमें आत्माका तत्त्व भी कुछ उपयोगमें आना चाहिये । कोई ऐसा क्षण आ जावे कि शरीरका मुझमें कोई सम्बंध नहीं, मैं तो केवल आत्मा का ज्ञाताद्रष्टा हूँ । जब तक शरीरमें रोग व बुढ़ापा नहीं आता तब तक आत्महित कर लेवें ।

क्या दो-चार धर्मके उत्सव, प्रतिष्ठा करा दी, सो आत्मस्वभावका भान हो जायगा ? यदि यह जरूरी होता तो साधु लोग क्यों नहीं करते ? जैसे अन्य अनेक साधु चिमटा लेकर फिरते हैं और कहते हमको यज्ञ करना है । अतः ५०) रुपये, ५० अठन्नी, ५० चवन्नी, दो मन आटा, १ मन साकल्य, दो टीन घी, १ मन शक्कर आदि चाहिए । इसी तरह ज्ञानी साधु भी घूमते । उत्सवका लाभ क्या है ? भाई बात यह है पंचकल्याणकों आदिमें विद्वान् आते हैं, उनके उपदेश सुनते हैं, इससे लाभकी बात बनती है । वहाँ भी बाह्य बातसे हमारी बात नहीं बनी । वहाँ उपदेशादि निमित्त मिल जानेके पश्चात् आत्माके ज्ञानसे शुद्ध ज्ञाताद्रष्टा हो जाते हैं ? दूसरेके शरीरको देखकर ज्ञाताद्रष्टा होते रहते हैं । अपने शरीरसे और भी तो गोरे हैं, अपना तो श्याम वर्ण है, दूसरोंके चमकते हुये भरे चेहरे हैं, फिर उनसे मोह क्यों नहीं करते । इसी शरीरसे क्यों मोह किया जाता है ? दूसरे मोहो जीवको किसीके मरनेपर समझाते हैं । यह तो शरीर है, इसमें आत्मा नहीं है, इसमें मोह करनेसे क्या रखा ? यह जान भी रहे हैं, फिर भी अमूर्त आत्मापर दृष्टि नहीं जाती । तुम परमात्मा, ज्ञानस्वरूप हो, यह दूसरेको क्यों समझाते हो कि दूसरेको देखकर भेदविज्ञान हो जावे । हममें ऐसी विशेषता नहीं कि जो दूसरोंपर गुजर रही है वह हमपर नहीं गुजरेगी । कल्याणके लिये तो स्वभाव ही का चमत्कार

है, उसपर दृष्टि करनेसे जैसे परिणाम दूसरी जगह हैं, वैसे निर्मल परिणाम आने भी बन जायेंगे ।

विश्वव्यवस्था विश्वके लिये समान है—दूसरा पाप करे तो दुर्गति जल्दी होवे । मेरे लिये कुछ सहूलियत है यह बात नहीं है । निमित्तनैमित्तिककी बात होनेपर जहाँ जो होता है वह सर्वत्र होता है, फिर क्यों इस शरीरका मोह करे ? यही पर्यायके उपगत होनेसे हम परसमय हो गये । जब मनुष्य शरीरको माना, मैं यह हूँ । जो मनुष्य देहमें आसक्त है, वह क्या देहमें उत्पन्न होने वाले सुख हैं, उनमें आसक्त न होगा ? होगा । उनमें भी जो आसक्ति है वह भी तो बाधक होगी । उनमें रागद्वेष न करे, क्या ऐसा बन सकता है ? अज्ञानमें सबकी जड़ है तो असमानजातिक पर्याय । यह जो मलम्मा लग गया है वह संसारमें फंसानेका सुगन्ध-मय मनमोहक पलस्टर है । आत्माका तथ्य जानना मात्र ही उद्धारका कारण है । अपने स्वरूपमें कोई अपराध नहीं घुसा । अपराध बनाते हैं—कितनी परेशानियाँ आनेपर भी विषयसुखसे विरत नहीं होते । धनीपना, गरीबपना, मान करना, अपमान सहना, नेता समझना यह सब पर्यायबुद्धिके कारण हैं । यह सब बेचैनी बढ़ानेके ही कारण हैं । एक साधु था । उसकी लंगोटीको चूहा खा जावे । चूहेसे रक्षा करनेके लिये बिल्ली पाली । बिल्ली एवं उसके बच्चोंको पालनेके लिये गाय ले ली । गायके बछड़ा हुआ, उसकी सेवा करनेको एक दासी कर ली । बाल बच्चे पैदा हो गये । प्रायः कर देखा होगा—गाय, भैंस, बिल्ली आदि जानवर अपने मालिकपर प्रेम करते तथा सिर ऊपर रख देते हैं, ऐसे खूब खेलते रहे । साधुको एक दिन दूसरी तरह जाना था । रास्तेमें नदी पड़ी, उसमें जाते ही बाढ़ आ गई तो बिल्ली, गाय, बछड़ा, स्त्री, बच्चे सबके सब आकर चिपट गये । तब कहे ये बबाल कहाँसे आया ? सोचनेके बाद तय किया कि बबालकी जड़ एक लंगोटी है । तब साधुने कहा—बबालकी (रोग की) जड़ हटे, तो सब बबाल हट जावे, बबाल हटा दिया, सबको हटा दिया । खुद भी बच गये साधु, और सब भी बच गये । यह सब शरीरके समीप उपयोग बसानेका ही कारण है । न काम तो सदा आत्मासे ही पड़ता है, जिससे काम पड़ता है, उसका कर्तव्य जानकर शुद्ध स्वभावसे अपनेको स्थिर करे, पर्यायसे बुद्धि हटे, आत्मतत्त्व बढ़े । ऐसा किया जाय तो सच्चे सुख की किरणें इस अज्ञान अन्धकारको हटाकर फैल जावेंगी तथा उनसे प्रदीप्त होकर दूसरोंको प्रकाशित करनेमें भी निमित्त हो सकेंगी ।

यथार्थ ही जानो, अवश्य कल्याण होगा—इस लोकमें समस्त पदार्थ कितने हैं ? जीव अनंतानंत हैं, उनसे अनन्ते पुद्गल हैं । यह अनादिसे इतने ही हैं और इतने ही रहेंगे । पदार्थ का समूल नाश नहीं होता है । वह अपनी ही शक्तियोंमें तन्मयतासे रहता है, अपने ही गुणोंमें परिणमता है, परमें नहीं जाता है । जीव पहलेसे न ज्यादा थे, न रहे और न रहेंगे । प्रत्येक

जीव अपना स्वामी है। जो भला बुरा करे वह अपना जिम्मेवार है। जीव अपने उपयोगमें परको बसाकर विषयकषायको खिलाता है। इसके अतिरिक्त परका कुछ करता नहीं है, जो स्नेही दिखते हैं वह स्वयंका परिणामन करने वाले हैं, वह स्वयंके कर्ता हैं। इसी तरह द्वेषी अपना परिणाम बिगाड़कर अपना खोटा परिणामन करता है। अपने यथार्थ परिणाम बनाओ। जब परसे अपना कुछ नहीं बनता तो उसे अपना माननेसे क्या लाभ है? स्वका आलम्बन रखो तो लाभ ही लाभ है। परसे उन्मुख होकर जो स्वयंकी दृष्टिमें परिणामन करता है वह जगजालसे छूटता है और मोह करने वाला जगमें फंसता है। ममत्वरहित जीव छूटता है और गमत्व करने वाला बंधता है, छूटना दोनोंको है। कोई जगतमें ऐसा पदार्थ नहीं, जिसका समागम नहीं हुआ। कषाय तक समागम लगा रहेगा, वे कर्मोंका समागम हमेशासे हमेशा तक कर लेंगे—ऐसा कैसे कहते हो? दूसरे कर्म आवेंगे, पहलेके नहीं रहेगे, छूटना दोनोंको है, किन्तु अज्ञान बसाया तो कर्मोंकी संतति बनी रहेगी।

भैया ! छूटना तो सब है ही, अब यह आप सोच लो कि किस तरहसे छूटना चाहिये? एक बार राजा मंत्रीसे बोला—मंत्री जी ! यह तो बताओ हमारी हथेलीमें रोम क्यों नहीं हैं? मंत्री बोला—राजा साहब ! आपने इतना अधिक दान दिया है कि दान देते-देते हथेलीके रोम झड़ गये हैं। फिरसे राजाने कहा—और तुम्हारी हथेलीमें भी रोम क्यों नहीं हैं? मंत्रीने कहा—महाराज ! मैंने आपसे इन हाथों द्वारा इतना दान लिया है कि दान लेते-लेते रोम झड़ गये हैं ॥ इन दूसरे आदमियोंकी हथेलीमें भी रोम क्यों नहीं हैं?—राजाने पूछा। मंत्रीने कहा—आपसे दिया, हमने लिया। उनकी हथेलीके मलते-मलते रोम झड़ गये हैं। अब किसी तरह भी कर्म झड़ाना, झड़ेंगे ॥ पदार्थ सरासर मानो कह रहे हैं कि हम तुम्हारे नहीं हैं। मोह छोड़ो और फिर उन्हीं पदार्थोंकी ओर आकर्षित हो गये तो आकुलताके सिवाय और कुछ नहीं मिलेगा। यह बात मर्कट बैठ जाये मैं मैं ही हूं, मैं स्वयं परिणामता रहता हूं, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं है। जगतको अज्ञान समझें।

आत्मदृष्टिमें क्लेश प्रलीन हो जाते हैं—साम्प्रायिक करते समय एक विचार हुआ। शरीरपर मच्छर बैठ जाते हैं। पहले बैठ रहे हैं, फिर उन्हें हटानेका विचार हुआ तो सोचता है, साम्प्रायिकमें तो बैठा ही हूं, किन्तु जिस ओर तू जा रहा है वह लक्ष्यसे गिरनेका कारण है। देहका क्या बिगड़ता है? यहाँके उपयोगमें हानि ही हानि है। स्वभावके समीप उपयोग बना जिसके सामने मच्छर आदि हटानेकी बात ही मनमें न आवे। और देखो मच्छर अनेक पदार्थोंका पिण्ड है। प्रत्येक पदार्थका उन्हीं प्रत्येक पदार्थमें परिणामन हो रहा है, उसका निमित्त पाकर देहमें परिणामन हो रहा है। तू तो इन सबसे भिन्न है? आत्मध्यानके लाभ को खोकर बाहर दृष्टि देकर क्यों हानि कर रहे हो? जिस वस्त्रपर नीला रंग चढ़ चुका है,

उस पर कुमकुमका रंग नहीं चढ़ सकता। इसी तरह जब कषायोंके द्वारा चित्त रंजित हो चुका है तब शुद्ध चिद्रूपका अनुभव तो दूर रहा, उसका स्पर्श होना भी दुर्लभ है। अन्य पदार्थोंपर दृष्टि जाना ही स्वभावसे गिर जाना है। उपेक्षाभाव स्वभावमें आनेका हेतु है। स्वभावका आश्रय लेनेसे ध्याता ध्येय और ध्यान तीनोंकी एकता हो जाती है। जैसे पानीमें नमक सर्वांग रहता है। जैन धर्म मिला, ज्ञानकी, इन्द्रियोंकी पूर्णता मिली, ज्ञान भी उत्तम है। करीब करीब सब बातें ठीक हैं। हममें आपमें कोई बातकी कमी नहीं है। यहां प्रयोजन रहा कमानेका, इसमें विकल्प है, किन्तु जिसके यह हिम्मत है कि मेरा स्वरूप ही कार्यकारी है उसके तो जीविका योग्य पुण्य प्रायः रहता ही है और वह अन्य कार्यको करता हुआ भी न करनेके बराबर है। वह अप्रायोजनिक विकल्पोंको छोड़ता है तथा जिसकी बुद्धि निष्प्रयोजन कार्यमें दौड़ रही है उसे कार्य न भी करनेको हो तब भी वह करनेके समान है।

अपने उत्तरदायित्वकी संभाल—चेतन सोचता है, इसके पहलेसे चेत होता तो मैं आचार विचारसे रहता, तत्त्वोंका मनन करता, इतने वर्ष यों ही निकल गये। अब वह कल्याणमें जुट जाता है। अब चेत आया तो चैतन्यकी सावधानी युक्त कार्योंमें लग गये। इसके पूर्व शफलतमें समय बीता है। उसकी पूर्ति निर्मल परिणामों द्वारा करता है। अपनी संभाल बिना कदाचित् यह जीव निगोदमें जावे और ढाई पुद्गल परावर्तन बाद वहांसे छूटे तो वहां त्रस पर्यायमें व वहां भी कभी मनुष्य होगा। कितने जीव तो ऐसे हैं जिन्होंने आज तक निगोदसे निकलकर त्रस पर्याय नहीं पाई। इसे जाने भी दो तो निगोदियासे स्थावर तक नहीं हुए। हमें बुद्धि, बल, उत्तम कुल, धन वैभव, कुटुम्बी आदि सभी उत्तम वस्तुएं मिलीं किन्तु उत्तम संगतिके न मिलनेसे यों ही जीवन बरबाद हो जाता है। जिन्हें बचपनसे अच्छी संगति मिली है वे धर्मात्मा पुरुषोंका संसर्ग, मुहल्लाके मनुष्योंके सद्गुणोंकी आदत्तें, विद्वानों, त्यागियों, साधुओंको संसर्ग प्राप्त होनेसे आत्म-कल्याणके पथमें जुटकर प्रगति कर जाते हैं तथा अपना जीवन सफल कर लेते हैं। जिस तरह आफिसरकी बड़ी जिम्मेवारी होती है, उसे अपना कार्य पूर्ण संभलकर करना होता है उसी तरह जिस जातिके हम हैं, उसी तरहका हमें जिम्मेदारीसे कार्य करना चाहिये। यहाँसे नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव, विदेहक्षेत्र एवं भोग भूमि जानेका रास्ता खुला हुआ है। टिकट भी जुदा जुदा है। टिकट कार्यालय खुला हुआ है। प्रत्येक टिकट इतना सस्ता है कि पैसे भी नहीं लगते। विचारों मात्रसे अपने-अपने अटु-कूल स्थानों पर पहुंच जाओगे। भले ही तुम्हारे विचार एवं तृष्णायें कार्य रूपमें परिणत न हो सकें। थोड़ा आरम्भ परिग्रहसे मनुष्यगतिकी टिकट मिल जायेगी, इसके विपरीत आरम्भ परिग्रहसे नरकगति तथा दल कपटसे तिर्यचगति व्रत-नियम पाल कर सरलपरिणामी होने से देवगति प्राप्त हो जायेगी। जिसने पुण्य पाप कुछ नहीं किया, बोधि समाधि पाई तो उस

मनुष्य को वे वरूपना दाने मृत्ति मिल जायेगी । इतना दुर्लभ मनुष्यजन्म और इतने अमूल्य क्षण व्यर्थमें ही गवां दिये तो उससे क्या कहा जाय ?

झूठे सुखको सुख मत मानो—किसीने अन्धेसे कहा—अमुक नगरमें चले जाओ, सुखसे रहना । वहाँ जानेका रास्ता एक ही था, चारों तरफ कोट था । अन्धा कोटको टटोलता हुआ चला । जहाँसे रास्ता मिलाने वाला था, वहाँपर ही वह सिरकी खाज खुजाने लगा तथा पैरोसे चलता गया । इस तरह कई चक्कर लगा लिए तथा रास्ता आनेपर सिर खुजानेमें लग जावे । इसी तरहसे इसे संसारसे छूटनेका मौका आया तो विषयरूपी खाज खुजाने लगा । मनुष्य सोचते हैं हमें परेशानियां बहुत हैं, वह हैं भी और नहीं भी हैं । मनुष्य दूसरोंके जीवन से उदाहरण ले सकता है । बड़े-बड़े महाराजा, सेठ, वकील, बैरिस्टर आदि हुए और हैं भी, किन्तु उन्हें भी दया इन पदार्थोंसे सुख मिला है या मिलेगा ? यह सब जानकर जितनेमें अपना गुजारा चल सके, उतने सीमित साधन रखकर जिन साधनकी शरणमें आ गये तो कोई परेशानियां नहीं आयेंगी । यह जो वर्तमानमें सामग्री उपलब्ध हुई है वह शारीरिक या बौद्धिक ध्यायामका फल नहीं है, किन्तु सब धर्मका माहात्म्य है या यह कह लो कि धर्मभावके होते हुए जो रागादि होते थे उनका फल है । देखो राग भी धर्मका साथ पाकर कितना प्रभावक हो जाता है ?

एक ग्राममें छोटी उम्रके मुनिमहाराज भोजन करने एक श्रावकके यहां आये । आहार लेनेके बाद १० मिनट उपदेश देनेको बैठे तो बहू बोली कि आप इतने सवेरे याने जल्दी क्यों आ गये ? मुनिराजने उत्तर दिया—समयकी खबर नहीं थी । मुनिराजने पूछा—तेरी उम्र क्या है ? उत्तर मिला—४ वर्षकी, और तेरे पतिकी उम्र ? बहू बोली ४ माहकी, और ससुरकी उम्र ? ससुर अभी पैदा नहीं हुए, और सब भोजन कैसा करते हैं ? सभी बासी ही खाते हैं । ससुर यह सब सुनकर बड़े ही क्षोभित थे । जब बहूने कहा कि ससुर पैदा ही नहीं हुए तब तो उनको बड़ा क्रोध आया और फिर जब कहा कि सब बासी ही खाते हैं तब तो पूछना ही क्या है ? ससुर आग बबूला हो गये और कहने लगे देखो यह प्रतिदिन गर्म-गर्म भोजन करती है, सब सामग्री ताजी-ताजी आती है । इतनेपर भी बदनामी कर रही है । मुनि महाराज जब वहाँसे चले गये तो ससुर बहूसे लड़ने लगे । तब बहू बोली, चलो मुनिराजके पास ही इसका निर्णय कर लेवें । ससुर तैयार होकर वहाँ पहुंच गये तो बहूने जो पूछा था कि इतने जल्दी क्यों आ गये अर्थात् इतनी छोटी अवस्थामें मुनि क्यों बन गए ? तो मुनिने उसके उत्तरमें कहा—खबर नहीं थी अर्थात् मालूम नहीं कब मर जावें ? बहूने उम्र चार वर्षकी बताई अर्थात् चार वर्षसे धर्म पाला है । पतिकी चार माहकी अर्थात् उन्होंने चार महीनेसे ही धार्मिक संस्कार पाले हैं । ससुर पैदा ही नहीं हुए अर्थात् वह धर्म जानते ही नहीं और सब बासी खा रहे हैं

अर्थात् पूर्वभवके पुण्यप्रतापसे सुख-सामग्रीका भोग कर रहे हैं। वर्तमान तो कोई नया पुण्य कार्य नहीं हो रहा। इससे यह सब भोग बासी ही है। सो भैया ! जिन्दगी तो तबसे अपनी माननी चाहिये जबसे कि धर्मवृत्ति होने लगे अन्यथा तो अनन्तकालकी उम्र बतानी चाहिये।

हितकी बात कौन करता है—कभी कोई यह भी सोचता है कि हमारे पुत्रकी आत्मा धर्ममें लगे, आजीवन ब्रह्मचर्यसे रहे ? ऐसा विचार कोई अपने प्रति भी तो नहीं करता है, किन्तु यह विचार करना चाहिये। कुटुम्बी सब स्वार्थके साथी हैं, इनमें क्या मोह करना ? केलेके खम्भेमें सार भले निकल आवे, किन्तु इस जीवनमें कोई सार नहीं है। कल्याणकी इच्छा वाला कल्याण खोज लेता है। जिसे विषयोंकी इच्छा है वह उन्हें खोजता है। कोई भी पराधीन नहीं है; इस निमित्तनैमित्तिक सम्बंधको कोई नहीं तोड़ सकता। विषयसामग्री तो अनेक बार मिली, किन्तु वस्तुस्वरूपका ज्ञान नहीं मिला। जीवनमें जो भी धर्म बने, कर लेना चाहिये। अगर मन व शरीर कमानेमें लगे तो लगाओ, क्योंकि वह भी बाल-बच्चोंके काम आयगा, परन्तु २४ घण्टा कमाते तो हो नहीं। अधिकतर मनुष्य कहते रहते हैं कि समय नहीं मिलता। सम्पूर्ण २४ घंटेमें चौथाई समय धर्मके लिये न्याय प्राप्त है, क्योंकि इस समय मोक्ष होता नहीं। तो आजके चार पुरुषार्थ यों बन सकते—धर्म, अर्थ, काम और नींद। सबको ६-६ घंटे समान वितरण कर लो। धर्मकी ओर विशेष रुचि बढ़ाओ, समय मिलेगा। भगवद्भक्तिमें, ध्यान करनेमें समय लगाओ, आगेका जीवन अच्छा रहेगा, परलोक भी ठीक बनेगा। आयुर्कर्म जो निकल गया वह अब नहीं लौटेगा, समय भी नहीं लौटेगा, बचपन भी पुनः नहीं आवेगा। हाँ दूसरा बचपन दूसरे भवमें मिलेगा।

आत्मयोग्यताका प्रभावन—शास्त्रज्ञान, धार्मिक तत्त्वोंका श्रद्धान, ज्ञान तथा चारित्रिका संस्कार अगले भवमें भी साथ जावेगा। क्षयोपशम जितना हो जावेगा वह विद्यासाधनमें बैठ नहीं जावेगा। आगेके भवमें साथ रहकर उसका फल मिलेगा। देखा जाता है कि किसीको पीटनेसे उसे विद्या नहीं आती है, और किसीको पूर्वभवके संस्कारोंसे जरासे यत्नमें आ जाती है। छः वर्षकी लड़की अंग्रेजीमें भाषण दे लेती, गाथायें पढ़ लेती, संस्कृत बोल लेती, तो इसे पूर्वभवके संस्कार नहीं कहेंगे, और क्या कहेंगे ? जिसके ज्ञानके परिणाम ठीक हो गये तो उसके धर्मविकास बढ़ते जाते हैं तथा जिसके मलिन हो गये तो वह उसी ओर झुकते जाते हैं। जैसे एक बर्तन सीधा रखो तो उसपर सीधे-सीधे बर्तन जमाते जाओ, और आँधा (उल्टा) रखो तो उल्टे-उल्टे ही रखते जाओ। भगवानस्वरूप यह आत्मा द्रव्यरूपी बीजको पयायोंकी रतिमें खो रहा है। अगर एक मिनट भी अच्छा बीता तो २४ घंटे अच्छे बीतेंगे, मगर करे क्या, जैसी योग्यता है वैसी ही तो गंध निकलेगी।

एक सेठके दो लड़के तोतले थे। देखनेमें बड़े ही खूबसूरत थे। नाई उन दोनोंकी

सगाईको आया। पिताने कह दिया था कि देखो, तुम दोनों मुंह नहीं खोलना। नाई जब देखने लगा तो बोला—ये तो दोनों राजपुत्र जैसे बड़े सुन्दर लगते हैं। बड़े ही भाग्यशाली हैं दोनों। तो लड़का कहता है—अभी चन्डन मन्डन तो लगाओ नहीं है। तब दूसरा क्या कहता है—अबे डड्डाने का कई ती। बनावट छुपाये छुपती नहीं, वह अवसर पाकर प्रकट हो जाती है। सहजस्वरूप वैसा ही रहता है। बनावट नहीं बनाना चाहिए। भगवानके आगे लोगोंको दिखाओ अपनी बात, तो क्या तत्त्व निकलेगा? तत्त्व तो आत्मामें आत्माके द्वारा ही मनन करने योग्य है। उसी प्रकारसे ध्यानकी अवस्था प्रकट होगी। उत्साह करके ज्ञान और संयम में आगे बढ़ना चाहिए।

स्वसमय ही आत्माका हित है—हित वह है जहाँ अनाकुलता है। अनाकुलता स्वस्थितिमें ही है जो कि मोक्षमार्गका कारण है। प्रत्येक बातमें आन्तरिक और बाह्यदृष्टि चलती है। पूछा, आत्माका हित किसमें है? अनाकुलतामें है। अनाकुलता कहाँ है? वह मोक्षमें है। यह तो सही है, किन्तु यह बाह्यदृष्टि है। इस बुद्धिमें आत्मदृष्टिको छोड़कर अन्य स्थानपर स्थिति पहुँची, अनाकुल स्वभाव आत्मतत्त्व समझनेमें आया, तब कहीं सही मार्गपर आ गया। जब स्वस्थितिमें आ गया उसे आन्तरिक दृष्टि कहते। इसमें आनेपर शीघ्र ही कभी तो आठ कर्मोंसे छूटकर लोकके अन्तिम भागमें ऊपर सिद्धक्षेत्रमें पहुँच जाता है। वहाँ पहुँचे तो निराकुलता है ऐसा नहीं, आत्मस्थितिके कारण वहाँ निराकुलता है। अब कर्मोंसे रहित है, यह बाह्यदृष्टि है। स्वसमयपना आत्माका हित है, यह आन्तरिक दृष्टि है। इसमें केवल एक स्वाभाविक स्थिति है। आत्माका ज्ञाताद्रष्टा रहना स्वयंका हित है। उद्देश्य, व्यवहार व निश्चयमें साक्षात् यही है, किन्तु अन्तर हो जाता है दृष्टिका। बाहरी दृष्टिका प्रभाव रागद्वेषसे है, वहाँ अन्तरदृष्टि नहीं रहती तथा आन्तरिक दृष्टिमें स्वस्थिति हो जाती है तथा रागद्वेषका निरसन हो जाता है। मैं जुदा हूँ, शरीर जुदा है। निमित्तनैमित्तिककी बात अलग है। पिता-पुत्रका सम्बंध होनेसे दोनों पराधीनताका अनुभव करते हैं। जो स्थिति गुजर रही है वहाँ दोनों स्वतंत्र हैं। देहके प्रत्येक अणुओंमें भी कुछ करनेमें मैं समर्थ नहीं हूँ। ऐसे ज्ञाताको कोई शारीरिक रोग हो जाय तो वह उसे दूर करनेमें भी लग जावे तब भी उसकी प्रतीति स्वानुभव में जैसी की थी वैसी रहती है, यहाँ स्वानुभवके भंग होनेपर भी वह प्रतीति नहीं हटती है। अन्तर पड़ जाता है प्रयोगका। अनुभूति उपयोगके लगनेको कहते हैं। देहसे भिन्न अपनी आत्माका उपयोग लगे उसे स्वानुभव कहते हैं। ज्ञानीके स्वानुभव हो तब भी कर्मकी निर्जरा है और स्वानुभव नहीं हो तो ज्ञानी सम्यग्दृष्टिके कर्मकी निर्जरा है। हाँ स्वानुभव हो तो भी उसमें विशेषता आ जाती है। वह ज्ञान मोक्षमार्गमें है। उससे कर्मोंका रबर और निर्जरा चलती रहती है।

जैसे जिसको बड़ी खुशी हो, हर तरहसे इन्द्रियभोगोंसे संतुष्ट है तो ऐसे ज्ञानी मनुष्य को भोजन कब किया, कितना किया, कहाँ किया ? यह कुछ भी मालूम नहीं रहता, खाते हुए भी नहीं खायेके समान है। यहाँ ज्ञानीकी दृष्टिमें स्वानुभवके सिवाय सब निस्सार है, सब निष्प्रयोजन है। केवल आत्मसंग अच्छा प्रतीत होता है, जिसको यह बुद्धि आई वह अपनी ओर ही रहता है। यहाँ मुनीमका दृष्टान्त बड़ा उत्तम जंचता है। मुनीम सेठकी सम्पूर्ण दुकान सम्हालता है, कहता है हमारे पास आपके इतने जमा हैं, इतने नाम हैं, हजारोंका सौदा क्रय विक्रय करता है। उसकी स्थिति १० हजारकी ही मुश्किलसे हो, किन्तु इतना बड़ा व्यापारी बना बैठा है। तो भी वह यह कभी नहीं निश्चय करता कि यह सब संपत्ति मेरी ही है। लड़कियोंकी शादी हो जानेपर लड़कियाँ समुराल जाते समय जब भी जावें तब रोती हैं, वृद्धावस्था तक ये रोना नहीं छोड़तीं, किन्तु उनके मनमें यही रहता है कि घरके कार्य पड़े हैं वे बिगड़े जा रहे हैं, उन्हें जाकर सम्हालना है। पर लिवाने कोई नहीं आया तो लड़केको पत्र दे दिया लिवा ले जाने का। लेकिन रोना जरूर है जाते समय व प्रतीति कुछ और ही रहती है। लोकमें ऐसे अनेक कार्य हो जाते हैं, जिनको हृदयसे किया ही नहीं जाता, केवल ऊपरी तौरसे करना मात्र रहता है।

अब अपने प्रभुका सहारा लो—हमने जब ऐसे प्रभुका सहारा लिया है, जिसके स्मरण मात्रसे विपदायें चकनाचूर हो जाती हैं। बाहरी विपदायें तथा दुःख भी उपयोगके द्वारा भाग जाते हैं। तब, अब अन्धेर कहाँ रहा, भला ही होगा। रामायणमें एक कथा आती है—परशुराम और लक्ष्मणका झगडा होता है। परशुराम लक्ष्मणसे वदते हैं—‘अरे बच्चे लक्ष्मण सामने से हट जा।’ तो लक्ष्मण उसका उत्तर देते हैं—

यहाँ कुम्हड़ बतिया कछु नाहीं, तर्जनि देख अङ्ग कुमुलाहीं।

कर विचार देखो मन माही, मूँदो आँख कहं कछु नाहीं ॥

यह बात प्रचलित है कि कुम्हड़ेको अंगुली बतानेसे सड़ जाता है। हजार पाँच सौ कुम्हड़ोंमें २५ या ५० ही बचते हैं या बढ़ पाते हैं। बाकी शुरूमें ही नष्ट हो जाते हैं, किन्तु बच्चे सोचते हैं बाकी कुम्हड़े अंगुली दिखानेसे सड़ गये हैं, तो यह भ्रम बुद्धि ही करना है। हाँ तो लक्ष्मण यह कह रहा है कि यहाँ कुम्हड़बतिया मैं नहीं हूँ जो तुम्हारी तर्जनी देखकर डर जाऊँ। अरे तू मुझे क्या हटाता है, अपनी ही आँख बंद कर ले, फिर तेरे लिये कहीं कुछ नहीं है। इसी तरह अपने उपयोगकी आँख मीच लो। तब कहीं कुछ भी आपत्ति नहीं है। आत्मस्वभाव एक तरहका गढ़ है। इस गढ़में अगर बैठ जायें तो वह इतना मजबूत गढ़ है कि कर्मबंधके सम्बंध कर्मसंतति आदि सबको भेटनेमें समर्थ है। स्वभावके गढ़में बैठ जाऊँ तो सब शत्रुओंकी चिन्तासे मुक्त हो जाऊँ। इससे शत्रुके सब आक्रमण विफल हो जाते हैं। जब

जब दुःख है तब तब प्रभुको भी विचारो । अरहंत सिद्धके स्मरणमें एक वह सुख है कि भव बन्धन तोड़नेमें सहायक होता है । प्रभुके उपयोगसे आत्मस्वभाव तक पहुंच जाना सुगम है, प्रभुका और आत्माका स्मरण करते समय बाहरी पदार्थोंमें रुचि न लेवे । प्रभुकी शुद्ध पर्याय चेतनद्रव्यस्वभावके अनुरूप है । अतः प्रभुताके ध्यानसे प्रभु द्रव्यमें अभेद उपयोगी हो जाता है, और प्रभुद्रव्यस्वभाव व आत्मद्रव्यस्वभाव समान है, अतः पश्चात् निज आत्मा ही आधार हो जाता है । देखो अन्तमें कषायकी बात निजमें आई । परवस्तुओंके आश्रयसे होने वाली शान्ति स्थायी नहीं रह सकती । उसे रखनेमें स्वभावदृष्टि ही समर्थ है, परवस्तु नहीं ।

भैया ! कोई क्लेश ही नहीं, कोई क्लेश हो तो सोचो, क्लेश क्या है ? यह अमुक राग ही क्लेश है । मुझे रागादिक मिटाना है, यह भाव लाओ । सुख और दुःख अलग कार्य नहीं हैं । उन दोनोंका अविनाभाव सम्बंध है । यह राग अहित है, दुःख है, इसे मेटना चाहिये । जिस-जिस पदार्थके रागसे दुःख हुआ हो वह हमें छोड़ना चाहिये, ऐसा विचार करते ही उसमें कमी आ जाती है तथा राग करते हुए ठीक कर रहा हूं, इसमें जुटना चाहिये, तो करते हुए उसमें वृद्धि आ जाती है । सुख तो एक स्वभावमें ही है । सुख और दुःख दोनों मोहरूपी मदिरा है । सुख वह है जो इन्द्रियोंको अच्छा लगे । इन्द्रियोंको अच्छा लगना भी अच्छा नहीं है और बुरा लगना भी अच्छा नहीं; आकुलता सहित यह इन्द्रियसुख भोगा जाता है । गम्भीर मुद्रा वालोंको भी यदि वे आत्मतत्त्वमें अपरिचित हैं तो अन्दरसे आकुलता रहती है । आकुलता बिना लौकिक सुख नहीं हो रहा है । दुःखका भी कारण आकुलता है और सुख और दुःख दोनों पराश्रित हैं, कर्मोंके आधीन हैं । सुख और दुःख दोनों अन्त सहित भी हैं ।

संसारके मूल हेतु हम स्वयं हैं । इसी प्रकार मोक्षके भी कारण हम ही हैं । इसके अतिरिक्त कल्पना मोहजभावोंकी महिमा है । मोहज नष्ट करना संसारके बंधनसे मुक्त होना है ।

किसका सुख सदा साथ रहा—जितनी देर भी सुख रहे उसके मध्यमें दुःख न हो ऐसी बात नहीं है । लोग विवाहमें ऐसा मानते हैं, ३ दिन तक सुखी रहते हैं, किन्तु वहाँ भी एक-एक मिनटके पश्चात् दुःखकी अवस्थायें चल रही हैं, कारण आकुलतायें और भयंकर रूप धारण कर लेती हैं । बचपनकी अवस्थाका वर्णन सुखमय किया जाता है । किन्तु उसमें अनेक दुःख हैं । माँ बापने पीट दिया सो दुःख है । बाजार साथमें नहीं ले गये सो दुःख है । वांछित खिलौना या अन्य पदार्थ नहीं मिले, दूध, भोजन समयपर नहीं मिला, बच्चे आपस में लड़ पड़े, किसीने डाँट दिया, गोदमें से नीचे उतार दिया आदि अनेक दुःख हैं । संयोगमें सुख मानने वालोंको लगता है हमें कोई दुःख नहीं है । किन्तु उसे यह मालूम नहीं कि हमें अपना कितना कार्य करनेको पड़ा है ? अगर वह नहीं किया, यहीं भटक गये तो अचेत होकर पड़ा रहना होगा ।

भूलकी बात दुहराओ मत—कोई मुसाफिर कहीं जा रहा था। जंगलमें आकर रास्ता भूल गया और रात्रि भी हो गई। यहाँ वहाँ भटकता है किन्तु रास्ता नहीं मिलता है। इतनेमें विवेकसे सोचता है अगर मैं और चला गया तो कहाँका कहाँ पहुँच जाऊंगा और फिर दिन भर भी रास्ता मिलनेमें समाप्त हो जाय। इस लिए अब कहीं न जाकर यहीं बैठना चाहिये। इतनेमें बिजली चमकती है तो सड़क दूर चमकती हुई दीख जाती है। बिजली का कितना प्रकाश, लेकिन दिख गया सब। फिर भी सड़क तक जाना दुर्गम है। चल सकते नहीं, फिर भी हिम्मत आ गई कि अब मैं सवेरा होते ही अपने गन्तव्य स्थानको चल दूँगा। रात्रि है तब तक वहाँ पड़ा है। सवेरा होते ही ऐसी पगडंडीसे चला जो सड़क तक जुड़ सकती है। रास्तेमें झाड़ियाँ, काँटे, गड्ढे, टीले आदि अनेक थे, उन सबसे बचता हुआ चला, सड़क जैसे-जैसे पास आती जाती है उसे प्रसन्नता बढ़ती जाती है। सड़कपर पहुँच गया तो वहाँ बड़े आरामसे विहार कर रहा है। पहले जैसे विकल्प अब न रहे। चलते चलते अपने लक्ष्य स्थानके समीप पहुँच गया है वहाँ आरामसे बैठता है। इसी प्रकार जीव मिथ्यात्वरूपी भूली हुई झाड़ीमें पड़ा है। वहाँ कदाचित् भेदबुद्धिरूपी बिजलीका उजाला चमका, तब रास्तेकी सही प्रतीति हुई। संसारमें कुछ नहीं मिला, बिजली चमकनेसे आत्म-स्पर्श हो गया, पथ ज्ञात हो गया। जब तक वह असंयत है तब तक साधन नहीं बनता। यहाँ असंयम रात्रि व्यतीत हो रही है। रात्रि बीतनेपर संयमासंयमरूपी पगडंडीसे चला, संयमासंयमका पालना भी कठिन है। यहाँ सारे बखेड़े साथ लगे हुए हैं। अब संयमके राज-मार्गपर आ चुका है। वहाँ एक रस है, कोई दुःख नहीं है। जैसे बच्चे माँ से टिनककर माँगके खा लेते हैं उसी तरह यहाँ मुद्रा बनाकर भिक्षा भोजन कर लेते हैं। यह भी है गौरव सहित, किन्तु भिक्षा ही तो है। वहाँ माँगना था यहाँ अयाचना वृत्ति है। इस भेषमें अयाचक वृत्तिसे भोजन किया और फिर स्वस्वरूपमें लग गये। विहार करते करते जैसे-जैसे स्थान समीप आ रहा है वहाँ गति मंद पड़ गई है। फिर विश्राम स्थलपर पहुँच गये हैं और अब आनन्दमें मग्न हो गये।

सच्ची श्रद्धा ही आकुलता दूर करती—समंतभद्राचार्यने सम्यक्त्वको श्रेय और मिथ्यात्वको अश्रेय बताया है। न सम्यक्त्वसम किञ्चित्त्रैकाल्ये त्रिजगत्यपि। श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तन्भूताम् ॥ आचार्यश्री को अपनी घटनासे सम्यक्त्वका माहात्म्य खूब बस गया। वे तो यह भी लिखते हैं—सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहजम्। देवा देवं विदुर्भस्मगूढाङ्गारान्तरौजसम् ॥

यह बात समंतभद्राचार्यने तब लिख पाई थी जब उनपर बीत गई थी। माना वह मातंग नहीं थे, किन्तु मुनिदीक्षा छेद करके गेरुआ वस्त्र पहनकर पैर पसारकर गाड़ी भर अन्न

खाया, वहाँ भी सम्यग्दर्शन चमक रहा था, कुछ समयको उसपर राख पड़ गई थी। अब निश्चय किया मातंगदेहज है। उसमें भी सम्यक्त्वका अधिक माहात्म्य है, वह देव है। उसे विकासकी साधनरूपी पगडंडी नहीं मिल पा रही है। अतः बीहड़ अन्धकाररूपी भाड़ीमें भले ही पड़ा हो, किन्तु वह ज्योतिष्मान है। इसलिए तत्त्वज्ञान बढ़े, संयमकी ओर रुचि जागृत होवे, ऐसी पद्धतिकी बुद्धिसे धर्ममें प्रवेश कर जाना चाहिए।

द्रव्यका स्वरूप क्या है—अब द्रव्यका लक्षण कहते हैं—‘द्रव्यं लक्षणं उपलक्षयति ।’ यहाँ देखा ‘कहते’ की जगह ‘उपलक्षयति’ कहा है। इससे सिद्ध है यह देव अपने ही समीपमें लक्ष्य करके अपने लिए ही कुछ कह रहा है। द्रव्यका लक्षण इस गाथामें कहते हैं—

अपरिच्यत्तसहावेगुप्पादवव्यधुवत्तसंबद्धम् ।

गुणवं च सपज्जायं जं तं दव्वति वुच्चंति ॥६५॥

नहीं छोड़ा है स्वभाव जिसने ऐसा स्वभाव होनेके कारण जो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य करिके सबद्ध है; गुणवान है, सपर्याय है, वह द्रव्य है। ऐसा तत्त्वज्ञ पुरुष कहते हैं। अपना स्वभाव नहीं छोड़ता, ऐसा द्रव्य है। द्रव्यका स्वभाव क्या है? सत्त्व और उसका विशेष क्या है? जीवका चेतना और अजीवका अचेतना, धर्मद्रव्यका गतिहेतुत्व, अधर्मद्रव्यका स्थितिहेतुत्व, आकाशद्रव्यका अवगाहहेतुत्व और कालद्रव्यका परिणमनहेतुत्व, अस्तित्वसे अभिन्न हो, वह द्रव्य है। द्रव्य ‘है’ ही इस वर्णनमें यह ज्ञेयाधिकार चल रहा है। पंचाध्यायीमें द्रव्यका लक्षण कहनेमें पहला पूराका पूरा अध्याय रख दिया है। द्रव्यका यथार्थ पूरा लक्षण समझ ले तो वह इतना ही कार्यकारी है जितना कि आत्मस्वरूप समझना; क्योंकि इसके स्वरूप समझनेमें भी वीतरागता रहती है। द्रव्यका यथार्थस्वरूप तब समझे जब सामान्यरूपसे कहा जाता है, विशेषरूपसे नहीं। सामान्यस्वरूप किसी विशेष द्रव्यमें टिकता नहीं। सामान्य द्रव्यको समझते हुए कौनसी ज्योति अपने आप जग जाती है? द्रव्यका सामान्यस्वरूप किसी विशेषता से सम्बंध रखता नहीं। सामान्यस्वरूप समझते हुए चाहे वह पुद्गलके ख्यालसे सोचा हो, किन्तु द्रव्यका सामान्यस्वरूप समझनेके कालमें जातिगत या व्यक्तिगत द्रव्य नहीं छुवा जाता। अतः सामान्यस्वरूपका आधार कोई बाह्य द्रव्य न होकर आत्मद्रव्य ही रहता है। जहाँ ध्यान, ध्याता, ध्येय एक हो जाते हैं। जिस जाननवृत्तिकी विषय परद्रव्य नहीं है उसका विषय स्वात्मद्रव्य ही पड़ जाता है, यही बात दर्शनके लक्षणोंसे बताई गई है। दर्शनके दो लक्षण हैं—(१) महासत्ताका प्रतिभास होना, (२) अन्तर्मुख चित्प्रकाशदर्शन। ये दो लक्षण विरोधी नहीं हैं, इनका समन्वय किया जाय तो विदित हो कि महासत्ताका प्रतिभास अन्तर्मुख चित्प्रकाशरूप पड़ता है। यहाँ सत्ता वह कहलाती है जिसका सम्बंध किसी एक पदार्थसे हो याने अस्तित्व सामान्य महासत्ता कहलाती है। अस्तित्व सामान्यके प्रतिभासमें बाह्य पदार्थ तो

आधार रहा नहीं तब जो उस प्रतिभासका उपादान है वही उसका विषय हो जाता है। जैन दर्शनमें महासत्ताके प्रतिभासको दर्शन कहते हैं। अन्तर्मुख चित्रप्रकाश यह भी सही है। महासत्ताका प्रतिभास किया, वही अन्तर्मुख चित्रप्रकाश है। सब द्रव्योंमें सदृश जातिको अस्तित्व सामान्य या (महासत्ता) कहते हैं। कहो किसी द्रव्यके साथ सत्ता नहीं है, तो ऐसा नहीं कहना। वह सामान्यस्वरूप है, वह प्रत्येक द्रव्य है। यद्यपि उस वृत्तिका आधार कोई द्रव्य याने सब व्यक्तिद्रव्य रह सकता है तो भी सादृश्य अस्तित्व करि महासत्ता (अस्तित्व सामान्य) देखा जा रहा है। परकी सत्ता सोचो या नहीं, तो भी वह सामान्य है। जिसका विषय अन्य नहीं पड़ता, उसका आधार आत्मा है, वह अस्तित्व बन जाता है। आत्मा उपादान तो था ही अब आधार व विषय भी आत्मा ही है। जब महासत्ताका प्रतिभास हो, विषय और उपादान तो था ही, वह महासत्ता बन जाता है। इस प्रकार वह चित्रप्रकाश सत्त्व प्रतिभासरूप होता। अस्तित्व-प्रतिभास ऐसा ही प्रकाश रखता है जो जाननरूप बन जाता है। वह अपने आप उपलक्षित हो जाता है। अस्तित्व सामान्य सोचा जा रहा। सोचने वालेको, अस्तित्व वालेको ज्ञान होता है। यह कौन रहा ? सामान्य। उस समय ध्यान, ध्याता और ध्येय भिन्न नहीं बन सकता। अस्तित्व प्रतिभास वाला तो यह आत्मा है तो पर क्या रहा ? जहाँ कोई परविषय नहीं रह सकता, वहाँ विषयस्वरूप रहेगा या स्व ही रहेगा। वह द्रव्य अपने स्वभावको कभी नहीं छोड़ता। इसका स्वभाव उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य करके सम्बद्ध है याने वह बनता, बिगड़ता और बना रहता है, यही स्वभाव है। ये तीनों बातें साथ-साथ चलती हैं। अनुभवमें जंचनेपर ही बात मानो—जैनधर्ममें जो द्रव्यका स्वरूप बताया है उसे विज्ञान वाले बहुत पसंद करते हैं। जैनधर्ममें बाबा वाक्य है सो बात नहीं है, इसको जबरदस्ती नहीं कहा कि मान ही लो।

अनुभवमें बैठे सो मान लो—जिसको अपनी श्रद्धा नहीं उसे सम्यग्दर्शन नहीं होगा। यह पहले भगवानने कहा कि उसे तो जानो खुद जिसकी श्रद्धा ज्ञान बिना सम्यग्दर्शन नहीं रह सकता। इसे भगवानने बताया है सो सात तत्त्व मान ही लो। इसका यह कोई हेतु नहीं है। वहाँ आप अपना अनुभव जुटायें तभी कार्यकारी है। स्वर्ग, नरक, द्वीप, समुद्र, बनोंको मानना रुढ़िवश नहीं है। जिन शास्त्रोंमें प्रयोजनभूत तत्त्वोंका वर्णन है वह पूरा गले उतर चुका तथा मेल खा गया तो अब सर्वज्ञके अन्य वाक्य गले नहीं उतरें यह हो नहीं सकता। परोक्षका चीजोंके बारेमें भगवान साक्षी नहीं है, यह कैसे कहेगा ? मान लो विमानोंपर किसी मनुष्यकी भुजा पसराया जाय और वह वहाँ स्पर्श कर ले तब क्या विश्वास करोगे ? अगर आपका किसी व्यक्तिके उत्कर्षसे मेल खा जाए तो आप कहेंगे जो वह करे वह हमें मान्य है। इसके लिए हम कोरे कागजपर दस्तखत कर देते हैं, यहाँ तक तय कर लेते हैं। यह श्रद्धा किस बलपर रहती है ? उसकी बात प्रकृति व गुण पूर्ण फिट हो गये हैं। जब कि मनुष्यमें

एक न एक दोष है ही वहाँ श्रद्धा पा लेते हैं। तब सर्वज्ञके कहे हुए वचनोंमें जहाँ कोई दोष नहीं और सर्वज्ञप्रणीत सात तत्त्वोंका दृढ़ मन्यन आत्मबलसे किया है वहाँ सन्देह रहे यह कितनी अपूर्णताकी बात है ? जहाँ श्रद्धा नहीं है वहाँ शराबी मनुष्यके समान कभी माँ को माँ और बहनको बहन भी कहे तो भी उसे कुछ भान नहीं कि यथार्थ बात यही है। भैया ! वर्तमानमें अल्पज्ञोंको किसीको एक रोग लग गया है। थोड़ेसे ज्ञान वाले अपनी ओरसे कहते हैं, आचार्यने जो यह कहा है वह गलत कहा है इस रोगपर हमारा तो यह ख्याल है कि सात तत्त्वोंका अनुभव इस तरह गले नहीं उतरा कि जो वर्णन किया है वह यह सत्य भाव बन जाय। ऐसोंके भक्त भी मिल ही जाते हैं। उनका साहित्य छपाने वाले, आपत्ति आनेपर ढाढ़स देने वाले, घबड़ाहट मिटा देने वाले मिल ही जाते हैं। श्री कुन्दकुन्दाचार्य वीरसैन, समन्तभद्र यहाँ होते तो ज्ञात होता कि वह कैसी प्रवृत्तिके भरे थे ? अगर यहाँ साक्षात् होते तो हितार्थी चरण ही चूमता रहता। यद्यपि वे आज नहीं हैं तो भी उनके वचनोंमें श्रद्धा सुदृष्टिसे कम नहीं होती। मोक्षमार्गके सात तत्त्वोंपर जिसे दृढ़ अनुभव हो गया उसे अश्रद्धा नहीं है। यह हौआ जैसी बात नहीं है। सर्वज्ञने जो कहा उसमें प्रायः किसीका तो निर्णय नहीं है, किन्तु कह रहा—भगवानने जो कहा है, वह सत्य है। द्रव्यका स्वरूप वैज्ञानिक वादियोंसे भी खोज करा लो, गलत निकल आवे तो कहो। बनना, बिगड़ना, बने रहना सदैव मिलेगा। स्वर्गमें देव थे, मनुष्य हो गये, यहाँ देव बिगड़ गये, मनुष्य बन गये और आत्मा बनी रही। उसी तरह घड़ा बना तो मृत्पिण्ड बिगड़ गया, घड़ा बन गया और मिट्टी बनी रही, यह बात प्रत्येक द्रव्यके प्रति घट जायगी। जो भी है उसीमें यह स्वभाव पड़ा है। प्रत्येक वस्तु नियमसे परिणामती रहती है। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य संयुक्त है, वह द्रव्य है।

भारतीय भंडा भी द्रव्यका स्वरूप बता रहा है। हरा रंग उत्पादका सूचक है, लाल रंग व्ययका सूचक है और सफेद रंग बने रहनेका प्रतीक है। श्रद्धाके बिना कुछ भी नहीं चल सकता। भगवानको सोचते निर्विकल्पता आ जाएगी या उत्सव करते-करते आवेगी; इस भरोसे मत बैठो। ध्यानको निर्विकल्पताका आलम्बन लेना चाहिए, वह अखंड अव्याबाध होता है। भगवानपर दृष्टि है तो चूँकि वह अनन्त चतुष्टयके धनी हैं, वह एक पर्याय है, अतः वह काल-कृत खंड है। निर्विकल्पताके लिए ध्यानमें चाहिए अखंड स्वभाव। किस गुणकी वह पर्याय है, किस द्रव्यकी पर्याय है ? इस तरह पर्यायपर भी भूतार्थपद्धतिसे यथार्थ दृष्टि जावे तो द्रव्यके स्वरूपपर ध्यान पहुंच सकता है।

पूजा करते समय जब भावोंकी हिलोर नहीं समाती तथा चित्त गद्गद होकर विचार बन्द हो जाते हैं, वहाँ निर्विकल्प क्षणोंको पा लेता है। शुरूमें तो भगवानके ध्यानमें रहते, आखिरीमें या मध्यमें नहीं रहते। स्वरूप सोचते-सोचते भगवानको भी भूल जाय तो वहाँ

निर्विकल्प ध्यान आ जाता है। यहां निगोद आदिके बारेमें सोचकर द्रव्यका ध्यानमें सोचना सुगम नहीं है, क्योंकि उसके दुःखोंको सोचा जाएगा तो अनेक तरहसे तर्क-वितर्क प्रणाली अपनाती होगी, किन्तु यहां बिना काट-छांटके भगवानका सहजस्वरूप चितारा जाता है, जो कि चिदानन्दमय है। तत्त्वज्ञान बिना सर्वज्ञके सहज गुणोपर शीघ्र पहुँच जायेंगे सो बात नहीं है। जैसे कि साधारण लोग बता देते हैं कि इसका यह चमत्कार है। ध्यानकी उत्कृष्ट अवस्था होना परिणामोंकी निर्मलतापर निर्भर है।

स्याद्वादकी सर्वज्ञ व्यापकता—यहां भी खोटे विकल्प छोड़ने होंगे, अच्छे परिणाम अपनाने होंगे। देखो सर्वपर्यायोंमें आत्मद्रव्य वही रहता है। यहां भी उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य रहता है। ये सब चीज नयी माननेपर भी पुरानी हैं और पुरानी पुरानी होकर भी नयी हैं। यह तत्त्वको बताने वाली बात है, यह सबका निज निजका प्रभाव है। ये तत्त्वके स्वरूप छोड़े भी नहीं छोड़े जा सकते थे। इसलिये इसका उपयोग सभीने किया है। रोटी खाते समय, रिश्तेदारोंमें, नेतागिरीमें, बात करतेमें सभीमें स्याद्वादका स्वरूप मिलता है। स्याद्वाद बिना कहीं भी टिक नहीं सकते। यदि जीव सर्वथा अनित्य हो तो रोटी बनाने वाला गुजर गया, अब खायेगा दूसरा अथवा काम करने वाला गुजर गया, अब फल पावेगा दूसरा आदि तथ्य हों तो कौन काम करेगा? तथा यदि जीव नित्य ही है सर्वथा याने कुछ बदलना होता ही नहीं है तो काम करना, फल पाना कुछ भी नहीं हो सकता। ऐसी मान्यता वालोंका यदि मान्यताके अनुरूप तथ्य हो जावे (जो कि असंभव है) तो काम कैसे चलेगा? स्याद्वादके बिना उनका चका नहीं चला। सो उनके देवता इस रूपको धारण कर गये। ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनोंको क्रमशः उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यका रूपक माना है। तत्त्वसूत्रमें ओम्के १३ अर्थ लिखे हैं। उसमें १ अर्थ उत्पाद व्यय और ध्रौव्य भी माना है। अव्यय अर्थात् व्ययका अ उत्पादका उ और मध्यका म इस तरह अ+उ+म मिलकर ओं अर्थ निकलता है। इससे यह शिक्षा मिली कि प्रत्येक पदार्थ बनता है, बिगड़ता है, फिर भी बना रहता है। मोह कहां किया जाय? तत्त्वज्ञान बिना शल्य हो जाती है, इन्होंने मेरी बात नहीं रखी है। मैं उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य करि युक्त हूँ, वर्तमान पर्याय अनित्य है। यदि विषयकषायकी परिणति मेटकर उत्तम स्वभाव बनाया जाय, इसमें खोटी परिणति मेटना व्यय हुआ और अच्छा स्वभाव होना उत्पाद तथा मनुष्यपना ध्रौव्य है ही या आत्माका रहना। कई मनुष्य कहा करते हैं कि क्यों भ्रंशमें पड़ रहे हो—पठितव्यं सो मर्तव्यं, न पठितव्यं सो मर्तव्यं। दांत कटाकट कि कर्तव्यं? अरे मर ही जाय बिल्कुल सो भी ठीक था, भगड़ा निपटा, किन्तु ऐसा है कहाँ? सब रहेंगे।

तुम सदा रहोगे, हे आत्मा भगवान! तुम्हारे उपलक्षमें यह द्रव्य स्वरूप समर्पित करता हूँ।

प्रत्येक पदार्थ शक्तिव्यक्तिमय है—आगे गुण पर्याय वाला द्रव्य है, यह कहेंगे। गुण शक्तिको कहते हैं, पर्याय व्यक्तिको कहते हैं। द्रव्यके लक्षणको बताया था। द्रव्य किसे कहते हैं? जो सत्त्व स्वभावको न छोड़े उसे द्रव्य कहते हैं। द्रव्यका स्वभाव चैतन्य या मूर्तिकता नहीं है। द्रव्यस्वभाव वह है जो सर्वद्रव्योंमें व्यापक हो। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये ६ जातिके द्रव्य हैं। उन सबमें सत्त्व है जो सत्त्व स्वभावको कभी न छोड़े वह द्रव्य है। वह सत्त्व वहीसे आया नहीं है। अगर कहींसे आया है तो पहले द्रव्य था या नहीं? कहेंगे था तो। द्रव्य तो था ही, अब सत्त्वका प्रयोजन क्या कर रहा? द्रव्यका स्वभाव सत्त्व सहित है। पदार्थका प्रयोजन सत्त्व है, वह था ही सत्त्व तत्त्व ही नहीं। यदि कहो पहिले द्रव्य नहीं था तो निराधार सत्त्वका स्वरूप ही क्या? द्रव्यने सत्त्वपना कभी नहीं छोड़ा। द्रव्य ही उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यस्वरूप चल रहा है। प्रतिक्षण द्रव्य बदलता है और बना रहता है। जो बदलता हुआ बना रहे, यह द्रव्यका लक्षण है। हम बदलते हुए भी बने रहते हैं और बने रहते हुए भी बदलते रहते हैं। सिद्ध भगवानमें बदलना पाया जाता है, किन्तु जो सदैव एक समान परिणमता हुआ बना रहे, उसे बदलना कहते नहीं। सिद्धकी पर्याय भी प्रतिक्षण बदलती रहती है।

आत्मा सभी पदार्थोंकी भाँति अन्य द्रव्य व उनके गुण एवं पर्यायोंसे असंकीर्ण है, पृथक् है, असंकर है। ऐसे आत्माके अभेद चैतन्यस्वभावमय भगवानकी उपासना करके पर्याय-मात्रमें ही आसक्तिका परिहार जो भव्य करते हैं, उनसे पर्यायव्यवहारकी क्रियायें छूट जाती हैं, ज्ञाताद्रष्टा रहने रूप आत्मव्यवहार होने लगता है। पर्यायव्यवहारका आश्रय न लेनेसे इस अन्तरात्माके रागद्वेष विश्रान्त होते हैं, परम उदासीनता प्रगट होती है, समस्त परद्रव्यकी संगति दूर होती है, केवल स्वद्रव्यसे ही संगति होती है। यही उपास्य व परमतत्त्व है।

सर्व शास्त्रोंकी देशनाका लक्ष्य अखंड चित्पिण्ड भगवान आत्माको जान लेनेपर है। नाना अन्य ज्ञान पाये तो वे स्वचेतक न होनेसे अज्ञानवत् हैं। इस अन्तर्गत भगवत्तत्त्वकी उपासना करके आनन्द लेने वाले अन्तरात्माको यह सारा जड़ समागम न कुछसा निःसार लगता है। अहो, प्रिय आत्मन् ! आनन्दसागर ! अपने वैभवको भूलकर अपने उपयोगमें परका विषय लाना तो बन्धकथा है। अपने स्वरूपको देख, उसमें ही रम। तुझमें कोई कमी है ही नहीं, तू स्वयं ज्ञान आनन्दका पिण्ड है। देखो—आत्मद्रव्यकी साधारणता ही दृढ़ करने वाले आचार्यदेव द्रव्यके लक्षणको उपलक्षित करते हैं अर्थात् अपने समीप ही उसे उपभोगमें लाते हैं जिस प्रकार, उसी प्रकार अपन भी लक्ष्यमें लावें।

जिसने अपना स्वभाव कभी नहीं छोड़ा, वह उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यकरि समवेत सम्बद्ध है, गुणवान है, पर्यायवान है, वह द्रव्य कहलाता है। द्रव्यका स्वभाव न तो किसी क्षण

आरब्ध हुआ और न कभी परित्यक्त हुआ तथा न कभी परित्यक्त हो सकेगा । स्वभाव स्वभाववान अलग-अलग वस्तु नहीं हैं, केवल परिचयके लिये वस्तुको भाव व भाववानके रूपमें व्यवहार किया जाता है । गुण शक्तिको कहते हैं, उसीको अभेदरूपमें स्वभाव कहते हैं ।

भेददृष्टि व अभेददृष्टिका असर—द्रव्य गुणसहित पाया जाता है । भेददृष्टिसे गुण नजर आयेगा । अभेददृष्टिसे गुण दृष्टिगत नहीं होते । मैं चेतनामात्र वस्तु हूं । अगर उस सम्बंधमें कुछ बोलें तो व्यवहार है, लेकिन समझानेके लिये और समझनेके लिये भेददृष्टिसे इसका वर्णन करना पड़ेगा । अनादिकालसे संयोगबुद्धिके वश आत्मा स्वरूपको भूलकर दुःख लगा रहे हैं । जिसके भूलनेसे दुःख बने थे, वह भूल मिट जावे । एक निज आधारको छोड़कर तरंगों बाहर न जावें, यह हमारा स्वभाव है, बड़प्पन है । बड़प्पन तो उसमें है जो सिद्ध भगवानकी पर्याय है, वैसी अपनेमें पानेका प्रयत्न करें या उस पर्यायके करने व आत्मसात् करनेके लिये कटिबद्ध रहें । कितना ही चतुर, होशियार होवे घरमें, लेकिन पूरा बड़प्पन उसमें है कि जो अरहंत, सिद्धकी पर्याय हैं, उस अनुरूप परिणति हो, वही बड़प्पन है । अन्यथा त्यागमें बड़े भी क्या कामके, बाह्य धर्ममें बड़े भी क्या कामके ? अरहंत सिद्धपनेकी पर्याय पाना बड़प्पन नहीं है तो क्या हल्कापन है ? स्वभावपन भी बड़प्पन है । स्वानुभव ही हमारी असली दुकान है, इसे खूब बढ़ा-चढ़ाकर चलाना चाहिए । इस दुकानका विज्ञापन प्रकाशित करानेकी जरूरत नहीं, उसका विज्ञापन स्वतः हो जायगा । स्वयं और बाह्यमें भ्रमते चले जायेंगे शांतिका सौदा खरीदनेके लिये भव्यजीव । इसकी कीमत सबके लिये एक रहेगी और सच्चा सौदा वहाँसे खरीदना है तो क्रेता (खरीददार) भी स्वत्मानुभव वाला बन जावे । मंदिरमें, स्वाध्यायमें, अध्ययनमें, एकान्तमें, सभा-सोसाइटियोंमें, आहारमें, विहारमें जहाँ जो करे वहाँ स्वका स्पर्श होता रहे । अभेद और भेदके चमत्कार अनुपम हैं । वस्तु भेदरूप या अभेदरूप है क्या ? दोनों नहीं हैं । वस्तुको समझनेके लिये जब तक वस्तुभेद नहीं बताया जाय तब तक समझमें नहीं उतरती । अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य ये भेदरूपसे आत्माके गुण हैं, और अभेद रूपसे शुद्ध चैतन्यमय, एकाकार अखंड, आनंदरूप हैं । वस्तुस्वरूप कहनेमें नहीं आता, वह अभेद रूप भी नहीं है, अभेद समझने समझानेमें भी भेद पहिले ही घुस जाता है । किसीसे कहा जाये कि २ बजे रात्रिको स्टेशनपर जाना । रास्तेमें एक बड़का वृक्ष मिलता है, उसके बारेमें लोग कहते हैं कि उसपर भूत रहते हैं, किन्तु भूत नहीं हैं, तुम डरना नहीं । यहाँ डर पैदा तो पहिले ही करा दिया, भूत नाम सुनते ही मनमें वह संस्कार आ गया । उसी तरह वस्तुका स्वरूप सुनते ही भेद आ गया । व्यवहारसे यहाँ विशेष जाना । निश्चय एवं व्यवहारसे भी पदार्थ नहीं जान सके । निश्चयका साधन व्यवहार बनेगा । जो अभेदको अतिक्रान्त करके पहुंचे वह पूर्ण है ।

पूराकी पहुँचका साधन अभेद है—कोई देहाती मनुष्य किसीके साथ बगबई देख आया। उससे वहाँकी जानकारी पूछी गई तो वर्णन करने लगा—वहाँ जहाजोंके ठहरनेका बन्दरगाह है, बढ़िया बढ़िया बाजार है, मकान है, दूरीचे और बताते बताते-२ कहता है वह देखते ही बनता है। उसी तरह आत्मा ज्ञान दर्शन, सुख वीर्यसे सहित है, इतनेमें दूसरा कहता है वह जानते (अनुभव करते) ही बनता है। अनन्त शक्तियोंका पुञ्ज है जैसे कि शक्ति मात्र बिजली है वैसे ही आत्मा परसे छुआ नहीं जा सकता वह चैतन्यशक्तिमात्र है। प्रत्येक द्रव्य शक्तिमात्र है। इन्हें तो लेकर भी देखा जाता है या समझमें आ जाता है किन्तु आत्म-द्रव्य लेकर नहीं जाना जाता। आत्माको विज्ञानबुद्धिके ढंगसे भी नहीं देखें तो भी उपासना करें तो वहाँ तक पहुँच जाते हैं, किसी एक शक्तिको विषय बनाकर ध्यान करें तो भी उसका स्वरूप जाना जा सकता है। कोई कोई कहते हैं द्रव्य या सत् एक ही है, जरा उनकी ओरसे भी देखो, चूँकि हर एक वस्तु ६ प्रकारसे देखी जाती है द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, द्रव्य व स्थापना, अतः द्रव्य या उसके सत्के बारेमें भी देखो तो ६ द्रव्य बन जायेंगे। यद्यपि ऐसा नहीं है कि एक अखण्ड सत् ही ६ प्रकारमें देखा जाता किन्तु प्रत्येक सत् अपने-अपने अस्तित्व-मय है जो भी इस निगाहसे देखेगा वह ६ रूपताके रहस्यका अन्दाज कर लेगा।

द्रव्यके ६ भेद हैं—(१) नाम द्रव्य, (२) स्थापना द्रव्य, (३) द्रव्य द्रव्य, (४) क्षेत्रद्रव्य, काल द्रव्य और (६) भाव द्रव्य। ये ६ प्रकार प्रत्येक पदार्थपर घटित हो सकते हैं, जैसे पूजा, घड़ी, चौकी, जीव, पुद्गल आदि पर। अरहन्त, सिद्ध, महावीर आदि की पूजा नामपूजा हुई पार्श्वनाथ भगवानकी प्रतिमामें स्थापना करके पूजा करना स्थापनापूजा है। अष्टद्रव्यसे द्रव्यपूजा हुई। जिस स्थानसे निर्वाण हुआ वहाँकी पूजा करना वह क्षेत्रपूजा हुई। जिस समय निर्वाण हुआ उसी तिथिकी पूजा की जाय वह कालपूजा हुई और परिणामोंकी विशेषता जैसी रहे या प्रभुभावकी पूजा हो वह भावपूजा हुई। उसी तरह नाम विशेष कहना नाम घड़ी। एक समय बताने वाली (बच्चों जैसी घड़ी) स्थापना घड़ी। जहाँ वह रहे वह क्षेत्र घड़ी। पुद्गल परमाणुओंसे युक्त द्रव्य घड़ी। समय देने वाली काल घड़ी और मूल्य बताया जावे तब भाव घड़ी। यहाँ केवली स्वरूपकी विशेषता बतलानेकी कहा है। द्रव्य भी ६ तरह का कह सकते हैं—(१) नाम वस्तु, (२) स्थापना वस्तु, (३) द्रव्य वस्तु, (४) क्षेत्र वस्तु, (५) काल वस्तु, (६) भाव वस्तु। कल्पना ऐसी कर ली। यों तो प्रत्येक द्रव्य ६ तरहका है। अब सत्के ६ रूप देखें, चलानेका कार्य जो करे वह नाम सत् है। नाम ही तो चलाता है सब कुछ, जैसे स्त्रियां गाना गाते समय कहती हैं आपसमें, कोई गीत तो गाओ तब कोई कहती है तुम पहले लय (चाल बड़ी) तो उठाओ तब बादमें कहती कोई नाम तो रखो उसका। बिना नाम रखे भजन नहीं होता है। कुछ बन्धुओंने माना है—१ वह सत् है। उसके ही

६ रूप यहां कल्पनासे माने हैं। बच्चोके पैदा होते ही नाम रखा जाता है, आपको जल्दीमें ज्योतिषी नहीं मिला तो कहने लगते अमुकका लड़का हुआ चलो वही नाम हुआ। चलानेका काम करे कोई यह धर्मद्रव्य हुआ, प्रतिबिम्बमें स्थापना कर दो तो क्या किया कुछ ठहराना किया, ठहरानेका काम करे जो कोई वह अधर्मद्रव्य हुआ। चलाने वाला होनेसे धर्मद्रव्य नाम वस्तु हुआ, ठहराने वाला होनेसे अधर्मद्रव्य स्थापना वस्तु हुआ, द्रव्य सत् पुद्गल द्रव्य हुआ, क्षेत्र सत् आकाश द्रव्य हुआ, काल सत् समय हुआ और भाव सत् हुआ चेतना।

किसी भी पद्धतिसे आत्माकी यथार्थतामें पहुँचो—आत्माकी विशेषता बतला रहे हैं। द्रव्य षडात्मक (६ प्रकारका) है, वहां आत्मा भावमात्र, चेतनमात्र, शक्तिभाव, ज्ञानमात्र एतावन्मात्र है। वह आत्मा दिख जावेगा जब शुद्ध चेतना मात्र अनुभवमें आवे। शुद्ध एतावन्मात्र है। विकल्प भी हो जाये तो आत्माका ग्रहण कैसे होता है? यदि क्षेत्ररूपसे आत्मा कहेंगे, शरीरमात्र आत्मा कहनेपर कहेंगे इतना बड़ा है, इतना बड़ा है, नाम बताकर कहेंगे या आकार बताकर कहेंगे, किन्तु इतना ही चबाते जाओ तो अनुभवका मार्ग समझमें नहीं आवेगा। यद्यपि सभी द्रव्य नामस्थापना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक हैं, किन्तु किस द्रव्यको किसकी मुख्यतासे जानना सुगम है? ऐसा मद्देनजर रखते हुये उस अलंकारसे इस प्रकरणको कहा जा रहा है कि मानो समस्त विश्व एक है और वह नामस्थापना द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक है, उसमें भावात्मक तत्त्व जीव है। प्रयोजन इसका यह लेना कि चैतन्यभावकी पहिचानसे जीवका परिचय प्राप्त होता है। समस्त विश्वको एक सत् मानकर कहा, उसकी कल्पना हंसी रूपमें न करना, किन्तु सोचना ही है ऐसा तो सादृश्यास्तित्व (महासत्ता) अथवा मात्र अस्तित्व स्वरूपकी दृष्टिमें एक देखना। स्वरूपास्तित्व तो सबका खुदका खुदमें है। स्वरूपास्तित्वमें ही अर्थक्रिया है। स्वरूपारित्व होनेपर ही सादृश्यास्तित्वकी दृष्टि बन सकती है। यहां भावकी मुख्यतासे आत्माको देखो। अनुभवसे सोचो आकारादिकी दृष्टिसे सोचनेसे निर्विकल्पताकी ओर नहीं जा पा रहे हैं, आत्माके बारेमें तरह तरहकी बातें विचारो तो तरंगें चलेंगी। तरंगें समाप्त हुईं तो चेतन मात्र है। समझानेमें भेद मात्र है।

आत्माको शक्तिपुञ्ज तो कहा ही है—आत्माका कौनसा गुण निरर्थक है, जिसे निकाल दिया जावे। ज्ञान भी जाननमात्र आत्माका है, उसे निकालो तो रहेगा क्या? किसी भी गुण को निकालो द्रव्य नहीं रहेगा। द्रव्य अनन्तगुणात्मक है, उसमेंसे कुछ निकाल दो तो वह नहीं रहेगा। द्रव्य गुणात्मक है, यदि गुण ही रहने दो, द्रव्य कुछ नहीं तो द्रव्य निकाल देनेसे ज्ञान ही निकल जाये। आत्मा पर्यायमय (सहित) भी है। पर्याय वाला है, जो ऐसा है वह द्रव्य है, ऐसा कहते हैं। इस लोकमें जो कुछ अनारब्ध (वभावभेद देखा जाता है वह अनादि से चला आ रहा है। हम भी अनादिसे चले आ रहे हैं, विन्तु पर्यायमें दृष्टि रोककर कहता

है कि मैं ४० वर्ष या ५० वर्ष का हूँ। पर्यायदृष्टि लगानेसे छोटे बड़े नजर आते हैं। अन्यथा सब अनादिकालीन हैं, अभेददृष्टिसे अनारब्ध स्वभाव है। किसी दिनसे आरम्भ नहीं हुआ तभी तो लिखा है—“वदहारेणुवदिरसइ ए।गिरस चरित्त दंसणं णाणं। एवि एणं ए चरित्तं ए दंसणं जागो सुद्धो।” आत्माके ज्ञान है, दर्शन हैं आदि सब व्यवहारसे कहलाये गये हैं। निश्चयसे तो आत्माके न ज्ञान है, न चारित्र्य है, न दर्शन है। आत्मा एक शुद्ध है, ज्ञायकमात्र है। भैया ! वैसे तो किसी शब्दसे बोला तो अशुद्ध हो गया। दुनियामें किसीका नाम नहीं है। नाम नहीं जानते तो कहते हैं कि ये कोट वाले, कमीज वाले, तांगा वाले, गाड़ी वाले आदि। लो ये विशेषण भी नाम बन गये। पर आत्मा कहकर पुकारो तो खुलासा अर्थ बतावे। आत्मा = निरन्तर जानने वाला। ब्रह्मा = जो अपने गुणोंसे बढ़ता रहे। हे चेतन ! अर्थात् हे प्रतिभास करने वाले। देखो भैया ! चौकीका भी नाम नहीं। चौकी चतुष्कोणा अर्थात् चार कोनों वाली।

यहां नाम किसीका नहीं है—सब कुछ दृश्य बिना पतेका लिफाफा है। कोई विशेषता घट गई, उसीसे पुकारने लगे। चटाई, चट + आई = शीघ्र आ जाती है। संदूक, सं + दूक = अच्छी तरहसे जिसमें वस्तुएं दुकाई जावें। जो नाम हैं, सब विशेषण हैं। निरपेक्ष चेतन इसके नाम नहीं हैं। एक अखंड द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप आत्मा है। खंडरूप आत्मा है। घटा-बड़ा नहीं, उसमें अनन्त कलायें हैं। खण्डभावात्मक है, मेचकामेचक है।

हलुवा जब तक मुखमें नहीं आया तब तक ये दशायें हो रही हैं। हलुवामें अभी सूजी इस दर्जेकी चाहिए, घी कम है, शक्कर और होना चाहिए आदि विकल्प उठ रहे हैं। बादमें तैयार होनेपर हलुवा खाते समय कोई बात भी न करे, बोलनेमें स्वाद घट जायेगा। कृतएव आँख मींचकर खानेमें मस्त हैं। कोई सामने है या नहीं, इसकी भी खबर नहीं रहती। ऐसा ही आत्मा स्वभाव स्वादमें अभेद बन जाता है। पहले भेदपर चले, फिर अभेदपर चले। आत्मा ज्ञातामात्र है, स्वभाव भेद भी नहीं भेद अभेद। स्वभावका समन्वय करके अभेदपर ले गये। भेद अभेद दोनों विक्ल्पोसे छूटकर आत्मा समझमें आता है। ज्ञात होगा, खुदके वृक्ष जंगलमें या अन्यत्र खड़े हुए हैं, लेकिन उनके लिए बिना सरकारी आज्ञाके नहीं काट सकते, काटनेपर जुर्मके पात्र होवेंगे तो वहाँ अनुभव करते हैं कि लो खुदकी चीज खुदको अलभ्य हो गई। उसी तरह खुदकी वस्तु है आत्मानन्दका भोग करना, लेकिन जब स्वात्मा देव चैतन्यमें रत नहीं हुए तब तक उसे नहीं पा सकते।

महासत्ता सादृश्यास्तित्वरूप—वास्तविक ढंगसे उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्यको जानना चाहिए। स्वरूपअस्तित्वमें या सादृश्यअस्तित्वमें दोनोंका लक्षण भिन्न-भिन्न है। सही सत्त्व प्रत्येकका आपका है। वह सब सादृश्यसम्बन्धमें एक ही प्रकारका है। क्या उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य

सादृश्यअस्तित्वमें नहीं है ? वस्तुतः नहीं है । स्वरूपअस्तित्वमें होंगे, फिर भी सबकी जाति मानी सो सहायतामें भी उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सम्भ लो । उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य मनुष्य जातिमें होंगे या एक एक मनुष्यमें होंगे । मनुष्यमें होंगे, जातिमें सबको वह लेनेसे व्यक्तिमें परिवर्तन करो तब जाति-जातिमें होना चाहिये । उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य होगा तो वह स्वरूपअस्तित्वमें होगा । दूसरे शब्दोंमें कहते हैं प्रादुर्भाव (मोटीफ़िक्शन) वह प्रायः विभावमात्रमें लगता है । (मेनीफ़िस्टेशन) भी वहो यह स्वभावमें प्रायः फिट बैठता है । च्युत हो जाना अर्थात् द्रव्यमें न दिखना, विलीन हो जाना व्यय है । ध्रौव्यमें अडिग बना रहना है । द्रव्यत्वसे देखो—वह अपना रूप नहीं बदल सकता । जो उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्य—इन तीनोंसे लक्षित है वह द्रव्य हुआ । कोईकिसीसे कहे जावो ।

दूध लाओ तो वह दूध गौ जातिसे लायेगा या गौ से ? अगर कहें गौ जातिसे लायेगा । तो सब गायोंका दूध उसमें होना चाहिए, सो होना असम्भव है । वह गौ से ही लायेगा, और यह परिणामन स्वरूपास्तित्वमें होगा, अवान्तरमें होगा । द्रव्य छः नहीं हैं । जीव, पुद्गल क्या एक-एक हैं ? वह तो अनन्तानन्त हैं, काल असंख्यात हैं । इनकी जाति भी क्या परिणामेगी ? उन्हें ऐसी एक जातिमें बाँध देना भी कल्पनासे होगा । द्रव्यकी जातियाँ कैसे बाँधो ? जैसे कुछ भेद स्वरूप नहीं और सबका संग्रह हो ।

जाति व व्यक्तिकी दृष्टिका असर—द्रव्य दो तरहका है—(१) मूर्तिक और (२) अमूर्तिक । मूर्तिक तो एक और रखो और अमूर्तिककी अपनी जातिको एक और रखो । यह एकमेक है या भिन्न-भिन्न है । अमूर्तिकमें फर्क है या नहीं ? फर्क पाया जाता है । कोई द्रव्य जानता देखता है—जैसे जीव । कोई गतिमें कारण बनता है धर्मद्रव्य । कोई स्थितिमें कारण बनता है अधर्मद्रव्य । कोई स्थान देता है यह आकाशका कार्य है और कालद्रव्य परिणामनमें कारण पड़ता है । इस तरह अमूर्तिक ५ जातिमें बाँट दिये गये । अब तो स्वभाव भेद नजर नहीं आता । कोई कहे आता है, भव्यका जुदा स्वभाव है, अभव्यका जुदा स्वभाव है । आचार्य कहते हैं—नहीं, तुम पर्यायस्वभावमें पहुँचकर प्रश्न कर रहे हो, नहीं तो आचार्य पहले ही द्रव्य कह देते । भव्य और अभव्यमें रंच मात्र भी अन्तर नहीं है । भव्य और अभव्यका जीव तो बराबर है । इसलिए ६ जातियाँ हैं, यह सिद्ध हुआ । जीव जाति और पुद्गलजाति तो परिणामन नहीं करती । अलग-अलग जीव परिणामन करता है और पुद्गलका पिण्ड परिणामन न करके पुद्गलका अणुपरिणामन करता, इस विभावपद्धतिमें सबका परिणामन विलक्षण है । सादृश्य अस्तित्वमें परिणामन नहीं है, किन्तु स्वरूपअस्तित्वमें परिणामन होता है । जलमें तरंगें उठ रही हैं । उसमें एक पर्यायकी उत्पत्ति और एकका व्यय पाया जाता है । निस्तरंग अवस्था होनेपर भी तरंगके व्ययको देखो वह सर्वथा नष्ट हो गई क्या ? सर्वथा नष्ट नहीं हुई और रही

भी नहीं। व्ययके विषयभूत जो पर्याय हैं, उनमें पर्यायमुखेन वस्तु लक्ष्यमें आवे, इसका अर्थ हुआ व्ययमुखेन द्रव्यका ज्ञान हुआ।

मात्र पर्याय तो लक्ष्यमें आता नहीं है—प्रगट् पूछा जाय कि आप घड़ी देख रहे या रूप, तो कहना होगा कि रूपमुखेन घड़ी देख रहे हैं। जो रूप वस्तुतः पृथक् सत् नहीं है, उसे जानेगा कौन? आम चूसते समय रस जान रहे या आमको? रसमुखेन आमको जान रहे सो सत् है। जो सत् है वह चीज है। रस तो विशेषता है, किन्तु आदमी भूलसे कहते हैं कि रस को चूस रहे हैं। रस आमसे जुड़ा नहीं। नीला, लाल, सफेद कमल है, यह कमलकी विशेषता की दृष्टिसे लाल आदि प्रतीत हुआ, न कि कमलको छोड़कर। अंगुलीकी सीधी पर्याय टेढ़ी अंगुली करनेसे उसमें व्यय हो गई तो यह टेढ़ी रूपके उत्पादमें ही जान पावोगे। टेढ़ी पर्याय का व्यय सीधी अंगुलीका सम्हाल रूप है। टेढ़ी पर्यायकी निमग्नता सीधी पर्यायकी उन्मग्नता रूप है। सर्वथा नष्ट होकर अंगुली सीधी या टेढ़ी ही हो गई, सो ऐसा भी नहीं है तथा इतना है, वह परिणामता रहता है। वह उत्पाद, व्ययरूप तथा अस्तित्व सामान्य है अर्थात् ध्रौव्य कर युक्त है। अस्तित्व कभी नहीं खोता है। कोई कहते हैं कि अभाव सद्भावरूप है और कोई सद्भावसे अभाव मानते हैं। अन्योन्याभाव, अत्यन्ता प्राग्भाव, प्रध्वंसभाव—ये सब अभाव अन्यके सद्भावरूप हैं। इसी तरह व्यय है जो वह उत्पादरूप है, उत्पाद, व्ययरूप है और दोनों सद्भावरूप हैं अर्थात् द्रव्यका स्वरूप अस्तित्वरूप है।

यथार्थस्वरूपका भाव ही प्रथम धर्म है—अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, भक्ति, व्रत, उपवास, मूर्तिअर्चना, तप, ध्यान, धृति सभी मानते हैं, किन्तु जैनशासनमें मुख्य बात क्या है कि उसमें द्रव्यका स्वरूप पदार्थ है। जैनधर्मकी तात्त्विक पढ़ाई भी द्रव्यके स्वरूप से प्रारम्भ होनी चाहिए और वही पढ़ाई सही है। द्रव्यके तत्त्व तक पहुंचनेके लिए उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य कर सहित यह वर्णन चल रहा है। द्रव्य गुणवान है। गुण विस्तार विशेष हैं, एक साथ अनादिकालसे अनन्तकाल तक रहते हैं। गुण कहीं इस बुराईसे न समझें, जैसे लड्डुओंका घड़ा। तो घड़ा लड्डुओंका तो नहीं है, किन्तु घड़ेमें होनेसे इस तरह कह दिया जाता है व घड़ा अलग है, लड्डू अलग हैं। उसी तरह आत्मामें गुण रहते हैं, यह बात नहीं है। वह स्वयं सत् रूप है। वस्तुमें जो एक साथ रहें, उन्हें विस्तार कहते हैं और जो अमुक-अमुक कालमें रहे उसे आयत कहते हैं। जैसे चौड़ाई एक पकड़में आती है वैसे लम्बाई नहीं आती है। कहते हैं कि उसका संसार लम्बा होता चला जा रहा है। संसार लम्बा कर रहा है अर्थात् कालभेदमें कह रहे हैं। संसारमें रुलता रहेगा।

वस्तुके सामान्य गुणोंका परिचय करें—सामान्य गुण जो सबमें पाए जावें वे ये हैं—अस्तित्व, नास्तिक, द्रव्यत्व, पर्यायत्व, असर्वव्यापकत्व, एकत्व, अन्यत्व, संप्रदेशत्व, अन्तदेशत्व,

मूर्तत्व, अमूर्तत्व, सक्रियत्व, अक्रियत्व, चेतनत्व, अचेतनत्व, कर्तृत्व, अकर्तृत्व, भोक्तृत्व, अभोक्तृत्व, अगुल्लघुत्व इत्यादि सभी द्रव्योंमें पाये जावें, ऐसे सब सामान्य नहीं हैं, सबमें भी पाये जावें या एकसे अधिकमें पाये जावें। अस्तित्व यह सामान्य गुण है, क्योंकि सब द्रव्योंमें पाया जाता है। कुछ गुण सबमें पाये जाते हैं, कुछ सबमें नहीं पाये जाते हैं। नास्तित्वगुण भी साधारण है। जो एक-एक हो रहे वह एकत्व। जो सबसे विभक्त रहे वह अन्यत्व, यह भी सामान्य गुण है, क्योंकि सब अन्यरूपसे जुदा रहते हैं। द्रव्यत्व जिस गुणके कारण पदार्थ परिणमता रहे, यह सबमें है। पर्यायत्व भी सबमें है। व्यापकत्व जो सब जगह रहे, जैसे आकाश। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य ये सर्वाकाशमें व्यापी हैं, सो सर्वगत हैं। असर्वगत जीव पुद्गल व कालद्रव्य है। जीव पुद्गल और कालद्रव्य सर्वगत है क्या? नहीं है। असर्वगत तो सबमें व्यापक नहीं। जीवमें भी असर्वगतपना है, कालमें असर्वगतपना है। एकत्व भी साधारण गुण है, क्योंकि सभी पदार्थ मात्र अपने आपके एक स्वरूपमें हैं। अन्यत्व भी साधारण गुण है, क्योंकि सभी पदार्थ एक अपने आपके अतिरिक्त शेष सभी पदार्थोंसे अत्यंत विभक्त हैं। जिसमें बहुत प्रदेश हों यह बात एक हो जातिके द्रव्यमें है या अन्यमें भी है? जीव, धर्म, अधर्म या आकाश इन चारोंमें सफेद तत्त्व हैं। पुद्गल व कालद्रव्य बहुप्रदेशी नहीं हैं। पुद्गलका पिण्ड बहुप्रदेशीपन है, वह उपचारसे है। वस्तुतः पुद्गल एकप्रदेशी है। जिसका एक ही प्रदेश हो दूसरा विभाग न हो सके, वह सामान्य गुण अप्रदेशपना बताया गया। पुद्गल एक ही प्रदेशी है। जीव, धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य बहुप्रदेशी हैं। काल और पुद्गल द्रव्य अप्रदेशी हैं। मूर्तित्व पुद्गल तत्त्वको छोड़कर सबमें है क्या? सबमें तो नहीं है। कभी जीव भी मूर्ति होता है व्यवहारदृष्टिसे। बन्ध दृष्टिसे सभी मूर्तिक माने हैं। धर्म, अधर्म, आकाश और काल सभी अमूर्तिक माने हैं। अतः अमूर्तत्व भी सबमें सामान्य हो गया। पुद्गल और जीव द्रव्यमें सक्रियत्व है। धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्यमें अक्रियत्व है। अतः सक्रियत्व, अक्रियत्व भी द्रव्यके साधारण गुण हो गये।

अचेतनतत्त्व तो सामान्य गुण है, वह जीवद्रव्यको छोड़कर प्रत्येक द्रव्यमें पाया जाता है। चेतनत्वको भी सामान्य गुणमें लिया है, यह अचेतनकी अपेक्षा औपचारिक मात्र समझना चाहिए अथवा जीवच्छरीरके उपचारसे अचेतनत्व, कर्तृत्व, अकर्तृत्व। कर्तापिन भी सामान्य गुण है और अकर्तापिन भी सामान्य गुण है। प्रत्येक द्रव्य अपने आपका करने वाला है सो कर्ता हो गया, क्योंकि अपना-अपना परिणमन करने वाला है। एक अणु भी दूसरे अणुका कुछ नहीं करता, इसी प्रकार कोई भी द्रव्य अन्य किसीको नहीं करता, इसलिए यह अकर्तृत्व सबमें है। भोक्तृत्व और अभोक्तृत्व—सर्वद्रव्य अपनी अपनी पर्यायपनको भोगने वाले हैं इसलिए भोक्तृत्व साधारण गुण है, जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश और काल

अपने-अपने गुणोंको परिणतियोंसे भोगते हैं। अभोवतृत्व अपनेको छोड़कर दूसरी पर्यायिको कोई भी नहीं भोगता है। कोई एक द्रव्य किसी अन्यको नहीं भोगता है, अतः अभोवतृत्व सामान्य गुण हो गया। अगुरुलघुत्व एक दूसरेके गुण दूसरे रूप न हो जायें, पर्यायों दूसरे रूप न हो जाय। यह भी सब द्रव्योंमें पाया जाता है। अतः अगुरुलघुत्व भी सामान्य गुण हो गया। जितने ही यह गुण हैं वह सब भेदविज्ञानको जाहिर करते हैं। कोई भी पदार्थ अपने को कर्ता है वह अन्य रूप नहीं बनता। मित्रोंमें कितना ही अभिप्राय रूप प्रेम मिल जाय, लेकिन वह दोनों जुड़े ही रहेंगे। शरीरके पिण्डका एक परमाणु भी अन्य रूप नहीं बनता। जब अणु अणुका स्कन्ध बनता है और वहाँ बन्धेद्रविकौ पारिणामिकोंकी बात होती है, वहाँ भी एक अणु दूसरेको अपना परिणामन नहीं देता है, किन्तु द्व्यधिक याने योग्यावस्था सम्पन्न परमाणुको निमित्त पाकर दूसरा परमाणु जो है वह अपने ही परिणामनसे परिणाम रहा है।

विशेष गुणोंको भी देख लो—अब विशेष गुण बतलाते हैं। विशेष गुण वह है जो अपनी जातिमें ही पाये जावें, अन्यमें नहीं पाये जावें। अवगाहनहेतुत्व आकाशद्रव्यका विशेष गुण है। सब द्रव्योंके अवगाहनमें अर्थात् अवकाश देनेमें निमित्त होनेको अवगाहनहेतुत्व कहते हैं। यह गुण आकाशद्रव्यमें ही पाया जाता है। इसी प्रकार आगे भी जो जो विशेष गुण कहे जावेंगे वे भी उस लक्ष्यभूत द्रव्यमें ही पाये जावेंगे। विशेष गुण कहो या असाधारण गुण कहो एक ही बात है। असाधारणका अर्थ है जो सबमें साधारण न हो याने अलक्ष्यमें जो नहीं हो सकता, उसे असाधारण कहते हैं।

जीव पुद्गल जो चले, उनमें निमित्त होना धर्मद्रव्यका कार्य है, यह अन्य द्रव्यमें नहीं है। अतः गतिहेतुत्व धर्मद्रव्यका विशेष गुण है। अधर्मद्रव्यका जीव पुद्गलोंको ठहरनेमें निमित्त होना कार्य है, सो अधर्मद्रव्यका विशेष गुण स्थितिहेतुत्व द्रव्य ही नवीन अवस्थायें धारण करे जिसको आयत (लम्बाई) कहते हैं, यह कालद्रव्यका कार्य है, वे वर्तमानत्व तत्त्व कालद्रव्यका विशेष गुण हुआ। रूपादिपना यह पुद्गलमें ही पाया जाता है। देखो तो भैया ! आत्मा चेतन और शरीर अचेतन इन दोनोंका कैसा सम्बंध मिला है कि शरीरपर सुखसे मक्खीको भी नहीं बैठने देते। आत्माका स्वरूपमें शरीरका स्वरूप व्यापक नहीं है तो भी मोहकी लीला विचित्र है, मोहमें तो अन्यके देहमें रति होती। अगर बच्चेको भी दुःख होवे तो माँ व दूसरे प्रेमी अपना दुःख मानते हैं तथा सदैव रक्षामें आत्मीय बुद्धिसे तत्पर रहते हैं। अगर बच्चेको रास्तेमें या अन्यत्र कोई वेदना हो तब क्रोध सीमा तोड़कर उबल पड़ता है, देखें कौन है मारने वाला। कुछ लोग परिवारके दुःखको अपना महसूस करते हैं और कुछ लोग परिवारके दुःख को महसूस करके अपने दुःखको ही महसूस करते हैं। इस समय परिवार वालोंको उस व्यक्ति

की यथेष्ट सेवा-शुश्रूषा करनी चाहिए, नहीं तो उन परकी प्रधानता हो जायगी, व्यवस्था बिगड़ जायगी, किन्तु तत्त्वज्ञान भी तो रखे। कुछ लोग दोनोंको अर्थात् स्वयंको एवं परिवार वालों को भी दुःखी नहीं देखना चाहते, पर उनका वश चले तब है न। अपनी देहमें भी औरके शरीरकी रुचि है। किसीको किसीमें, किसीको किसीमें। विचित्रता है मोह प्रबलताकी, बाह्यमें अन्तर भले पड़ जाओ, किन्तु अपनी परिणतिमें अन्तर नहीं आने देना चाहते। पर्यायमें याने परिणतिमें व आत्मस्वभावमें महान अन्तर है, लेकिन अमवश उसे अपना समझ रखा है। जड़में निजत्वकी बुद्धिसे यह प्राणी भी जड़वादकी ओर अग्रसर होने लगा।

पुद्गलका विशेष गुण रूपादिमत्ता है अर्थात् जिसमें रूप, रस, गंध व स्पर्श पाये जावें उसे पुद्गल कहते हैं। रूपादिमत्ताका पर्यायवाची मूर्तिकता भी हो सकता; परन्तु यहाँ मूर्तिकता शब्दसे नहीं कहनेका प्रयोजन यह जाना है कि कर्मबन्धके कारण संसारी जीवकी भी उपचारसे मूर्त कहा गया है, सो मूर्तत्व साधारण गुणोंमें कहा है। जीवमें रूप, रस, गंध, स्पर्श तो कभी भी पाये ऐसा नहीं हो सकता। इस प्रकरणको मद्देनजर रखकर रूपादिमत्ता व मूर्तिकतामें भेद भी है, यह समझा जा सकता है। रूपादिमत्ताका अर्थ तो स्पष्ट ही है, मूर्तिकता यह अर्थ भी सम्भव है कि जहाँ दो या अनेक पदार्थ संयुक्त होकर एक पिण्डरूपमें आ सकते हैं, उस शक्तिको मूर्तिकता कहते हैं।

जीवमें चेतनत्व पाया जाता है। द्रव्यका स्वरूप है, जिसको पहिचाने बिना धर्मका स्वरूप नहीं पहिचाना जा सकता।

गुण जाने जाते हैं, लाये नहीं जाते—देखना यह है कि वह गुण कौनसे हैं जो सभीमें पाये जाते हैं, और वह गुण कौनसे हैं? जो प्रतिनियत द्रव्यमें पाये जाते हैं। ये गुण कहींसे रखे नहीं गये, वह सब द्रव्योंमें व प्रतिनियत द्रव्योंमें जुड़े-जुड़े हैं। एक मनुष्यमें किसीकी अपेक्षासे पिताका नाता है, किसीकी अपेक्षासे पुत्रका, किसीकी अपेक्षासे मामा, भानजा, काका, बाबा, भाई, बहनोई, साला, भतीजा एवं फूफाके अनेक नाते हैं। लेकिन उसके लिये पितृत्व धर्म लग गया हो सो बात नहीं, इस तरह पुत्रत्व आदि धर्म भी नहीं हैं। नहीं पितापनका जुदा हिस्सा होना चाहिये, पुत्रपनका भिन्न हाथ आदि तथा चाचा, ताऊ, भानजे आदिके जुड़े-जुड़े हाथ पैर, धड़ आदि होना चाहिए, यह बात तो पाई नहीं जाती। यह सब भिन्न दृष्टिसे माननेका ही अन्तर है, उदाहरण मात्र हैं। जब हम द्रव्यपर दृष्टि डालते हैं तो विशेषतायें ज्ञात होती हैं। पर्यायें सहित जो हो वह आयत अर्थात् लम्बाईपनका बोध कराती हैं। काल-भेदसे होने वाली चीज आयत विशेषसे देखी जाती है। द्रव्यकी पर्याय दो तरहकी होती हैं—(१) समानजातीय, (१) असमानजातीय। गुणपर्यायके भी दो भेद होते हैं—(१) स्वभाव, (२) विभाव। जो सब गुण हैं उन्हींका नाम पर्याय है। कोई कहे द्रव्य यह है, गुण यह है,

पर्याय यह मैं तो भैया इस तरह भिन्न-भिन्न नहीं समझना चाहिए। लक्ष्य, लक्षणका भेद है, किन्तु प्रदेशका भेद नहीं है। उत्पादादि यद्यपि प्रदेश भेदको प्राप्त नहीं है तथापि उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य लक्षण जुड़ा-जुड़ा है। एक-एक करके द्रव्य देखते जाओ, सब द्रव्यकी विशेषतायें हैं ? जैनदर्शनकी बात कितनी परिलक्षित होती है। सर्वप्रथम सर्वज्ञदेवके शासनमें द्रव्योंके स्वरूपका वर्णन है व उत्कृष्टरूपमें इसकी जैनधर्ममें विशेषता है, उसे गणधरने स्पष्ट बताया कि उस वस्तुस्वरूप तत्त्वको पूर्वाचार्यों श्रुतकेवलियोंने उसे ग्रहण किया, तत्पश्चात् उसी परम्पराकी धाराको अन्य आचार्योंने प्रवाहित किया। पाप पांच, तत्त्व सात आदि तत्त्व भी इस स्वरूपाधारमें अत्यंत समीचीन हेयोपादेयादि कर्तव्यमें उतरते हैं। कुछ अन्य पुरुषोंने छल तत्त्व, निग्रहत्व आदि माने हैं कि इन-इन तत्त्वोंकी श्रद्धा करें तो मोक्ष जावे, बैकुण्ठ जावे। उनकी सैद्धांतिक चर्चा बड़ी व्यस्त है कि कोई तत्त्व किसीमें गर्भित है तो कोई किसीमें है।

इन्द्रियज ज्ञान तक ही न रहो—किसीके यहां पृथ्व्यादि चार या पांच तत्त्व तो माने हैं, किन्तु चेतना तत्त्व ही नहीं माना है। इससे पता चलता है, उसका दिमाग इस सम्बंधमें ज्यादा नहीं लगा। उन्हें जलमें रस ही रस मिला और कुछ नहीं तथा पृथ्वीमें केवल गंध ही गंध मिली। आगमें रूप ही रूप मिला, हवामें स्पर्श ही स्पर्श मिला अर्थात् बुद्धिगत विषमता जिसमें हो वह नाना द्रव्य लगा। गंध पृथ्वी तत्त्वमें आ रहा है यह व्यवहाररूपसे यह ठीक कह रहे हैं, किन्तु अविचारित मणियं। यदि पदार्थोंकी भिन्न-भिन्न विशेषतायें मुख्य अनुभूत हैं तो वह अलग-अलग द्रव्य हैं, किन्तु जातिमें ऐसा नहीं। देखो भैया ! पृथ्वी आदि चार एक जातिके हैं, मूर्तकी दृष्टिसे उन्हें तो जुदे-जुदे मानें और चेतन जिसकी जाति बिल्कुल इनसे विलक्षण है उसे माना ही नहीं, किन्तु जैनदर्शनकी वर्णनकी विशेषता सबसे उत्तम है। अजीव द्रव्यमें पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल यह सभी आ जाते हैं। उनमें स्पर्श, रस, रूप समझमें आता है उसी तरह अग्निमें और पृथ्वीमें भी आता है। जलमें भी स्पर्श, रस, गंध तो समझमें आता है, किन्तु रूपमें दिक्कत आ जाती होगी। जो खानेसे अक्सर वायु पैदा होती है तो 'कारण सदृश कार्य' के अनुसार अब कारणमें रूप है तो वायु भी रूपी पैदा होगी या जब भाषामें लाल नीला आदि पानीके अंश उड़कर एक स्थानपर जमा हो जावें तो पुनः वह एकत्रित पानी उसीका मिलेगा, अतः वायुमें रूप है। इसमें चेतना उसमें चेतना है—यह भी दृष्टिभेद है। एक अद्वैतवादी हैं, उन्होंने अद्वैतको लिया है तो उनके विरोधमें वैशेषिक खड़े हो गये, वह कहते हैं पदार्थके टुकड़े-टुकड़े करके दिखा देंगे चूहेके समान और अद्वैतवादी कहते हैं—हाथीकी सूंड समान इन सबको एकमें ही फिट कर देंगे।

अभेदमें भेद कल्पना—आगे विशेषमें आये तो उन्होंने ४ वस्तुयें मानी हैं—

(१) जागृति, (२) सुषुप्ति, (३) अन्तःप्रज्ञ और (४) तुरीयपाद। (१) मोह मरतामें खूब जागृत

रहे, यह जागृति है। (२) बाहरी जगतके कार्योंमें सोया रहे, यह सुषुप्ति है। (३) कुछ भी दृश्य नहीं हो रही, किन्तु अन्तःचेतना विरनास है, वह है अन्तःप्रज्ञ और (४) इन तीनोंसे परे तुरीयपाद हैं। तो (१) जागृति बहिरात्मा, (२) सुषुप्ति हुआ अन्तरात्मा, (३) अन्तःप्रज्ञ परमात्मा और (४) तुरीयपाद हुआ चैतन्यस्वरूप। जागना, सोना एवं बाह्य चेष्टायें तो कुछ नहीं हैं, किन्तु अंतरमें कुछ चल रहा है, वह था अन्तःप्रज्ञ, तुरीयपाद तीनोंसे भिन्न है, चेतनास्वरूप है, अतएव तीनोंके लक्षणोंसे भिन्न है। किसी भी तरह कुछ सत्यकी ओर सभीको आना पड़ता है।

कोई किसीका कुछ नहीं करता, ग्रंथ बना तो वह शब्दोंसे बन गया है। 'शहै रचितं मया न रचितं' यह आचार्यका कहना है। जितना आत्मा है, उसका लक्ष्य लेकर देख लो। घड़ी हाथने नहीं फँकी, वह तो फिक गई। उस हाथके प्रसंगमें वह है सो हो गया। प्रत्येकके यह आत्मा नजर आता है। सब उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यसे सहित है। द्रव्यके स्वरूपमें भेद नहीं है। जाननेके लिए नाम विशेष रख लिए गये। जैसे कहना बड़ी आँख वाला, लम्बे कान वाला साँवला, गोरा आदि। यथार्थमें तुम्हीं अपने पिता, पुत्र हो।

द्रव्य सन्मात्र है, अतः सब एक है—द्रव्यका स्वरूप सत्तामात्र है, यहाँ भी भेददृष्टि कर दी। द्रव्यका सामान्य लक्षण है, इसलिए सत्तामात्रकी बात कही है। जिस कारणसे सत्ता मात्र बात कही, वह किसीके द्वारा बनाई नहीं गई। अव्वल तो अन्य कोई न किसीके पर्याय को बना सकता तथा न द्रव्यकी उत्पत्ति कर सकता। अगर पर्यायको बनी हुई कहो तो मान भी सकते हैं, किन्तु स्वयंकी पर्याय स्वयंके द्वारा यह भी मानना या कहना मात्र है। प्रत्येक द्रव्य अनादिसे चले आ रहे हैं और अनन्त तक रहेंगे। एक निगोदिया जीवके शरीरमें इतने जीव रहते हैं कि जितने अनन्त सिद्ध हो चुके तथा फिर भी उन सिद्ध जीवोंसे अनन्तगुण ही निगोदियासे रहते हैं तथा आगे भी जितने सिद्ध जीव होते रहेंगे तब भी एक निगोदिया शरीर में अनन्तगुण ही बने रहेंगे। मान लो अक्षय राशि ५ करोड़ है और अनन्त राशि ५ है तो अनन्त काल बार ५-५ करके हजार सिद्ध हो जावें तब भी वह राशि अक्षय राशि ही रहेगी। इतनेपर भी वह एक निगोदिया जीवके आश्रित रहने वाले जीव हैं, वे अतीतकालके सिद्धसे अनन्तगुण कहलावेंगे। निगोदिया जीवका शरीर अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र है। जितना चौड़ा एक प्रदेश रहता है, एकसे एक प्रदेश चौड़े तथा एक अंगुल ऊँचे क्षेत्रको उत्सेधांगुल कहते हैं। अवगाहना उसके असंख्यातवें भाग हैं, इतने छोटे शरीरमें अक्षय राशि जीव हैं।

यथार्थज्ञानसे भक्ष्य, अभक्ष्य द्विवेक हो जाना सरल है—जमीकन्द, आलू, गाजर, सकला, मूली, अरबी आदिमें अनन्तानन्त निगोदिया जीव रहते हैं। मनुष्य उन्हें स्थावर जीव समझते हुये भक्षण कर जाते हैं, किन्तु संख्यातों देखो, इसी हेतु वे अक्षय हैं। किसी-किसीको

तो यह विशेषता ही मालूम नहीं गढ़न्तकी । त्यागकी इन कूलतापर विचार करो तो बागनों आलू सकला आदि खानेसे भी अनन्तगुणी हिंसा जलेबी, चाट खानेमें होती है । सिलसिलेसे क्रमवार त्याग करनेके लिये पहले बाजारकी बनी मिठाई (जलेबी, बाबर, इमर्ती, गुलाबजामुन आदि) छोड़ना चाहिये । बाजारकी पूड़ी एवं दूध तक खाने-पीने योग्य नहीं । दूध बड़ी-बड़ी डेरियोंसे दुकानपर आनेमें २ से लेकर ८ घंटे और ज्यादा घंटे तक भी लग जाते हैं, फिर उसे हलवाई लोग गर्म करते हैं । जिसमें मच्छर आदि भी गिर पड़े तो सावधानी नहीं रखी जाती । वह तब जिसका मावा मीठा आदि बनाते, वह जिसका नाम अगर 'मच्छरपाग' रखें तो श्रेष्ठ है, सब अभक्ष्य है । पूड़ीमें भी आटा, पानी, घी बनाने वाले एवं खाने वालोंकी छुवाछूतकी दृष्टिगोचर है ही, किन्तु हिंसा तो देखो उसमें भी मांसका दोष आता है । इनका त्याग तो पहले ही करो, उसके बाद आलू आदि गढ़न्तका त्याग हो । चाहिए । रात्रिभोजन त्याग तो सिरमोर ही होना चाहिए । स्थावर हिंसासे उसकी हिंसा करना अधिक दोष व दुःखोंसे भरी हुई है । अनन्तकालसे यह निगोदिया जीव घूम रहा है तथा अनन्तकाल तक घूमता रहेगा । अनन्त निगोदिया जीव तो अनादिसे आज तक त्रस नहीं हुए ।

सौभाग्यका सदुपयोग करो—हमारा आपका कैसा सौभाग्य है कि पूर्णतया इन्द्रियों की सहजता, उत्तम कुलमें जन्म, उत्तम संगति, जिनवाणीका पठन-पाठन, जिनेन्द्र भगवानका शरण, साधु विद्वानोंका समय-समयपर सुयोग मिलता है । यह सब कुछ होते हुए भी हम विषयान्धतामें फंसे रहे, सुयोगका कुछ लाभ नहीं पाया तो बुरी तरहसे पछाड़ खाकर गिरना होगा । जैसे नीचेसे या थोड़े ऊंचेसे गिरने वालेको कम चोट लगती है और ज्यादा ऊंचेसे गिरने वालेको बेहोशी आती या प्राणान्त तक हो जाता है । इसलिए सोचो कि यदि इस जन्ममें सावधानी न की और बुरे भावोंसे रह-रह मरे तो अधोगति मिलेगी । सो भैया ! अधः पतनके कारणोंसे बचा जाय । इस मोह योद्धाकी जोरावरी देखो कि गृहस्थीमें लड़का, स्त्री या पति, भाई कोई भी विपरीत भी चले तो कहेंगे हमारा अमुक पुत्र है, स्त्री है आदि अनन्ते जीवोंके दुःख देखकर स्वयं संसारके पदार्थोंमें आसक्त न होकर धर्मपूर्वक जीवन व्यतीत किया जाय । इस व्यवस्थित जीवनको देखकर कपूत भी सुमार्गपर आ जावे तो कोई बड़ी बात नहीं । अगर दैवयोगसे निर्धनता भी आ जाय तथा वहाँ भी तत्त्वज्ञान जागृत रहे, धर्ममें मति विधिवत बनी रहे तो वहाँ भी भोजन देने वाले भाई मिल जावेंगे । लेकिन स्वाभिमानके साथ धर्म नहीं खोया जाय । मन्दिरमें भी जिनेन्द्रदेवकी सेवामें तत्पर रहे तो आपको भी आवभगत करने वाले स्थित हो जावेंगे । वह धर्मके मार्गमें धर्मकी निन्दा नहीं होने देंगे । विपत्ति पूर्वभक्तका वरदान है । दुःख बाह्यसमागमका भी नहीं, न भी मिलें तो दुःख नहीं, किन्तु उद्दण्डताका दुःख है जो परपदार्थोंमें रम रहे हैं, अपने आप दुःख बढ़ा रहे हैं ।

अपने उद्धारके सात उपाय—हमारे उद्धारके ७ उपाय हैं, जिन्हें पूजा करनेमें भावना रूपमें भाते हैं—शास्त्राभ्यासो जिनपतिनुतिः संगतिः सर्वदायैः, सद्गुणानां गुण गाण कथा दोषवादे च मौनम् ॥ सर्वस्यापि प्रियहित वचो, भावना चात्मतत्त्वे, सम्पद्यन्तां मम भव भवे यावदेतेऽपवर्गः ॥ मुझे सातकी संख्यासे बड़ा प्रेम है । इस पूजनमें भी सात बातें हैं । सात ही तत्त्व होते हैं । सप्तभंगी न्याय तो जैनधर्मके प्राण हैं । मुझे ये सात बातें भव भवमें मिलीं कब तक जब तक अपवर्ग न हो जाय । अन्तमें अपवर्ग शब्द आया है । वर्ग अर्थात् धर्म अर्थ, काम जब तक इन त्रिवर्गोंसे न छूट जाऊं तब तक सात बातें बनी रहो । कोई सोचे एकेन्द्रिय होनेसे धर्म अर्थ काम नहीं करना पड़ेगा, किन्तु वहां भी तो इन्द्रिय विषयोंका चाहना है, किन्तु वह शक्ति ही नहीं मिली जो प्रकट बता सके । वह अपने अपने कार्य—पानी खींचना, वायु लेना आदि कार्यमें संलग्न रहते हैं । वे कमाते भी हैं और भोगते भी हैं ।

भावित सात विधेयमें प्रथम शास्त्राभ्यास—जिसके निमित्तसे आत्मा शासित हो जाती है याने सीख मिल जाती है उसे शास्त्र कहते हैं । मेरे शास्त्रका अभ्यास बना रहे । स्वाध्यायके चार भेद बताये हैं—बांचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा और आम्नाय । बांचना श्रद्धासे बाँचते जा रहे हैं, गुण भी ग्रहण करते जा रहे हैं, तत्त्वकी बात समझमें आ रही है । पृच्छना—पूछना भी स्वाध्याय है । उसकी इतनी निर्मल दृष्टि होती है कि मोक्षमार्गमें कोई रोड़ा लग रहा है उसे हटानेके लिए वह शंका करके समाधान पाता है । अनुप्रेक्षा—बार बार प्रकृष्ट दक्षिण करना, चिन्तवन करना जो पढ़कर सोचा समझा है । तत्त्वोंकी बार बार भावना करना । आम्नाय—प्रतिदिन स्तोत्र सहस्र नाम आदिका पाठ करना, धोकर, मनन करना आम्नाय है । यह भगवानका उपदेश है जिसपर चलनेसे आत्मशक्ति प्रकाशमें आ सकती है । जैसे बन्दर पहले चना मुंहमें खूब भर लेता है, फिर निकाल निकालकर स्वादसे चबा चबाकर खाता है । उसी तरह पाठको कण्ठस्थ करके फिर जब चाहे उसीका अप्रतिहत स्वाद लो । इस आम्नायसे भी बड़ा लाभ है । धर्मोपदेशमें अक्सर कहा जाता है, इसमें घमंड आ जाता है, किन्तु यह नहीं, दूसरोंको कहनेसे क्या होता है ? अगर उपदेशमें यह मान वाली दृष्टि रहे तो जरूर बेकार है, किन्तु वहाँ तो भगवानकी वाणी व्यवस्थित कहनी पड़ती है । साथमें कहनेके माफिक चर्चा स्वयंकी रखता है । उपदेश देनेमें बोलता जाता है, सोचता जाता है, यह योग्यता उसमें कार्य कर रही है तो धर्मोपदेश भी स्वयंके हितका साधन है । सुनना व उपदेश देना भी स्वाध्याय है ।

जिनपतिनुति—जिनेन्द्र भगवानकी उत्तम-उत्तम काव्यों द्वारा स्तुति करना । लेकिन जिनेन्द्र भगवानकी स्तुतिमें तो मनो चावल, बादाम, गिरी चढ़ा देंगे, किन्तु भगवानके लघुनन्दन

मुनि, त्यागी, ब्रह्मचारी एवं ब्रती साधर्मि श्रावक भाईकी खबर तक नहीं पूछेंगे। लोकव्यवहार में अगर हमें आपसे प्रेम होगा तो आपके बच्चेको भी खिला दिया तो खुश हो जाते हो। उसी तरह जिनेंद्र भगवानकी स्तुतिमें भी तो जिन वंदनोंका ध्यान रखना कारण समझो। भैया ! जिनदर्शन करके आत्मतत्त्वकी भावना बढ़ करो व संयममें बढ़ो। शिखरजी गये तो आलू छोड़ दिये, किन्तु इसके साथ ही मुख्य वया छोड़ना चाहिए सो नहीं छोड़ते। शास्त्राभ्यास रहे, जिनेंद्र भगवानके चरणोंमें नमस्कार रहे, बड़े अभक्ष्यका तो सर्वथा त्याग रहे, जिसके द्वारा हम विषय कषाय घटावें, यह शिखरजी की वन्दनाका प्रभाव होना चाहिए। विकल्पके दुःख मेटनेको कौन समर्थ है ? खुदकी रवभावदृष्टि रहे या उपयोगमें अरहंत सिद्धका ध्यान रहे तो भैया ! शरण मिलेगा। भगवान आपके चरणोंका ध्यान, स्मरण करते हुए मृत्यु हो तो मरण भी सफल है। उस समयमें जो बात बनी वह अगले जन्ममें भी चलेगी। जैसे बचपनके संस्कार जीवनभर अटल छाप डाले रहते हैं। भक्त पूजा करके कहता है—आबा-त्याज्जिनदेव देव भवतः श्रीपादयोः सेवया, सेवासक्त विनयकल्पलतया कालोद्य यावद्गतः। त्वां तरयाः फलमर्थये तदधुनां प्राणप्रमाणहोत्वन्नाम प्रतिबद्धवर्णपठने कण्ठोऽस्त्वकुण्ठो मम।

हे भगवन ! बचपनसे लेकर अब तक आपके चरणोंकी सेवा की, वह सेवा कल्पव्रता के समान है। आज तक हे भगवन ! आपकी सेवामें समय बिताया। अब आ जायें वरदान मांगता हूं कि जब मेरा मृत्युका अंतिम समय आवे तो मेरा कण्ठ तुम्हारे नामके वर्णोंके पढ़ने में कण्ठ अकुण्ठ रहे व चित्त भावसे भर जावे। जिन और सिद्ध—ये दो अक्षर जो हैं वे मरते समय कण्ठमें कहनेसे रुक न जावें। यह कहा जाता है कि शुभ क्रियाओंमें आसक्ति मानी, इसलिए भवबन्धन बढ़ रहा है, किन्तु यह एक बार भी नहीं कहता कि मैं अब तक अशुभ क्रियाओंमें सना रहा, इससे क्रनादिसे भ्रमण कर रहा हूं व भवबन्धन दृढ़ होते जा रहे हैं। जैसे योद्धा युद्धमें (लड़ाईमें) चारों ओरसे सावधान रहता है कि आगे पीछे अगल-बगलसे कोई वार न कर देवे, बचाव रखता है उसी तरह दोनों क्रियायें (अशुभ और शुभ) छोड़े।

हे जिनेंद्रदेव ! तेरी भक्तिमें कमाल है। जो तेरी भक्ति करता है, वहाँ विषयकषाय तो ठहरता नहीं है, फिर भी आपके स्वरूपका स्मरण करनेसे आपके ही अनुरूप बन जाते हैं। आपका स्वरूप उपयोगमें आते ही द्रव्य स्वभावको अभेददृष्टिसे जानने लगता हूं। अभेददृष्टिसे जहाँ सबको जान पाया तो वहाँ द्रव्यदृष्टि स्वयं आत्मा पड़ जायगी। अगर पुण्य कर्मसे इन्द्र धरणेन्द्र भी हो गये तो वहाँ कोई कमाल नहीं है। लेकिन जिनेंद्र भगवानकी भक्तिमें महान कमाल है जो कि अनेक जन्म सन्ततिंको छेदनेमें समर्थ है। वह यह तत्त्वज्ञान ही तो है।

संगतिः सर्वदायैः—अर्थात् सदैव आर्योंके साथ संगति रहे। श्रेष्ठ पुष्टोंको आर्य कहते हैं, जिनके धार्मिक संस्कार बढ़े-चढ़े होवें, जो रत्नत्रयके धारी हों। दुःख विकल्पका है, विकल्पों

का जिनमें संस्कार भरा है उनके पल्ले दुःख ही पड़ेगा। जो यथायोग्य धर्म करते हैं उनकी संगतिमें निर्विकल्पता ही आती है। बड़े महाराजजी (श्री ध्रु० गणेशप्रसादजी वर्णी) कहा करते हैं—अधिक दुःखियोंका सहवास निरन्तर नहीं करना चाहिए। कभी-कभी रहनेसे तो वह औषधिका काम करता है। हमेशा रहनेसे दुःख संतति ही बढ़ेगी। सम्यग्दृष्टि पुरुष हो, उसकी संगतिसे शान्ति एवं कुछ शिक्षा मिल सकती है। धर्मात्मा पुरुष प्रत्येक ग्राममें या प्रायः मिल ही जाते, न तो दूसरी जगह खोजना चाहिए तथा शहरोंमें १०-५ मिल ही जावेंगे। उनसे अपना धार्मिक चर्चाविषयक मेल बढ़ाकर कल्याणके मार्गमें चला जाय। नीतिकार कहते हैं—‘कीटोऽपि सुमनः संगदादरोहति संता शिरः’ कीड़ा भी फूलकी संगतिसे मनुष्योंके सिरपर शोभा पाता है। रामायणमें कहा है कि रावणकी होनहार अच्छी थी जो रामचन्द्रजी के बाणसे उसकी मृत्यु हुई। जैनोंके यहाँ लक्ष्मणके द्वारा मरा बताया है। बड़े पुरुषोंका गुस्सा भी भलेके लिए बताया गया है। हमने तो अन्दाज भी किया है, बड़े महाराजजी जिसपर भी जितने अधिक गुस्सा होते हैं उसका उतना भला ही हुआ है, क्योंकि बादमें वह पश्चात्ताप करते हैं और गुस्सेके साथ व्यक्तिको अच्छे-अच्छे साधन भी जुटा देते हैं। आर्योंकी संगतिमें धक्के भी अच्छे हैं, वहाँ संभलनेका सुअवसर हाथ लगता है। मूर्खोंकी संगतिमें वह आसन लिए भी सिर पर बैठावें तो दुःख ही दुःख है। जब तक ऐसे पुरुषोंका सुयोग मिले लाभ लिया जावे।

सद्वृत्तानां गुणगणकथा—जिनके गुण एवं चरित्र अच्छा हो, उनकी कथा जीभपर बनी रहे। दोष गानेमें क्या फायदा मिलेगा? अगर किसीके दोषोंका वर्णन किया तो पहले तो अपने ही उन दोषोंसे भिड़ गये तभी तो अनुभव कर पाया। दोषोंसे जहाँ रुचि हट जावेगी वह क्यों उनको देखेगा? उसके लिए दोष भी गुण बनकर आवेंगे, जिनसे पग-पगपर शिक्षा ग्रहण करेगा। सोचेगा यह दोष मुझमें भी कमी थे तभी तो मैं इनसे अधिक हेय माना जाता था। अब मेरे दोष कुछ अंशोंमें भी निकल सके हों तो अब मैं इनमें क्यों पड़ूँ? अब तो मेरे कर्णोंमें सत्पुरुषोंकी कथाकी आवाज आती रहे तथा मैं भी उन्हींके सद्गुणों एवं सद्कार्योंका बखान इस विनश्वर जिह्वा इन्द्रियसे करता रहूँ, यही मेरा बड़ा सौभाग्य है। जिसकी गुणोंमें प्रीति होती है वह नियमसे अपनेमें उतारकर आदर्श जीवन स्थापित करता है। गृहस्थावस्था में भी श्री रामचन्द्रजी के गुणगान करनेमें बड़े-बड़े राजा लोग अपनेको कृतार्थ मानते थे।

दोषवादे च मौनम्—गुणगान करनेके बाद फिर आता है कि दोषोंको कहनेमें मौन धारण करूँ, क्योंकि दोष वर्णन करनेमें समय बरबाद किया जाना और दोषोंको बखानेसे उसकी आदत खोटी बहिम्न्यत की तथा स्वयं संक्लेशित हुए। बादमें हमारे द्वारा दोषोंको सुनने वाले अथवा देखने वालेको हम निमित्त हो गये, जिससे दोनोंमें दुःखकी बढ़ोतरी हुई। अगर तुम्हें विश्वास हो कि दोषोंको बतानेमें कोई रुधार हो सकता है तो एकान्तमें जाकर कह देना

चाहिए। दस आदमियोंके दोष वहीकी जरूरत क्या है? ८-१० बार समझा लिया, इतेपर भी न माने उसीके भरोसे छोड़ दो या समाजके सामने प्रगट कर दो, जिससे सम्भव होगा तो लज्जित होकर छोड़ देगा। हमेशा दोष ही दोषका वर्णन करनेसे आखिर लाभ ही क्या मिलता है? प्रेमरूपी अमृत सिंचित अमोघ वचन महौषधिका कार्य कर सकते हैं। तो हम गुणवर्णनमें सूर और दोष कहनेमें निबल हो जावें।

सर्वस्यापि प्रियहित वचः—सभीके प्रति चाहे वह मूर्ख हो, सज्जन हो, बाल, युवा, वृद्ध कैसा ही हो, कल्याण करने वाले प्रेमभरे वचन बोले जावें। हितकारी वचन वे हैं जो विषयकषायसे बचाकर सुपथमें लगावें। राष्ट्रकथा, आहारकथा, स्त्रीकथा और देशकथाएँ तो जीवनभर खूब कीं, अब उनको तिलाञ्जलि देकर धर्मकथा की जावे तथा वह नम्रता युक्त सरल परिणामोंसे व्यक्त की जावे। अग्निमें घी डालनेसे वह प्रदीप्त (भड़कती) ही होती है। उसी तरह अप्रिय, कठोर, निन्दक, कलहकारी वचन कहनेसे एवं विषयोंको पोषने वाली कथाओंसे राग और द्वेष ही बढ़ता है।

भावना चात्मतत्त्वे—आत्मतत्त्वमें भावना रहे। आत्माका त्रैकालिक स्वभावका मान होना अपना-अपना रास्ता सुगम बना लेना है। शास्त्रका अभ्याससे शुरूवात होकर आत्मतत्त्व बढ़ानेकी भावनामें समाप्ति हो रही है। होना तो यह चाहिये कि आत्मतत्त्व जागृत हो जाये तो उसीमें तन्मय होना चाहिए, किन्तु कोई त्रुटि फिरसे प्रवेश करती है तो वही शास्त्र अभ्याससे शुरूवात करना चाहिये, जैसे कि २४ घंटे बाद पुनः भोजन करनेकी जरूरत होती है। इस भोजनका स्वाद अनुपमेय रहेगा। जन्म-जन्ममें ये बातें मिलती रहें जब तक मोक्ष नहीं मिलता है। देव हो गये तो वहाँ भी शास्त्रसभा होती है, वहाँका प्रबन्ध बिलक्षण रहता है। इन्द्रको द्वादशाङ्ग का ज्ञान होता है, वह वत्ता होता है तथा वृहस्पति जैसे वत्तत्वसहायक एवं अन्य देव तो सभामें सम्मिलित होते हैं। लेकिन वहाँ चार गुणस्थान होनेसे व्रत नहीं पाल सकते। अकलंकदेव, विधानन्दि, समंतभद्राचार्य आदि अगर देव हुए होंगे तो उन्हें भी तो राग-रंगके ठाठ-बाटमें सम्मिलित होकर हाँ में हाँ भरनी पड़ती होगी। जो ब्रह्मर्षि हुए होंगे, उन्हें जरूर इन सबसे छुट्टी मिल चुकी। तो आत्मतत्त्वकी भावना भव-भवमें मिले, यही शरण चाहते हैं। मोह जगतमें पदार्थोंकी होड़सी मची हुई है। अगर इस भवमें उन्हें पापकी होड़ है तो अगले भवमें हो सकता है कि शून्य ही मिले और इस भवमें उनके प्रति मुख मोड़ दिया जावे तो संभवतः अगले भवमें महान वैभवके अधिकारी हो जावो। जैसे बच्चा ठिनकता हुआ आया और उसे एक नया पंसा देने लगे। अगर वह उसे नहीं लेवे तो इकत्री भी मिल सकती है, किन्तु उसीमें संतुष्ट हो गया तो उसने इकत्री पानेका अधिकार खो दिया और कह दिया 'जावो बेटा खेलो' इसी तरह आप इन्हींमें रम गये तो फिर हम मोक्षमार्गकी मांग एवं स्वर्गके

वैभवको ठुकरा चुके समझ लो। इसके विपरीत इससे आगे पाना है तो इन पदार्थोंके प्रति मुख मोड़कर आत्महितके कार्योंमें लग जावे। जैसे किसानका लक्ष्य गेहूं पैदा करना होता है, और भूसा तो स्वतः ही पैदा हो जाता है उसी तरह ज्ञानीके लक्ष्यमें है, मोक्ष मिलना चाहिए, किन्तु अन्य वैभव तो स्वतः ही मिल सकते हैं। परमेश्वर जो सबका पिता है, उसके संरक्षणमें पादानुसरणमें अन्य ही विभूति मिलेगी। परिणामोंमें निर्मलता आ गई, परपदार्थोंसे सहज उपेक्षा आ गई तो इससे ज्यादा हमें चाहिए क्या? वहीं तो आनन्दकी वर्षा होगी जो सच्चे सुखकी प्रदाता है। निमित्तनैमित्तिक सम्बंध चलता ही रहता। अनन्ते विस्मयोपचय पड़े हैं, वहाँ छुपकर जावोगे? कषायोंका तो तत्क्षण कर्मबंध हो ही जावेगा। यहाँ किसीको सहूलियत नहीं। आत्मभावमें योग दिया तो कर्मोंका संवर और निर्जरा होगी, कर्म अपना स्थान छोड़कर भाग खड़े होंगे। कर्म कैसे भरते हैं? यही तो शास्त्रमें लिखा है। परिणाम विशुद्ध बनने लगता है तो कर्म निमित्तनैमित्तिक सम्बंधको पाकर कम होने लगते हैं। फिर भी सबमें आत्मतत्त्वकी मुख्यता है। अपनी बात अपनेपर ही तो जंचती है, दूसरेके प्रति दृष्टि रखो या सोचो कि यह हमारा कुछ कर देंगे, यह पराधीन वृत्ति उत्पन्नमें ही डालती जावेगी।

द्रव्यका सब कुछ उसी द्रव्यमें दिखता—प्रत्येक द्रव्य स्वरसतः परिपूर्ण है, क्योंकि वह है। जो है वह स्वतःसिद्ध व स्वतः परिपूर्ण है। कोई अधूरा है, वह वाक्य ही गलत है। है वह अधूरा जिनका परस्पर विरोध है। यहाँ द्रव्यका प्रकरण चल रहा है तो यह नहीं समझ लेना कि द्रव्य उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य जैसा होनेसे द्रव्यमें ही सब कुछ आ जाता है। वस्त्रमें अनेक रूप दिखते हैं। मैल जमा होनेसे मैला था, मसाला लगानेसे वह साफ हो गया, वह वस्त्र उत्पादसे लक्ष्यमें आ गया है, सफेदी अनेके रूपसे लक्षित हो रहा, साथ ही मैलके व्ययरूपसे भी लक्षित हो रहा है, साथ ही वस्त्रमात्रसे भी लक्षित हो सकता है, वह एक ओर लक्षित होता है उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य इन तीनरूपसे। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इन तीनोंका स्वरूप परस्पर विरुद्ध है तो भी तीनों एक साथ द्रव्यमें रहते हैं। यह कर्म स्याद्वादविद्याके अधिकारी पहिचानते हैं।

उत्पाद, व्यय व ध्रौव्यका सौहार्द—द्रव्य उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य कर सहित है। यह शुरूसे ही उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यका आश्रय करता है। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यका आश्रय करता हुआ द्रव्य है। जहाँ भी भेददृष्टि लगावो उत्पाद व्ययका आश्रय करता है, व्यय उत्पादका आश्रय करता है, उत्पाद, व्यय दोनों द्रव्यका आश्रय करते हैं। सबका निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है। जैसे वस्त्रकी मलिन अवस्था व्यय हो गई तो उत्पादका आलम्बन हो गया। अर्थात् निर्मलताने स्वच्छताका आलम्बन किया है, स्वच्छताने निर्मलताका आलम्बन किया है। स्वच्छताका उत्पाद है, निर्मलताका व्यय है। पूर्वकी अवस्थाका त्याग कर दिया है तथा

अन्तरीय अवस्था धारण की है। बहिरङ्ग साधनमें कर्ता व. में अन्तर है। अन्तरङ्ग साधनमें कर्ता और कर्ममें अन्तर नहीं है। आत्मा ही कर्ता है, आत्मा ही कर्म है। द्रव्यको प्राप्त करके पर्याय प्राप्त हुई है और पर्यायके आश्रय द्रव्य रहता है। जैनसिद्धान्तका यह नियम अटल है कि कर्ता कर्म बनता नहीं है तथा निमित्तनैमित्तिक मिटता नहीं। द्रव्यमें इतनी विभावादि पर्याय होना ही है, अतः होती है। निरपेक्षतया या बिना निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धके सो भी नहीं, उत्पाद निमित्तने किया जाने कुछ कर दिया सो भी नहीं है। वैज्ञानिक भी इस सिद्धान्तको मानते होंगे, या वे विज्ञानके द्वारा सिद्ध करके देख सकते हैं। प्रत्येक कार्य अपने अपनेमें चल रहा है। विभावरूपसे परिणमने वालेकी ऐसी परिणति है वह अपना कार्य करनेमें तत्पर रहता है। वह अन्यको निमित्त पाकर अन्यरूप परिणम जाता है, बाह्य पदार्थका निमित्त पाकर विभाव होता है। जैसे मुझे सबके सामने बैठना था सो चौकीपर आकर बैठ गया, किन्तु चौकीने आकर मुझे यहां नहीं बुलाया या चौकीने अपने गुण नहीं दिये। करणानु-योगके शास्त्रोंमें देखो, कर्मोंके उदयको पाकर राग होता है। ऐसा भी नहीं है कि ऐसा होना ही था। उचित सन्निधानके होनेपर नाना अवस्थायें हैं। जिसको ऐसा भ्रम है कि स्वभावसे मात्र ऐसा होता है या हो रहा है उसका ऊपर कहे अनुसार भ्रम दूर हो जाना चाहिए। उत्पन्न होनेमें दूसरेके आलम्बनकी कोई बात नहीं है। निमित्तभूत पदार्थ अपने ढंगका है, उसमें किसीकी करतूत या चतुराई नहीं है या यों कह लो—परिणमन सामान्य तो निरपेक्षतया होता है, किन्तु परिणामकी जो कुछ विशिष्टता है, जिसमें विविधता आ जाती है वह औपाधिक है। इतनेपर वह उपाधिका परिणमन नहीं है।

निमित्त और आश्रय दो वस्तुयें हैं—जगतमें हम जिनको सहसा निमित्त कह देते हैं वह आश्रय है। निमित्त पड़ने वाले तो कर्म हैं। आश्रयमें तो मर्जी एवं गैर मर्जी दोनों चलती हैं, किन्तु निमित्तमें नहीं चलती हैं। चौकी पड़ी रहे उसका आश्रय न ले तो वह थोड़ी हमें सहारा देनेको आ जायगी। कर्मका उदय आया, हमें वैसा करना पड़ता है। फर्क यह है उदय के समयके पहले जघन्यसे जघन्य या अन्तर्मुहूर्त आदि पहिले गुण संक्रमण, विध्यातसंक्रमण या स्तिबुकसंक्रमण कर देता है, सो स्थूलरूपसे यह कह दिया जा सकता है कि कर्मोदयको भी ज्ञानी टाल देता है, स्तिबुकसंक्रमण एक एक ही समयका होता है। यद्यपि निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध अटल हैं तो भी कर्ता कर्म सम्बन्ध भिन्न-भिन्न द्रव्योंमें कभी भी नहीं हो सकता, यह बात भी अटल है। जैनदर्शनके ये दो सिद्धान्त अटल हैं। निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धका खण्डन नहीं व कर्ता कर्म सम्बन्धका मण्डन नहीं। यही यहाँ सूचित किया गया कि समुचित बहिरङ्ग साधनका सन्निधान हो व स्वरूपके कर्तव्य व करणत्वकी सामर्थ्य वाला उपादान है तो वहाँ वैसा परिणमन उत्पन्न होता है। सो द्रव्य ही उत्पाद द्वारा लक्ष्यमें लिया है। कहीं

द्रव्य तो भिन्न हो व उत्पाद आदि भिन्न हो, ऐसा नहीं है और न होगा। जिस समय यह ज्ञानी जीव स्वमें परिणामन करेगा उस समय रागादिक नहीं होंगे। अविरत सम्यग्दृष्टि जीव ध्यानमें हैं तो उसके अप्रत्याख्यानावरणका उदय है तथा तज्जनित चारित्रगुणका विकार भी चल रहा है, परंतु उपयोग स्वकी ओर है, अतः कषाय उपयोगमें नहीं आ पाती। फिर भी निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध तो चल ही रहा है। वहाँ भी देखो कि कर्म आत्माको नहीं परिणमा रहा और न आत्मा कर्मको परिणमा रहा है। अतः राग यहाँ भी नहीं है। यह बात भी वहाँ नहीं चल सकती है कि हमारी मर्जी होगी तो राग करेंगे और मर्जी नहीं होगी तो नहीं करेंगे। यह बात निमित्तनैमित्तिकके सम्बन्धमें नहीं चलती है। हमारी मर्जी होगी तो अमुक मुहल्लेमें जावेंगे, नहीं तो न भी जावेंगे तथा मर्जी अनुसार चित्र खिचावेंगे अथवा नहीं खिचावेंगे। आश्रयोंमें तो हो जाता है। अचेतनका भी सम्बन्ध देखो जहां द्रव्यके साथ योग्य का सम्बन्ध है वहाँ कार्य उत्पाद, व्ययरूप चलता ही रहेगा। जैसे अग्निपर बटलोईमें पानी गर्म होनेको रखा और प्रतिबन्धक कारणका भी अभाव है। तो वहां पानी कहे कि हमें गर्म नहीं होना है तो क्या यह संभव है तथा वहां अग्निका गुण पानीमें प्रवेश कर गया हो सो भी बात नहीं है। जलने ही स्वरसतः बिना निमित्त पाये अपनी उष्ण अवस्था बना ली हो सो भी बात नहीं है।

स्वरूपका घात मत करो—उचित बहिरङ्ग साधन मौजूद हों तो द्रव्य अपना समय पाकर प्रति समय पर्याय बदलता रहता है, वह अपने कर्ता कर्मकी सामर्थ्यसे पैदा होता है। वह द्रव्य उत्पादके द्वारा लक्ष्यमें आ रहा है। अंगुलीकी सीधी पर्याय अंगुलीसे भिन्न नहीं है। शुद्ध अंगुली वह जो हमेशा एकसी रहे सो यह बात पाई जाती नहीं है। जो अनेक तरहकी हो गई यह अशुद्ध है या उसे अशुद्ध पर्याय कहते हैं। भगवानको हम शुद्ध और अशुद्ध दृष्टि दोनों से देख सकते हैं। भगवान आप केवलज्ञानके धनी हों। आपमें अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान है इत्यादि प्रकारसे कहना अशुद्ध दृष्टिसे देखना है यह अशुद्ध विभाव वाली नहीं है। पर्यायपर दृष्टि भर देना अशुद्ध दृष्टि है। हाँ पर्यायदृष्टिमें स्वस्वरूपमें स्थिर होना या उनकी शुद्ध चेतन आत्माका अपनेमें अनुभव करना शुद्ध दृष्टि है। द्रव्यदृष्टिसे चेतनामात्रकी दृष्टि शुद्ध है। मान लो विवाह हो रहा है और वहाँ औरतें गाने लगें—‘राजा राणा छत्रपति हाथिनके असवार। मरना सबको एक दिन अपनी अपनी बार ॥’ और मन्दिरमें विवाहके गीत कहने लगें तो ये बातें अवसरके अनुपयुक्त हैं। इसी तरह शुद्ध दृष्टि द्रव्यदृष्टिको देखना है और पर्यायदृष्टिसे शुद्ध देखना की बात करें तो द्रव्यका मर्म अज्ञात रहेगा। पर्यायका शुद्ध या अशुद्ध उसके वर्णन होनेसे यथार्थ ज्ञान नहीं हो सकेगा। द्रव्यत्वको यहाँ पर्यायकी दृष्टिको अशुद्ध दृष्टि कहा है। वर्णन करना केवलज्ञान है, यह पर्यायदृष्टि है, यहाँपर सूक्ष्मदृष्टिसे निरपेक्ष नित्य स्वको देखना मात्र

है। अपने लिए शुद्धदृष्टिसे देखना पर्यायसे भी शुद्ध हूँ ऐसा मानकर अभक्ष भक्षण करेंगे, चाय पी लेंगे बाजारकी, जब जहाँ जो मिला सो खा लेंगे, सो कुपथ है। फिर भी कहेंगे आत्मा तो शुद्ध है आत्मा तो नहीं खाती है, शरीर खाता है और कहेंगे हम भी पूर्ण शुद्ध हैं, आत्मामें विकार नहीं है। यह कहने वाले वही लटोरे घसीटे हैं, जो विषयोंमें पुनः-पुनः लोटकर संसार-सागरमें घसीटते रहते हैं। भैया ! द्रव्यदृष्टिकी शुद्धता बताई गई है, वहाँ आपका शुद्ध द्रव्य तो प्रकट नहीं हुआ है, उसपर तो कभी मनो मल लदा हुआ है, जिसको धोनेके लिए काफी समय लगेगा और काफी मसाला खर्च करना होगा याने विशेष उपयोग लगाना होगा। वर्तमानमें हम जिसे भोग रहे हैं, उसका भोग करते हुए वहें, 'हम तो शुद्ध हैं, हम तो शुद्ध हैं' तो यह समयसारका उपदेश नहीं है।

द्रव्य शुद्धिका अर्थ निरपेक्ष स्वभाव है—उस शुद्धके मायने है अन्य सबसे विविक्त। जैसा बाजारमें शुद्ध दूध बिकता है, उसका लक्ष्य यह नहीं कि यह त्यागियोंके योग्य शुद्ध है, किन्तु मतलब यह है कि इस दूधमें पानी मिलाया नहीं और उसका सार (मक्खन) निकाला नहीं है। उसी तरह आत्मामें बाहरी वस्तु कुछ मिलाई नहीं है और उसका शक्ति सर्वस्व कहीं गया नहीं है। इसको सुनकर ही कोई संसारी जीव पर्यायमें ही अपनेको शुद्ध मान लेवे तो अपने सत्पथका निरोध करता है। द्रव्यपर शुद्ध दृष्टि रखनेका मतलब यह है कि द्रव्य स्वरूपतः अपनी शक्तियोंसे तन्मय है व सबसे विविक्त है एवं स्वरसतः स्वच्छ है। इसका दर्शन, आश्रय करनेसे मलिनता दूर हो सकती है। उत्पाद जो हुआ है वह द्रव्यसे भिन्न नहीं है। स्वभावसे ही उस रूप बन रहा है। द्रव्य पर्यायका आश्रय लेता है, पर्याय द्रव्यका आश्रय लेती है। पर्याय द्रव्य और गुणोंका आश्रय लेती है, गुण द्रव्यका और पर्यायका आश्रय लेते हैं। पर्याय गुणोंका आश्रय लेती है। गुण पर्यायका आलम्बन लेते हैं। इतनेपर कहें कि गुण पर्याय न हों, हम तो अकेले ही हैं और अकेले ही रह जावेंगे तथा द्रव्य कहें हम तो अकेले ही पैदा हुए हैं, पर्यायका आश्रय नहीं है तो यह कहना ठीक नहीं बनता और न ऐसा है। निर्मल कपड़ा और स्वच्छ कपड़ामें अन्तर है या नहीं ? दस्त्र निर्मल है यह तो व्ययके द्वारा लक्ष्यमें आया और स्वच्छ वस्त्र यह उत्पादमें आया है। लेकिन स्कूलोंमें पढ़ाया जाता है कि निर्मल याने स्वच्छ। इसलिये बुद्धि इसमें भेद माननेको तैयार नहीं होती है। पर्याय दोनोंकी एक है निर्मल या स्वच्छ कह सकते हैं, किन्तु तात्त्विक मूल अर्थपर ध्यान देना चाहिए। कभी उत्पादसे, कभी व्ययसे पदार्थ लक्ष्यमें आते हैं, किन्तु दोनों पृथक्-पृथक् नहीं हैं। उनके द्वारा स्वरूप भेदको प्राप्त नहीं होता है। द्रव्यकी मुख्यता बरके देखें तो ध्रौव्यसे देखें और पर्यायसे देखें तो उत्पादसे लक्ष्यमें आ रहे हैं व कभी व्ययसे लक्ष्यमें आ रहे हैं।

यथार्थ बोधके बिना सब अंधेरा है—द्रव्यका लक्षण चल रहा है । द्रव्यका लक्षण जानना इसलिए आवश्यक है कि उसके बिना सब अंधेरा है । जो तत्त्वोंको पदार्थ रूपसे देखे तथा उनका ज्ञान करे इसके लिए द्रव्यका सही सही अर्थ जानना आवश्यक है । उत्पाद व्यय ध्रौव्य भिन्न-भिन्न चीजें नहीं हैं, उत्पादसे व्यय लक्ष्यमें आता है, व्ययसे उत्पाद लक्ष्यमें आता है और उत्पाद एवं व्ययसे ध्रौव्य लक्ष्यमें आता है और गुण इन सबकी विशेषतायें हैं । जैसे वस्त्रका निर्मल और स्वच्छ होना तथा उसका मुख्य मेटर स्थिर रहना एक साथ है और लक्ष्यमें भी इनसे वस्त्र आता है । निर्मलके द्वारा स्वच्छ जाननेमें आया, स्वच्छतासे निर्मलता जाननेमें आई । उसी तरह द्रव्य भी तीनों द्वारा जाननेमें आता । मलिन अवस्थाका व्यय किया तथा स्वच्छ अवस्थाका उत्पाद किया, यहां उत्पाद व्यय करते हुए भी एक ही समयमें दोनोंमें रहनेमें वाली उत्तरीयत्व अवस्था है । जो एक वस्त्र बना है वह ध्रौव्य है । एकको प्राप्त करता है एकको व्यय करता है, फिर भी द्रव्य मिटता नहीं । नाना रूप परिणम जाता है । यह स्वतः सिद्ध है, वह एक चीज है, जो नाना रूपसे होकर एक रूप चलती है । पूर्व मुखेन जाना यह व्यय हुआ । नाना अवस्थाओंको गौण करता हुआ एक कुछ है तो उसी एकतापर दृष्टि ही जाय तो द्रव्य है । देव गतिका व्यय, मनुष्यगतिका उत्पाद होना यह उत्पाद व्यय दोनोंका चलना जिसमें पाया जावे वह हुआ ध्रौव्य । सदा रहने वाले ध्रौव्यसे द्रव्य ही तो लक्ष्य हुआ । पर्यायदृष्टिमें ये तीनों ही अंश हैं तब द्रव्य इन सबसे भिन्न है, उसका नाश कभी नहीं होता है । शुरूमें उत्पाद व्यय ध्रौव्यका आलम्बन करते जाओ । जो आलम्बन करे वह लक्ष्य हुआ, जिसका आलम्बन किया वह लक्षण बन गया, जिस मुखसे जाननेमें आया वह लक्ष्य रहा तथा बाकीके सब लक्षण हुए । यह तो हुई आयत विशेषकी बात, जो नवीन-नवीन पर्याय द्रव्यमें होती है वह हुई बनना, बिगड़ना और बने रहना की बात । सत् अनन्त गुणात्मक है उनसे व इस त्रिकमें एककी भी कमी आ जावे वह सत् नहीं है । लोकमें भी देखनेमें आता है कि तीनों बातें ये प्रत्येक पदार्थमें पाई जाती हैं और प्रत्येक पदार्थपर ये घटित हो सकती हैं ।

त्रिकाल व्यापी गुण है, क्षणस्थायी पर्याय है—द्रव्य कभी विस्तार विशेष अवस्थासे लक्ष्यमें आता । जैसे आत्मामें ज्ञान दर्शन आदि हैं वह गुण हुए, आत्माकी दशायें तथा सुख दुःख आनन्द यह हुए उनके आयत विशेष । ज्ञानकी शुद्ध गति चारित्रिके साथ है । जो अभ्रव है वह नष्ट हो जाती है एवं होती रहती है, वह गुण हुए आयत विस्तार । द्रव्य गुण पर्यायका स्वरूप जानते निर्णय होना चाहिए कि बना रहना, बिगड़ना बनना कहाँ पाया जाता है या ठीक बैठता है । बना रहना द्रव्यमें पाया जाता है और नष्ट होने वाली पर्याय है उसमें विवक्षावश उत्पाद व्यय चलता है । शब्द गुण, दुःख, स्वप्न, नारक, मनुष्य देव जिसकी ये

अवस्थायें हैं वह द्रव्य है तथा काला पीला सुख दुःख आनन्द आदि ये पर्याय हैं । जो इन्द्रियों को सुहावना लगे उसे सुख कहते हैं । सु अर्थात् सुहावना तथा जो इन्द्रियों को असुहावना लगे उसे दुःख कहते हैं । दुःख अर्थात् दुःभाने असुहावना स्व = इन्द्रियों को जो लगे । आ समन्तात् नन्दन आनन्दः । दुनदि समृद्धौ धातुसे यह बना + याने सर्वाङ्गमें सर्व आत्मप्रदेशमें समृद्धिशाली बन जाना आनन्द है । सुख तो मात्र कल्पित इन्द्रियसम्बन्धी है । मोही इष्टवियोग अनिष्टसंयोग को अपना अहित मानकर दुखी होते हैं और आनन्द हुआ आत्माका मुख्य गुण । आनन्दको देखना ही है तो क्रोध, मान, माया, लोभ जैसे हैं वैसे समझमें आवें कि इनसे कितना स्वयं में संक्लेश परिणाम होता है तथा उनसे उपेक्षित होकर चारों तरफसे चित्त खींचकर स्वमें स्थित होनेका यत्न करें, फिर अनुभव करें तो शान्ति आती है यह सत्य सुख है । मतिज्ञान जैसे ज्ञानगुणकी दशा है वैसे सहज आनन्द आनन्दगुणकी दशा है ।

जैसा समझें वैसा ही उपयोग करें—तत्त्व जान लिया, देख लिया, पुनः सोचे यह सर्व अलग-अलग सत् है, स्वतंत्र है, परिपूर्ण है । उसकी क्या ? ऐसा नहीं, यह तो सब एक-एक द्रव्यरूप है । उसकी ये सब शक्तियाँ हैं, सदात्मक द्रव्य है । भेददृष्टिसे देखना गुणकी सिद्धि का साधन है तथा यह अभेदपुञ्ज द्रव्य हुआ । पर्याय देखकर या जानकर यह दृष्टि लगाना, यह कौन द्रव्यकी पर्याय है ? क्रमशः अभेदरूपसे चलकर या द्रव्यके सामान्यतत्त्व तक पहुँचना । जैसे विस्तार वस्त्रका शुक्लत्व हुआ और भी कोमलता आदि गुण पाये जाना बहुतसे गुणको देखनेपर केवल वस्त्रपर केवल वस्त्र ही तो पहिचाना है । लेकिन कोमलता सफेदपना वस्त्रसे जी नहीं हो जावेगे । यह आत्मा ज्ञानपुञ्ज एवं आनन्दघन है । हर एक द्रव्यकी शक्तियाँ होती हैं, उससे गुण अलग नहीं होते हैं । द्रव्य वह है जो रुदा रहे । द्रव्यभेदसे देखा गया, जैसे स्पर्श, रस, गंध, वर्णकी विशेषतायें लिए जाना गया तो गुणकी सिद्धि हुई । गुणोंकी दशायें जानी गईं तो पर्याय सिद्ध हो गई । अमुक-अमुक गुणकी अमुक-अमुक पर्यायें हैं, अन्य द्रव्यके नहीं । कोई द्रव्य अपना परिणामन अन्य द्रव्यको नहीं देता, और न अपनेमें द्रव्य अन्य द्रव्यको परिणामन लेता है । स्वरूपास्तित्वकी बात समझमें आई तो द्रव्य समझ आवे और मोह हट जावे । स्वर्ग नरककी सत्ताकी बात तो हम करें और हम स्वयं क्या हैं—यह न जान पायें तो भैया क्या गाँठमें रहा ? यदि आत्माकी बात यथार्थ समझमें आ जावे तो सब यथार्थ समझमें आ जावे ।

अपने आपको तो पहिले समझो—एक स्कूलके हैड मास्टर साहबको इन्स्पेक्टरने लिखा कि अमुक तारीखको निरीक्षण करनेके लिये आवेंगे । सूचना पाते ही मास्टरोंने गणित, भूगोल, इतिहास, हिन्दी, नागरिक शास्त्र आदि विषय खूब रटा दिये । छात्रोंने अपने-अपने विषय अच्छी तरह याद कर लिये । नियत तारीखको इन्स्पेक्टर आ गया । उसने छात्रोंसे

सवाल पूछा कि तुम्हारे गाँवका नाला कहाँसे निकला है ? तो छात्र उत्तर देते हैं कि यह हमें नहीं पढ़ाया गया, इसलिये यह मालूम नहीं है। छात्रोंने अमेरिका, इंग्लैण्डका हाल, समुद्र व बड़ी-बड़ी नदियाँ तो याद कर ली थीं, किन्तु घरकी बात याद नहीं थी। इसी तरह खूब पढ़ लेवे, लेकिन पासकी ही बात न समझ पावे कि आत्मामें ही सच्चा सुख विद्यमान है। मैं क्यों मूर्ख बना यहाँ-वहाँ पराधीन हुआ घूमता हूँ। अपने-अपने परिणमनसे प्रत्येक पदार्थ परिणमन रहा है, मैं इनमें क्या कर सकता हूँ ? व्यर्थ सम्बंध बुद्धि लगाकर मोहसे ग्रस्त हो रहा हूँ। किसीको कुछ कर देता है, यह भ्रम ही मिथ्या बुद्धि है। जहाँ अनाकुलता आई वहीं समता रस-सुख भलकेगा।

यह आत्मा स्वयं महान है—यह भगवान आत्मा स्वयं ज्ञानस्वभाव वाला है। इसका जो भी स्वभाव वैभव है उसका मोहके द्वारा घात हो रहा है। मोहबुद्धि छूटनेसे पदार्थ समझ में आता है। पदार्थको समझनेसे निमित्तनैमित्तिक सम्बंध आवश्यक रहता है, इसके बिना तिलभर भी आगे नहीं बढ़ सकते, इसीसे वस्तुके स्वभावको पदार्थ जाना जा सकता है। जैन-दर्शनमें यह दो बातें प्रधान हैं। कृतकर्म भावका मण्डन बनता नहीं और निमित्तनैमित्तिक भाव खण्डन बनता नहीं। बच्चोंको पढ़ानेके लिए जैसे कहते हैं—जीव वह है जो खाता-पीता, चलता, उठता, बैठता हो। लेकिन क्या जो खावे-पीवे, चले बैठे नहीं तो क्या वह जीव नहीं है ? केवल लक्ष्यमें लानेके लिए यह बताया जाता है। जहाँ गुणोंका वर्णन किया वहाँ द्रव्यका वर्णन भी आ गया। गुणोंके आख्यान बिना द्रव्यको नहीं जान सकते। जहाँ भगवानकी अवस्थाका वर्णन करते हैं वहाँ अनन्तदर्शन, अनन्तसुख आ ही जाते हैं। जो भी वर्णन करेंगे वह एकतासे वर्णन करेंगे। लेकिन जो जिस अवस्थामें रहता है उसी तरह बतावेंगे। आत्मा की बात जानकर उसके ही गुणगान होना तो प्रशंसा है। लोकमें जो अन्य-अन्य प्रकार प्रशंसायें होती हैं वे क्या प्रशंसायें हैं ? निन्दा हैं। जैसे कहें कि यह हवेली सेठजी की है, इसमें बढ़िया नक्कासीका काम हुआ है। सेठजी के ४ लड़के हैं, उनमें एक इन्जीनियर, एक डायरेक्टर एवं एक इन्स्पेक्टर या दुकानका मालिक है। यहाँ प्रशंसा हुई या निन्दा ? यह सब निन्दा की बातें हैं, क्योंकि लड़के एवं मकानों आदिकी अच्छाई ही कही जा रही है। सेठजी में कुछ गुण नहीं हैं। लड़के तो अच्छे हैं, सेठजी बुद्धू हैं, यह अर्थ हुआ। मोहमें अच्छाई मानी जाती है। वास्तवमें इससे हमारी कोई विशेषता नहीं है। इन सेठजी में कोई कला नहीं है। अचेतन मकानपर तो है, यह बात जाहिर नहीं होती सेठकी बातें न कहकर मकानकी बात कहनेसे। अगर किसीसे प्रेम हुआ तो उसके गोदके लड़केके सिरपर हाथ फेर दिया। अगर कोई मुनि, त्यागी आये हैं तो बच्चोंसे हाथ जुड़ा दिये, वह भले हाथ नहीं जोड़ें, यह उनकी ही वन्दना हो गई मानो। इसके बड़प्पनसे हम अच्छे हैं, यही तो मुख्य रहस्य है मोहका। हमारी हवेली,

बगीचे, लड़कों आदिकी प्रशंसा कर दी, जिससे हम खुश हो गये। यह अपनी मोहबुद्धिकी ही बात है। कोई कहे आप राममूर्ति जैसे हट्टे कट्टे हो या सिंह जैसे पहलवान हो तथा अमुक व्यक्तिके सदृश स्वभाव वाले हो तो इसमें स्पष्ट निन्दा भी जा रही है और समझ रहे प्रशंसा जिसपर फूले नहीं समाते। निन्दा इसलिए है कि उसे बताया जा रहा है कि तुम बाह्य तत्त्वों में आसक्त हो, तुम पशु या अन्य व्यक्तिके समान हो, किन्तु उतनी महत्ता ही नहीं है। परद्रव्य में हम इतने लीन रहते हैं कि समझते हैं हमारी प्रशंसा हो रही है। अगर सोचो हमारी निन्दा कर रहे हैं, तो कोई नुक्सान नहीं, फायदा ही है। आत्माके गुणोंकी प्रशंसा की जायगी तो कहेंगे हम और आप जीव समान-समान हैं, परद्रव्यसे पूर्णतया भिन्न हैं, चैतन्यमात्र इसका स्वभाव है, आपकी इसपर दृष्टि रहती है। यह सुनकर धोभ नहीं होगा, किन्तु प्रसन्नता ही होनी चाहिए। प्रशंसा इसकी बाह्य नहीं की जानेपर भी आनन्द लूट रहा है कि यह बात हममें नहीं है और प्रकट होना ही चाहिये। जैसी बात अरहन्त सिद्धमें है वैसी हममें नहीं है यह भान हो तो प्रभु स्वरूप ही पहिचाना, भगवानका स्वरूप यथार्थमें जान लिया तो आत्मीय आत्मापर आना होगा ही। जैनशासनमें यथार्थ बात द्रव्यके स्वरूपकी ही बताई है, इसे जानने से सिद्ध परमात्मा परम्परासे हो सकता है। यह विशेषतायें अन्यत्र नहीं मिलेंगी।

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यके परिणामका सोदाहरण वर्णन — इस प्रकरणमें द्रव्यका लक्षण, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य तथा गुण, पर्याय कहा। सो इसका तात्पर्य यह है कि यह द्रव्य उत्पादके द्वारा लक्षित होता है, व्ययके द्वारा लक्षित होता है, ध्रौव्यके द्वारा लक्षित होता है, गुणके द्वारा लक्षित होता है, पर्यायके द्वारा लक्षित होता है। लक्षित होनेके इन प्रकारोंके कारण द्रव्य कहीं स्वरूपभेदको प्राप्त नहीं हो जाता अर्थात् उत्पाद व्यय आदि कुछ और हैं और द्रव्य कुछ और सत् है, ऐसा नहीं हो जाता। जैसे एक कपड़ा मलिन था उसे धोया तो अमल (स्वच्छ) हो गया, यहां कपड़ा अमलादि अवस्थासे भिन्न कुछ अन्य सत् नहीं हो जाता। कपड़ा अमल अवस्थासे लक्षित हो रहा है, मलिनता नहीं रही, इस प्रकार अर्थात् मलिनावस्थाके व्ययसे लक्षित हो रहा है, उस एक कालमें ही स्वच्छताके उत्पाद मलिनताके व्यय वाले कपड़ेमें पटत्वावस्थासे देखो तो ध्रौव्यसे लक्षित हो रहा है। उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यके साथ पटका स्वरूपभेद नहीं, किन्तु कपड़ा स्वरूपसे ही अमलताके उत्पादको, मलिनताके व्ययको, पटत्वके ध्रौव्यको आलम्ब रहा है तथा कपड़ेमें चिकनाई, स्वच्छता, मोटाई आदि हैं। इससे भी कहीं स्वरूपभेद नहीं हो जाता, किन्तु कपड़ा ही उन-उन विशेषोंसे उस प्रकारकाको आलम्ब रहा है तथा कपड़ेमें कम स्वच्छता, अधिक स्वच्छता आदि अवस्थायें होती हैं, उसके साथ भी स्वरूपभेद नहीं हो जाता, किन्तु कपड़ा ही उन-उन पर्यायोंसे उस-उस अवस्थाको आलम्ब रहा है। इसी प्रकार द्रव्य उत्तरावस्थासे उत्पद्यमान हुआ व पूर्वावस्थासे व्ययमान हुआ। यहाँ द्रव्य उस अवस्थासे भिन्न

अन्य सत् नहीं हो जाता । द्रव्य ही वहाँ उत्तरावस्थाके उत्पादसे लक्षित हो रहा है, पूर्वावस्था के व्ययसे लक्षित हो रहा है । उस एक कालमें ही उत्तरावस्थाके उत्पाद व पूर्वावस्थाके व्यय वाले द्रव्यमें द्रव्यत्वावस्थासे परखो तो ध्रौव्यसे लक्षित हो रहा है । उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यके साथ द्रव्यका स्वरूपभेद नहीं, किन्तु द्रव्य स्वरूपसे ही उत्तरावस्थाके उत्पादको, पूर्वावस्थाके व्ययको, द्रव्यत्वके ध्रौव्यको आलम्ब रहा है तथा द्रव्यमें अनेक गुण हैं, इससे भी कहीं उनके साथ स्वरूपभेद नहीं हो जाता है, किन्तु द्रव्य ही उन-उन विशेषोंसे उस-उस प्रकारताको आलम्ब रहा है तथा द्रव्यमें भिन्न-भिन्न कालमें अनेक पर्यायों हैं, उनके साथ भी द्रव्यका स्वरूपभेद नहीं हो जाता है, किन्तु द्रव्य ही भिन्न-भिन्न कालमें उन-उन पर्यायोंसे उन-उन अवस्थाओंको आलम्ब रहा है । यहाँ स्वरूपभेद नहीं है, इसका तात्पर्य यह है कि उनके साथ सत्ता भेद नहीं है, गुणादिका सत्त्व अलग हो व द्रव्यका सत्त्व अलग हो ऐसा नहीं है, किन्तु उनमें मात्र लक्ष्य लक्षणभेद है ।

द्रव्यकी जाति व व्यक्तियाँ—गुण व पर्यायों भिन्न नहीं हैं, किन्तु द्रव्य गुणमें पर्यायों का आलम्बन है । द्रव्यका लक्षण अस्तित्व सामान्य हुआ । लक्षण वह होता है जो लक्ष्यमें तो घटे किन्तु अलक्ष्यमें न जावे । उनमें भी प्रत्येक पदार्थ भिन्न है । परसे विविक्त स्वगुणपर्यायमें समवेत जो हो उसे शुद्ध द्रव्य कहते हैं । किन्तु हैं सब सत् । यह हुआ अस्तित्व सामान्य । दो प्रकारका अस्तित्व कह रहे हैं स्वरूपास्तित्व और सादृश्य अस्तित्व । ये दोनों अपनी जुदी-जुदी विशेषतायें रखते हैं, जैसे व्यक्तिगत मनुष्य और जातिगत मनुष्य । व्यक्तिगत मनुष्य वह है, जिसमें अर्थ क्रिया हो रही है वह मनुष्य है तथा जातिगत मनुष्य वह है जो अनेक व्यक्तिगत मनुष्योंका समूह सोचकर सामान्य बुद्धि हो । द्रव्य जुदे-जुदे हैं, प्रत्येक द्रव्यका स्वरूपास्तित्व भी जुदा-जुदा रहता है । उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यमें भी स्वरूपास्तित्व है, किन्तु द्रव्यस्वरूप ही है । एक निगोद शरीरमें अनन्त निगोद जीव रहते हैं, फिर भी उनका अस्तित्व अलग-अलग है । उसी तरह एक जगह अनन्ते सिद्ध रहते हैं, किन्तु उन सबका अस्तित्व जुदा-जुदा रहता है । जुदे-जुदे अस्तित्व सबमें हैं, किन्तु जो उत्पाद, व्ययादि कार्य सत्त्वमें है वही द्रव्यमें है, यह आदिसे है और अनन्त तक रहेगा । सो ही प्रवचनसारमें आगे स्वरूपास्तित्व को कहते हैं—

सम्भावो हि सहावो गुणोहि सगपज्जएहि चित्तेहि ।

दव्वस्स सव्वकालं उप्पादव्यय धुवत्तेहि ॥६६॥

यह ज्ञेयाधिकारकी चौथी गाथा है, इसमें द्रव्यके स्वरूपास्तित्वका विवेचन किया गया है । आचार्य महाराज कहते हैं कि सर्वकाल गुणोंके द्वारा, विविध विचित्र अपनी पर्यायोंके द्वारा, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यके द्वारा अथवा इन-इन रूपोंसे सद्भाव होना सो द्रव्यका स्वभाव है । सद्भाव अर्थात् अस्तित्व द्रव्यका स्वभाव है । वह अस्तित्व अन्य साधनोंकी अपेक्षा नहीं

रखता है अर्थात् अस्तित्व किसी भी कारणसे उत्पन्न नहीं होता है वह तो स्वतःसिद्ध है। इसी कारण वह अनादि है और अनन्त है तथा अहेतुक है। वह अस्तित्व, गुण, पर्याय, उत्पाद, व्यय व ध्रौव्यके रूपोंसे है। तो यह सिद्ध हुआ कि जैसे अस्तित्व अन्य साधन निरपेक्ष हैं इसी तरह गुण, पर्याय, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य ये सब अन्य साधन निरपेक्ष हैं अर्थात् यह सब द्रव्यका स्वभाव है। अस्तित्व नास्तित्वधर्मसे विलक्षण है अर्थात् द्रव्यका अस्तित्व उस-उस द्रव्यके गुण, पर्याय, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्योंके रूपसे तो है, किन्तु परद्रव्यके गुण, पर्याय, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्योंके रूपसे अस्तित्व नहीं है। अस्तित्वमें और द्रव्यमें (सत्में) भाव और भाववानका तो भेद है सो यह भाव भाववान भी समझनेके लिये भेदकल्पना है, परन्तु प्रदेशभेद तो है ही नहीं सत्में और सत्तामें अर्थात् अस्तित्वसे और द्रव्यमें। अस्तित्व तो द्रव्यके साथ ही एकताको आलम्बता हुआ है, अतः अस्तित्व द्रव्यका स्वभाव ही है। सर्वकाल गुणोंके द्वारा और उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यके द्वारा व सम्पूर्ण पर्यायोंके द्वारा जो अस्तित्वमें आ रहा है वह स्वभाव है। वह अस्तित्वसे भिन्न नहीं है। उनका अस्तित्व हम लोगोंके लिए इस रूपमें फूटता है। द्रव्य अस्तित्व कर युक्त है और साधनोंकी अपेक्षासे रहित है, अनादि अनन्त है, अहेतुक है, और उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यसे इनका सद्भाव चलता है।

किसी भी पदार्थका अस्तित्व परापेक्ष नहीं—अस्तित्व द्रव्यका स्वभाव है, वह स्वभाव अन्य साधन निरपेक्ष है। कोई भी सत्ता अपने अस्तित्वको लिए हुए है और वह अन्य साधन की उपेक्षा नहीं करता, वह अनादिकालसे चला आ रहा है और अनन्तकाल तक चला जायेगा। पहले नहीं था और बादमें आ गया, ऐसा भी नहीं है। अगर सत्ता कहींसे आयी है तो वह पहले थी या नहीं। अगर कहो सत्ताका प्रबंध पहलेसे नहीं है, बादमें कहींसे आया है तो बताओ उसका आनेका आधार क्या है? अगर आधार माने अमुकके सहारे भाई तो पहलेसे सचका होना सिद्ध हो गया, जिसे कोई भेट नहीं सकता। सत्ताका अस्तित्व तो है। सत्तामें कुछ है नहीं तो निराधार सत्ता कैसे बनेगी? इन्सान दुनियामें कुछ न हो, किन्तु इन्सानियतका स्वरूप बखानते फिरो, तो यह वचनोंसे ही बाधा पावेगा। सद्भूत चीज है, उसके आश्रय बिना सत्ता कैसी? स्वरूप बना करते हैं बुद्धि द्वारा द्रव्य, गुण, पर्यायों व उत्पाद, व्यय, ध्रौव्योंका परस्पर आश्रय करके। ये सर्व द्रव्य अनादिसे अनन्त तक रहेंगे। यह जगत कैसे हो गया? इस सम्बंधमें अन्योकी कुछ बुद्धिने काम नहीं दिया तो कह दिया ईश्वर की मर्जी (इच्छा) से बना है। जैसे सबसे पहले रेल चली तो देहाती आदमी उसे देखने आये, तो उनकी समझमें चलनेकी शक्तिका कारण समझमें नहीं आया। तब काला इंजन देखकर कह दिया कि इसमें काली देवी बैठी है, उसके द्वारा यह रेल चल रही है। आदतें तो ऐसी पड़ी हैं ना सबको कि कोई बात समझमें आवे या नहीं, किन्तु उसका हल अवश्य करना है।

मनुष्योंपर भी कभी-कभी किसी प्रश्नका सही उत्तर नहीं आता तब भी कुछ न कुछ कह ही देते हैं, उनका ख्याल ही यह रहता है 'तीर नहीं तो तुक्का ही सही।' यह हठ बुद्धिमें भरा हुआ है। जिस ईश्वरने यह जगत बनाया वह कहाँ था ? सभी जगह व्यापक था या एक जगह ? अगर एक जगह था तो उसे बड़ी घुड़दौड़ करनी पड़ी होगी। इसलिए कह दिया कि सब जगह है, फिर पूछो कि उत्पाद वस्तु क्या थी तब इसके वास्ते सूरज आदिमें अनेक कल्प-नायें कर लीं। अगर स्वरूपास्तित्वको छोड़कर बाहर-बाहर देखें तो यह सन्तति नजर नहीं आती। यह चीज है पहले नहीं थी ऐसा नहीं बनता। प्रत्येक पदार्थकी अनादिसे अनन्त तक सत्ता है, इस वृत्तिसे अहेतुक है। सत्तामें हेतु क्या ? सत्ता नवीन नहीं बनी। अन्य द्रव्यमें हेतु होता है। कार्य द्रव्यकी पर्याय है, उसमें हेतु होता है। एक जीवका अस्तित्व सामान्य क्या है ? जो विशेष विशेष जीवकी पर्यायें हैं उनमें विशेष अपेक्षा न करके एक जो रहे उसीको सुगम मानना, यह अस्तित्व सामान्य है। वह अनादि अनन्त और अहेतुक है।

कल्पनामें ही पदार्थका समर्थन या विरोध है—अस्तित्व जो द्रव्य स्वभाव है वह विभाव लक्षण याने अन्यके नास्तित्वसे संयुक्त है। भाव भाववानका नानापन हो गया। एक सत्तासे सत्तावान है। इस दृष्टिमें नाना भाव हो गया। कोई एक प्रदेश अन्य प्रदेशमें होवे सो बात नहीं है। अस्तित्व द्रव्यका स्वभाव है, जो भी है वह द्रव्यका स्वभाव है। जितने भी विकल्प किया करते हैं वह हैं मैं नहीं हूं, यह सब नष्ट होकर वस्तुके स्वरूपको बताते हैं। अगर ईश्वरको सृष्टिकर्ता माना जावे और मानने वालोंसे पूछा जावे कि वह वास्तवमें है या नहीं ? अगर नहीं है तब तो खण्डन ही किसका किया जावे ? ईश्वरके बारेमें जो तुम्हारा विकल्प चल रहा है उसका खण्डन करते हैं, जो अभिप्राय है वह सत्के अनुरूप है या नहीं ? बात बातमें ही कहें अभी समझे नहीं तो कार्य कैसे बनेगा ? वस्तु तो वस्तु ही है। जो जान-कारी चलती है वह वस्तुमें ही चलती है, यह सोचना अनुरूप है। लेकिन क्या यह अनुरूप नहीं जो द्रव्यमें एकता बनाये रहती है।

गुण, पर्यायकी कल्पनासे कहीं गुण, पर्याय जुदे-जुदे सत् नहीं हो जाते—भाव भगवानकी दृष्टिसे नाना हो गया। जो अस्तित्व है वह द्रव्यान्तरोकी तरह गुण व पर्यायोंमें परिसमाप्त नहीं हो जाता है। जैसे द्रव्यान्तरोमें द्रव्य बहुत है, इस द्रव्यका अस्तित्व इस द्रव्य में परिपूर्ण हो गया अन्यमें नहीं, ऐसा यहाँ नहीं कि द्रव्यकी सत्ता द्रव्यमें है, गुणकी यथार्थ की सत्ता कोई अलग है। जैसे दस मनुष्य बैठे उनका अस्तित्व अन्यमें समाप्त हो जाएगा ना। आपका अस्तित्व आपमें रहेगा, अन्यमें नहीं चला जाएगा। एक द्रव्यकी गुण पर्यायें उसी द्रव्यमें रहेंगी, अन्यमें नहीं चली जावेंगी। गुणका गुणमें, पर्यायका पर्यायमें अस्तित्व समाप्त हुआ, ऐसा नहीं है। जब स्वरूपपर दृष्टि देते हैं तो गुणोंका भी समावेश हो जाता है। जैसे

जीवमें अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत सुख और अनंत वीर्य कहनेपर सेचना यह एक जीवमें स्वतंत्र-स्वतंत्र है, यह बात नहीं बन सकती। वह तो एक ही जीव एक है और अलक्ष्य है, केवल स्वरूपभेद है। स्वरूपभेद से भेदके भावसे उनको अलग-अलग बताया है। द्रव्य, गुण, पर्यायमें प्रत्येकमें यह अस्तित्व समाप्त नहीं होता। द्रव्य सत्, गुण सत् पर्याय भी सत् है, और प्रत्येक स्वतंत्र भी है ऐसा नहीं है। द्रव्य एक ही सत् रूप है, वह गुण पर्यायरूपसे लक्ष्यमें लाया जाता है। वह स्वर्णकी तरह पीलापनसे युक्त है, भारीपना भी उसमें है, और कुण्डल, करदोनी पर्याय (हालतें) आकार भी उसमें पाये जाते हैं। आगे चलकर अन्य पर्यायमें आ जावेगा। यह सब होते हुए स्वर्णसे पृथक् कुछ दिखाई नहीं देता। वह स्वर्ण ही इन विशेषताओंको धारण किये हुए है, यह साधन बन गया। पीलापन एक स्वर्ण तथा उससे बना कुण्डल आदि भिन्न हो, यह तो है नहीं। यथा रात्रि विकासी कमल, दिन विकासी कमल, लाल कमल, नीला कमल एवं सफेद कमल यह सब कहनेपर केवल कमलकी विशेषता समझमें आयी। इससे यह तो न हो जायगा कि कमल और वहीं है, नील और कहीं स्वतंत्र है। द्रव्य में भी यही बात है, वह उन विशेषताओंसे अलग नहीं है तथा सब अलग-अलग माननेसे उनमें फिर क्या रहा? कोई यह कहते सात पदार्थ हैं द्रव्य गुण सामान्य विशेष समवाय व अभाव। देखो गुण पर्यायको भी भिन्न मान लिया तो उनमें और जैनसिद्धान्तमें अन्तर क्या रहा? वैशेषिक और जैनोंका यद्यपि सिद्धान्तमें काफी मेल खाता है, किन्तु एकांत कर लेनेसे सारा मेल खतरा हो जाता है। अतद्भ्रवकी दृष्टिसे द्रव्य गुण अलग-अलग हैं, किन्तु स्वतंत्र सत् तो नहीं। वैशेषिकके अभिप्रायसे द्रव्य, गुण, पर्याय ये स्वतंत्र सत् माने हैं वह एकताको कैसे प्राप्त हो सकते हैं। इसके अर्थ वह सामान्य कहते हैं, उनमें विशेषतायें हैं, उन्हें विशेष कहते। जुदे जुदे सत् हैं। वे एक दूसरेमें नहीं हैं, इसके लिए अभाव माना है। परस्पर सम्बंधके लिए समवाद माना है। देखो भैया! हैं ये सब एक, किन्तु उनके गुण पर्यायोंको भेद-भेद कर डाला।

बचपनमें दादी एक कथा सुनाया करती थीं। समझमें वह कहानी आवे या नहीं, हाँ तो कहना ही चाहिए, सो मैं भी हाँ कहता था। वह कहतीं—स्त्रियाँ पहले जमानेमें सिरमें से कीलें निकालकर अलग रख देती थीं और सिरको निकालकर शृङ्गार लिया करती थीं, फिर अपने सिरमें जोड़कर कीले लगा लेती थीं, यह बात समझमें तो नहीं आती, किन्तु शास्त्रोंमें कीलक संहननका वर्णन आता है, उसके अनुसार कथा गढ़ ली गई हो। कीलक संहननमें शरीर कीलोंसे जुड़ा रहता है। द्रव्य, गुण, पर्याय भी इसी तरह जुदे-जुदे सत् होवें और उन्हें साफ कर-करके बादमें द्रव्यमें बैठा लिया जावे, इस प्रकार यह द्रव्य, गुण, पर्याय (क्रिया) की स्वतन्त्र पदार्थताकी कथा वैशेषिकों अर्थात् सर्वथा भेदवादियोंकी है।

गुण व पर्याय द्रव्यकी विशेषमात्र हैं—द्रव्यके गुण और पर्याय द्रव्यसे भिन्न नहीं

हैं। यहाँ द्रव्य, गुण, पर्यायिका वर्णन है। इन्हें ऐसा स्वतन्त्र नहीं समझना कि एक-एकमें उनका अस्तित्व समाप्त हो जाय। यह द्रव्य गुण पर्यायिकमें नहीं जानना। उस ही तरहका द्रव्य पर्यायिकी दृष्टिसे देखा जाता है। द्रव्यसे गुणोंकी और गुणोंसे पर्यायिकोंकी सिद्धि है। द्रव्यकी सिद्धि न हो तो द्रव्य गुण पर्यायिकी सिद्धि भी कैसे हो सकती है? द्रव्यके दृष्टांतमें यहाँ सुवर्ण को ही रक्खना। सुवर्णमें पीतत्व गुण है तथा कुण्डल पर्यायिक है, किन्तु यहाँ कुण्डल उस द्रव्यसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावदृष्टिसे भिन्न नहीं है अर्थात् उनकी पृथक् सत्ता दिखाई नहीं देती। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक सत् द्रव्यमें होता है। वह सुवर्णमें नहीं है। चौकीवो समझके लिए द्रव्यपिण्ड कहा है और आकार प्रकारसे क्षेत्र होता है। वर्तमान पर्यायिक कालसे जानी जाती है और स्थायी धर्म भाव हुआ। प्रत्येक वस्तु द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव चतुष्टयसे समझमें आती है। यह द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव स्वतन्त्र स्वतन्त्र सत्तात्मक नहीं है। वह सब स्वतन्त्र सत् नहीं है। सुवर्णसे पृथक् पीतत्व नहीं है तथा कुण्डलका सुवर्ण भी उस पीतत्व आदि गुणसे भिन्न नहीं है। सुवर्णमें ही कर्ता, कर्म, करण समाये हुए हैं या तीनों रूपसे धारण कर रक्खा है। इनका कर्ता है तो वह सुवर्ण, कर्म भी सुवर्ण है तथा करण भी सुवर्ण ही है। कर्ता कर्मको धारण कर रक्खा है। इनकी उत्पत्ति सुवर्णमें होती है। सुवर्णके पीतत्वादि गुण कहाँसे पैदा हुए? किन्तु हमारे उपयोगमें ही भेदरूपसे आते हैं। यह पीलापन इसीमें समाया है। द्रव्यकी तो हर बात पर्यायिकसे स्पष्ट ही देखते हैं। यह सिद्धि सुवर्णसे होती है। सुवर्णका अस्तित्व कुण्डल और पीतत्व गुणोंसे भिन्न नहीं है, जुदा जुदा कहलाता है, किन्तु वास्तवमें वह स्वतन्त्र सत् नहीं है। प्रत्येक पदार्थ अपने ही द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक है, यही बात द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव लगाना चाहिए। द्रव्य, क्षेत्रके स्वरूपको धारण किसने किया? द्रव्यने। द्रव्यका ही कारण आधार है। गुण पर्यायिकोंके द्वारा जिसकी सिद्ध हुई है उन्हींका अस्तित्व गुण पर्यायिकोंसे सिद्ध होता है। इनकी सत्ता इन प्रत्येकमें समाप्त नहीं होती जाती है। द्रव्यका ही साधारण लक्षण है गुणपर्यायिकत्व द्रव्यं। वह सब द्रव्योंमें पाया जाता है। इनके तत्त्व घटानेपर ऐसी दृष्टि होना होती है जो केवल एकको देखे। इससे मैं क्या लाभ लूँ? मैं एक अनुपम शान्तिका पुञ्ज हूँ, इसका आधारभूत मैं हूँ। यह किसके आधार होती है? उसका आधार मैं हूँ अर्थात् द्रव्य, गुण, पर्यायात्मक आत्मा है। यह आत्मा अगले समयमें इसी दशामें नहीं रहती। प्रति समय नवीन-नवीन पर्यायिक चलती रहती है, किसपर गर्व पुष्ट किया जाय, इसके लिए यह सब स्वरूपवर्णन है। जीवका जो राग क्लेश है उसी को सब कुछ समझकर मैं इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हूँ, इस बुद्धिने परेशान कर डाला। क्रोध, मान, माया, लोभ, मोह यह सब कुछ मेरे नहीं हैं। गर्व करनेका विषय वर्तमान पर्यायिक ही तो है उसे जो भिन्न समझे कोई तब यह पदार्थ उसके उपयोगमें कैसे हो जावेंगे? जितने

भी परिणामन दिखते हैं वह सब अनित्य हैं। चम्पतराय (एक जैन व्यक्ति जो कि ८ बजे शामको लड़केको झुला रहे थे, रात्रिमें समाप्त हो गये) का कल किसको मालूम था कि वह रात्रिमें खत्म हो जायेंगे। उन्हें क्या हो गया था? इसी तरहसे प्रत्येक रात्रि दिन, घन्टा, मिनटका भी इस जीवनका भरोसा नहीं। संभव हो सकता है उनका मरण विशुद्धिसे हुआ हो। देखनेको खूब उदाहरण दृष्टि पसारकर देख लो, इसमें सार क्या है?

हम किसीसे विशिष्ट नहीं हैं—शहरमें अपने बड़ेपनसे अन्योपर दबाव भी चल सकता है, अपनी सेवा भी दूसरोसे करा सकते हैं, किन्तु निमित्तनैमित्तिक सम्बंधमें सब एक घाट है। कोई सोचे हम शरीरसे बड़े स्वस्थ हैं, हट्टे कट्टे हैं। हार्ट फेलकी तो घटना ही क्या होगी? धनी सोचते हैं कि अगर बीमार हुए तो २-४ माहमें वैद्य डाक्टरोंके बलसे अच्छे हो जायेंगे। कोई विचारते होंगे कि खूब धनाढ्य तो हैं ही, अवसर आनेपर मनमाना धन खर्च करके तंदरुस्त हो जावेंगे? पंडित सोचे कि मूर्खोंपर आपत्तियाँ आती हैं, हमपर नहीं आवेंगी। कोई सोचे मैं तो त्यागी हूँ, मृत्यु मुझसे बिना आज्ञा लिये कैसे आवेगी? यह सबका सोचना निरर्थक है। यहां सब एक घाट उतरेंगे। पैदा सभी एक तरहसे होते हैं और मरते भी सभी एक तरहसे हैं। कर्म बन्धनका ढंग भी एक है, इन कर्मोंके बन्धनमें सहूलियत किसीको नहीं होगी, अशुभ एवं शुभ कर्मबन्ध भी समान होते हैं। चाहे वह ईसाई, मुसलमान, हिन्दू, पारसी, सिक्ख, हरिजन कोई भी क्यों न हो। जो पाप बुद्धि करेगा वह पापबन्ध करेगा और जो पुण्य बुद्धि करेगा वह पुण्यबन्ध पावेगा। मनुष्य एवं पशुओंमें सम्यक्त्व होता है, उसमें क्षयोपशमकी दृष्टिसे भले अन्तर रहे, किन्तु पद्धतिमें अन्तर नहीं है। पशु भी तो अपने को परपदार्थोंसे भिन्न अनुभव करता है। जो भी बीतती है वह सब एक ढंगसे। हम यहाँ भले ऊँचे पदाधिकारीको अपने पक्षमें लेकर टैक्स आदि न दें या जगह मिलने आदिकी सहूलियत मिल जावे, किन्तु अन्तरङ्गमें तब भी सहूलियत नहीं मिल रही। वही परिणाम एक धनीके हो सकते हैं व दरिद्रके भी। जैसे भाव एक त्यागीके हो सकते हैं वैसे ही एक साधारण पुरुषके भी तो हो सकते हैं। लौकिक सहूलियत पूर्वकृत पुण्यका फल है।

नष्ट होने वाली बातपर क्या हर्ष विषाद—यह पर्याय पैदा होकर नष्ट हो जाती है। इसमें हर्ष करना और क्या बिलखना? यहाँ कर्ता, कर्म, करण और अधिकरण एक ही वस्तु है। कर्ता कर्मरूपसे द्रव्यको समझाया है, जिससे अस्तित्व जाना जाय। द्रव्य पर्यायोंसे भिन्न कहाँ है? केवल साधन सिद्धि है। जैसा परिणाम करते हैं वैसे पल भोगते चले जाते हैं। जैसी प्रक्रिया होती है वैसे करते जाते हैं। किसीके सुख, दुःखको अन्य भोगने वाला नहीं है। कोई गृहस्थ पुरुष अकेला था, सन्तान नहीं थी। किसीने कहा कि अमुकके सामने अमुक जीवकी बलि कर दोगे तो तुम्हारे सन्तान हो जायगी। यह क्रिया कोई न करे और

उसके संतान न होवे ऐसा तो है नहीं, क्योंकि जिन्होंने इस प्रकारके कार्य नहीं किये उनके भी ८-१० संतानें पायी जाती हैं। छत्र आदि चढ़ाना शुभ क्रिया है, छत्र न चढ़ाने वाले भी सुखी हैं, तो सब पुण्यके फल हैं। इनमें क्या ललचाना? बलिकी सलाह पाने वालेने हिंसाका कार्य कर ही दिया। उसके यहाँ पूर्वकृत कर्मसे संतान हो गई और धन भी खूब आया। बादमें ऐसा पूर्व व नवीन दुष्कर्म आया कि धन एवं पुत्रादि सब नष्ट हो गये, कंगाल हो गया। तब यहाँ वहाँ घूमता फिरे और कहे—‘देर है अंधेर नहीं’ अर्थात् पापका फल देरसे मिल सकता है, किन्तु मिलेगा नियमसे। एक दिन कंगालको घूमते हुए सूबेदारने देख लिया। उसने सोचा कि यह प्रतिदिन इसी तरहसे चिल्लाता फिरता है। तब सूबेदारने उसे बुलाकर ८-१० दिन आरामसे रखा, तब उससे पूछा—क्या बात है जो तुम इस तरह चिल्लाते फिरते हो? तो उस व्यक्तिने अपना सब हाल सुनाया कि मैंने अमुक जीवकी बलि की, जिससे यह फल कुछ बादमें तो जरूर मिला, किन्तु मेरे घरमें दाने भी चाबनेको नहीं रहे। इसलिए न्यायमें ‘देर है अंधेर नहीं है।’ पापकर्मका फल मिलनेमें देर होना हो तो ये जाने, लेकिन फल तो भोगना ही होगा, किसी न किसी समयमें। इस परिपाटीका कभी लोप नहीं हो सकता। हाँ कहीं अति विशुद्धता हो और संक्रमण हो जाय, यह अन्य बात है।

कितना दुर्लभ नरजन्म है—कितने भवोंके बाद यह हाथ आया है, इसका किसे अदुमान है? निगोदसे जैसे तैसे निकल पाया। अब भी बेसुध पड़ा रहे तो कौन सहायक हो जावेगा? अतः सब बातें पाकर यह विचार मनमें समाया रहे, जीवन सफल कैसे हो? इसके लिए लगन होनी चाहिए। जीवनमें कभी न कभी अवनति तो होती है। बड़े-बड़े घनाढ्य व्यक्ति एवं राज्यके मंत्री आदि भी मशीनीयुगके जीवनसे उबरकर वह भी अपनेको जड़मशीन जैसे कार्योंसे जुदा करके आत्महितको व्याकुल हो जाते हैं। प्रवृत्ति चलती ही रहती है। शास्त्राभ्यास और आत्मतत्त्वकी भावना पतवारका कार्य करेंगे। यह भी न बने तो जिनेन्द्रदेव की भक्ति, सज्जनोंकी संगति, महापुरुषोंके चरित्रका गुणगान करना, किसीके दोष कहने एवं सुननेमें मौन रहना तथा हितमित प्रिय वचन बोलना, इन पाँच बातोंको जीवनमें उतारें। उपयोगी सातों बातें हैं। इन सातों बातोंसे जीवन सफल हो सकता है।

मरणसे पहले सद्भावार्जनकी प्रेरणा—मरणका कोई भी मुहूर्त नहीं रखा जाता। ‘जब तेरी डोली निकाली जायगी, बिन मुहूर्त भी उठा ली जायगी।’ जितना जीवन शेष रहा उसे सफल कैसे करा जावे? कोई सोचे कि मैं औरोंका उद्धार कर दूँ तो जैनधर्मका उद्धार हो जायगा, यह कल्पना निरर्थक है। जो अपना उद्धार कर ले तो जैनधर्मका उद्धार है, अन्यथा नहीं। अपना लोटा तो छाना भी जा सकता है, क्या पूरे कुर्वेको छानना भी सम्भव है? यह समझमें आ जावे, तबवोके यथार्थ आचरणसे उद्धार है अन्य और मार्ग नहीं है। भक्ति, पूजन

आदि करते-करते केवल कभी रुढ़िपर ही चलते जाते हैं, अन्य भावना जागृत नहीं होती। इसके लिए उत्सव विद्वानोंका उपदेश, रथयात्रा आदि हैं जो जीवनमें आत्मकल्याणके प्रति उधेड़-बुन मचा देवे। मैं उद्धार कर दूँ, यह कहनेसे किसीका भी काम नहीं चलेगा, किन्तु अपना-अपना सोचो तो वहाँ धर्म है। बुद्धिको व्यवस्थित करनेके लिए जैनधर्मके तत्त्व माननीय हैं। घरसे विलायत पहुंचनेके लिए मध्यके स्थानोंका भी परिचय होगा, वह उपयोगमें न आकर लक्ष्य पुनः निज उपयोगमें आनेका रहना चाहिए।

वस्तुकी असंख्यत पहचानो—यह द्रव्य, गुण, पर्याय अलग-अलग थे या एक ही वस्तुकी विशेषतायें हैं? वस्तुकी विशेषतायें ही हैं। इनसे लक्ष्यमें लिया जाता है द्रव्य, वह द्रव्यसे कैसे भिन्न है? उनका परिणामन क्षेत्र, काल, भावसे अलग है या अलग-अलग नहीं है? द्रव्यमें ही उनका स्वरूप है या द्रव्यने ही उनका स्वरूप धारण किया है। चूँकि वही द्रव्य कर्ता, करण, अधिकरण है, इसलिए द्रव्यने गुण पर्यायोंके स्वरूपको धारण किया है। इसी तरह बताते हैं कि द्रव्यका अस्तित्व गुण पर्यायोंसे सिद्ध होता है उसी तरह गुण पर्यायोंके द्वारा द्रव्य सिद्ध होता है। द्रव्य भी तो गुण पर्यायोंसे कुछ अलग नहीं है। गुणको मुख्यमें रख लिया और सिद्ध करना है द्रव्यको, सुवर्ण पीतत्व आदिसे भिन्न नहीं है। पीतत्व गुणसे पाया जाने वाला सोना द्रव्यसे अलग रहता है क्या? ऐसा कोई द्रव्य नहीं है। कर्ता, करण, अधिकरण पर्यायोंने उस कातर स्वरूप बनाया, वहाँ द्रव्यका गुण पर्यायोंने स्वरूप बनाया है और यहाँ गुण पर्यायोंने द्रव्यका स्वरूप बनाया है। कोई कहे यह सब चीज है। तो एक कहाँसे और कैसे बनता है? एक तो तब कहे जब वह द्रव्य, गुण, पर्यायसे या द्रव्यसे गुणादि निष्पन्न हो। परस्पर गुण, पर्याय पहले हों बादमें द्रव्यको निष्पन्न किया हो, यह बात तो है नहीं। उन्होंने इसे सिद्ध किया और इसने उनको सिद्ध किया। कर्ता, करण, अधिकरणके रूपसे सुवर्णके स्वरूपको धारण करते हैं। पीतत्वने सुवर्णको धारण किया और सुवर्णने पीतत्व को अपनाया। पर्याय न हो तो द्रव्यत्व कैसे रहे? अतः कर्ता, करण, अधिकरणके स्वरूपको लेकर जो रहा करता है, चला करता है और होता है, ऐसा जो पीतत्व, कुण्डलादि पर्यायोंसे सुवर्णकी सिद्धि है। वह सदा प्रवर्तमान रहता है, उसमें लक्ष्य लक्षणकी बात सिद्ध की जाती है। तब किसी भी तरहसे सिद्ध किया जा सकता है। पीतत्वादि गुण कहाँ रहेगा और सुवर्ण कहाँ रहेगा? वह प्रत्येक है और प्रति समय परिणामन रहता है। वह एक वस्तु है। परिणामी परिणामनसे भिन्न नहीं है। जीवमें नाना पर्यायें चल रही हैं। वह सदैव अपने-अपने अनुसार पर्यायोंको पाते रहते हैं। पर्यायोंमें कभी कुछ न हो तो द्रव्यकी क्या सिद्धि हो? परिणामनोंसे द्रव्यकी सिद्धि है। 'तन्तु द्रव्यान्तराणामिव गुण पर्यायाणां न प्रत्येक परिसमाप्यते।' वह जो अस्तित्व है वह भिन्न-भिन्न रूपसे द्रव्य गुण पर्यायोंकी अपेक्षा समाप्त हो जावे

ऐसी बात नहीं है। कहते हैं कि द्रव्य भेजो तो भेजोगे तो यहाँ गुण भी है, पर्याय भी है। वहाँ जितने गुण हैं उनमेंसे कोई भी गुण दूसरे रूप नहीं होता। फिर भी—

विशेषता विशेष्यसे जुदा सत् नहीं है—द्रव्य गुण, पर्यायोसे सत् जुदा नहीं है उनकी विशेषता भिन्न कैसे हो जायगी? जैसे अमुक पुरुष रूपवान, लम्बे कद वाला, शक्तिवान तगड़ा है तो यह अमुक नामधारी व्यक्तिकी विशेषता हुई। सभीमें यह गुण हो सो बात तो नहीं है। यह गोरेपनकी विशेषता ऊँचे कद वाला ही तो नहीं कर सकता है। अगर ऐसा कहें कि उसका गोरापन मनुष्यपनासे पृथक् है, यह सिद्ध नहीं हो सकता। इसी तरह इसकी विशेषतायें हैं, वह भिन्न नहीं है। मूल साधनरूपसे निष्पन्न हुआ अस्तित्व। 'अस्तित्वं हि किस द्रव्यस्य स्वभाव' अर्थात् अस्तित्व ही द्रव्यका स्वभाव है और वह प्रत्येकमें समाप्त नहीं होता, एक ही है। पीतत्वादि गुणोंके बिना सुवर्णका अस्तित्व नहीं है, उसी तरह द्रव्यका अस्तित्व सिद्ध होता है। गुण पर्यायोंके द्वारा द्रव्यका अस्तित्व सिद्ध है। वह द्रव्यका स्वभाव है, यह सिद्ध हुआ।

शक्ति व व्यक्तिसे जुदी कुछ चीज ही नहीं—गुण और पर्यायोसे पृथक् पाया जाने वाला कोई द्रव्य ही नहीं है और न कभी था और न कभी होगा तथा यदि द्रव्य द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावसे पृथक् माना जावे तो द्रव्यकी सिद्धि नहीं होती है। द्रव्य—द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावात्मक है। गुण भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक है, पर्याय भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक है, ऐसा नहीं है। पृथक् पाया जाने वाला द्रव्य कैसा है? कर्ता, करण, अधिकरण के स्वरूपका है। कर्ता, करण, अधिकरण रूपमें जिसकी सिद्धि है, वह द्रव्यका स्वभाव है। द्रव्य, क्षेत्रादिसे कोई भिन्न-भिन्न नहीं है। द्रव्यके दो लक्षण हैं—(१) उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य युक्त सत्। (२) गुण, पर्याय व द्रव्य उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यसे जो युक्त है वह सत् है तथा गुण और पर्यायों वाला द्रव्य है। जो अस्तित्व है वह द्रव्यान्तरोकी तरह गुण, पर्यायमें या उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यमें तंत्र अस्तित्व नहीं बन जायगा। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य क्या है? प्रत्येक द्रव्यमें यह तीनों पाये जाते हैं। जो स्थायी वस्तु है वह ध्रौव्य है तथा जैसे सुवर्णका कड़ा था, उसका मिटकर कुण्डल बन गया। तो यहाँ कुण्डल पर्यायका उत्पाद हुआ है, और कड़ा पर्यायका व्यय हुआ है और सुवर्ण धातु वहीकी वही है, यह ध्रौव्य हुआ सुवर्णसे सुवर्णात्मक गुण, पर्याय कहीं अलग नहीं है और न कुछ उत्पाद व्ययसे ध्रौव्य भिन्न है। सभीका परस्पर सम्बंध है। सुवर्णमें कुछ न कुछ उत्पाद तो रहेगा। जिस समय उत्पाद हो रहा है वह उत्पाद सामान्य है और जब व्यय हो रहा है उस समय व्यय व सामान्य कहा जाएगा। किसीने कहा कि आप तो अनेकान्तके द्वारा भिन्न-भिन्न वस्तुओंकी उनकी अपेक्षासे जल्दी घटा देते हो। यह नहीं रुनना हमें तो एक ही बातमें घटा दो, एक ही पदार्थभरमें दृष्टि हँवे तथा

अनेकान्त अस्ति नास्ति का घट जावे व उसमें भी कालका कालमें । क्षेत्रों पर्यायिका पर्यायमें, द्रव्यका द्रव्यमें आदि ।

एक ही द्रव्यमें कालकी अपेक्षा अस्ति नास्ति—चूँकि यहां पर्यायिका प्रकरण चल रहा है । अतः एक ही द्रव्यमें कालापेक्षया अस्ति नास्ति देखिये—द्रव्यकी कालदृष्टिसे पर्याय इसमें ही समझाई, (१) सामान्य पर्याय और विशेष पर्याय और (२) भेद पर्याय और अनु-भेद पर्याय । जैसे एक आत्मा है वह एक द्रव्य है, उसमें गुण अनन्त हैं । उसमें एक ही समय में दर्शनगुण, ज्ञानगुण, वीर्यगुण और सुखगुण विद्यमान हैं, वह सब एक समय परिणम रहे हैं । इसी एक बातको इस तरह बताते हैं । एक ज्ञानगुणकी पर्याय है, दूसरी दर्शनगुणकी पर्याय है, तीसरी चारित्रगुणकी पर्याय है आदि अनन्त पर्यायें होती हैं । वह सब पर्यायें द्रव्य में एक ही समय होती हैं, ये सब भेदपर्याय हैं । यह क्रम भेददृष्टिसे पर्यायोंमें हुआ नाना स्व-भावोंको अभेद कर पर्यायोंका अभेद कर एक पर्याय भी होती है, भेद और अभेदकी अपेक्षा दो पर्यायें आ गईं । अभेद पर्यायकी दृष्टिसे अस्ति तो भेदकी दृष्टिसे नास्ति सिद्ध होता है और अभेद पर्यायसे अस्ति तो अभेद पर्यायसे नास्ति विभिन्न कालकी पर्यायोंकी अपेक्षासे वे विशेष पर्यायें हैं व परिणमन सामान्यसे सामान्य पर्याय है । यह सामान्य हुआ । सामान्यकी अपेक्षा अस्ति और विशेष पर्यायकी अपेक्षा नास्ति । इसी तरह विशेष पर्यायसे अस्ति तो सामान्यसे नास्ति । उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यसे द्रव्य अलग तो नहीं है । जैसे सुवर्णके उत्पाद पाया जाता है, सुवर्णके व्यय पाया जाता है और सुवर्ण ही ध्रौव्यरूपसे भी रहता है । उत्पाद द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक है तथा व्यय भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक है ।

उत्पाद, व्यय स्वतंत्र सत् नहीं है—सुवर्णमें पाया जाने वाला जो द्रव्य है वही सुवर्ण का स्वभाव है । कोई नवीन पर्याय सुन्नरके निमित्तसे बनी तो भी उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य हमेशा चल रहा है । उत्पाद व्यय होनेसे सुवर्णका अस्तित्व हुआ । कर्ता, करण, अधिकरण रूपसे जो सुवर्णमें पीतत्वादि व कुण्डल है उसने कर्ता, करण, अधिकरण रूपसे ग्रहण किए हैं, कुण्डल, कटक और पीतत्वके स्वभावको ग्रहण किया है, इन प्रवृत्तियोंसे युक्त जो सुवर्ण है उसके उत्पाद से युक्त जो अस्तित्व है वह सुवर्णका स्वभाव है । मैं परिणमता चला जा रहा हूं और मेरे द्रव्य, गुण, पर्याय स्वतंत्र सत् हैं सो नहीं है । त्रयात्मकतासे अस्तित्व है जो सिद्ध हुआ वह द्रव्यका ही स्वभाव है । लक्ष्यमें लानेके लिए उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यकी सिद्धि है । यह सब जीव द्रव्य आदि उनसे अलग नहीं हैं ।

कुछ भी-करो द्रव्य सब अलग-अलग हैं—सुल्तानपुर चिलकाना (सहारनपुरके पास का कस्बा) में दो भाई हैं । वे एक साथ ही खाते, सोते, उठते, खेलते, व्यापार आदि करते हैं । यह सब होते हुए भी वे अलग-अलग हों, ऐसे द्रव्यान्तर अलग-अलग हैं । गुण, पर्यायसे

उनकी सिद्धि है। जैसे कदाचित् दूसरेका रहना एक भाईसे और दूसरेकी भी सिद्धि एक भाई से हो सकती है, फिर भी अस्तित्व जुदा-जुदा है। कोई द्रव्य, गुण, पर्यायोंके बिना रह जाय सो बात नहीं है। मृत्युमें तो व्यवहारका भी अन्तर पद हो जायगा। साधर्मी जनों व कुटुम्बी जनों सभीमें अन्तर होता है। किसीके यहां गये तो वहींपर कहेंगे हमारा अमुक भाई, पुत्र आदि है। जहाँ देखो वहाँ कल्पना अपना माननेकी कर ली है। कोई किसीसे चाचा, दादा, फूफा आदि कहता है, लेकिन यह असत्त्व कल्पनायें हैं। ममत्वकी पाठशालायें नहीं हैं, किन्तु ममत्व संस्कारवश पैदा होता है वह अनादिकालसे चल रहा है। समताका उद्यम भी किया जाता है, फिर भी उसमें पीछे रहा तो मुझ जैसा मूर्ख कौन होगा? जहाँ जाता है वहाँ कल्पना कर लेता है। एक गांवमें एक मनुष्य था जो कहीं भी जावे वहाँ अनाप-सनाप बक देता, किसीको कुछ महत्त्व नहीं देता। तो उसको सभी मूर्खराज कहने लगे। जो कहे सो मूर्ख-राज! कहाँ जा रहे, कहाँसे आये? मूर्खराज! फलां कार्य हो गया आदि। यह सुनते-सुनते वह परेशान हो गया, तो गांव छोड़कर अन्यत्र चल दिया। दो मील आगे जानेपर रास्तेमें एक कुंआ मिला। वहाँ वह कुयेंमें पैर लटकाकर पारके ऊपर बैठ गया। इतनेमें एक अपरिचित आ रहा था, वह बोला—मूर्खराज! कैसे बैठे हो? तो मूर्खने उसे गले लगाया और प्रेमसे बोला—तुमने हमें कैसे पहिचान लिया? तब वह बोला कि तुम्हारा कार्य देखा सो बता दिया। मरनेके साथ भी तो मूढ़ताका यह संस्कार जावेगा। मूर्खताके काम करनेपर वह साथ ही जावेंगे। यह कार्य कौन सिखाता है? यह बिना सिखाई विद्या अगले भवमें भी साथ जायगी। जब तक तत्त्वज्ञान नहीं करते तब तक बेचैनी सुभती ही रहेगी। लेकिन सच्चा उपाय जो है उसका आचरण नहीं करता। यह जो समागम है वह तो बिछुड़ने वाले हैं। प्रत्येकमें अस्तित्व समाप्त हो जाते हैं। यह तो सदैव बने रहते हैं। जीवनके खेलमें जो आत्मलीनताकी बाजी जीत जावे उसीका जय घोस होगा। अन्य घोस कोई कार्य नहीं देंगे।

उत्पाद, व्यय बिना ध्रुव कोई चीज नहीं—पहले बताया था कि द्रव्य, गुण, पर्यायों से युक्त द्रव्यकी सिद्धि है और द्रव्यसे गुण, पर्यायोंकी सिद्धि है। इसके लिए तीनका वर्णन किया। अब बताते हैं कि उत्पाद, व्ययसे ध्रौव्यकी सिद्धि है, सुवर्णका उत्पाद, व्यय ध्रौव्यपन से भिन्न नहीं है। सुवर्णका उत्पाद जैसा कड़ा बना था तथा कुण्डलका व्यय तथा सुवर्ण अगली पर्यायमें भी है तथा वही पूर्वकी पर्यायमें भी था। देखा जाय तो वह सुवर्ण कटकके अतिरिक्त और कुछ नहीं है, पीतत्वसे भिन्न नहीं है। द्रव्यान्तरों और गुण पर्यायोंमें इतना ही अंतर है। जैसे सुवर्णके उत्पादमें ध्रौव्य सुवर्णसे न्यारा नहीं है। सुवर्ण ही उन सबको ग्रहण कर रहा है कर्ता, करण, अधिकरणके रूपसे। कर्ता आत्माके रूपसे उन स्वरूपोंको ग्रहण करके रह रहा है। उस सुवर्णके अस्तित्वसे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सिद्ध है और उत्पाद,

व्यय, ध्रौव्यसे सुदृढ़ सिद्ध हुआ, यह कर्तार स्वभाव है, द्रव्यका स्वभाव है। इसी तरह द्रव्य के उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य द्रव्यसे जुड़े नहीं हैं। उन उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यके स्वरूपोंको यह ग्रहण कर रहा है। उनका कर्ता, करण, अधिकरण द्रव्य ही है। उस द्रव्यके अस्तित्वसे उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यकी सिद्धि है और वह अस्तित्व द्रव्य ही है। एक सत् है और प्रतिसमय परिणमता रहता है। जो लक्षण रूपसे कहे हैं, वही वह सब आत्मभूत हैं अथवा उत्पाद, व्यय, ध्रौवरूप जो द्रव्यका अस्तित्व जाना वह द्रव्य है। उनसे जो अस्तित्व समझा गया वह द्रव्य का स्वभाव है, निश्चयनय है।

शब्द सभी विशेषक होते हैं, अतः शब्दोंसे तत्त्व अभिधेय नहीं होता—शब्द जो बोलोगे वह विशेषता बताता है, वस्तु सामान्यको नहीं कह सकता। जैसे कमंडलु, कमण्डलूका अर्थ है—कं मण्डते यत्र अर्थात् जिसमें जल शोभित हो। बोलो यह विशेषताकी ही तो सूचना है। और भी शब्द बोल लो और धातु, व्युत्पत्ति आदि अर्थ निकाल लो विशेषता ही प्रकट होगी। एक दृष्टि वह है जो जानते रहो और कुछ नहीं कह सकते। जैसे आत्माको बोलो तो उसका कोई शब्द नहीं है, लेकिन जिन्होंने समझ रखा है उन्हें किसी विशेषतासे बोलो जानेंगे विशेष्यको। आचार्योंने उनमेंसे जो छांटा है उनके शब्दोंमें आत्माका ज्ञायकस्वरूप ही मिलेगा। ज्ञायकस्वरूप कहकर भी द्रव्यको जाना। उसमें भी द्रव्यके एक जाननरूपको लिया है अथवा कोई शब्द ही ऐसा नहीं कि जिससे शुद्ध आत्माको जो परसे विभक्त है उसे कह सकें। प्रत्येक परसे भिन्न है। कोई किसीमें मिलता नहीं इसलिए तो द्रव्यका स्वरूप अब तक कायम है और अभी यह बताया है। प्रत्येक पुद्गल परमाणु भी कोई किसीमें नहीं मिलता, उनकी जुड़ी-जुड़ी सत्ता है। मैं मैं हूं, आप आप हैं, लेकिन विपरीत धारणा मान रखी है। उन्हें समझना चाहिए। सब पृथक्-पृथक् हैं, यह जाननेपर भी राग रहता है। कुछ समय को वह गलती है। अन्य कार्य करते हुए भी शुभोपयोगमें लगे हैं। इतनी जो वृत्ति हो रही है वह गलती है। यह हिसाब तो लगता ही जायगा। एक आनाकी भी गलती है वह सही न कहलाकर गलती ही कहलावेगी। पुण्यके प्रभावसे इन्हें धन मिला तो यही प्रतीत होता है कि यह ज्ञानका फल है। नेतागिरी, धनाढ्य घरमें जन्मना, सर्व वैभव सुख सम्पन्नता आदि जो भी सामग्री उपलब्ध हुई है वह सब ज्ञानका फल प्रतीत होता है, किन्तु वह ज्ञानका महत्त्व क्यों है? जिसके होनेपर राग भी इतना महत्त्व पा गया। उससे ज्ञानकी महिमा जानी गई। जिस पदको सम्यग्दृष्टि ही पा सकते हैं अन्य नहीं, वह भी ज्ञानकी महिमाको प्रकट करता है। इतना बड़ा महत्त्व शुभ राग भी दिखा देता है, फिर भी ऐसा है जो वह सांसारिक बात है रागके फल हैं। यह विशेष जान लेवे भीतरसे बोध हो जावे तो इनमें आसक्तिसे नहीं लगेगा तथा उत्कृष्ट पदकी अभिलाषा, धनसम्पन्नता आदिमें भी नहीं रमेगा, यह सब तत्त्वज्ञानपर

अवलंबित है। ऐसा ज्ञानी कोई नहीं मिलेगा जो विषयोंमें आसक्ति रखता हो। ऐसा भी ज्ञानी नहीं मिलेगा जो अपराधीको क्षमा नहीं करेगा, जरूर कर देगा। रामको युद्ध करना पड़ा। रावण उस समय बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर रहा था। कुछ मनुष्योंने आकर रामचंद्र जी से कहा, अगर रावणको बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हो गई तो काफी अनिष्टकी संभावना है। अतएव उसमें विघ्न कर दिया तो वह नहीं हो सकेगी। रामचंद्रजी ने यह बात सुनकर सबको मना किया, फिर भी बावले मनुष्य नहीं माने, और रामके सेवक होनेसे भक्ति दिखानेके लिए रावणकी विद्यामें बाधा करने पहुंच गये। तब जो विद्या देरसे सिद्ध होने वाली थी वह बहुरूपिणी विद्या रावणको और जल्दी सिद्ध हो गई। कोई किसीका अपराध क्षमा नहीं कर सका और जिन्दगीमें बदला लेनेके ही विचार बनाये रखे तो जैनधर्म पाकर सीखा क्या है? अगर इतनी क्षमता नहीं आ पाई। प्रत्येक जीव अपने परिणाममें है, अतएव सोचना यह चाहिए कि प्रत्येक दुःखमें हमारा अपराध है, निमित्त पाकर वह जो कुछ करता है तो करो। मैं जो कुछ करता हूं उससे अन्यको लाभ हानि क्या? पूर्वकृत कर्म भी कोई नहीं टाल सकता, तब पुनः यह थोड़ा अपराध करनेपर अन्य जन मुझपर अधिक क्षोभित भी होवें तो हमारी निर्जरा ही है शान्तभावसे सहन करनेमें।

विवादका कारण प्रायः बातकी हठ—संसारमें जितने भी युद्ध एवं आपसी लड़ाई होती है वह सब एक बातके ऊपर होती है। उसने हमसे यह वचन कह दिया, अच्छा इतना बड़ा भारी मेरा अपमान कर लिया, यही भावना युद्धकी सृष्टि करती है। अनुचित वचन कहना उसका अज्ञान था, लेकिन यहाँ क्षोभ क्यों करना, इससे कुछ बनता नहीं है। राजा राणा अन्नपति हाथिनके असवार। मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार॥ यह निरर्थक का मद मोह कब तक काम आवेगा? तुम्हारा अगर कोई कुछ अनिष्ट या इष्ट करता है तो वह चित्त यहाँ जुटाया जावे। सर्व पदार्थ विनाशीक हैं। मेरा शरीर भी यहाँ नहीं रहेगा, फिर किसके लिए विनाशीक है? मेरा शरीर भी यहाँ नहीं रहेगा, फिर किसके लिये युद्ध या राड़ा किया जाय। छोटे बच्चोंका दिल कितना विशाल होता है, वे आपसमें लड़-भगड़ लेंगे, यहाँ तक कि एक दूसरेको दाँतोसे काट लें, मार-पीट कर दें तथा घर चले जावेंगे और फिर आकर मिलकर एक हो जावेंगे एवं साथ-साथ फिर खेलना शुरू कर देंगे। क्या हुआ था, क्या किसीने मेरे प्रति किया? यह ज्ञात नहीं। जैनधर्ममें सबसे बड़ी विशेषता क्षमा की भी है। जब छोटेसे छोटे जीवपर भी दया परिणाम रखना चाहिए तब क्या मानवमात्र जो अपने भाई हैं उनसे क्या प्रेमपूर्वक व्यवहार नहीं करना चाहिए? पहली बातोंका राग तथा आगे मिलने वाले रागका विलास ही तो मनमें चल रहा है, भूत भविष्यत तथा वर्तमानका मोह सुमार्गपर नहीं चलने देता। भैया! प्रायः सभी चाहते हैं कि विकल्प हटे। किसीने कहा कि तुम

ब्रह्मके अंश हो, उसकी भक्ति करो तो क्रोध, राग, द्वेष, मोह, माया, ममता सभी दोष भाग जाते हैं। मानो ब्रह्मपर दृष्टि डाली तो सर्व कार्य सिद्ध हो गये, किन्तु वहाँ भी ज्ञाता ज्ञेयका विकल्प ही बनाया। तुम भी तो ब्रह्म हो। अद्वैत वालोंका एक ब्रह्म है। आप सब जुदे-जुदे ब्रह्म हो, स्वतंत्र हो, कालकृत परिणामन कर रहे हो। यह सब गुजर रही है, क्रोध, मान, माया आदि ब्रह्मके अशुद्ध अंश हैं। उपयोग भी ब्रह्मका अंश है। आत्मामें क्या सत्त्व है, वह भी तो ब्रह्म है। अपना उपयोगका साधन जो मूलभूत आत्मा उस तत्त्वकी उपासना करो तो सब क्रोधादि विकल्प भी हट जावेंगे। यह गौण सफलता तो मिलेगी ही, किन्तु यहाँ ज्ञाता ज्ञेय उसी अस्तित्वका है। वह स्थिति यहाँ ठीक बैठ जावेगी। कविवर पं० दौलतरामजी ने छहठालामें क्या ही उत्तम कहा है—‘चित् पिंड चंड* अखंड सुगुण करणु च्युत पुनि कलनितैं।’

मैं सबसे निराला अखण्ड चिन्मात्र हूँ—यह बात द्रव्य गुणपर्यायिके स्वरूपको जानने से ही तो आती है। मैं क्या हूँ? मैं केवल शुद्ध चैतन्यका पिटारा हूँ, उसमें किसीका समावेश नहीं है। बस, एक उसके ही स्वरूपको देखो, देखते हुए सब बातें कह रहे हैं। फिर भी परमें उपयोग न चला जाय इसकी सावधानी रखना कठिन है व बाह्य अर्थके रागमें असंभव है, अतएव अनेक बाह्य आडम्बरोंको हटाकर नग्न दिगम्बर मुद्रा धार करके उस केवल ज्योतिको पाया जाता है, जो सिद्ध भगवानका गुण है। यह द्रव्य गुण प्रत्येकमें समाप्त नहीं होते। यथा द्रव्येण वा क्षेत्रेण वा कालेन वा भावेन वा उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे पृथक् न पाया जाने वाला सुवर्ण अकेला है। इसी सुवर्णने कर्ता, करण, अधिकरणके स्वरूपको ग्रहण किया है। इन उपायोंसे जिसकी सिद्धि है वह उत्पाद, व्यय ध्रौव्यसे निष्कासित इसका ही स्वभाव है। उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे पृथक् न पाया जानेसे कर्ता, करण, अधिकरणका जो ग्रहण हुआ वह द्रव्यका स्वभाव ही है। इस गाथासे यह सिद्ध हुआ—द्रव्यका अस्तित्व है, सद्भाव है और वह स्वभाव उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाला है। वह उसी रूप है अन्य तरहका नहीं है। यह जगत जो प्रवर्तमान हो रहा है वह कर्ता कर्मरूप प्रवर्तमान है। उनपर द्रव्यके एक-एक स्वतंत्र स्वरूपको दिखलाया है। उसपर दृष्टि लगाना चाहें तो उसीपर दृष्टि लगावें, उसपर दृष्टि लगती है। एक दर्पण है, उसके सामने १० बच्चे खड़े हैं। देखने वाला दर्पणमें व बच्चोंमें उपयोग देकर भी बच्चोंको ही ग्रहण कर सकता है या वह बच्चोंके विकल्पको छोड़कर केवल ऐनकको ही ग्रहण कर सकता है, वहाँ भी बच्चोंको बता सकना ऐनकका यह स्वभाव नहीं है वह तो बाह्य साधन का निमित्त पाकर इस रूप परिणाम रहा है। देखने वाला चाहे तो लड़कोंपर दृष्टि न करके ऐनकको ही देख सकता है। उसकी छायाको भिन्न देखकर शुद्ध दर्पणको भी देखता है, सब तरह से निर्णय कर लेवे कैसी दृष्टिसे कैसा प्रभाव पड़ता है? ऐसे अनुभवसे उसने ऐनकके सद्भावको जाना है, केवल उसे सबसे विभक्त शुद्ध दर्पणके ग्रहण करनेका प्रयोजन है। द्रव्य गुण पर्यायोंका

स्वरूप जानना क्यों बतलाया, क्योंकि यह तत्त्वोंका मुख्य स्वरूप है। इसके बिना एक कदम भी नहीं चल सकते, इसको जाननेसे ही आत्मतत्त्वका ग्रहण होता है।

आत्मज्ञान ही प्रथम धर्म है—मान लो हम रात्रिको नहीं खाते हैं तो अन्यत्र रात्रिमें खाने वाले भी मिल सकते हैं। पानी छानकर पीते हैं, यह तो जीवनमें प्राकृतिक तौरसे ही आना चाहिए। अन्य भी रात्रिमें रात्रिभोजनका त्याग एवं पानी छानकर पीना कर सकते हैं जिस उदारताको अपन बर्तते हैं, उसे अन्य भी कर सकते हैं। इसी तरह दया, संयम पालना, ब्रह्मचर्यसे रहना, त्यागावस्था अपनाना, धैर्य धारण, कूटनीतिसे कार्य नहीं लेना, असत्यको जीवनमें स्थान नहीं देना, सत्यको कहनेकी बजाय स्वयं जीवनमें उतारकर बताना उसी रूप बन जाना इत्यादि बातें जैन एवं अन्य मतावलम्बी भी कर सकते हैं। लेकिन इस निर्बाधित कांट छांटके कहे बिना जैनशासनके तत्त्वज्ञानको नहीं जान सकते तथा दूसरे भी इसके बिना द्रव्यका सच्चा स्वरूप बतानेमें सर्वथा असमर्थ हैं। इस सबको करते हुए भी हमें आगे जाना चाहिए, जहाँ स्वतत्त्वको प्राप्त कर सकें। द्रव्यका स्वरूप अस्तित्व है। उस अस्तित्वको दो तरहसे देखा जा रहा है—(१) अस्तित्व सामान्य, (२) पदार्थगत अस्तित्व। अभी व्यक्तिगत अस्तित्वका वर्णन था। वह गुण वाला, पर्याय वाला है—उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे सहित है। वह अवान्तर सत्तासे युक्त था, अब महासत्ताका वर्णन करते हैं।

इह विविहलखणाणं लखणमेगं सदित्ति सव्वगयं ।

उवदिसदा खलु धम्मं जिणवरवसहेण पणणत्तं ॥६७॥

द्रव्य लक्षणोंका प्रतिनिधि—धर्मका उपदेश करने वाले श्री जिनवरवृषभदेवने प्रज्ञापन किया है कि इन सब नाना लक्षणोंमें “सत्” यह एक लक्षण सर्वगत है अर्थात् सर्व लक्षणोंका लक्षण है व सब पदार्थोंका लक्षण है। यह लक्षण सर्वव्यापक है। स्वरूपास्तित्वकी विवेचना साधारण लक्षणोंसे भी की गई तो भी भिन्न-भिन्न स्वरूप या सत्ता सब द्रव्योंकी है ऐसी सीमा प्रत्येक द्रव्यकी लक्ष्यमें आ जाती है, परन्तु अस्तित्वसामान्य अर्थात् सादृश्यास्तित्वकी अपेक्षासे देखो तो सादृश्यास्तित्व सारी सीमाओंको तोड़ देता है। वह सर्वगत व सामान्य लक्षणभूत अवबोधमें आता है, किन्तु निरपेक्ष स्वरूपास्तित्व और निरपेक्ष सादृश्यास्तित्व वस्तुके स्वभाव नहीं है। भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य इस प्रकरणसे शुरू करते हैं कि अभी कितने प्रकारके लक्षण कह आये हैं? गुणवान्, पर्यायवान् एवं उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य वाला जो स्वभावको न छोड़े वह द्रव्य है। जितनी तरहसे द्रव्यके लक्षण कहे गये हैं उनमें सर्वगत कौन-कौनसा है याने जो सबमें चला जाय तथा सबकी ओरसे एक ही प्रतिनिधित्व कर सके।

द्रव्यके लक्षणोंका प्रतिनिधि “सत्” लक्षण है—जिनेन्द्रदेवने उा सबमें एक लक्षण प्रधान सत् कहा है। ‘सत् इति ।’ जितनी भी विशेषतायें हैं वह सब “५” के ऊपर चलेगी।

सादृश्य अस्तित्व जानना होता है तो पहले स्वरूपास्तित्व जानना पड़ता है। जैसे गौओंको जानना है तो पहले एव-एक गौ को जानना पड़ेगा, वह चार पैरकी होती है, पशु विशेष होता है आदि। पहले गायको तो जाना नहीं और गौ जातिको जाना जाय, यह कैसे हो सकता है? उसी तरह मनुष्योंको जाननेके लिए मनुष्य विशेषको जानना पड़ेगा तब मनुष्य जाति समझमें आवेगी। व्यक्तियोंकी सादृश्य व्यक्तित्व जाति कहलाती है। उस अस्तित्व जातिको समझनेके लिए महासत्ताको समझ लेना आवश्यक है। इस समस्त विश्वमें सारे द्रव्य स्वरूप अस्तित्वसे ही लक्ष्यमें आते हैं। आत्माका अस्तित्व आप ही समझमें आता है। जितना भी विस्तार है अवान्तर सत्ताका एक आप, एक आप आदि हैं वह नाना हैं यह तो हुआ पदार्थगत व्यक्तित्व और महासत्ता सादृश्य सत्ताका नाम है। जैसे गौ और एक गौ जाति अर्थक्रिया व्यक्तिमें होती जातिमें नहीं, मानो हरिजन सफाईका काम करते हैं। तो वह हरिजन व्यक्ति करते हैं, कोई जाति तो नहीं करती है। वह कहे कि हमें सफाई नहीं करना तो हरिजन जाति सफाई कर देगी। हाँ उस सादृश्य जातिका नाम हरिजन है। वह व्यक्ति विशेष मिलकर हरिजन हुए, वह एक-एक होकर नाना हैं व जातिमें एक हैं। इस अपेक्षासे कह लो जातिने बंद कर दिया। हमारा स्वरूपास्तित्व हममें है, आपका स्वरूपास्तित्व आपमें है। आपका और हमारा स्वरूपास्तित्व जुदा-जुदा है। स्वरूपास्तित्वकी जानकारीके बिना मोह छूटना कठिन है। समस्त द्रव्यान्तरोसे जुदा रह करके स्वरूपास्तित्व रहता है। आप हममें मिलकर रहते हैं या जुदे-जुदे होकर रहते हैं? पिताकी आत्मा पुत्रसे जुदी रहती है या इकट्ठी होकर रहती है। प्रत्येक समस्त द्रव्यका स्वरूप द्रव्यान्तरोसे जुदा रहता है।

सब द्रव्य अपनी-अपनी सीमाको बनाये रहते हैं—जैसे इसका अस्तित्व इतना ही है, वह अपनी सीमाको बनाता है। अगर हमारा अस्तित्व और आगे पहुंच जावे तो हमारी सीमा क्या रही? खेतोंपर मेंढ डालकर सीमा बनाई जाती है कि यह एक खेत इतना है और एक यह इतना है, लम्बाई चौड़ाईमें इतने गज है। यह सीमा तो मनुष्यकृत या कल्पित हुई तो हमारी सीमाको कौन बनावेगा? प्रत्येकमें स्वतः सीमा बनी हुई है। यह इतना है, यह इतना है आदि। प्रत्येकमें स्वरूपास्तित्व है। मेरा अस्तित्व मुझमें है, आपका अस्तित्व आपमें है। अपना-अपना परिणामन आप ही हो रहा है। जो परिणामन है वह आत्मीय स्वरूपास्तित्वमें है। केवली भगवान बाहर भी सद्गुहात करते हैं, किन्तु ऐसा नहीं है कि वह अपने अस्तित्व की सीमाके बाहर फैल जावे। यह अवान्तर सत्ता है, लेकिन सीमा बनाई गई कि यह द्रव्य इतना ही है। एक क्षेत्रावगाही शरीर और कर्मका सम्बंध है। यह सम्बंध पहले भी था, अब भी परम्परया वैसा ही रहता है। आत्माका अस्तित्व कर्म न, कर्मके आ जानेसे नहीं बनता है और न बिगड़ता है।

प्रत्येक जीव सर्वत्र जुदे-जुदे हैं—एक निगोदके शरीरमें जो अंगुलके असंख्यातवें भाग मात्र है, उसमें असंख्याते जीव एक साथ जन्मते और मरते हैं, फिर भी उन सबका स्वरूप अस्तित्व जुदा-जुदा है। यह सादृश्य अस्तित्वका वर्णन है। सब द्रव्योंके विस्तारको ओभल करके जैसे सब मनुष्योंमें मनुष्यता मानते हैं, तो सब मनुष्योंकी व्यक्तिगतता ओभल कर दी। कोई कहे कि 'एक मनुष्यको लाओ' तो लाने वाला बच्चा, युवा, वृद्ध किसीको भी ला सकता है। मंगाने वाला यह नहीं कह सकता कि इसे क्यों लाये ? जिसको लानेको कहा था उसकी पूर्ति इसके लानेसे हो गई। जिस बातको कहा था, उसमें मनुष्य जाति तो प्रकट हुई और व्यक्तिगतता ओभल हो गई। सब द्रव्योंमें इस तरहका ओभलपना पाया जाता है। प्रत्येक द्रव्य जुदे-जुदे हैं। एक दृष्टिसे उनकी विविधता ओभल होकर समझमें आ जावे एकत्व जो कि उनकी साधारण दृष्टिको लक्ष्य करती है। जब तक असाधारण खोजते हैं तब तक तो विकल्पता रहती है, किन्तु युवा, वृद्ध तथा बच्चेको समान करके देखें तो वह समानता ही नजर आवेशी। अगर यह विचित्रताको खत्म कर दें और अस्तित्वको पकड़े रहें तो प्रत्येक द्रव्यमें पहुंचा हुआ वह अस्तित्व सामान्य सबमें प्रतिफलित होवेगा। जैसे मालाकी डोरी सब दानोंमें पहुंची हुई है। जैसे हममें आपमें सबमें अस्तित्व है। जब एक महासत्तापर दृष्टि डाली तो सब सीमायें समाप्त हो जाती हैं। इसलिए वह लक्षण सादृश्य अस्तित्व हो गया। वह एक है, उसमें नानापन नहीं देख सकते महासत्तामें। इस प्रकार सत् ऐसा कहनेपर वह लक्षण सब द्रव्यको छू लेता है। सत् रूपसे जाना अर्थात् सबका स्पर्श कर लिया, ऐसा परिच्छेद कर लेनेपर सबको जान लिया।

ॐ तत् सत् परमात्मने नमः—'ओम् तत्सत्' अत्यधिक प्रचलित है। ये तीन शब्द हैं। इसके कितने ही अर्थ निकलते हैं। ओं में चौबीस तीर्थंकर भी आ जाते हैं। मुख्य पंचपरमेष्ठीको लेना है उसका स्मरण करके तत् सत् यदि वह पंचपरमेष्ठी सत् हैं, सार हैं, श्रेष्ठ हैं, सर्वदर्शी हैं, यह अर्थ हुआ। ओं सब शब्दोंका प्रतिनिधि शब्द है। तत् यह स्मरणात्मक है, ज्ञानपर बल करता है और सत् समस्त द्रव्योंका प्रतिनिधि है। कुल तीन बातें हैं—शब्द, ज्ञान और पदार्थ। शब्दका प्रतिनिधि ओं हुआ, ज्ञानका प्रतिनिधि तत् और पदार्थका प्रतिनिधि सत् हुआ। जैसे चौकी अक्षरोंमें लिख लेने पर या बोलने पर शब्द चौकी हुआ, जिसे समझा वह ज्ञान चौकी हुई तथा आकार विशेषसे अर्थ चौकी हुई या चौकीकी अर्थ क्रिया जहाँ हो वह अर्थ चौकी है। शब्दभगवान्, अर्थभगवान् और ज्ञानभगवान्। भगवान्को विषय करके जो बना वह ज्ञानभगवान् तथा अनन्त चतुष्टय युक्त जो है वह अर्थभगवान् हुआ और 'भगवान्' नाम विशेषसे ऊच्चारण करना यह शब्दभगवान् हुए। हम प्रकटमें निश्चयसे अर्थभगवान्को जानते हैं या शब्दभगवान्को जानते हैं या ज्ञानभगवान्को ? यहां जो विषय लेकर ज्ञेयाकार बना अर्थात् मैं जिसके तादात्म्यको ग्रहण करता हूं उसकी

निश्चयसे क्रिया बताई जाती है तथा अपने अस्तित्वको छोड़कर क्रिया बताई जाती है वह व्यवहार है। निश्चयसे ज्ञानभगवान् आत्मा है। जो चार घातिया कर्मोंसे रहित है वह अर्थ-भगवान् है तथा जिस श्रेष्ठ उच्चारणसे पुकारा जाय वह शब्दभगवान् है, जैसे परमात्मा, ईश्वर, भगवान् चैतन्यप्रभु आदि शब्द हर तरहके आत्माको यह पर्याय संयुक्त ज्ञान है। सत् सर्वार्थ परामर्शी है। जैसे कहें जैन बालक, जैन युवक, तो बालक ही या युवक ही आये तथा जैन ही कहें तो सब जैनोंको स्पर्श कर लिया।

सर्व तात्पर्य निजस्वरूप विज्ञान है—यहाँ सादृश्य अस्तित्वकी बात चल रही है। वैसे तो सर्व कथनका तात्पर्य भेदविज्ञानको लक्ष्यमें देनेकी बात है। जब स्वरूपास्तित्व समझमें आवे तब भेदविज्ञान नहीं बँटेगा। जो कुछ परिणमन बनेगा वह आपमें ही बनेगा। मैं कितनी वेदनामें हूँ, लेकिन वह वेदना मुझे ही सहन करनी होगी, भले ही सन्तोष दिलाने वाले ५० बैठे रहें। मंत्रसे भी अच्छे हो जावें तो भी उसका अस्तित्व वहीं तक रहेगा। यह सब एक स्वरूपास्तित्वको लिए हुए है। इन कल्पनाओंने जिस चाहको स्वामी मान लिया, वस्तुतः कोई स्वामी है नहीं, प्रत्येक एक दूसरेसे बिछुड़ते रहते हैं, रुलते रहते हैं, फिर भी चैनका भ्रमसे अनुभव करते हैं। जो भी आया वह बिछुड़ा, पर्यायमें आये वहाँसे बिछुड़े, कालसे बिछुड़े, भाई बंधुवोके सम्पर्कमें आये वहाँसे बिछुड़े, त्यागियों, विद्वानोंका सम्पर्क बिछुड़ा, शरीरका पुद्गल परमाणु-परमाणु बिछुड़ जाता है, किन्तु स्वरूपास्तित्व अब तक बिछुड़ा ही नहीं। वह सदैव अपने स्थानपर रहेगा। अपने-अपने अकेले कर्मफलको भोगते हुए संसारी जीव चले आ रहे हैं। पदार्थस्वरूपके विपरीत ज्ञानसे मुख मोड़ना ही समाधितत्त्वमें आना है। जिससे समतापरिणाम रूपी स्वच्छतामें आना होता है। कहीं दो का विकल्प एक परिणमन कहलाता हो सो नहीं कहला सकता। प्रत्येक द्रव्य अपनी-अपनी सत्ता लिए हुए है। उन सबमें अस्तित्व सामान्य है जो अपना-अपना लिए है। साधारण गुण सबमें समाया है। एक जैन, सादृश्य जैन, सादृश्य अस्तित्व एक है, किन्तु वास्तवमें याने अर्थक्रियाकी दृष्टिसे सब जुदे-जुदे हैं, कोई किसीका स्वामी नहीं है। शरीरके परमाणुका भी कोई अन्य स्वामी नहीं है।

ज्ञानी जीवका चित्त भोगोंमें कैसे रहे—कोई भी कैदी बढ़ियासे बढ़िया कमरेमें रहने पर, अच्छा भोजन मिलनेपर भी स्वतन्त्र सुखी अनुभव नहीं कर सकता, न यह सोचता है कि यह मेरा घर है, उससे छुटकारा पाना चाहता है। लेकिन हम इस संसाररूपी कैदखानेमें ठहर कर सुख मान रहे हैं। जमादारके हुक्ममें चल रहे हैं। अनादिकालसे रहते हुए भूठी आदत पड़ गई कि यह तो मेरा ही घर है। कोड़े खाता जाता, चक्की पीसता जाता, पराधीन भोजन पाता जाता, सभय कुरमय कुछ भी कैसा ही मिले उसे छोड़ना नहीं चाहता। ओह ! कितनी बड़ी मूर्खता है ? यह मेरा है, यह मेरा है, यही जानकर रमण रुक रहा संसार कैदखानेमें,

निकलनेकी भावना ही रफूचककर हो गई, किन्तु भैया स्वरूपास्तित्वको तो देखो । अगर कोई भी स्वामी बन जाता होता तो संसारकी व्यवस्था ही नहीं बनती । किसी भी स्वरूपास्तित्वने क्या अपनी सीमा छोड़ी है ? वह तो सोचता है कि यह भी हो जाय तो अच्छा है । हमारे शरीरको जलानेपर छेदनेपर भी कोई सीमा भंग नहीं कर सकता । इसी तरह स्वरूपास्तित्वमें मैं वर्तमानमें हूँ और आगे भी रहूँगा ।

सत् ब्रह्माका यथार्थ परिचय करो—यहाँ सादृश्य अस्तित्वका वर्णन है । जैसे प्रत्येक पदार्थमें अपना-अपना अस्तित्व रहता है, उसका क्या स्वरूप है ? यह अस्तित्वका स्वरूप देखा तो वह सब जगह दिखा, यह देखनेसे एक जाति समझमें आई तथा जातिमें जो नानापना है उसमें एकको ग्रहण करनेसे व्यक्ति भी समझमें आया और यह अस्तित्व सर्व पदार्थोंमें मिला । अन्य मतावलम्बी भी मानते हैं, पदार्थ सर्वगत है तथा जैन भी मानते हैं कि पदार्थ सर्वगत है, अन्तर क्या रहा ? अन्य लोग तो अखण्ड व्यक्ति स्वरूप सत्को सर्वगत मानते हैं जब कि जैनोमें व्यक्ति स्वरूप सत्में सत् सत् इस प्रत्ययके कारण सर्वगत मानते हैं । यह अन्तर रहा, वहाँ अखण्ड व्यक्तिरूप सर्वगत है, यहाँ जातिरूप अस्तित्व लेना । अखण्ड व्यक्तिरूप सत् तो है और सर्वगत भी है, तो इसमें अन्तर नहीं होना चाहिए । जैसे चौकी यहाँपर है और हम यहाँपर हैं तो उसमें अन्तर नहीं होना चाहिए । जैनी भले कह दें कि पुद्गल सब जगह हैं तो अन्तर नहीं है, किन्तु सूक्ष्म स्कंधोंका अन्यको पता नहीं है । जैनोमें तो उनका अखण्ड सत् सर्वगत हो सकता है, किन्तु स्कंध पूर्ण लोकके होनेपर भी एक सत्, सर्वगत नहीं है । कुछ जैनका सहारा लें, सर्वगत सिद्ध तो हो ही जायगा । लोकाकाश कहीं भी खाली नहीं है । चौकीके अन्तरके बाद हम बैठे हैं, यहाँ अस्तित्व सर्व सत् हैं बीचके स्कंधोंमें होकर । परन्तु सर्वगत ऐसा नहीं मानना, वह जातिकी अपेक्षा सर्वसत्में है । यहाँ कुछ नहीं है तो वहाँ कुछ नहीं है जातिरूप सत् होनेसे गौ जाति ली । १०० गायें थीं, किसीने पूछा कि गौ जाति सर्वगत है या नहीं तथा यह सर्वगत कितनोंमें नहीं है या सबमें सर्वगत है ? वह अखण्ड व्यक्ति रूप नहीं है । जितनी गायें हैं उनकी सदृशता पाई जाती है सो गौमें रहने वाला धर्म सब गायों में है । यही गौ जातिकी सर्वगतता है । जो अस्तित्व है वह सर्वगत है, सर्वको छूने वाला है । अगर यह सादृश्य अस्तित्व न हो तो क्या अव्यवस्था हो जावेगी ? उस समय कोई सत् हो जायगा और कोई असत् हो जायगा । कोई किसी तरह, कोई किसी तरहसे प्रसिद्ध हो लेगा । अगर यह सादृश्य अस्तित्व न हो तो कोई किसी ढंगसे प्रवृत्त होगा, कोई किसी ढंगसे प्रवृत्त होने लगेगा । जैसे मनुष्योंमें सादृश्य मनुष्यत्व न हो तो कोई किसी तरहका मनुष्य कहलायेगा तथा कोई मनुष्यपनेसे रहित भी हो सकता है । कोई नहीं है, किन्तु ऐसा चिखता तो नहीं है । अगर सर्वपदार्थोंमें सादृश्य अस्तित्व है तो वह सत् है, कौनसा असत् है ?

सादृश्यअस्तित्वमें नानापन नहीं दिखता—अगर किसीने सब भाइयोंको जीमनेके लिए बुलाया और वह किसी का अधिक आदर करे और किसी का कुछ कम करे तो पंगत करने वालेको नाम रखेंगे कि भाई तुमने सब बिरादरी वालोंको बुलाया है, उनमें भेदभाव न करके सब समान हैं। यहाँ गरीब भी उतना आदर करने योग्य है जितना कि धनवान। यहाँ बिरादरीपन तो सबमें सदृश है। सादृश्य अस्तित्व सर्वगत है वह सब पदार्थोंमें पाया जाता है। अगर यह न हो तो असत्, सत् आदि यथा तथा बन जायगा, यह नहीं है। यह वृक्षके दृष्टान्तसे सिद्ध करते हैं। जब हम सादृश्य अस्तित्व पर दृष्टि डालते हैं तो नानापन दिमागमें नहीं ठहरता और जब स्वरूपास्तित्वपर दृष्टि डालते हैं तो एकता नहीं ठहरती है तथा एक एक पर दृष्टि डालनेसे विविधता रहती। तो बहुत प्रकारके वृक्ष हैं उनमें निजी निजी अस्तित्व है। अगर उनका विषयका अवष्टम्भ है तो नानापन उठ खड़ा होता है। नाना, बहुत प्रकारके हैं, इस दृष्टिसे वहाँ एकता दब जाती है। एकपना समझमें आता था वह एकत्व उत्थापित होता था वह दब गया। जैसे एक एक व्यक्तिपर दृष्टि करें तो बहुत प्रकारके द्रव्य हैं। उनमें अन्य अन्य विशेष लक्ष्य हैं। उसकी दृष्टि बनावें, यह अमुकका अस्तित्व है, यह पुद्गलका अस्तित्व है। अगर उनके स्वरूपपर दृष्टि देते हैं तो नानापन आता है तथा एकपन दब जाता है। सामान्य लक्षणभूत जो सदृश अस्तित्व है वह सत् सत् है ऐसा भाव आता है, उसके द्वारा एकत्व उठता था। उसमें अब एकपना नहीं रहता। सादृश्य अस्तित्वपर दृष्टि है तो नानापन नहीं रहता, एकपन रहता है। जिसमें विविधता है उसमें एकता नहीं और जिसमें एकता है उसमें विविधता नहीं है। जब एकतापर दृष्टि दो तो विविधता खत्म हो जाती है। स्वरूपास्तित्वपर दृष्टि देनेसे ही भिन्न स्वरूप दीखेगा। स्वामीपन जो है वह कल्पनासे ही तो मानते हैं।

ज्ञान चर्याका मुड़ाव कर देता है—एक १५-२० वर्षका लड़का है तो वह यह तो नहीं जान पाता कि मेरे अन्य कुटुम्बीजन या अन्यका मकान, धन वगैरा मेरा है, किन्तु वही लड़का किसीके द्वारा गोद ले लिया जाता है तो कहता है कि यह मेरा है। १ घंटेमें ही क्या से क्या अंतर हो जाता है? एक सेठजी थे। जब उनकी लड़की शादी योग्य हो गई, तब सेठ जी वर ढूँढनेके लिए बाहर गये। काफी देर तक कोई वर समझमें नहीं आया। बादमें योग्य वर मिल गया। जिसके घर वालोंसे सेठजी ने अपनी लड़कीकी शादी करनेका मन्तव्य प्रकट कर दिया। लड़के वालोंने भी स्वीकृतिसूचक उत्तर दे दिया। अब सेठजी घर आते हैं, तो अपनी धर्मपत्नीसे लड़कीकी शादी बाबत सब बात कहते हैं। यथा—उस घरमें इतने मनुष्य तथा धन, मकान, दुकानें आदि हैं। यह वार्ता लड़की छिपी-छिपी सुन रही थी। तो वह सुनते ही लड़के वालेके वैभवको अपना समझने लगती है तथा जिस घरमें पैदा होकर इतनी बड़ी हुई

उसके प्रति सब ममत्व हट जाता है। यह सब कल्पनासे ही तो ऐसा भाव हुआ है। लड़का, स्त्री, पति, पिता कोई भी हो, यह सब ममतासे अन्यको अपना-अपना मान रहे हैं।

ममता ही क्लेशकी जननी है—अगर हम ममत्व न करें दुःख तथा पीड़ा होनेपर भी तो दुःख तक अनुभवमें नहीं आता। युद्धमें हाथ पैर तक भी घायल हो जाते, किन्तु उसे वहां युद्धके अतिरिक्त और कुछ नहीं दिखता, बादमें देखनेपर प्रतीत होगा, शरीरका इतना हिस्सा खराब हो चुका। यह मेरा है, मैं दुःखी हूं, ऐसा ममत्व न आवे तो दुःखका कोई कारण नहीं, यह सब कल्पनाका स्वामित्व सम्बंध लगाया है। जिससे मेरा मेरा चिल्लाता फिरता है यह कुछ भी काम न आवेगा, सब यहीं पड़ा रहेगा। दूसरेको प्रसन्न करनेके लिए भाव बनाता रहता है, यह भाव मोह छूटनेपर जायगा। मैं मालिक कैसे बन गया, सत पदार्थ अकेले-अकेले पड़े हैं, कोई किसीका स्वामी नहीं है। कितनी ही तृष्णा क्यों न बढ़ा ली जाय, मरते समय सब छोड़ देना पड़ते हैं। जो संयोग हुआ है वह सब छोड़ देना पड़ेगा। जब भी भला होगा तब समतासे होगा। जीते समयमें समाधि (समता) धारण की तो मरते समय भी होगी। अगर जीते समय समाधि न सीखी और यह सोचा—जब मरणके दिन नजदीक आवेंगे तब पंडितको बुला लेंगे या त्यागियोंके सम्पर्कमें पहुंच जावेंगे, यह अन्तिम समयकी सब बातें प्रायः असंभव हैं। समाधि जीवन चलता रहा तो अन्तिम समय अच्छा ही होगा। इसी कारण इस प्रवचनसारमें चारित्र्य अधिकारकी भी गाथायें हैं, किन्तु वैराग्य उत्पन्न करनेके लिए चारित्र्य अधिकारकी गाथाओंसे ज्ञेयतत्त्वाधिकारकी गाथायें कम नहीं हैं।

ज्ञानीका वैराग्य अटल रहता है—ऊपरी वैराग्यसे लौट सकता है, किन्तु वस्तुस्वरूप का यथार्थ ज्ञान होनेके बाद नहीं लौट सकता, क्योंकि वह सच्चा है। यथा—स्वप्नमें सर्प देखा और जागृतावस्थामें सर्पाकार रस्सी दिख गई तब तो दिलमें यकायक घबड़ाहट पैदा हुए बिना नहीं रहेगी। लेकिन जब रस्सीका सही ज्ञान हो जावेगा तो उससे कोई पुनः पहले जैसा घबड़ानेके लिए कहे तो क्या वह कर सकता है? उसी तरह द्रव्यका यथार्थ स्वरूप जान लेने पर यह फल होता है। स्वरूपास्तित्वपर दृष्टि है एवं उसमें उपयोग जम चुका है तो मानसिक घबड़ाहट पैदा नहीं होती। जो परको स्वामी मान रहा था वह विश्वास छूट जाता है तथा कौन पदार्थ कितना है, कैसा है, किसलिए है? वह विषय ही लक्ष्यमें रह जाता है वैराग्य आनेके लिए। इसकी प्रतीति बिना करीब इसी तरह वैराग्य होता है। कोई कहे कि हमें तिथि सोच लेने दो तब वैराग्य आवेगा। तिथि आवेगी तब वह संस्कार किया जायगा। तिथि वैराग्यकी कारण नहीं है, वह तो अचानक कौनसा निमित्त पाकर परिणामोंमें उधेड़-बुन मचा देवे तथा जीवनमें कल्याणके प्रति उत्कृष्ट लहर उठ खड़ी होवे। तीर्थंकर या चक्रवर्ती एवं अन्य महापुरुष विरक्ति तिथि देखकर हुए थे या अचानक हुए थे? वह तिथि देखने नहीं बैठे थे।

उस समयके नक्षत्र दिये होंगे, उनमें अशुभ नक्षत्र भी मिल जावेंगे। तो जो वहाँ बनावटी लौकिक वैराग्य है, वह जरूर नक्षत्रके बिना नहीं होना चाहिए और ऐसा ही होता होगा। क्योंकि ऊपरी संतोषके कारण उसमें आकुलता मंद हो जाती है वह लौकिक वैराग्य है। यहाँ तिथियाँ भले हो जावें, किन्तु वास्तविक वैराग्यके लिए तिथि क्या होगी? वास्तविक वैराग्य तो तब होता है जब अपने स्वरूपास्तित्वपर श्रद्धा हो जाती है। इसके लिए बाह्य कारण भी निमित्त मिल सकता या अन्तरङ्गकी प्रेरणा सर्वसे मोह तोड़ देती है। वह सोचता है कि मैं कहाँ अज्ञान अंधकारमें पैर बढ़ाता हुआ चला जा रहा हूँ। धिक्कार है इन विषयभोगोंको जो बार-बार इन्हींमें रम रहा हूँ तथा ये मुझे बार-बार छोड़ देते हैं, किन्तु मैं फिर भी उन्हें इकट्ठा करनेके प्रयत्नमें रहता हूँ। यह विचार आये और कषायोंको तिलाञ्जलि दी तथा आत्म-कल्याणके पथमें बढ़ गये।

एकताकी दृष्टिमें व्याकुलता नहीं होती—अनेक वृक्ष हैं उनमें सादृश्य वृक्षत्व है तो वह एक नजरमें आते हैं। उसमें नानापन तिरोहित है। आम, इमली, मौआ, खैर, जामुन सभी एक दृष्टिमें आते हैं, उनमें मित्रत्वकी कल्पना नहीं होती तथा जब एक-एकपर अर्थात् स्वरूपास्तित्वपर दृष्टि है तो नानापन प्रकट होता है, और सादृश्यास्तित्व याने एकपन तिरोहित हो जाता है। इसी प्रकार सर्वद्रव्योंमें सामान्य लक्षणभूत व सादृश्यको प्रकट करने वाले "सत्" इस लक्षणके भावसे दृष्टि की जाती है तो एकत्व प्रकट होता है और नानात्व तिरोहित हो जाता है, परन्तु विशेष लक्षणभूत स्वरूपास्तित्वकी दृष्टि करनेपर एकत्व तिरोहित हो जाता है और नानात्व प्रकट हो जाता है। इसी तरह स्वरूपास्तित्वपर दृष्टि जाते ही गुण पर्याय भेद की अनेक कल्पनायें सब विलीन हो जाती हैं। गुण पर्याय आदि अगर भिन्न-भिन्न सत् माना जायगा, तो सत् सत्का बवण्डरका उठ खड़ा होगा। सब द्रव्योंके बीच स्वरूपास्तित्वपर दृष्टि देनेसे नानापन आता है और उससे एकपन तिरोहित हो जाता है। महासत्तासे एकपन होता है तथा नानापन तिरोहित हो जाता है। स्वरूपास्तित्वपर दृष्टि देनेसे भेदविज्ञान होता है और उससे अपनी उपादेयता होती है, परसे विरक्ति तथा अपनेमें स्थिति होती है। इसी तत्त्वज्ञान के बलपर निर्मल पर्यायें प्रगट होंगी और सर्व दुःखसे मुक्ति होगी। सादृश्यास्तित्वकी दृष्टिमें भी एक लाभ है कि वहाँ भेदरूप बुद्धि न होनेसे परआश्रय नहीं होता है। अतः निर्विकल्पता में सहायता मिलती है।

जीवके मुख्य तीन गुणोंमें ज्ञानकी प्रभुता—जीवमें मुख्य ३ गुण होते हैं—श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र। सम्यग्दर्शनका कार्य श्रद्धा करना है। सम्यग्ज्ञान ज्ञानको स्थान देता है और सम्यक्चारित्र चारित्रके पाये जानेको कहते हैं। तीनोंका कार्य भिन्न-भिन्न होते हुए भी, तीनोंके मिलनेपर निज पुरुषार्थकी पूर्णतया सिद्धि होती है। इन तीनोंके विपरीत रहनेसे

निजका लक्ष्य मोक्षपुरुषार्थ प्राप्तिमें पूर्णतया बाधा रहती है। अनादिकालसे विषयकषायोंने कितना जबरदस्त अड्डा जमा रखा है कि जीव निज स्वरूपको समझनेका प्रयत्न भी नहीं करता। यदि अवसर आया भी तो कुछ बालको सचेत हुए, फिर उन्हीं विषयकषायोंकी चक्कीमें अपनेको फंसा देते हैं। नरकगतिमें शरीरके तिल-तिल बराबर टुकड़े कर दिये गये। इस तरह नरकगतिके दुःख कमसे कम १० हजार वर्ष और अधिकसे अधिक ३३ सागर तक के दुःख सहे। तिर्यचगतिमें छेदन-भेदन, भूख प्यासके अनेक दुःख सहे। मनुष्यगतिमें गर्भ, बालपन तथा दरिद्रता आदिके दुःख सहे, देवगतिमें भी दूसरोंके वैभवको देखकर दुखित हुआ। यह सब आत्मज्ञानके अभावका परिणाम है। आत्मामें जो ३ गुण मुख्य हैं, श्रद्धा, ज्ञान व चारित्र, इनमें से श्रद्धा व चारित्र तो विपरीत भी परिणम जाते, किन्तु ज्ञानका काम तो प्रतिभास कर देना मात्र है। वह विपरीत नहीं होता। ज्ञानकी विपरीतता मिथ्या विकल्पके सम्बन्धसे है। चाहे ज्ञान कुछ भी जाने, उसमें जो विकल्पकी अतःप्रतिभास मात्र दशा है उससे ज्ञानका कार्य अनुमेय होता है। सर्वत्र ज्ञानका प्रतिभास फिर भी तारतम्य रहित बराबर आ रहा है। “इदं रजतं अस्ति” यह चाँदी है, इस तरहका ज्ञान सीपको देखकर भी हो जाता है। वहाँ भी ज्ञानका काम “यह है” ऐसा जानना है। केवली पदार्थके पूर्ण अंशको जानते हैं। निश्चयनयके एक अंशको जानता है। दोनोंमें संयोग विकल्प नहीं।

जैसे यह संदूक १ फुट लम्बा पौन फुट चौड़ा है, वया यह निश्चयनयका विषय है? यह सब व्यवहारनयका विषय है। इन सब विकल्पोंके बिना परमात्मा जानता है। शैली जुदी-जुदी होती है। अन्तरङ्गकी प्रतीतिमें जो शैली परमात्माके जाननेकी है वही शैली ज्ञानी के जाननेकी है। अतएव श्रद्धा और चारित्र तो विपरीत हो सकते हैं, ज्ञान विपरीत नहीं हो सकता। यह लड़का है, अमुकका है। किसका है? यह पता नहीं। कौन है, क्या है, कैसा है? यह शुद्ध ज्ञानका विषय नहीं। यदि ज्ञान विकृत होता तो हम विजय नहीं पाते। परमात्माका ज्ञान, द्रव्य, गुण, पर्यायको जान लेना है सो जानते हैं। इसलिए परमात्मा पदार्थ को पूर्णतया जानते हैं। त्रिकालवर्ती पदार्थकी पर्यायों उनके ज्ञानमें झलक रही हैं व त्रिकालवर्ती पदार्थ भी।

कैवल्यकी दृष्टिमें आत्मसंरक्षण—जीवमें रूप, रस, गंध, वर्णादि नहीं, किन्तु व्यर्थका मोह है। यह मेरा पुत्र, स्त्री, माँ, मामा, भाई, भाभी आदि बनाकर तथा कहकर अपनेको रुलाते हैं तथा रागसे संसारके बन्धन दृढ़ करते जाते हैं। द्वेषरूपी जहर भी यही कार्य करता है। परपदार्थ तो पर है, उनमें इष्टानिष्टकी कल्पना मनके भ्रमको करती है। यह नर-जन्म मुश्किलसे मिला, फिर भी मोह नहीं जाता। जीवके स्वरूपमें अन्य कोई पदार्थ नहीं। जीव व शरीर एक जगह इकट्ठा होनेसे शरीरको ही जीव मान बैठे हैं। अतएव स्वात्मानुभूतिकी विस

चिन्ता पड़ी ? दूधका स्वाद पानीसे भिन्न है, लेकिन यदि एक पाव दूध और एक पाव पानी मिश्रित कर दिये जावें तो दोनोंका स्वाद भिन्न-भिन्न नहीं मालूम पड़ेगा । यदि दोनोंको जुदा करनेकी शक्ति हो तो भले जुदा-जुदा करके आस्वादन भिन्न-भिन्न ले सकते हैं, फिर भी पानी का स्वाद भिन्न और दूधका स्वाद भिन्न ही रहेगा । दूधमें दूध रहेगा तथा पानीमें पानी ।

एक ग्वालिन थी । वह प्रति दिन पाँच किलो दूधमें पाँच किलो पानी मिलाकर बेचने लाया करती थी । दूध बेचते-बेचते एक माह पूर्ण हो गया, अतः महीनेभरके कुल दाम उगाह कर लाई । रास्तेमें एक नदी मिली, मनमें आया कि नदीमें नहा लूँ । तब रुपयोंकी पोटली आदि सामान किनारेपर रख दिया । इतनेमें कूदता-फाँदता एक बन्दर वहाँ आया और रुपयों की पोटली उठा ले गया । तब तो ग्वालिन काफी गिड़गिड़ायी रुपया माँगनेके लिए । बन्दरने एक भी नहीं सुनी और पेड़पर पोटलीमें से रुपया निकाल-निकालकर एक पानीमें गिराने लगा तथा एक जमीनपर । इस तरह उसने सब रुपया गिरा दिया । दूधका जितना रुपया था वह जमीनपरसे ग्वालिनको मिल गया तथा पानीका रुपया पानीमें चला गया, जिसका मिलना अगम्य था । इससे यह भी सिद्ध होता है । “जैसी करनी वैसी भरनी ।” आकुलता होनेपर भी ज्ञानीको सावधान रहना चाहिए । आकुलता आत्माका गुण नहीं । आत्माकी प्रतीति बिना स्वात्मानुभव दूरकी वस्तु रह जाती है । परपदार्थ सब आत्मासे भिन्न हैं, उनको अपना मानने से क्या लाभ होता है ? रागरूपी अग्नि ही प्रदीप्त होती है । आत्मा और परपदार्थोंका ज्ञान भिन्न-भिन्न होता रहे तो कुछ लाभ होवे ।

अज्ञानकी विपत्ति—मोही जीवपर आपत्ति तो सबसे बड़ी यह है कि वह चलता तो उल्टा है, उल्टेको ही ठीक, सीधा मानता है । एक गाँव था । उसके अन्तमें एक लुहार रहता था । उसका घर अन्तमें होनेसे जो बाहरसे राहगीर आते वे सब निश्चित जगह पर पहुँचनेके लिये अमुक अमुक गाँवका रास्ता पूछा करते । तो लुहार बड़ा मसखरा था । यदि घर पूर्वमें होता तो वह पश्चिममें बताता । साथमें यह भी कह देता कि इस गाँवके लोग चालाक हैं जो उनसे रास्ता पूछता है, वे सब उल्टा रास्ता बताते हैं । अतः उनकी बात न माना करें । इस तरह वह लुहार नाच नचाया करता था । यही परिपाटी संसारकी है कि आत्मद्रव्यको छोड़कर परपदार्थोंसे रुचि करी तो अनेक भव भ्रमण ही बढ़े । अज्ञानमें वह गलती ही महसूस नहीं होती । ज्ञानीके ज्ञानमें श्रद्धा उल्टी नहीं चलती । जैसे यदि किसीसे कोई कसूर बन गया और उसने अपना कसूर पन्नोंमें आकर कह दिया तो वह निर्दोष कर दिया जाता है । वैसे ज्ञानी भी अपना कसूर समझता रहता है । एक वह होता है जिसे पंच लोग हजार बार भी समझावें तो वह अपने दोषको मुखसे प्रकट नहीं करता, जिससे वह दोषी ही बना रहता है । धन भी जोड़ लिया तो क्या हुआ ? ममता नहीं छूटती, जिससे दुःखकी वृद्धि होती जाती है ।

जिसके पास जितनी स्थिति हो चुकी उससे कार्य चल सकता है, फिर धन भी कर्मके अधीन रहता है। यह सोचना कि हमारा इतनेसे कार्य नहीं चल सकता, ठीक नहीं। क्योंकि धन कमानेपर भी क्या तृष्णायें शांत हो जाती हैं? जीवका जो निरपेक्ष ज्ञान है उसकी आराधना करो। शरीर भी अपना नहीं रहेका, तब क्यों व्यर्थमें परपदार्थोंमें रम रहे? तन अनित्य है, मन अनित्य है। सेवा भावमें यदि धन लगानेकी सामर्थ्य नहीं तो तन एवं मन लगाने वाला भी उतना उदार है जितना धन लगाने वाला।

उपासना—उपासना दो प्रकारकी होती है—(१) आत्मतत्त्वकी उपासना, (२) परमात्मतत्त्वकी उपासना। आत्मतत्त्व स्वभावरूप है, परमात्मतत्त्व पररूप है। परमात्माकी उपासना का फल आत्मज्ञान रूप है और आत्मतत्त्वकी उपासनाका फल तो आत्मरमण करना है ही। जब परमात्माकी उपासना की जावे तब परमात्माका गुणानुवाद करे, तथा जब परमात्माकी पर्यायका गुणानुवाद करे तो सोचे इस पर्यायरूप मैं भी हो सकता हूं। कहीं ये गुण अलग-अलग नहीं हैं। केवल वस्तुके समझनेके लिये यह भेद हो रहा है। उनके गुणोंको समझनेके लिये शक्ति भेद किये गये हैं। हे परमात्मा! आपने पूर्ण अपने कर्मोंको जीतकर यह पद पाया है। मैं भी परमात्मा होनेकी शक्ति रखता हूं, किन्तु उसपर मोहने पर्दा डाल रखा है। उस मोहका व्यय कर परमात्माकी भक्ति कर सकता हूं, इस तरहकी पद्धतिसे कोई भक्त भक्ति करने लगे तो परतत्त्वसे छूटकर आत्मतत्त्वपर लगेगा। परमात्मतत्त्वसे हटकर निजात्मतत्त्व तक आता है। यह कार्य सिद्ध होनेका एक मार्ग है। अपना कार्य बन जाय, फिर कुछ भी किया जाय सो हानि नहीं। कहा भी है—“स्व कार्य प्रसाध्य नृत्यतोपि न काचित् हानि।”

इस तरहसे अभ्यास द्वारा अपने स्वभाव तक पहुंच जावे तो कुछ किया, अन्यथा कुछ नहीं। परमात्मासे अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य हैं। यह उनकी विशेषता है, किन्तु द्रव्यदृष्टिसे, गुणदृष्टिसे परमात्मामें और हममें भेद नहीं है। “मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान। किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अज्ञान ॥” मैंने परपदार्थोंको अपना मानकर सम्यग्ज्ञान गुणको खो दिया। इसलिए बना भिखारी निपट अज्ञान दूसरेसे ज्ञानकी व आनंदकी भीख माँगता फिरता हूं।

सुख दुःख दाता कोई न आन, मोह राग रूप दुःखकी खान—परपदार्थ आत्माको न सुख दे सकते हैं और न दुःख। केवल मोह और रागसे दुःखकी उत्पत्ति होती है। नेति नेति कहकर जहाँ पहुंचते हैं वह निषेधरूप निश्चय है। अपने गुण पर्यायरूपसे विश्वास जहां हुआ वह विधिरूप निश्चय है। द्रव्यस्वरूपका पूर्ण निश्चय कर लो। वास्तविक कार्य सिद्ध तब होता है जब ममताकी बलि और सांसारिक पदार्थोंकी बलि दे दी जाती है। राग छोड़नेपर दुःख नहीं रहता है। राग ही द्वेषका कारण है, क्योंकि जहाँ राग करनेमें बाधा उपस्थित हुई

वहों द्वेषका कारण बन जाता है ।

मेरी सत्ता मुझमें है, मेरी कोई क्रिया बाहर नहीं जाती । घड़ीका कार्य घड़ीमें बनेगा । कोई कहे यह कार्य, मेज, कुर्सी, दीवारमय हो जावें तो नहीं मानोगे । मेरा कार्य मुझमें बनेगा न कि अन्यमें । पुत्र जब पिताकी विनय करता है तब वह अपना मान बना लेता है, न कि बन जाता है । जिसको सभी अच्छा-अच्छा कहते हैं यह उसके गुणोंका विकास उसकी योग्यता से हुआ । किसीको पूरबको जाना है और रास्ता पश्चिमका रखा जाय तो क्या पूरबमें पहुंच जायगा ? स्पष्ट है कि नहीं पहुंचेगा । तब हम चाहते तो सुख हैं और क्लेश, दुःख पैदा करने वाली सामग्री जुटाते रहें तो कैसे सुख मिल जायेगा ? जब तुम स्वस्थ हो, हिताहितका विवेक है, तब तो सम्हले नहीं, सोचो आगे सम्हल जावेंगे । तो अग्निमें प्रवेश करके शीतलताको प्राप्त करना चाहता है । हम परमें कुछ नहीं करते, निजमें कुछ करें । किसीने हाथ हिलाया, यह क्रिया हाथकी अपनी शक्तिवती क्रियासे हुई, अन्यकी क्रिया या शक्तिसे नहीं । फोटोको देख-कर क्रोध आया, यह सब आश्रयभूत है । फोटोमें से तो क्रोध नहीं आया, वह तो जड़ है ।

शुद्ध सहज अन्तस्तत्त्वकी सेवाकी महिमा—शुद्ध आत्मतत्त्व अपनेमें नहीं समझते हैं तो परमात्मतत्त्वको भी नहीं समझ सकते । अपने स्वात्मस्वभावको जाने बिना परमात्माको जानना अगम्य है । आत्मामें परमात्मा होनेकी शक्ति है जरूर । जब उसे विकासके अभिमुख किया जावे, परको अपना नहीं माने तथा निजात्मानन्दके रसमें निमग्न हो जावें तो परमात्मत्व व्यक्त हो जायगा । जितना भी कुछ हम अखण्डपनेको छोड़कर जान रहे हैं वह सब व्यवहारनय है और अखण्डपनेको जानकर उसका अनुभव कर रहे हैं वह निश्चयनय है । मोह कम करके ज्ञानकी ओर बढ़ें तो मनुष्य-जीवन सफल है । मोहको घटाया नहीं और ज्ञान की ओर बढ़े तो वह ज्ञान भी कथंचित् संसारमें रलाने वाला हो गया । पुरुष-स्त्री कोई भी होवे, अगर उसमें अपनेको बड़ा माननेकी धुन लगी है तो उसे चाहिये कि शान्ति उत्पन्न करे । शरीरसे सफेद होते हुए भी जीव चेहरेपर झलक रहा हो, कठोर वचनोंका व्यवहार करता हो, उसे कौन सुन्दर कहेगा ? लेकिन शरीरका वर्ण भले ही श्यामल हो, किन्तु आत्म-ध्यानकी धुन जिसे सवार हो गई हो, हितमित्र प्रिय वचन बोलता हो, सदैव दूसरोंके उपकार में रत हो, ऐसेको देखकर कौन गद्गद् चित्त नहीं होवेगा या सुन्दर नहीं कहेगा ? शरीरको सुन्दर बनाने वाली भी आत्माकी निर्मलता है । परिणामोंकी निर्मलताका अनायास ही लौकिक कार्योंको सिद्ध करा देती है तथा लक्ष्य उसका स्वात्मद्रव्य है सो अपनेको शक्तिवान बनाता रहता है ।

योगी—जो स्वयं आत्माको जानता देखता रहता है कि इसकी सत्ता कैसी है, किस रूप आत्मा है, वैसे यह अपनेको अपनेमें आधीन रखती है एवं परपदार्थोंसे जो निरपेक्ष रहता

है वह योगी है। ऐसा घरमें रहता हुआ योगी है, बनमें रहता हुआ योगी है। अपना ज्ञान जो अपनेमें लग जावे वह अध्यात्मयोग है। वह आत्मस्वरूप इन्द्रियोसे अतीत है। जो इन्द्रियों से जाननेमें नहीं आता वह योग है। इन्द्रियाँ तो दूरकी चीजको जाननेमें ही काम करती हैं। अपना बुखार भी स्वयंको ज्ञात नहीं होता जब तक कि शरीरका हिस्सा स्वयंके हाथसे छूकर नहीं देखा जाता। नाककी गंधको नाक नहीं जानती। आँखमें लगे काजलको या किरकिरीको आँख नहीं देख सकती। कानके शब्दको कान नहीं जानता। आत्माको जानना यह सबसे बड़ी कला है। इसको जाने बिना बाह्य साधन कितने ही किये जावें कोई सार नहीं निकलता। पुराने ग्रन्थोंमें जिन व्यक्तियोंकी शोभा है वह सब उनकी विशेषता बतानेपर हुई। जैसे अमुक राजाके इतनी रानियाँ थीं, इतने पुत्र थे। राजा एवं रानियाँ मिलकर जिनेन्द्रदेवकी पूजन करतीं, मुनियोंको दान देतीं, राजा प्रजाका पालन करता आदि। यह सब उनकी अच्छाइयाँ यदि आगे धर्मकी ओर इंगित करती हैं तभी हम उन्हें भुला नहीं पाते। अमुक ग्राम अच्छा है यह कहनेसे ज्ञात होता है कि वहाँके मनुष्य सत्यभाषी हैं, धर्ममें रूचि रखते हैं, दूसरोंके उपकार करनेका ध्यान रखते हैं। इसलिये मनुष्यके सद्गुणोंने ग्रामकी प्रसिद्धि कराई। दूर क्यों भटका जाय, विवाह कार्यमें भी धार्मिक वातावरण रहता है, तो उसकी शोभा बन जाती है। पूजन करना, दान देना, अतिथियोंका यथायोग्य आदर सत्कार करना तथा विवाह होनेसे कुशील वर्जित हो जाता है या सीमित हो जाता है, यह आन्तरिक लक्ष्य होता है।

परं ज्योतिः—यह जो आत्मतत्त्व है वह इन्द्रियोंके द्वारा नहीं जाना जा सकता और न मोहियोंको इसका भान होता है। गोस्वामी तुलसीदास जी और बनारसीदास जी मित्र थे। जब तुलसीदास जी ने रामायण पूर्ण बना ली, तब वह उसपर सम्मति लेने बनारसीदास जी के पास लाये और बोले—इस ग्रंथकी समालोचना चाहता हूँ। तब बनारसीदास जी ने एक छोटेसे पदमें बड़ा ही हृदयग्राही उत्तर दिया—“मर्मी होय मर्म सो जाने, मूर्ख माने नाहीं। बिराजे रामायण घट माहीं॥” अर्थात् इस आत्मामें ही रामरूपी परमात्मा है, उसमें सिद्ध लोक पहुँचने की शक्ति है, सीता भी आत्मामें है, कठिनसे कठिन परीक्षाओंको पार करके भी अजिकाके व्रत लिए और आत्म-कल्याणमें जुट पड़ी, वहाँ रामकी फिर एक नहीं सुनी। यह विरक्ति भी आत्मामें है। कर्मरूपी राक्षस रावण भी आत्माके पास है, उसे हटाना चाहिए। जैसे क्रोध ने आत्माका कितना अहित नहीं कर डाला? तेजपुञ्जमयी चैतन्य तत्त्व आत्मासे जुदा नहीं, वह अपने ही भीतर बैठा हुआ है, उसे केवल समझने में भ्रम हो रहा है। कितने ही शास्त्र पढ़ लो, कितने ही उपदेश सुनो, लेकिन बिना एक आत्मानुभवके समस्या नहीं सुलभ सकती। लड़कियोंको कितना ही पाक-शास्त्र क्यों न पढ़ाया जावे, लेकिन उसका ज्ञान तब तक नहीं होता जब तक भोजनको बनाकर चख न लिया जावे। वैसे ही जब तक

आत्मानन्दका अनुभव नहीं किया तब तक उसका भान नहीं होनेका । आत्माकी रतिमें सन्देह न करके जिसने एक बार निश्चय कर लिया कि यह रास्ता सही है, इस मार्गसे मैं भटक नहीं सकता, यह निश्चय जिसको हो गया वहीं सच्ची कला प्राप्त हो गई ।

ममकारके परिणामका उद्बोधन—एक मुनि जङ्गलमें रहते थे । वहाँसे एक राजा निकला । राजाने देखा ऊपर भी गर्मी है नीचे भी गर्मी है, चारों ओरसे गर्मी व्याप्त रही है । राजाके मनमें आया मुनिराजकी सहायता करनी चाहिए, वह बोला मुनि महाराजसे 'आप एक छतरी ले लेवें । मुनिराजने कहा 'ऊपरकी गर्मी तो बच जायगी, नीचेकी गर्मी कैसे बचेगी ।' राजाने कहा 'जूता पहन लीजिए ।' फिर मुनिराज बोले 'पूरे शरीरकी गर्मी कैसे बचेगी ।' राजाने कहा 'कपड़े बनवा दूंगा ।' फिर मुनिराजने कहा 'इस अवस्थामें तो रोटी मिल ही जाती है कपड़ा आदि पहिन लेनेपर भोजन कौन करावेगा ?' राजाने गाँव लगाकर भोजन करानेकी व्यवस्थाका आश्वासन दे दिया, बैठनेके लिए मोटर दे देंगे । मुनिराजने कहा, रोटी बनावेगा कौन ? उत्तर था राजाका 'विवाह कर देंगे । तब मुनिराजका जवाब था 'यह सब तो हो जायगा लेकिन सन्तान पैदा होनेपर और आयुकर्म पूर्ण होनेपर जब स्त्री, पुत्र आदिकी मृत्यु होगी तब रोवेगा कौन ?' अन्तमें राजाने कह दिया 'जिसको ममता होगी वही रोवेगा, मैं नहीं रो सकता ।' इस लिए स्पष्ट है कि जो जिसके संयोग होनेपर सुख मानता है, वही उसके वियोग होनेपर दुखी होता है । ममताकी बलबत्ता है ।

आर्षवचनोंके तथ्यका परिचय अलौकिक समृद्धि—शास्त्रोंमें उपदेश भरा है, ग्रहण करने वाला यदि सचेत है तो उनके अनुकूल चलेगा अन्यथा उसको क्या भला होनेका ? दीपक तो प्रकाश करता है । प्रकाशमें चलने वाला मनुष्य होता है । यदि मनुष्य नहीं चलेगा तो दीपक थोड़े ही हाथ पकड़कर ले जावेगा ? प्रथम तो शास्त्रोंके गूढ़ अर्थको जानना कठिन है, फिर उनके अनुसार चलनेका साहस करना । एक मनुष्य मरते समय अपने पुत्रके लिये लिखकर रख गया कि जब तुम्हें गरीबी आवे तो थम्भसिंहसे रुपया पैसा ले लेना, मैंने उसके पास जमा कर दिया है । रुपयेकी जरूरत पड़नेपर वह लिखा हुआ सबको बतावे और कहे कि थम्भसिंह कौन है, उसके पास हमारा रुपया जमा है, वह निकालना है । कई मनुष्योंने कहा कि थम्भसिंह यहाँ किसीका नाम नहीं है, किन्तु कुछ विद्वान मनुष्य थे, उन्होंने कहा कि चलो घर । तब उन्होंने उसके घर जाकर घरके मुख्य खम्भेको खोदा और रुपये निकालकर दे दिये । इसी तरह शास्त्रोंमें संकेत ही तो लिखे जा सकते हैं । उन्हें गुरुगमसे अपनेमें उतारा जाय तब आत्मतत्त्व प्राप्त हो सकता है । अन्यथावृत्तिसे तो साथमें कर्म बंध जाता है या जो संस्कार बनता है वह जाता है । कदाचित् किसीको शास्त्रज्ञान हो भी जावे तो टेक यह पड़ी है कि स्वयंको ज्ञानवान मानता है, अन्यको अपनेसे हीन एवं मूर्ख मानता है । अन्य कोई अपनेसे

ज्यादा समझदार थोड़ा हो सकता है, ऐसी धारणा मोहमें बना ली जाती है। अरे भाई ! कहो तुमसे भला बैल हो सकता है, सर्प हो सकता है या कुत्ता भी अधिक समझदार हो सकता है, परंतु ज्ञानकी बात सीख जानेपर यह बात सताती है कि मैं जानता हूं, यह सोचकर उसका अनुभव नहीं करता एवं उससे भिन्न जो चैतन्य है, उसका अनुभव नहीं करता।

विपत्तियोंका शृङ्गार संसार—विपदा आना पाप व पुण्यका कार्य है, पापीपर भी विपदा आती है एवं पुण्यवानोंपर विपदायें आती हैं। रामका राज्याभिषेक होने जा रहा था, अभिषेककी तैयारी हो चुकी, राज्याभिषेक प्रातःकाल होने वाला है, किन्तु आज्ञा मिलती है कि राज्य भरतको मिलेगा। राम वनको चले गये। वहाँ प्रजाकी प्रसन्नताका पारावार नहीं था, वह दुःखमें परिणत हो जाता है। सीताके हरणका दुःख मिला। सीता घरमें आ गई तो धोबियोने हंसी उड़ाई, जिससे सीताकी अग्निपरीक्षा ली गई। जंगलमें लव और कुशका जन्म हुआ, इसका दुःख। सीता अजिका होने लगी, रामने काफी समझाया, किन्तु सीताने स्पष्ट कह दिया कि जिन विषयोंने मुझे इतना दुःख दिया अब उन्हींमें मैं कैसे फँसूँ ? रामचंद्रजी योगी हो गये। सीताके जीव प्रतीन्द्रने सोचा कि कहीं ये पहले मोक्ष नहीं चले जावें, इसलिए प्रतीन्द्र ने सीता और रावणका भेष बना लिया। सीताको रावण खींच रहा है, जटायु पक्षी रामके पास चक्कर लगाने लगता है। यहाँ तक कि प्रतीन्द्र योगी रामचंद्रजी को कि रावण सीताके बाल पकड़कर खींच लेता है। इन परीक्षाओंका सामना करते हुए भी राम अपने लक्ष्यसे च्युत न होकर मोक्ष जाते हैं। इसलिये पुण्यवानोंपर विपत्ति आना प्रायः सिद्ध है। पापी भले ही हलुवा पूड़ी खावे उसे हाथ कोई नहीं जोड़ता। मैं शरीरसे अत्यंत जुदा हूँ—यही कला समझमें नहीं आई तो क्या किया ? शरीर तो जल जावेगा, मुझे तो केवल आत्मासे कार्य पड़ेगा। वहाँ गरीबी, अमीरी काम नहीं आवेगी, जिसे यह प्रतीति हो गई उसीका हित समझो।

सबकी अपनी-अपनी सीमा है—जब दो सीमायें हैं, तो हम कौन हैं और तुम कौन हो ? वह कौनसी सीमा पड़ी है, जिससे हम सबसे जुदे पहिचाने जावें। हमारा सत् जुदा है और तुम्हारा सत् जुदा है। पुद्गलके स्कंधोंमें गलना, बिछुड़ना आदि अनेक पर्यायें पाई जाती हैं। स्कंधोंमें अनेक परमाणुओंका सत् है, किन्तु वह सब जुदा-जुदा है। वह एक दूसरेमें मिल नहीं सकते। अनेक उदाहरण स्पष्ट करके देख लिए जावें एवं देखे होंगे, किन्तु उन्हें अपने ऊपर घटाना चाहिए। जैसे मैं अकेला आत्मा हूँ। यद्यपि अभी मैं चाहूँ कि शरीरसे निकल भी जाऊँ सो तो है नहीं। अन्यथा इस तरहसे तो मोक्ष मिलना ही अभी सरल हो जाता, औदारिक छोड़कर आत्मा शरीर निकलता है तो उसके साथ तैजस एवं कार्माण शरीर भी जाता है तो भी प्रत्येक अणु मुझसे जुदा है। सिद्ध परमात्मा होनेके समय कोईसा भी शरीर नहीं जाता, वह जाकर सीधे शिवालयमें विराजमान हो जाते हैं। किसी भी जगह इस आत्माका सत् अन्य

में नहीं ठहरता । निगोदमें देखो एक शरीरके सहारे और भी अनेक शरीर व अनंत जीव रह रहे हैं, किन्तु किसीका सत् किसी दूसरेमें नहीं मिलता । शरीरमें कर्माण्वर्गणायें हैं, वह भी जुदी-जुदी हैं । इस तरह देखें तो सब जीव स्वतन्त्र सत्ता वाले हैं ।

अस्तित्व सामान्यमें सीमा नजर नहीं आती—सत्ता अस्तित्व जिसे कहते हैं वह स्वरूप जैसा एक अणुमें है वैसा ही आत्मामें है, वैसा ही पुद्गलमें है । उसी तरह वर्तना लक्षण पुद्गलमें पाया जाता है तथा वही वर्तना लक्षण आत्मामें भी मिलता है । यही सत्ताका स्वरूप है । यहीं अस्तित्व गुण आत्माका जैसा है वैसा आकाशमें है । सत्ता जातिकी अपेक्षा देखा तो सब एकसी सत्ता मालूम होती है । सादृश्य हो गया सो सादृश्य अस्तित्व हो गया । अगर सादृश्य अस्तित्व सबमें न हो तो वह किसीमें किसी ढंगका मिलेगा तथा दूसरेमें और तरहका मिलेगा एवं किसी अन्यमें अन्य ही तरहका मिलेगा । किसीमें सत्की डिग्री अधिक होगी और किसीमें सत्की डिग्री कम होगी तथा किसीमें असत्की डिग्री अधिक होगी और किसीमें असत् की डिग्री कम होगी । इस तरह बहुतसा बवण्डर खड़ा हो जायगा । अनेकान्त दर्शनके अमूल्य सिद्धान्तोंको औरोंने भी अपनाया है, परन्तु किसी एकांतमें अटक जानेसे वह उसमें पूर्ण सफल नहीं हो सके । उन्होंने ब्रह्मके रूपमें सादृश्य अस्तित्व एक ही यहाँ माना है तो एक ही वहाँ माना है, बीचमें भी माना है, जैसे गौ व्यापक है, तो जैनसिद्धांतने यह नहीं बताया कि वह सब जगह व्यापक है, किन्तु जितनी गौ हैं, उन्ही सबमें व्यापक है । उसी तरह महासत्ता सब जगहमें एक व्यापक हो सो बात नहीं है । जितने सत् हैं उन सबमें अस्तित्व रहता है । यद्यपि लोकमें ऐसा प्रदेश नहीं है, जहाँ द्रव्यका अस्तित्व नहीं है तथापि देखनेकी कला समीचीन ही होना चाहिये । गौ का सम्बन्ध तो रहता है, किन्तु वह सब जगह भरो हुई हो सो बात नहीं है, इस तरह व्यापक नहीं है । जहाँ गौयें गईं वहाँ वह पहुंच गईं, किन्तु अन्यत्र स्थानपर तो नहीं रह गईं । इसे ही सादृश्य अस्तित्व कहते हैं । किसी द्रव्यसे किसी अन्य द्रव्यकी उत्पत्ति नहीं होती और किसीकी सत्ता किली नहीं है । इसको स्पष्ट करते हैं—

द्वयं सहावसिद्धं सदिति जिणा तच्चदो समक्खादो ।

सिद्धं तद्य आगमदो रोच्छदि जो सोहु परसमग्रो ॥६८॥

संयोग होनेपर भी एकसे दूसरेकी अनिष्पत्ति—प्रत्येक द्रव्य स्वभावसे सिद्ध है, अपने आप है । इसी प्रकार सत् भी अपने आप है । यह जिनेन्द्रदेवने बताया है । आगममें यह बताया है और जो इसे न माने वह मिथ्यादृष्टि है, परसमय है । द्रव्यकी सत्ता द्रव्यसे जुदी नहीं है और द्रव्यसे द्रव्यान्तरोकी उत्पत्ति नहीं होती है । द्रव्य अनन्तानन्त हैं । एक जीवका स्वरूपास्तित्व दूसरे जीवका स्वरूपास्तित्व नहीं बनता है । इसलिए स्वतः ही अनन्तानन्त जीव हैं । सुईकी नोकपर आलू, सकरकन्दी आदि गन्तका जितना टुकड़ा बन सके उसमें

अनन्ते निगोद जीव रहते हैं। विवेकी लोग इसीलिए नहीं खाते हैं, तथा जो खाते हैं पापका बन्ध करते हैं। जब उतने स्थानपर अनन्ते निगोद जीव रहते हैं तब जो सर्वत्र भरे हुए हैं उन्हें अनन्तान्त होना चाहिए। अनन्तान्त हैं ही और होते हैं। लेकिन अतीतमें उनमेंसे निकलकर अन्य पर्यायोंके धारणके बाद सिद्ध हुए हैं उनकी भी संख्या अनन्त है, और सर्व सिद्धोंसे अनन्तगुणे जीव एक निगोद शरीरमें होते हैं। एक जिसका टुकड़ा न हो सके ऐसा पुद्गल परमाणु है, वे लोकमें ठसाठस भरे हुए हैं। कभी-कभी उनका अन्तर नहीं देखनेमें आता, लेकिन जो स्थूल पुद्गलका स्कंध है वह जुदा साक्षात् दिख सकता है। एक यह चौकी है, अगर इसके दो टुकड़े कर दिये जावें तो उन्हें अलग-अलग देखा जा सकता है। परमाणुका दूसरा हिस्सा नहीं हो सकता है। एक-एक परमाणु करके द्रव्य है। पुद्गल परमाणु अनन्तान्त हैं और जीव अनन्ते हैं। जीवसे वह ज्यादा है, सिद्धोंसे अनन्तगुणे संसारी जीव हैं और संसारीसे अनन्तगुणे पुद्गल परमाणु हैं। एक संसारी जीवसे अनन्ते पुद्गल परमाणुओंका स्थूल पिण्ड सम्बंधित रहता है। उससे ज्यादा तैजस कार्माणवर्गणायें रहती हैं तथा अधिक कर्म रहते हैं। एक जीवके साथ अनन्ते पुद्गल परमाणु बनते हैं और बिगड़ते हैं तथा बने रहते हैं। अनन्तान्त जीव हैं, अनन्तान्त पुद्गल परमाणु हैं धर्म, अधर्म, आकाश और काल-एक-एक द्रव्य है। कालद्रव्य असंख्यात हैं, किन्तु वह एक दूसरेमें मिलते नहीं हैं। वह रत्नोंकी राशिके समान जुदे-जुदे ठहरे हुये हैं। किसी भी द्रव्यके द्वारा किसी द्रव्यकी उत्पत्ति नहीं होती है, फिर भी योग्यता अनुकूल परस्पर निमित्त है।

वस्तुस्वरूपकी अनभिज्ञतामें विचित्र कल्पनाओंका कलन—आजकल वैज्ञानिकोंकी नई नई खोजें चल रही हैं। वह खोजकर्ता वस्तुके स्वरूपको तो जानते नहीं, न उसे समझ रहे हैं, लेकिन बाह्यपदार्थकी खोज कर रहे हैं। उस खोजमें उन्होंने नई-नई विचित्र कल्पनायें दिखाई हैं। उनका कहना है कि मनुष्य पहले बंदर था, वह विकास करते-करते इस रूपमें पहुंच गया है, और भी मछलीसे मेढक, मेढकसे बन्दर आदिकी उत्पत्ति बताते हैं। उन्नति करनेसे तो मनुष्य बन गये, किन्तु आगे क्या बनेंगे सो मालूम नहीं। यह तो वैज्ञानिकोंकी दृष्टि है। अब शास्त्रकी दृष्टिसे भी सोचा जाय। तो अन्य मतावलम्बियोंका कहना है। पहले कुछ नहीं था, एक आदिम था। उसने ईश्वरसे कहा—‘कुन’ अर्थात् पैदा करो। ईश्वरने कहा कि हाँ ‘पैदा’ किया, इससे सब जगत बन गया। किन्हीं शास्त्रोंकी दृष्टि यहाँ तक पहुंची, किन्हींके ईश्वर सर्व व्यापक था और किन्हींके ईश्वर कर्ता है। वह ईश्वर मौजमें रहता है। उसे इच्छा हुई तो अकेलेसे बहुत बन गया। ईश्वरको तो अपनी मौज ओरी (हुई) लेकिन यहाँ प्राण बचानेके लाते हो रहे हैं। अगर प्रश्न करें कि यह मौज पहले भी हुई थी या अभी ही ताजी हुई है? उत्तरमें वहा वि. यह मौज पहले भी हुई थी, वह अनादि अनंत है। वह अपनी मायाको समेट

लेता है और अवसर पाकर फिरसे विराट रूप धारण कर लेता है । यह कपोलकल्पित अनेक धारणायें क्यों बनाई गईं । इसलिए यह अनेक कल्पनायें की गईं जब कि द्रव्यका सही स्वरूप नहीं समझ सके । उनकी पदार्थपर एवं स्वभावपर दृष्टि ही नहीं गई देखो तो वैज्ञानिकोंने चाहे कुछ समझा उपादान निमित्तकी ध्वनि फिर भी है । उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्यका क्या महत्त्व है, इनके द्वारा कैसे व्यवस्था चलती रहती है ? इसके जाने बिना बहुतसे जिज्ञासु तो यहाँ वहाँ ही भटकते रहे । द्रव्यत्वकी जैसी व्यवस्था पूर्वकालमें थी वही उत्तरकालमें भी देख रहे हैं । ऐसा नहीं है कि पहले कुछ नहीं था और यकायक बन गया हो ।

प्रत्येक द्रव्य स्वतःसिद्ध है—द्रव्य जो है वह स्वभावसे सिद्ध है । द्रव्य पहले नहीं था और बादमें किसीने बना दिया हो, ऐसा नहीं है । अतएव किसी द्रव्यके द्वारा अन्य द्रव्यकी उत्पत्ति नहीं होती । जो हैं वह परिणमते रहते हैं । इसी तरह आगे भी परिणमते जावेंगे । वह किसीकी अपेक्षा नहीं करते हैं । निरपेक्ष जो परिणमन है वह द्रव्यत्वके गुणके कारण है । जो परिणमनमें होने वाली विषिष्टता है वह औपाधिक है । अनन्तानंत द्रव्योंमें से किन्हीं भी द्रव्योंके द्वारा अन्य द्रव्यकी उत्पत्ति नहीं होती है । जो हैं वही परिणमते रहते हैं । ईश्वरके द्वारा एकसे बहुत बन जावें, ऐसा कुछ नहीं है । मछलीसे मेढक, मेढकसे बन्दर और बन्दरसे मनुष्य बने हों, यह भी सिद्ध नहीं होता, यह तो पूर्णतया गलत सिद्धान्तसे भरा हुआ है, फिर भी इन्होंने कुछ उपादान स्वीकार तो विया और शायद अन्य मछली आदिको परम्परया अनादि निधनपना मानते रहे हों । जितने भी द्रव्य हैं वह स्वभावसे सिद्ध हैं ।

असत्की कभी उत्पत्ति नहीं होती—जो अनादिनिधन हैं, वह अन्य किसीसे नहीं बन सकते । अगर अनादिनिधन नहीं है तो किसी क्षणसे (समयसे) उनकी उत्पत्तिकी शुरुवात होना चाहिये, जिससे असत्की उत्पत्ति हो जायगी । तब फिर इस तरहका कैसे हो गया ? जब कि असत् नहीं है । बिच्छू, मेढक, चींटी, जुआ, शंख, केचुआ आदि कोई भी असत् नहीं बने । वह परमाणु जीवके सम्बंधको पाकर इस रूप परिणम गये हैं । प्रत्येक द्रव्य अनादि अनंत है । वह जीव कर्मके संयोगसे सदैव अनेक पर्यायें धारण करता रहता है । कर्मफलोंके अनुसार इस रूप बन रहा है और पूर्वकी पर्यायोंको छोड़ रहा है । मैं रहा और रहा आऊंगा, यह किसी अन्यकी अपेक्षा नहीं रखता । किसीके पुण्यका उदय है तो सुखका कारण बनेगा और पापका उदय है तो दुःखका कारण बनेगा । सोचते हैं कि मैं नहीं होता तो यह नष्ट हो जाते, इनका कार्य कैसे चलता ? यह परवाह छोड़ो । यहाँ तो तुम्हीसे कोई बनता नहीं और अगर नहीं होते तो कोई कार्य बिगड़ता नहीं था । यह व्यवस्था पूर्वसे ही इसी तरहकी चली आ रही है व चलती जायगी । द्रव्यके द्रव्यत्वको देखें तो वे सब हैं और रहेंगे । किसीका अस्तित्व किसी को दयासे हो, यह बात नहीं है । किसीका कहीसे प्रारम्भ नहीं है । प्रत्येक पदार्थ किसी न

किसी रूपमें रहा होगा। पहलेकी परिणतियोंका अंतर वर्तमानकी परिणतियोंसे मिला लेवें। यह बात पहले नहीं थी, इसके बिना यह कार्य नहीं हो सकता था, यही सोचनेमें समय व्यतीत करते रहे तो सर्व कार्य गड़बड़ ही रहेगा। यह सोच-सोचकर हमने अनेक भेष बनाये, अनेक संसाररूपी नाटक खेले।

वर्तमान स्थितिका सदुपयोग करो—अब भी यह रूप पाया है और इस रूपका उपयोग नहीं किया तो क्या ठिकाना, क्यासे क्या होगा? केवल इस आत्मस्वरूपपर ध्यान दें तो हम अपने आपमें आकर आत्मोन्नति कर सकते हैं। हम किसीसे बंधे नहीं हैं। परको अपना मानकर ही स्वयं फंस रहे हैं। पदार्थका भले प्रकारसे निश्चय कर लेवें कि इससे भिन्न और कुछ नहीं है। फिर केवल द्रव्यके स्वरूपको निरपेक्ष दृष्टिसे देख लेवें। यह उपाय कर सकते हैं जिससे दूसरोंके लिए मार्गदर्शक बन सकें। यह वस्तुस्वरूपका प्रकरण चल रहा है कि द्रव्यसे द्रव्यान्तरोकी उत्पत्ति होती नहीं। अतएव अपने शुद्ध स्वरूपका निश्चय कर एवं ध्यान कर कर्मकालिमा हटा सकते हैं। प्रयत्न करनेपर सबमें सफलता मिल सकती है। थोड़े विवेककी जरूरत है। आत्माको पहिचानना ही सार है, इसके अतिरिक्त सब संसारकी मजबूत बेड़ियाँ हैं, जो कि पैरोंको ही ज़रमी कर देंगी तब अपना सब कल्याणका मार्ग अवर्द्ध हो जावेगा।

सत्की स्वभावसिद्धता—एक द्रव्य अन्य द्रव्यका आरम्भक, उत्पादक, कर्ता, अधिकारी व स्वामी कुछ भी नहीं है; क्योंकि सभी द्रव्य स्वभावसे सिद्ध होते हैं। सब स्वभावसिद्ध हैं, यह कैसे जाना? सभी द्रव्य अनादिनिधन हैं, अतः सुसिद्ध है कि सभी द्रव्य स्वभावसिद्ध हैं। जो अनादिनिधन होता है वह साधनान्तरकी अपेक्षा नहीं करता, गुणपर्यायात्मक अपने स्वभाव को ही मूल कारण पाकर स्वयं ही सिद्धि सिद्धिमान रूप होता है। हाँ, द्रव्योंके द्वारा जो आरब्ध होता है उसे कदाचित्क अर्थात् अनित्य होनेसे पर्याय कहते, परंतु द्रव्यान्तर कभी नहीं कर सकते। द्रव्यसे द्रव्यान्तर पैदा नहीं होता, किन्तु उसकी पर्याय पैदा होती। द्रव्य तो अनादिनिधन है वह कदाचित्क नहीं है। सो इस प्रकार सुसिद्ध है कि द्रव्य स्वभावसे ही सिद्ध है, इसी प्रकार यह भी अवधारण कर लेता कि सत् भी स्वभावसे ही सिद्ध है। कहीं यह नहीं जानना कि सत्ताके समवायसे द्रव्य सत् है, क्योंकि द्रव्यसे भिन्न कोई सत्ता नहीं है, द्रव्य ही अपने सत्तात्मक स्वभावसे निष्पन्न निष्पत्तिमद्भावयुक्त कहा जाता है। सत् और सत्ता कहीं पृथक्-पृथक् चीज नहीं हैं, अतः उनकी परस्पर अर्थान्तरता नहीं है। यदि कहो कि “सत्में सत्ता है” ऐसी प्रतीति होनेसे अर्थान्तरता तो सिद्ध हो जाती है, जैसे कि घड़ेमें घी ऐसी प्रतीति से अर्थान्तरता है। सो यह बात ठीक नहीं, क्योंकि आप बतावो कि यहाँ किस कारणक इहेद (इसमें यह है) यह प्रतीति होती है। यदि भेदके कारण यह प्रतीति होती है तो सोचो क्या प्रादेशिक भेद है या अतद्भाविक। प्रादेशिक भेद है तो है नहीं, क्योंकि सत् और सत्ता युत-

सिद्ध (पृथक्-पृथक्) नहीं है। अतद्भाव रूप भेद कहो तो यह ठीक ही है, क्योंकि जो द्रव्य है वह गुण नहीं है, किन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि द्रव्य जुदी चीज है और गुण जुदी चीज है। है तो एक ही चीज, उसमें जब गुण गुण भेदकी कल्पना की जाती है तब अतद्भाव (जो यह है सो यह नहीं) प्रकट होता है, किन्तु द्रव्यकी दृष्टिमें अतद्भाव विलीन हो जाता है। इस कारण अतद्भाव एकान्तसे इहेदं इस प्रतीतिका कारण नहीं है।

प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने कारणसे सत् है—कालद्रव्य तो एक साधारण निमित्त होकर द्रव्योंके परिणामनमें सहायक होता रहता है। स्वयंमें अन्य कोई निमित्त नहीं है। परिणामन विशेषतायें आईं वह विशेषतायें ही द्रव्यका परिणामन स्वभाव है। कालद्रव्यका परिणामन बन्द नहीं हो सकता। षट् (छः) द्रव्य जो हैं वे अपने स्वभावको मूल कारण बना कर स्वयं ही परिणामन करती रहती हैं। इसीसे वह द्रव्य सिद्धिको प्राप्त होती हैं, इसके द्वारा प्रश्न है किसके द्वारा द्रव्य अस्ति? वह अपने द्वारा अस्ति अपने ही स्वभावको मूल कारण पाकर, अपने ही आप है, कोई अन्य विकल्पसे नहीं है। यह विकल्प करके कर्ता मानता है, तथा ऐहसान करता है और उनका ही कृतज्ञ भी बन जाता है। वह स्वयं द्रव्यत्व गुणके कारण परिणामता है। उसके लिए किसी अन्य साधनकी अपेक्षा नहीं करना पड़ती। द्रव्यसे द्रव्यान्तर उत्पन्न नहीं किया जा सकता। उनकी स्वयं पर्यायें ही बनती बिगड़ती रहती हैं। इसमें जो पैदा हुआ होता है वह जानता है कि यह पर्यायें हैं, अन्य कुछ नहीं है। द्रव्यके द्वारा जो उत्पन्न किया गया वह पर्याय है, द्रव्यान्तर नहीं है। वैशेषिकोंने द्वय गुण पर्यायिको भिन्न भिन्न माना है। उनके यहाँ स्वयं सत् किसीमें नहीं है। यह सत् सामान्यमें नहीं है और विशेषमें भी नहीं है। वह तो यह मानते हैं—सत्ताका समवाय पाकर द्रव्य सत् होता रहता है और उसीके आधारपर स्थित रहता है। किन्तु ऐसा नहीं है। सत् स्वयं सत् है। तो द्रव्यके द्वारा जो आरम्भ हुआ वह पर्यायें हैं, और कुछ नहीं है अर्थात् क्रोध, मान, माया, लोभ आदि भी हमारे नहीं हैं वह हमारी एक पर्याय है, कादाचित् हैं अर्थात् अनित्य हैं। जैसे अणुक है। दो अणु, तीन अणु, चार अणु वाला स्कन्ध है। सदैव या अभी-अभी शरीरमें कितने परमाणु निकलते रहते हैं और कितने ही आते रहते हैं। यह द्रव्यपर्याय है जैसे कादाचित् है और पर्यायके ही द्वारा सब कार्य संचालित होता रहता है। रागद्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ आदिके किये तो गये हैं, किन्तु वह भिन्न-भिन्न नहीं हैं, द्रव्यका परिणामन है।

द्रव्य अभी बन गया हो यह बात नहीं है—द्रव्य इसी तरह तीनों कालमें रहेगा पर्यायें बदलता रहेगा। वह द्रव्यस्वरूपको छोड़कर अन्यत्र नहीं जाता है। उसमें जो एक सत् है वह अन्यके द्वारा उत्पन्न नहीं हुआ है। यहाँ भी अज्ञान चलता है। मैंने अमुक को पैदा किया, अमुक बनाया है, मकान बनाया है, पुन्यपुत्रियोंके सम्बन्ध किये हैं, धन कमाया

है आदि । यह देखो कितना अज्ञानान्धकार छाया है ? तुम या मैं कोई भी एक अणुको तो पैदा कर नहीं सकते, फिर भी व्यर्थमें भूठा व्यामोह लगा फिरता है । मेरे इतने पुत्र हैं, बगीचे हैं आदि । जब एक परमाणुको भी अपना नहीं बना सकते तो मकान बनाना तो कैसे संभव है ? कर्म भी हम नहीं बना सकते, वह तो कषायका निमित्त पाकर बन जाते हैं । हमने योग और उपयोगका आलम्बन किया, योगोंके द्वारा परिस्पन्द (हलन चलन) आत्मामें हुआ तथा विशिष्ट उपयोगसे याने अशुभ या शुभ भाव होनेसे उसी तरहके कर्म आकर मिल जाते हैं । इसके अतिरिक्त यह कर ही क्या सकता है ? हमारा जो परिणामन बना है वह योग उपयोग रूप ही बन सकता है । अगर किसीसे कोई पूछे कि आपने क्या धंधा किया है ? तो वह भले ही दुनिया भरके व्यापार बताने लगे, किन्तु वह योग उपयोगके अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकता । घरमें हैं तो, दुकानमें हैं तो योग और उपयोगके सिवाय कुछ भी नहीं कर सकते । योग उपयोग हमेशा बनते रहते हैं । श्रद्धामें समझे कि मैं दुकानमें भी दुकानविषयक उपयोग बनाता हूँ । प्रथम तो ऐसा उपयोग बनावे, ४ गज कपड़ा फाड़ना है तो वैसा योग भी चला । जैसे मशीनका हैंडल घुमाते ही सबके सब कल पुर्जे द्रुतगतिसे चलने लगते हैं । तो ४ गज कपड़ा देनेकी इच्छा हुई तो योगी प्रवृत्ति हुई तो वैसी ही शरीरकी वायु चलने लगी, मनमें इच्छा पैदा होते ही परम्परया हाथ चलने लगा, उस तरहकी क्रिया हुई, साथमें उपयोग भी उसी तरहका चल रहा है । यह कार्य सब कैसे निमित्तनैमित्तिक पूर्वक हो रहे हैं ? मैं तो योग और उपयोगको छोड़कर कुछ नहीं करता ।

मोहकी विचित्रता देखो—मैंने अभी तक कितने जीवोंसे मोह नहीं किया है । पूर्व भवमें घर, कुटुम्बी, धन, दौलत होगी ? पुण्योदय होता तो इससे अच्छा जीवन या देवगति पाई होती, किन्तु कोई गलती, अशुभ कर्म किया होगा जिससे कह दिया, चलो अमुक स्थान पर, वहाँ तुम अपने वियेके फल भोगो । इसीसे इस पंचम कालमें आकर अनेक भंभटोंका सामना कर रहे हैं । अगर यही गलती फिरसे की तो क्या टिकाना, वहाँ क्या होना पड़ेगा ? यह स्वप्न कैसे हैं ? एक इन्द्रिय तो भोग भोगेंगे ही, क्या दो इन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय मामूली विषय भोग पावेंगे, किन्तु पचेन्द्रिय तिर्यञ्च तथा मनुष्य हैं (देव नारकी तो हैं ही) । पशु भी प्रकृति अनुकूल विषय भोगता है । वह ४-६ माहका इक्का घास इक्का भी करके नहीं रख सकता । बहुतसे बहुत अगर उसके पास अन्य घास खाने आ जावेगा तो वे उसे सींग मारकर भगा देंगे, किन्तु संग्रह नहीं करते । वह आश्विन, कार्तिक, फाल्गुन या अन्य माहोंमें ही प्रजनन करेंगे तथा मैथुन भी यथा समय करेंगे । लेकिन मनुष्यमें तो बल ज्यादा है, इस-लिए बल साहित्यके द्वारा, कलाके द्वारा, भोगोंमें बाजी मार सकता है । मनुष्यके १२ महीनों ही प्रजनन कार्य चलता रहता है । वंशानुवर्तिका मत है संसारभरके मनुष्योंके एक मिनटमें

६० सन्तानें पैदा होती रहती हैं। प्रत्येक इन्द्रियके विषय दिन रात चालू ही रहते हैं। कभी आई तो पुनः विकल्प करके नई-नई सामग्री जुटाने लगता है। अगर मनुष्य इस बलका यथोचित उपयोग करे तो धर्मकार्यमें भी आगे बढ़ सकता है। जो कि इसकी स्वाभाविक वस्तु होनी चाहिए।

धर्म व अधर्ममें कितना अन्तर है—दोनोंमें कितना अन्तर है? अधिक विषयकषादके करनेसे पापबन्ध करता है, जिससे अनेक दुःखोंका पात्र होना पड़ता है और धर्मकार्य करनेसे मोक्षके संस्कार बन जाते हैं तथा पुण्यबन्ध करके अनेकानेक सुख सामग्रियोंको पा सकता है। सोचे कि क्या मैं परका परिणामन कर पाता हूं? तादाम्य सम्बन्ध होनेसे मैं किसका क्या कर सकता हूं? केवल स्वयंका परिणामन करता रहता हूं। अनादिसे यही धंधा किया, इसीकी गरमागरम दुकान चलाता रहा, और इसीको चलाता रहेगा। एक पर्यायरूपी दुकान छूटी, दूसरी फिर प्राप्त कर ली, पुनः भोगोंके चक्कर चलने लगे। उपयोगका धंधा छूट नहीं सकता। यहाँ योग उपयोगके सिवाय कुछ नहीं कर सकता। द्रव्यसे जो भी आरम्भ किया जाता है वह उसकी पर्याय बनती है। आत्मा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक है तथा अन्य दूसरे पदार्थ भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक हैं। फिर भी आत्माकी निर्विकल्प समाधि होना, भावदृष्टिसे देखना योग्य है। द्रव्यदृष्टिसे शरीररूप पिण्डाकार है। क्षेत्रदृष्टिसे शरीरमात्र स्थानमें फैला हुआ है। कालदृष्टिसे वर्तमानमें यह परिणामन हो रहा है। भावदृष्टिसे देखा तो उसमें चैतन्यस्वभाव दृष्टिगत हुआ। चैतन्यकी दृष्टिसे देखा तो आत्मा प्रतीत हुई, अनुभव द्वारा जब हम विचार करते हैं कि आत्मा इतनेमें फैला है, इतना बड़ा है तब और उपयोग है, और एक चैतन्यस्वभावकी दृष्टिसे देखनेमें कुछ विचित्र चमत्कार है। ज्ञानी यह भावना करता है कि मैं ज्ञान दर्शनमात्र हूं। यही क्यों सोचते? इसलिये कि इससे आगे सोचे कि मैं सूक्ष्म गुण वाला, अस्तित्व विशेष गुण वाला हूं तो अनुभवमें चैतन्य नहीं रहता। अतः सोचना चाहिए कि—

मैं चेतनामात्र शुद्ध हूं—ज्ञान तो सबका करना चाहिये, भावना चैतन्यभावकी करे। अनादिकालसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको पाकर परमें परिणामन करता रहता हूं। पापको जीवन में प्रधान करके उसीमें लगा रहता हूं, और वह उसे सुगम भी हो गया। वैसे एक द्रव्यात्मक दृष्टिसे पुद्गल प्रधान है, क्षेत्रदृष्टिसे आकाश, कालदृष्टिसे पर्याय और भावदृष्टिसे आत्मामें रमण करना। स्वानुभूतिके लिए सद्भावना विशेष कार्यकारी है। द्रव्यके द्वारा भावका ही परिणामन तो बनेगा। द्रव्य तो अमर्यादित है। जो अनादिसे है वह किया हुआ क्या हो सकता है? जो किया हुआ होता है वहाँ अन्य पदार्थकी परिणति नहीं की जाती, इसलिए द्रव्यके व उसके द्वारा कदाचित् पर्याय तो हुई, अन्य सत्ता नहीं। द्रव्य तीनों कालोंमें रहने वाला है। इससे वह किसीके द्वारा बनाया नहीं जाता। द्रव्य भी स्वभावसे सिद्ध है। स्वभाव भी स्वभावसे

सिद्ध है। प्रत्येक द्रव्य अनादिसे है, वह परिणमता जा रहा है, परिणमता जावेगा। यह सन्तति चली ही जाती है या धंधा कहिये। रही पर्यायिकी बात, सो मैं अमुकको कर देता हूँ, उसको मैंने ही किया, मूलसे ही बना दिया है। यही दृष्टि सदैवसे रही आई है, जो कि क्लेश-हेतु है।

मोहके बुलावेका दस्तूर मिलेगा—किसी शुभ कार्यके लिए औरतें बुलावा देती हैं अन्य औरतें बुलावेमें आकर गीत गाती हैं। बादमें उन्हें खुशीके या उनके परिश्रमके बताशे वितरण किये जाते हैं, किन्तु हमने अनादिसे अनन्त काल बिताया, किन्तु हमें क्या मिला? इस शरीरको छोड़ा, फिर दूसरा पाया, यह क्रम लगा ही रहता है। लेकिन मिलते कैसे बताशे हैं सो सबको ज्ञात ही होगा। जैसा आया है वैसा चला जायगा। कुछ इस तरहके पशु होते हैं जो दूसरेके खेत आदिका उजाड़ करते हैं। तो उन्हें डंडे मार-मारकर बाहर निकाल दिया जाता है। लेकिन उसके तो संस्कार बने होते हैं कि फिरसे उजाड़ करने चला जाता है। तब बादमें खेत मालिकके फंदेमें फंस जाता है उसे कांजीहाउसमें ले जाकर बंद कर दिया जाता है। इसने पहले कोड़ोंकी मार खाई, जिससे पीठ छिल गई। कांजीहाउसमें समयपर या घास एवं पानी नहीं मिला जिससे दुर्बल हो गया, अगर वहांकी मर्यादित अवधिमें निकाल लिया गया तो ठीक है अन्यथा वहांकी अवधिपूर्ण होनेपर नीलाम कर दिये जावोगे। वहाँ भी दुःखोंका ही साम्राज्य है। वैसे ही हम मलिन परिणामोंसे जहाँ देखो वहाँ दुःख ही उठाते फिरते हैं। जहाँ जाते हैं, वहीं डंडे खाते हैं। खोटे भावोंसे इस जीवकी कहीं भी सुरक्षा नहीं। इसीसे द्रव्यके स्वरूपको परखनेको कहा है। मलिनता हटानेके लिए परिणामोंमें निर्मलता आना जरूरी है। संकट कहीं बाहरसे आकर हमला नहीं करता, हम उसरूप परिणाम जाते हैं तो दुःख होता है।

द्रव्य त्रिकाल निजसत्त्वनिष्ठ है—जैसे द्रव्य स्वभावसे सिद्ध है उसी तरह सत्ता सिद्ध है। सत्तासे सत्की सिद्धि है। वह हमारे भावमें है। कुछ लोग मानते हैं कि जब सत्ताका समवाय होता है तब सत् बनता है। वह अयुत सिद्ध सम्बंधको बताते हैं। वह पृथक् नहीं, किन्तु सत्ताका और समवायका सम्बंध चला आ रहा है। वैशेषिक ईश्वरको कर्ता नहीं मानते, किन्तु जैनियोंके सट्टण कुछ व्यवस्था मानते हैं, किन्तु कुछ भेद हो गया है। उनका वहना है कि सत्ता अलग चीज है और समवाय अलग चीज है, द्रव्य, गुण आदि अलग तथा हम जिस विधिसे देखते हैं, वह अलग चीज है, किन्तु प्रादेशिक भेदभाव नहीं आया। सत्ताके कहनेसे जो दिमाग बना वह सत्के कहनेसे लक्ष्यमें नहीं आया। लेकिन सत्ता और सत् कोई पृथक् वस्तु नहीं है तथा वह युत सिद्ध भी नहीं, क्योंकि एक हैं। धर्म धर्मोंकी दृष्टिसे देखना चाहिए। क्या धर्म धर्मोंसे अलग है? प्रत्येक द्रव्यका अपना जो सत्तात्मक स्वभाव है वह निष्पन्न है।

द्रव्यसे सत् सिद्ध हुआ, सत्से सत्ता सिद्ध हुई। द्रव्यसे ग्यारी कोई वस्तु नहीं है। जिससे कि यह वह सकें कि सत्से सत्ता होती है। हम यह सब कहते-कहते ऊब जाते हैं और आचार्य महाराज अमृतचन्दजी सूरि क्यों नहीं उबे ? यथार्थमें वह द्वितीय चिकित्सक हैं। यह जो मोह आता है वह स्वरूपास्तित्वका भान नहीं होनेसे होता, वह आता भी तब तक है जब तक पर-पदार्थ प्रिय लग रहे हैं। इस सत्के बारेमें कहते हैं। मैं जुदा हूँ, मुझसे सत्ता जुदी है। यह भी अलग सत्ता नहीं है कि कुछ मेरी भी सत्ता (अस्तित्व) है। मोही नहीं मानता, अगर अपनी सत्ताका पता होता तो क्यों यह आशय रखता कि मैं मुकदमा जीत जाऊँ, संतानका मुंह देख लूँ, धन उपलब्ध हो जाय या अमुक कोईसा भी कार्य सिद्ध हो जाय। भगवानकी परमात्मा अवस्था है, वह क्यों परसे उत्पन्न होती या मिलती है ? अन्तरङ्ग साधन देखो, बाह्यसे प्रवृत्ति जोड़नेका नाता तोड़ो। अगर कुछ बाधा आवे तो दूसरेकी गलती नहीं, स्वयंकी गलतीसे ही अन्य विचारोंको गढ़ लिया प्रतीत होता है।

प्रभुता किसी अन्य पदार्थसे नहीं आती—यह प्रभुविकास तो खदानसे निकले पत्थरमें गुप्त मूर्तिके समान है। जिसमें कि मूर्तिपना छिपा हुआ है, जो कि स्वतःसिद्ध है, पत्थर निकाला खदानमें से। कारीगरको बुलाकर वहाँ गया कि इसमेंसे इस तरहकी मूर्ति निकालना है, अगर उसकी प्रतिरूप मिलती-जुलती तस्वीर हुई तो वह दिखा दी। अभी मूर्तिका निर्माण नहीं हुआ है, किन्तु कारीगरको अन्तःज्ञानसे दिख गई है। यदि उसे मूर्ति दिखी नहीं होती तो कारीगर विपरीत हाथ भी चला सकता था। वह मूर्ति बनाता नहीं है, किन्तु मूर्तिपर जो मुलम्मा चढ़ा था उसे टांकी और हथोड़ाकी टंकोरसे हटा देता है। अगर मूर्तिमें कुछ करे तो बिगड़ जाय, अतएव मैलको हटाता है। जब सब मैल हट जाता है, तो जो मूर्ति उसे अन्तरसे दिखी थी, वही बाहरमें प्रकट हो जाती है। इसी तरह परमात्मस्वभाव अन्तरसे बाहरमें प्रकट हो जाता है। अगर स्वभाव बनता होता तो जो पहले नहीं है वह अब प्रकट नहीं हो सकता था। सम्यग्दृष्टि कारीगरको वह प्रभु दिख गया है जो प्रकट करना है। इस प्रभुके दर्शन होनेसे, उसपर जो मैलका मुलम्मा चढ़ा है उसे एकाग्र होकर हटाता है, अन्य सुध कुछ नहीं रहती। यह निमित्तनैमित्तिक सम्बंध है, किन्तु कर्मका मुलम्मा नहीं चढ़ा है, यहाँ वह मुलम्मा तो स्वभावपर चिपका हुआ है, वह है विषयकषायका। अब सम्यग्दृष्टि ज्ञानी उसको व्यक्त करनेके लिए प्रभुको नहीं बनाता, किन्तु जो विषयकषाय विकल्प हैं उन्हें हटाता है। कारीगरको तो छैनी मिली है। लेकिन यहाँ तो ऐसी वस्तु है नहीं। यहाँ तो केवल भावोंका खेल है। अब कौनसा छैनी हथोड़ा होवे जिससे कर्म मुलम्मा दूर किया जाय तत्त्वज्ञानरूपी छैनी और ध्यान रूपी प्रहारोसे उस मुलम्माको हटा दिया, विषयकषायोंको हटा दिया। जब यह भाव आया तो वह ममत्व नहीं रहा। ज्ञानभावका उदय हुआ और अज्ञान अन्धकार विलीनताको प्राप्त

हुआ। वह प्रभु इस विधिसे प्रकट हो जाता है। वह स्वभावसे ही आता है। जो यह सोचते हैं कि मेरा कार्य सिद्ध हो जावे तथा मैं इसे प्राप्त करूँगा, मैं इस ज्ञानका स्वामी हूँ, वह उसी जातिके विकल्प हैं जिनसे प्रभुता दिखती है।

शुद्धात्मोपलब्धि ही सच्ची सिद्धि है—सिद्धिके लिए यह सब प्रकरण चले आ रहे हैं। सत् और सत्ता पृथक्-पृथक् नहीं है। सत् और सत्तामें अतद्भाविक अन्तर है। जैसे चौकी चटाई आदि जुदे जुदे दिखते हैं, इस तरहका अन्तर नहीं है। इनकी पृथक् सिद्धता है इस तरहका अन्तर नहीं है। जैसे दंड और दंडी अलग-अलग हैं, इस तरह सत् और सत्ता जुदे-जुदे दिखते हों सो बात नहीं है। कहते हैं कि अयुत सिद्ध होनेपर भी पृथक् सिद्धता हो जायगी। यह तो तुम स्ववचन बाधित ही बोल रहे हो। क्योंकि वह अपृथक्-अपृथक् हैं। एक वस्तु है और उसमें तत्त्व है सो तो कह सकते हो। किन्तु एक है और अर्थान्तर है, यह नहीं हो सकता। लक्षणा स्वरूपसे भिन्नता हो सकती है। जो आत्मा है वह ज्ञान है और जो ज्ञान है वह आत्मा है—यह एक है क्या? एक तो नहीं है। ज्ञान जाननस्वरूप वाला है, आत्मा यह एक है। लक्ष्यसे यह भी कैसे एक हो जावेगा, किन्तु अर्थान्तरता बिल्कुल नहीं। अर्थान्तरने इसमें प्रादेशिक भेद ला दिया है। उसे स्वरूपमें पृथक् बोल सकते हैं। यह मेरा नहीं है, मैं इससे भिन्न हूँ।

सत् व सत्तामें मात्र अतद्भाव है—कहनेमें हमें मालूम पड़ता है कि सत् जुदी चीज है और सत्ता जुदी चीजें हैं। जैसे कोई कहे कि 'कुँडीमें बेर रखे हैं, मटकीमें लड्डू रखे हैं।' यह बात तभी कही जा सकती है जब सत्से सत्ता न्यारी हो। सभी यही जानते हैं सत्ता न्यारी नहीं है। जैनसिद्धान्त कहता है यह तो हमें भी कहना पड़ता है, जानना पड़ता है। सत्तामें सत्ता है, ऐसा जो प्रत्यय है या प्रतीति है वह किस कारणसे हुई है? यह भेद निबन्धनक हुई है या अभेद निबन्धनक? अभेद निबन्धनक कह नहीं सकते, भेद निबन्धनक कहेंगे। 'घड़ेमें घी है, लोटामें दूध है।' यह तभी कहेंगे जब दो जुदी वस्तु होवें। वह भेद क्या है, जिससे सत्तामें और सत्तामें एकपना मालूम पड़ता है? यह अन्तर सिपरेशन जैसा नहीं, किन्तु डिफरेन्स जैसा कह सकते हैं। दो भाई भाई हैं, वह इकट्ठे रह रहे हैं। किन्तु न्यारे नहीं हुए हैं। भाई-भाई रह रहे हैं। यदि न्यारे हो गये तो यह प्रादेशिक भेद हो गया और विरुद्ध बुद्धि हो गये, यह दिलका भेद हो गया। प्रादेशिक भेद वहाँपर है जहाँ अनेक द्रव्य हों, यह तो पर्याय अथवा अंश है। इसमें कोई विशेषता नहीं है। जो सत्ताका स्वरूप है वह सत्का नहीं हैं। अगर धर्म धर्मी का भेद न रहे तो धर्म गया या धर्मी गया? धर्म गया तो धर्मी किसपर ठरेगा और धर्मी गया तो धर्म ही क्या रहा? वस्तुमें धर्म धर्मीपना स्वतन्त्रतया कुछ नहीं है कि वहाँ भी भगड़ा हो सके। हमारे तुम्हारे भगड़ेसे उसपर उतर नहीं पड़ता। पर विकल्पके तो हमारे तुम्हारे

भगड़े हैं। वह भेद युक्त भी है और कथंचित अभेद भी है। प्रादेशिक अतद्भाव ऐसे दो भेद किये हैं। प्रादेशिक या युत सम्बन्धको जैन सिद्धान्तानुयायी एक द्रव्यमें नहीं मानते हैं, किन्तु तुम (वैशेषिक) द्रव्य गुण आदिको पृथक् मानते हो, वे तो (वैशेषिक) अयुत सिद्ध सम्बन्ध मानते हैं। 'द्रव्य द्रव्यणो संयोगः धर्मि धर्मयो समवायः।' एक द्रव्यके साथ दूसरे द्रव्यका सम्बन्ध संयोग है तथा धर्मिके साथ धर्मका सम्बन्ध समवाय है।

जो है वह स्पष्ट है—कल्पनायें बहुतसी कीं, किन्तु अन्तिम रह गया मुख्य एक सत्। तुम कहीं भी पहुंच जाओ अन्तमें परिणाम निकला "सत् है," यही दृष्टिगोचर हो रहा है। जैन न्यायमें यह विशेषता है कि उसमें बाह्य आडम्बर नहीं हैं। दूसरेने किसीकी सिद्धि की तो या तो अधिक चतुराई कर दी या मूढ़ता की। यह स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि एक पदार्थ भिन्न नहीं है फिर भी उसको अलग अलग मान लिया है इसे चतुराई न कहें और क्या? प्रमाण क्या है? ज्ञान, किन्तु बाह्य कारकोंको प्रमाण मान लेना यह वचन है? बताने वाला ज्ञान ही है। चाहे जितने भिन्न पदार्थ सहायक हो लो, जिसको द्रव्य सत्ता ही कबूल नहीं है वह तो चतुराई ही करेगा। आप लोगोंको मालूम होगा, जब कोई बाजारमें साग सब्जी खरीदने जाता है तो वहाँ चतुराई या मूढ़ता वाला ठगाया जाता है। चतुर व्यक्ति बड़ी खोज बीनसे भाव करेगा तथा सरती ले लेगा, सोचेगा एक आनामें दो आने बराबर माल आ रहा है तो वह वहाँ ठगाया जायगा, क्योंकि बेचने वाले भी तो चतुर होते हैं जो कि जिस वस्तुमें उनका कुछ भी प्राप्त होनेकी आशा नहीं थी। उसे जिस भाव बिका सो बचा दिया और लेने वालेके पल्लं स्वास्थ्य बिगाड़ने वाली सड़ी सब्जी मिल जाती है तथा मूढ़ता यह कि जो भी जैसी सब्जी हो, उसे लेने वाला विवेक बिना विक्रेताके सहारे छोड़कर उसीके कहे माल व भावपर खरीद लेता है तब वे बाबूजी बाबूजी कहकर अच्छी हजामत कर लेते हैं।

सत्त्व सत्का अनन्य धर्म है—यह कौन मान लेगा कि सत्से सत्ता जुदी है। जैसे हम हैं तो हमसे हमारी समस्त शक्तियाँ इससे अर्थान्तर नहीं हैं, किन्तु वह जिस रूप हम हैं उसी रूप व्यक्ति विशेषकी विशेषतायें हैं। मैं सबसे भिन्न किन्तु अविनाशी हूँ। शुद्ध चिद्रूप हूँ। मैं किसीमें मिल नहीं सकता। मैं एक स्वतंत्र जायकस्वरूप निराला ही हूँ। मैं किसी भी परपदार्थमें मिला नहीं हूँ। ज्ञाता दृष्टा मात्र हूँ, शान्तिसे लबालब भरा हुआ हूँ, जिसका पान कोई रसिक भी कर ले तो कमी नहीं आनेकी। भूलसे प्राणी अपनेको पर्यायरूप मान बैठे हैं। किन्हीं बाबूजी साहबने कोट सिलवाया और उसमें कहीं थोड़ीसी सिकुड़न (सलवट) रह गई तो कहेंगे भाई तुमने तो नाश कर दिया। इस तरह कहाँ-कहाँ नाश कर दिया। नाश अर्थात् कुछ भी बाकी नहीं रहा, किन्तु वहाँ शरीरसे सहित पूर्ण संपन्न है, फिर भी उक्त वचन कहते हैं। दुकानमें घाटा हो गया तो नाश कर दिया। यहाँ न तुम्हें उसने नाश कर दिया, यहाँके

विकल्पोकी अव्यवस्था है, इसीसे यद्वा तदवा बकते हैं। कर्मोंके कर्मत्वका अपने लिए नाश जड़से होवे तो मानो कर्मोंका नाश कर दिया, नहीं तो अपना नाश कर लिया अन्यथा एक पुद्गल परमाणुकी सत्ता भी तो विलीन नहीं हुई है। नाश तो किसी भी द्रव्यका नहीं होता है, किन्तु व्यवहारसे ऐसा कहते हैं। प्रयत्नपूर्वक अष्टकर्मोंको जड़से उन्मूलन करनेमें स्वाभिमान है, वही श्रेयोमार्गका दाता है।

सत्त्व व सत् एकरूप है—द्रव्य और सत्ता इस तरह समाये हुए हैं जैसे सफेद और सफेदी। क्या सफेद वस्तुसे सफेदी अलग है? यहाँ इस तरह नहीं समझना कि जब मनुष्यमें मनुष्यता (सभ्यता) हो तभी वह मनुष्य कहलावेगा। गतिकी अपेक्षा तो मनुष्य है ही सो मनुष्यत्व भी नियमसे है। लेकिन लोकव्यवहारमें जरूर जिस मनुष्यमें उदारता, इन्सानियत, नम्रता, प्रियवादिता, सौहार्द, मैत्री भाव रखना आदि गुण होंगे तो उत्तम प्रकृतिके मनुष्योंकी परीक्षा करते समय उक्त गुणोंसे समन्वितको ही मानव कहा जायगा। यहाँ प्रकरण सत् और सत्ताका है। तो मनुष्य कहनेसे कुछ और बोध हो तथा मनुष्यता कहनेसे कुछ और बोध हो, यह अतद्भाव है। जब सफेद, सफेदीसे कथंचिदपि भिन्न नहीं है तो सफेद और सफेदी क्यों कहे जाते हैं? भिन्नपना और बात, पृथक्पना और बात है। सफेद सफेदीमें भेद क्या प्रादेशिक है है या अतद्भाविक? प्रादेशिक तो है ही नहीं, क्योंकि यह प्रत्यक्ष विरुद्ध है, अतद्भाविक है। अतद्भाविकको जो सर्वथा मानते हैं, उनके प्रति कहना है कि यह अतद्भाव है वह भिन्न-भिन्नपना स्वरूपकी अपेक्षा सफेद और सफेदीमें ठहरा हुआ है। सफेद कहनेसे उक्त वस्तु विशेषकी प्रतीति होती है तथा सफेदीसे उसमें विद्यमान गुणका बोध होता है। इसी तरह सत् और सत्ता समझना चाहिए। सत् सत्तासे क्या जुदी है? अगर सत् ही न हो तो सत्ता कहाँ रहेगी? इसका हल खोजें तो दोनोंको जुदा-जुदा माननेकी अपेक्षा नहीं रह जायगी। लेकिन जो कुछ अन्तर है वह इस तरह है। प्रदेश भेद तो है नहीं। अंग्रेजीमें सपरेशन और डिफरेन्स वर्णित हुआ करता है। यही अन्तर यहाँपर है। सपरेशन तो है डिफरेन्स नहीं है, इस बातपर एक शक उठाई गई। हमें तो वह भिन्न-भिन्न ही मालूम पड़ते हैं। कैसे? यह क्यों बोध होता है है कि घड़ेमें घी है। एक बन गया अधिकरण और एक कर्ता। सत्में सत्ता है, तो सत् अलग है और सत्ता अलग है। इसमें यह है, ऐसी प्रतीति है तो हम तो भेद ही जानते हैं। देखो ना भैया! लोकरीति भेदपर उतारू होंगे तो ऐसे कि सत्की सत्ता भी जुदी मान बैठेंगे और अभेदपर उतारू होंगे तो ऐसे कि शरीर मैं हूँ, परिवार भी मैं हूँ, मकान मेरे हैं, वैभव मेरा है, लो चेतन अचेतन एकमेक कर डालेंगे। प्रकरणमें मूलभाव समझें कि सत् तो अनादि है, एक है। व्यक्तिगततामें परमाणु द्रव्य आदि हैं। कोई पदार्थ अपनी सीमाको नहीं छोड़ते। जैसे कि लोकमें पिताकी आत्मा पुत्रमें नहीं जाती और पुत्रकी आत्मा पितामें नहीं जाती। पुत्र

की आत्मा क्या सीमा छोड़कर पिताकी बन जावेगी ? उसी तरह जड़में चेतन नहीं मिलता और चेतनमें जड़ नहीं मिलता है । तब जड़ या चेतन अपने बन जावेंगे, क्योंकि सर्व स्वयं सत् हैं । अच्छा चलो “हममें यह है” यह प्रतीति किस कारणसे हुई है ? जुदे-जुदे हैं इससे या स्वरूप भिन्नतासे ? स्वरूप भिन्नता जैनसिद्धान्त वाले भी मानते और वैशेषिक भी मानते हैं । अब रह गया अतद्भाव । अतद्भाव, जो द्रव्य है वह गुण नहीं, और जो गुण है वह द्रव्य नहीं । जो सत् है वह सत्ता नहीं तथा जो सत्ता है वह सत्ता नहीं । धर्मसे धर्मी जाना गया, धर्मीसे धर्म जाना गया, किन्तु इतने मात्रसे जुदे-जुदे तो न ठहर जावेंगे ।

इन्सान व इन्सानियत क्या भिन्न है ?—इन्सानमें और इन्सानियतमें जितना अन्तर है उसे हम भी तो मानते हैं, किन्तु भिन्न क्षेत्र तो नहीं है । सत्का स्वरूप सत्ता ही है और सत्ता सत् ही है । सत्में सत्ता है, ऐसी सर्वथा भी तो यह प्रतीति नहीं होती । जो यह स्वरूप-भेद है कि यह यह है वह नहीं, सो ये सर्वथा भेद प्रतीतिका कारण नहीं बनता । इसमें यह है, स तरह भी नहीं है । सत् और सत्ता स्वयं ही उन्मग्न और निमग्न हुआ करते हैं । एक भेददृष्टि और एक अभेददृष्टि तथा एक पर्यायदृष्टि और एक द्रव्यदृष्टिसे थे । उन्मग्नता व निमग्नता होती है सो जानना । सत् और सत्तामें जब हम द्रव्यदृष्टिसे निश्चित करते हैं तो गुण भेद सब अस्त हो जाते हैं अभेददृष्टिमें । तब सत् या अभेदरूप यह उठा व सत्ताभिन्नता डूब गई । जब पर्यायकी दृष्टिसे देखते हैं तो भेद उठ गया, अभेद डूब गया । समुद्रमें लहरें हैं । जब समुद्रपर दृष्टि देते हैं तो लहर भेद सामने नहीं आता है । इस बुद्धिसे देखे तो कि एक विशाल जो समुद्र है, वही है और कुछ नहीं है । वहाँ समुद्र और लहरका भेद नहीं रहा, लहरका भेद समाप्त हो जाता है तथा जब लहरोंपर दृष्टि ही तो कहेंगे ५० फुट ऊंची लहरें हैं, समुद्रमें लहर है तब ऐसा कह देते हैं, और जब केवल समुद्रपर ही दृष्टि दें तो वह लहर भेद समाप्त हो जाता है । यहाँ दोनों अतद्भाव हैं । जिस तरह समुद्र और लहरोंके समझनेमें भिन्न भाव रह जाता है । लहरका वाच्य अलग है और समुद्रका वाच्य अलग है, फिर भी द्रव्य भेद नहीं है । इतनेपर भी कहते हैं कि समुद्रमें लहरें हैं, समुद्रमें लहरें हैं—यह भेद दूर नहीं होता, वह तो बना ही रहेगा । यह दिमागमें तब तक आता है जब तक एक समुद्रमात्र को नहीं देखा । केवल समुद्रपर दृष्टि देनेसे यह भेद खत्म हो जाता है । पर्याय हुई लहरें, उन्हें भिन्न समझनेपर यह प्रतीति होती है । समुद्रसे लहरोंको जब तक लक्ष्यभेदसे भिन्न मान रहे एवं देख रहे तभी तक यह अन्तर है । इसी तरह सत् और सत्तामें फर्क समझना चाहिए ।

धर्म धर्मीमें मात्र दृष्टिभेद है—जब हम पर्यायदृष्टिसे देखते हैं तो भेद प्रतीत होता है । धर्म-धर्मीके भेदसे देखनेपर वह प्रतीत है । जब द्रव्यकी विशेषता सोचते हैं तो यह गुण वाला है अथवा यह इस गुणसे युक्त द्रव्य है । सत्ता गुण है और सत् द्रव्य है । जब हम अभेदसे

देखते हैं तो उस समय अगर हमें केवल कपड़ा पहननेका लक्ष्य है तो कपड़ा उठाया और पहन लिया। लेकिन जब भेदपर दृष्टि है तो लाल, नीला, सफेद जो पसन्द होगा उसे पहनेंगे। कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं कि जो सफेद है तो क्या और मैला है तो क्या? उन्हें कपड़ा पहनने मात्र से मतलब रहता है, उनके अभेद हो गया। जब वस्त्रको भेदकी दृष्टिसे देखा तो यह सफेद है, यह पीला है, यह गुण इसका है आदि। यह अतद्भाव हुआ। अभेददृष्टिसे देखनेपर 'इसमें यह है' इस तरहका विकल्प कुछ नजर नहीं आता। समुद्र देखनेसे कुछ भिन्न मालूम नहीं पड़ता, किन्तु लहरोंपर दृष्टि देनेसे ज्ञात होता है कि यह लहरें समुद्रमें उठ रही हैं। माँ को अपने बच्चेपर बड़ी ममता रहती है, तो वह उसमें गुण ही गुण देखती है। उसे दुर्गुणोंसे कोई प्रयोजन नहीं। अतएव दुर्गुण भी उसके लिए गुण है वह मात्र पुत्रमें क्या है यह नहीं। दूसरे मनुष्य दुर्गुणोंपर दृष्टि देते हैं तो उनको इसमें अमुक अवगुण है, यह भेद जंच गया। जहाँ अभेदपर दृष्टि देते हैं तो एक स्वभाव दृष्टिगत होता है, किन्तु भेदपर दृष्टि देनेसे रागद्वेष आदि विभाव पर्यायोंको या अन्य पर्यायों, भेदों या अंशोंको देखा जाता है। जब अभेदसे सामान्यको देखा तो चारित्र्य गुण आदि भी समाप्त हो जाते हैं। जब वस्तुको एक दृष्टिसे देखते हैं तो सत् और सत्ताका भेद नहीं रहता है। शंकाकार जो सत् और सत्ता भिन्न मान रहे थे वह भेद खत्म हो जाता है और उनकी शङ्काका निरसन हो जाता है। अब इसलिए जब सत् कहते हैं तब सत्से सत्ता बनी है, यह भिन्न प्रतीत नहीं होता है।

मेरे सत्त्वविशेष भी मुझमें हैं—मैं भी सत् हूँ, मुझमें ज्ञान, दर्शन, शक्ति है, वह कहींसे मिली हो, यह बात नहीं है। आत्मामें आनन्द, ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य जो भी गुण है वह भिन्न नहीं है, किन्तु आत्माके ही उक्त गुण हैं। उन्हींको जब हम स्वभाव और ज्ञानकी दृष्टिसे देखते हैं तो भेद नजरमें आता है, और द्रव्यदृष्टिसे सब भेद समाप्त हो जावेंगे। यहां एक पूर्ण सत्यपर दृष्टि रहती है। जैसे हम एक पुस्तकको ही ग्रहण करते हैं। तो पुस्तकको चौकी नहीं कह सकते और चौकीको पुस्तक नहीं कह सकते। सर्वथा है ही और सर्वथा नहीं है, इस तरह नहीं कह सकते। सर्वथा कहना इसमें विधि नहीं है और सर्वथा निषेध नहीं है। भिन्न-भिन्न दृष्टियोंसे जुदा-जुदा मालूम पड़ता है, किन्तु यह विधि निषेधोंसे अनवस्थित है। ऐसे एक पदार्थकी खोज की जा रही है, वहाँ भेदको स्थान नहीं है। भेद तो भेददृष्टिसे देखने का है। अभेदमात्र देखनेसे वह सब बिला जाते हैं। मैं एक सत् हूँ, जितना हूँ उससे ज्यादा नहीं हूँ। कल्पना करके ही इसका अनुभव किया जा सकता है। लेकिन परकी जैसी कल्पना की वैसे ही पदार्थ बनते जावें, यह नियम असम्भव है। मेरा मकान, मेरी दुकान, मेरा पुत्र, मेरी स्त्री कहनेसे लाभ नहीं है। यह जाप (माला) तो २४ घंटों ही दी जा रही है। बिन मालाके यह जाप चलती ही रहती है। इससे कोई सिद्धि नहीं होनेकी। यह तो उन्हींमें उल-

माने वाली है। इसी करोड़ एवं अरब बार भी जप डालो तो कार्यकारी नहीं है। वह तो स्वतः ही चल रही है, फिर भी अगर इसे सीमामें आबद्ध कर लिया जाय तो उपयोग धर्म-कार्यमें लग सकेगा। सत्के स्वरूपको समझना, देखना, फिर भी कल्पना करे परपदार्थोंकी चाह की तो दुःख घटनेका नहीं।

अशुभ विचारोंमें तो रक्षा ही नहीं—अशुभ विचारोंमें कोई रक्षा नहीं है, किन्तु पाप का बन्ध ही है। शुभ भावोंमें कुछ रक्षा होती है या बचाव है अर्थात् पुण्यबन्ध होनेसे कुछ अच्छी सामग्रियां पानेके अधिकारी होते हैं तथा शुद्ध भावमें पूर्ण बचाव है, आत्माका हित है। अतएव कुछ मेरा है, मैं ऐसा करूंगा, मैं इनका स्वामी हूं आदि विकल्प दुःखके ही कारण विचारकर इनसे हटनेकी कोशिशमें रहे। सुखके लिए राग करते हैं, कहते हैं संसार कठिन है, स्वयं झूठे विषयभोगोंको सुख मानकर उनमें रत होकर पुनः निम्न श्रेणीका दुःख भोगना पड़ता है। इसीसे संसारसे उद्धार होना कठिन प्रतीत होता है। किसान लोग अपना गृह कार्य या अन्य विपत्तिके समय साहूकारसे रुपया ले लेता है। इसके पूर्व २००) ६० या ५००) ६० आदिकी साहूकारसे मंजूरी लेता है, उससे स्वीकृति मिल जानेपर अन्य तरफसे निश्चित हो जाता है। समय आनेपर माँगने आया और साहूकार साहबने रुपया देनेकी मनाई कर दी तो वह खेदखिन्न होकर कहता है—‘हाँ को मरे और नाईको जिये’ अर्थात् तुम शुरूसे ही मना कर देते तो दूसरी जगहसे पहले प्रबन्ध कर लेते। अतएव नहीं वालेका जीवन दान है और हाँ करके बादमें छोड़ना पड़ा तो दुःख ही है। इसी तरह इन विषयभोगोंका काम है। इनमें जिसने हाँ हाँ का ही इरादा रखा उसकी तो अंतिम समय इस लोकमें दशा बिगड़ जाती है तथा परलोकमें अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं। क्या रास्ता चलते या अन्यत्र धनहीन, अंगोपांग होन, परिवार हीन, दर-दरपर ठोकरें खाने वाले नजर नहीं आते? यह किसी न किसी पापके ही तो कारण हैं। “ना” करते रहो तो दुःख नहीं बढ़ेंगे। यह वस्तुयें तो वैराग्य लानेके लिए एक कारण होना चाहिए।

कोई किसीसे प्रेम नहीं करता—प्रत्येक स्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं, कोई किसीका नहीं है। स्वार्थ सिद्ध नहीं हो पाया सो प्रेम गया और प्रेम गया सो स्वार्थ गया। बच्चेको ऊपर फेंकनेमें आप प्रसन्न होते हैं, किन्तु वह तो डरके मारे रो नहीं पाता, तो आप उसके दुःखको क्या समझेंगे? वह मुँह बा देता है, आप समझते हैं कि हंस रहा है तथा खिलाने वाला अपनी विषयकषायोंको खिलाता है। एकका परिणमन दूसरेमें नहीं पहुँचता। प्रत्येक अपना-अपना परिणमन परिणामोंके अनुसार कर रहे हैं। सब कोई अपनी-अपनी बात बनाते हैं। सत् और सत्ता जुदे-जुदे नहीं हैं। पर्यायदृष्टिसे देखनेपर भेद नजर आता है तथा द्रव्य-दृष्टिसे भेद नजर नहीं आता और अभेदका अस्तित्व स्थापित होता है। जो कि चिर स्थायी

है और रहेगा। यहीं देख लो ना, जैसे यह सफेद कपड़ा है। तो यहाँ बताओ कि श्वेत गुण और कपड़ा क्या भिन्न-भिन्न हैं? देख लो प्रादेशिक भेद तो इनमें है नहीं कि कपड़ा अलग रखा हो व श्वेत गुण अलग रखा हो। हाँ अतद्भाव है अर्थात् जो कपड़ा है सो श्वेत गुण नहीं, क्योंकि कपड़ा तो श्वेत, स्निग्ध, सुगन्ध आदि अनेक गुणोंका अभिन्न अधिकरण है और श्वेत गुण अनेक गुणोंमें से एक उसमें अभिन्न गुण है। जब पर्यायदृष्टिसे भाव भेदसे देखा जाता है तो यह कहा जायगा कि यह श्वेत कपड़ा है, इस कपड़ेका यह श्वेत गुण है सो इस दृष्टिमें तो अतद्भाव बन गया, किन्तु जब द्रव्यकी अर्पणा की तब यह देखा जायगा कि श्वेत कपड़ा, इस दृष्टिमें अतद्भाव मिट जायगा। इसी तरह जब पर्यायदृष्टिसे भाव भेदसे देखा जायगा तो कहा जायगा कि द्रव्य गुणवान है। यह द्रव्य है, इसका यह गुण है सो पर्यायार्थिकनयमें द्रव्य, गुण (सत्ता) का अतद्भाव बन जायगा, किन्तु जब द्रव्यकी अर्पणा की तब यह देखा जायगा कि द्रव्य ही वैसा है, इस दृष्टिमें अतद्भाव मिट जायगा। इस तरह द्रव्यदृष्टि में भेद विलीन होनेसे अतद्भाव (भावभेद) प्रतीति विलीन हो जाती है। भेद प्रतीति विलीन होनेसे अर्थान्तरता खत्म हो जाती है। इस कारण यही निर्णय रखना कि समस्त ही वह द्रव्य एक होकर ही रहता है। हाँ पर्यायदृष्टिमें अतद्भावरूप भेद प्रतीत होता है, सो उस समय भी यही श्रद्धा रखना कि जैसे जलसे लहर भिन्न नहीं है, इसी तरह द्रव्यसे गुण भिन्न नहीं है और सत्से सत्ता जुदी नहीं है।

वस्तुको भेद या अभेददृष्टिसे देखा जाता है—अभेददृष्टिसे देखनेपर सत् और सत्ताका भेद तो खत्म हो गया और अभेद खड़ा हो गया तथा अभेदकी दृष्टिसे देखनेपर भेद उठ खड़ा होता है। भेदके कारण प्रतीति भी खत्म हो जाती है। समुद्रमें लहरोंपर दृष्टि गई कि यह लहरें कितनी चंचल हैं, किस तरह सर्पकी चाल जैसी नीची-ऊँची उठती हैं। यह कल्पना करने पर भेद नजर आ जायगा। भेदकी निगाहसे देखनेपर भेद मिलेगा और अभेदकी नजरसे देखने पर अभेद मिलेगा। पर्यायदृष्टिसे देखनेपर जलकी गति जो समान न रहकर एकके बाद एक हवाका स्पर्श पाकर पानीकी दशा जो उत्पन्न होती रहती हैं, उन्हें लहरें कहते हैं तथा जब लहरोंपर दृष्टि न देकर एकाग्र वस्तुको देखना है तो उसे समुद्र कहेंगे। यहाँ अतद्भाव है। भेद की दृष्टिसे देखनेपर दिख जायगा, किन्तु उसे जुदा नहीं कर सकते, उसी तरह आत्मा में राग-द्वेष विभाव अतद्भाव हैं। राग अलग है और आत्मा अलग है। उसी तरह द्रष्टाको देखेंगे तो राग चल रहा है, किन्तु उपयोगमें राग नहीं है, द्रव्यदृष्टिसे अभेद दिखता है। जब हम भेद प्रतीतिसे देखें 'इसमें यह है' तो यह भेद उठ खड़ा होता है। समुद्रमें तैराक तैरने उतरता है तो उखड़ता और डूबता है, यह दो स्थितियाँ बराबर चालू रहती हैं। जब भेद भी उठ खड़ा हुआ तो यहाँ भी अयुत सिद्धमें ही भिन्नता है। अयुत अर्थात् अलग न रहकर भेद देखनेपर

भिन्नताकी जो उत्पत्ति है वह दिखने लगती है ।

जीव एक है, किन्तु लक्ष्यमें भेद है—एक समय अकबर बादशाहने बीरबलसे कहा कि इस नगरमें सज्जन कितने हैं और दुर्जन कितने हैं ? तो बीरबल उत्तर देता है कि उतने ही अर्थात् जितने सज्जन हैं उतने ही दुर्जन हैं । तब बादशाहने कहा कि यह कैसे सम्भव है ? तब बीरबलने एक तरकीब सोची । एक तरहके दो समान चित्र बनाये और उसमेंसे एक चित्र चौराहेके घंटाघर पर टांग दिया, और उसके नीचे सूचना लिख दी कि इस चित्रमें जो जो खराबियाँ होवें, वहाँपर देखने वाले निशान लगा देवें । अब जो भी देखने आवे तो कोई उसकी आखें खराब बतानेके लिये निशान लगा दे, कोई नाक, कोई कान, कोई अंगुलियोंपर, घुटनोंपर आदि सर्वचित्रको खराब बता दिया । साथ वाले दूसरे चित्रको भी उसी चौराहेपर उसके बाद टांगा गया तो उसके नीचे सूचना लिख दी गई कि इस चित्रमें जहाँ जो सबसे अच्छा हिस्सा जंचे, उसपर निशान लगा दीजिए । उस चित्रपर भी मनुष्योंने निशान लगाये । तो कोई सोचे कि इसकी आँखें क्या बढ़िया हरिण जैसी हैं, नाक तोता जैसी है, अंगुलियाँ क्या ही अच्छी बन्दरिया जैसी लगती हैं आदि । इस तरह घुटने, हाथों, सिर, कान, गाल सब जगह निशान लगा दिये, इस तरह पूरे चित्रको अच्छा बता दिया । बीरबल अकबर बादशाह के पास आया और कहने लगा कि महाराज ! यहाँपर सभी दोषदृष्टा हैं, और सभी गुणदृष्टा हैं । देख लीजिए आप एक ही तरहके दो चित्रोंको सभीने अच्छा और सभीने बुरा बता दिया । यहाँ केवल दृष्टि ही लगाई गई और कुछ नहीं परख सके ।

कल्पनासे ही जीव बरबादी कर लेते—इसी तरह यह संसारके मनमोहक पदार्थ एक व्यक्तिके लिए अपने सर्वस्व जैसे मालूम पड़ते हैं, इनके बिना मानो वह रह नहीं सकता । यहाँ तक कि उनका बिछुड़ना हुआ तो वह अपने प्राणोंकी भी आहुति दे देता है । एक रईस छात्रने आत्महत्या कर ली । बादमें पता चला कि वह इसलिए मरा कि उसकी जिस लड़कीके साथ शादीकी इच्छा थी उस प्रेमिकाकी शादी अन्यत्र हो गई थी । एक व्यक्तिके लिए यही लुभावने पदार्थ जहरसे भी ज्यादा अप्रिय लगते हैं । वह सोचता है कि जहर तो एक ही भव में दुःख देगा, किन्तु इन विषयभोगोंका सम्बंध भव-भवमें दुःख देकर नचायेगा । यह सोचकर अनेक रानियों या एक स्त्री तथा धन वैभव लाखोंको छोड़कर आत्मध्यानमें प्रीति करता है । यह पदार्थ उसे अप्रियका मतलब शत्रु नहीं हो जाते, किन्तु उनकी तरफसे मोहदृष्टि हट जाती है । निजका लड़का पहले अति प्रिय लगना था, जिसके बिना भोजन करना भी कठिन प्रतीत होता था, वही खटपट हो जानेपर दृष्टि बदल जानेसे पराया पुत्र जैसा मालूम पड़ने लगता है । बजरभानुको स्त्रीका कितना मोह था ? शादीके १० दिन बाद जब वह पीहर जाने लगी तो बजरभानुसे नहीं रहा गया, और साथ चल दिये । लेविन देखिये १ घंटा भी नहीं होता, घंटा

तो दूर दो मिनट भी नहीं लगते, स्त्री और साला सामने खड़ा है। वहींपर उनके सामने नग्न दिगम्बर मुनि हो घोर तपस्यामें रत हो जाते हैं। इन भावोंका प्रभाव विचित्र है। संसारसे उदास होकर कर्म खिपानेमें संलग्न हो जाते हैं। राग किसीसे लेश मात्र भी नहीं रह जाता है। सम्यग्दृष्टि पुरुषकी दृष्टिमें जो कीमत कागकी कीटिकाकी है वही कीमत तीन लोककी संपत्ति की है। यहाँ राग वस्तुसे नहीं, अपनी रुचिवश राग है। काश्मीरके भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्री शेख अब्दुल्ला भारत वालोंको, काश्मीरके मनुष्योंको कितने अच्छे लगते थे? लेकिन जब उनकी कूट-नीतिका प्रकाश हुआ तो उनकी जानपर आ बनी, जिससे वे छिपते फिरे और उन्हें पकड़नेकी सूचना निकाल दी गई। जो चाहते थे उन्हींकी विरुद्ध परिणति हो गई।

राग रहने तक ही विषय मोहक लगते—जब तक राग है तभी तक यह पदार्थ मोहक मालूम होते हैं। राग हटते ही जहरसे भरे सुवर्णके घड़ेके समान मालूम पड़ने लगते हैं। यह तो पर्याय है, इसीपर क्यों लुभा जावें, आज है, कल नहीं है। तुम इन्हें नहीं छोड़ोगे तो वह तो तुम्हें छोड़ ही देंगे। अतएव इनसे मोह करने वाला बुद्धिमान नहीं। वृद्धावस्था आनेपर इन्द्रियोंकी भोग शक्ति क्षीण हो जाती है तब सब भावनायें ताकपर ही रखी रह जाती हैं। उत्तमसे उत्तम भोजन खाना चाहते हैं, किन्तु पचानेकी शक्ति नहीं है। पैर चलनेमें समर्थ नहीं रहते, आँख काम नहीं देती, कानोंसे सुनते नहीं, नाकसे सुगन्ध, दुर्गन्धका ज्ञान नहीं होता, लाठीका सहारा लेना पड़ता है। भेददृष्टि एवं अभेददृष्टिसे पदार्थोंका यथार्थस्वरूप जान लेनेपर उनकी निरर्थकता समझी जा सकती है। सत्का समझना अति आवश्यक है। सत् और सत्ता को समझनेके लिए विभिन्नता उत्पन्न हो गई। उस समय समझनेकी दृष्टिसे ही वह भेद उत्पन्न हो सकता है। समझा हुआ पदार्थ भी तो उसीका धर्म है। सत् और सत्ता दोनों द्रव्यसे भिन्न नहीं हैं। द्रव्यको ही अंश रूपसे ग्रहण किया था। जैसे समुद्रमें कल्लोलें उखड़ रही हैं, किन्तु वह कल्लोलें समुद्रसे भिन्न नहीं हो गईं। समुद्र पूरा है वह। सत्में भव दृष्टि की तो सत्ता देखी। वैसे तो सत् अभेद है। यह स्वीकार किया तो द्रव्य स्वयं ही सत् सिद्ध हो गया।

किसीकी सत्ता अन्य साधनसे नहीं—सत् या सत्ता किसी साधनान्तरकी अपेक्षासे हुआ सो नहीं है। द्रव्यमें जो उत्पाद है वह भी किसी साधनान्तरकी अपेक्षासे नहीं है तथा जो द्रव्यमें व्यय है वह भी किसी साधनान्तरकी अपेक्षासे नहीं है और द्रव्यकी जो ध्रौव्य पर्याय है वह भी किसी अन्य साधनान्तरकी अपेक्षासे नहीं है। यह द्रव्य वस्तु ही इस तरहके स्वभाव वाला है। इसीको स्वतंत्रता कहते हैं। इसमें जो साधारण और असाधारण गुण हैं वह परिणामते चले जाते हैं। यह स्वतंत्रता स्वयंसिद्ध अधिकार है। जिस तरह आजादी हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है उसी तरह वस्तुकी सत्ता जन्मसिद्ध अधिकार है। उसमें विभावकी कोई विशेषता आवे वह स्वभावसिद्ध नहीं है। वह जरूर उपाधि है। विभावोंपर दृष्टि क्यों हो

जाय ? वस्तुका अस्तित्व सिद्ध होनेपर द्रव्य स्वयंसिद्ध है। यह पदार्थका सत् स्वरूप है जो ऐसा नहीं मानना चाहते वे पर समय हैं, भेदबुद्धि व पर्यायबुद्धि हैं। उनके तीन शब्दोंका अर्थ बड़ा महत्त्वपूर्ण जंचा है—जानना, मानना और चाहना। प्रथम कोई बात जानना चाहिए तथा जानकर उसे मानना चाहिए और मान लेनेपर उसके अनुरूप आचरण करना जरूरी हो जाता है सो उसरूप चाह होनी चाहिये। जो पदार्थका यह सत्य स्वरूप जानकर मानते नहीं और मानकर चाहते नहीं उसे परसमय ही कहना चाहिए। क्योंकि यह अपनी आत्माका स्पर्श करना नहीं है तथा परपदार्थमें ही बुद्धि दौड़ाता रहता है। जिसे सत् या निज सत्की खबर नहीं, उसे यह भान भी नहीं रहता कि मैं कौन हूं, कहांसे आया हूं, मुझे क्या करना है, मेरा क्या कर्तव्य हो जाता है ? अगर इन प्रश्नोंका सही समाधान कर लेवे तो सुख, शांतिकी धारा अपनेमें बहा सकता है। मैं शुद्ध चैतन्यस्वरूप आत्मा हूं। नरक निगोद, तिर्यञ्चगतिमें किस-किस योनिमें भटका हूं ? हमें अब आत्मकल्याण करना चाहिए वही श्रेयस्कर है। अतएव शास्त्र स्वाध्याय आदिके द्वारा तत्त्वज्ञान जानकर उसमें आनंद लेता है।

किसीका काम कोई दूसरा नहीं कर सकता—कुछ लोग सोचते हैं कि इन्होंने हमारा कार्य बना दिया। इनके बिना यह कार्य नहीं हो सकता था। यह बड़े धन्यवादके पात्र हैं आदि। जैसे कुछ लोग कहते हैं कि खुदकी मर्जी बिना पत्ता भी नहीं हिलता अर्थात् जाननेकी बात मर्जीमें ले गये। कोई इसे जानते हैं कि भगवानके ज्ञान बिना पत्ता नहीं हिलता, तभी तो बढ़कर मर्जी तक पहुंचे और ऐसा कहते हैं। ऐसा ही है तभी इस तरह होता है। ज्ञानमें आया तब ज्ञेय हुआ, इससे ऐसा बन रहा है यह नहीं। ज्ञेय पदार्थकी जो सत्ता है वह इसमें दिखाया है। जैसे सत् है, वह एक है, अभेद है, अविनाशी है। इस तरह अभेददृष्टि देखनेसे वैसा नजर आता है। तत्त्वकी बात जानो। दृश्य समागम तो कीचड़ है, इससे सम्बंध जुड़ा हुआ है। यहां केवल समझना ही है, नाममात्र ही करना है और कुछ नहीं। यह है, कुछ नहीं। बड़े-बड़े महापुरुषोंने राग किया है। लक्ष्मणने रामचन्द्रजी की सेवाके लिए क्यासे क्या नहीं किया ? बलभद्रका श्रीकृष्णके प्रति कितना अतुल स्नेह नहीं था ? यहां तो उतना राग करके ही नहीं जानते, फिर भी उनका वर्णन शास्त्र करते हैं। ऐसे-ऐसे महापुरुष भी सिद्ध होंगे, चक्रवर्ती, तीर्थ करके पद आदि श्रेष्ठ पद पावेंगे एवं रामचन्द्र जैसे महापुरुष उसी भवसे मोक्ष गये हैं। यहाँ तो न पक्का राग ही है और न वैराग्य ही है। केवल ढेरामात्र चल रहा है। भैया ! जरा द्रव्यके स्वरूपको तो देखो—सब शुद्ध सत्ताक हैं, सब स्वतंत्र-वतंत्र सत् हैं। सब स्वयं सत् हैं। जो ऐसा नहीं मानता है वह बहिरात्मा है, परसमय है।

वस्तुके पदार्थ बोधसे ज्ञानी जीव आत्मस्वरूप जानते हैं। पदार्थोंकी सत्ता अनादि अनंत है। उसके नाश होनेका कोई जिक्र नहीं हो सकता। वह उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य वाले

होनेपर भी द्रव्य सत् है, इस तरह प्रकट करते कि उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य युक्त होकर भी अपने आपमें देखते हुए विशेष तौरसे प्रकट होते हैं। इसीको आचार्य श्री कुन्दकुन्द महाराज स्पष्ट करते हैं।

सदवद्वियं सहावे दव्वं दव्वस्स जो हि परिणामो ।

अत्थेसु सो सहावोठिदि संभवणास संबद्धो ॥६६॥

स्वभावमें अवस्थित जो सत् है वह द्रव्य है और द्रव्यकी जो स्थिति उत्पाद, व्ययसे ऐक्यात्मक परिणाम है सो अर्थमें स्वभाव है। स्वभावमें अवस्थित जो द्रव्य है वह सत् है। सत् होनेसे स्वभावमें स्थित है और स्वभावमें स्थित होनेसे सत् है। ऐसा वह सत् द्रव्य है। विशेषण कहीं-कहीं हेतु बन जाया करते हैं। स्वभावमें अवस्थित होनेसे सत् है। पदार्थोंमें स्वभाव क्या है? जो द्रव्यका परिणाम है वह उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सहित है, जो कि द्रव्यों में पाया जाता है। वह सत्का लक्षण ही स्वभाव उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य है। कोई कहे द्रव्योंका परिणमन एक घंटा क्या एक भी समय रुक जावे, परिणमन नहीं करें, थक गये होंगे। तो वह न अनादिकालसे परिणमन करनेमें रुके हैं और न रुकेंगे। वह विराम नहीं लेगा और हापड़-धूपड़ शैतानियतका काम भी नहीं करेगा याने किसी दूसरे रूप भी न परिणमेगा। प्रत्येक द्रव्यमें उत्पाद होता है और व्यय होता है, फिर भी अवस्थिति रहती है। इस तरह वह ध्रौव्य रहते हुए भी अपने स्वभावमें परिणम रहे हैं। यह त्रितय प्रत्येक द्रव्यका स्वभाव ही है।

वस्तुविभाग—वस्तुमें दो विभाग किये गये हैं—(१) विष्कम्भ और (२) आयत। जिसका तात्पर्य द्रव्यपर्याय व गुणपर्याय बताना है। जैसे कि प्रत्येक वस्तु समस्त रूपमें एक ही है, फिर भी अपना कोई न कोई आकार (क्षेत्र) लिये तो है ही, सो उसके विस्तारके क्रम की प्रवृत्तिमें रहने वाले सूक्ष्म अंश हैं वे ही प्रदेश कहलाते हैं। उसी प्रकार प्रत्येक वस्तु साम-स्त्येन एक है तो भी चूंकि वस्तुका उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक परिणाम स्वभाव है। अतः पूर्वापरकालमें जो उस वस्तुका प्रवाह चलता है, उसके क्रमकी प्रवृत्तिमें रहने वाले सूक्ष्म अंश हैं ही, उन्हें परिणाम कहते हैं। जहाँ क्रम है वहाँ परस्पर व्यतिरेक (भेद) होता ही है। अभिन्न एक वस्तुमें भी विवक्षावश जो क्रम स्थापित किया जाय, उसमें भी व्यतिरेक है। सो प्रदेशोंमें परस्पर व्यतिरेक क्रम जाना, इससे तो विष्कम्भ क्रम बना और परिणामों (गुणपरिणामनों) में परस्पर व्यतिरेक क्रम हुआ, इससे प्रवाह क्रम बना।

परिणाम अपेक्षासे नानारूप है—जो द्रव्यका परिणाम है वह क्या है? परिणाम वह है जो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक स्वभावसे रहे। वह द्रव्यात्मक है। अब उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इन तीनको सत्के दो विभागों द्वारा घटाकर दिखावेंगे। सत् द्रव्य, पदार्थ प्रत्येक द्रव्य गुणात्मक है और प्रदेशात्मक है। प्रदेश भी नित्य है और गुण भी नित्य हैं। प्रदेशकी चर्चा

पहले करते हैं। बादमें गुण या परिणामकी चर्चा की जायगी। द्रव्य वस्तु अर्थात् द्रव्य जो एक पदार्थ है उसे उपमा क्षेत्रकी दी है। वस्तु मकानको भी कहते हैं। द्रव्य एक वस्तु है। वह समस्तरूपसे एक है। यहां क्षेत्रकी दृष्टिसे प्रधान करके देखा गया द्रव्य है। वह द्रव्यात्मक क्षेत्रात्मक, कालात्मक और भावात्मक—इन चारोंकी मुख्यता कर देखनेसे चार भेद नजर आते हैं। द्रव्यकी अपेक्षासे देखनेपर पिण्डरूप नजर आता है। वह एक अभेदरूप नजर आता है। द्रव्यदृष्टिसे घटाकर दिखाया गया तो पिण्डरूप दिखा क्षेत्रदृष्टिसे देखनेपर जैसे एक यह चौकी है। २० इंच लम्बी, १५ इंच चौड़ी है, इस तरह चौकी नजर आयी। इसी प्रकार द्रव्य प्रदेशोंके रूपमें जाना गया। जब हमने कालदृष्टिसे देखा, पुरानी अवस्था है जीर्ण-शीर्ण है और अथवा यदि नवीन है तो नवीन है, इसी प्रकार द्रव्य भी पर्यायमें जाना। भावदृष्टिसे देखा तो यह किताब सफेद है या चौकी लाल है अथवा अमुक-अमुक गुण वाली यह वस्तु है। इसी प्रकार द्रव्य गुणात्मक जाना। क्षेत्रदृष्टिसे प्रदेश नजर आये और प्रदेशपुञ्जको ही वस्तु कहते हैं। जैसे द्रव्य वस्तु है, वह पूर्ण रूपसे एक है। आत्माका क्षेत्र पिण्डरूपसे एक है। आत्माका प्रदेश समस्त रूपसे एक है। क्षेत्रमें सम्बन्धको जाननेके लिए चौड़ाई रूपसे देखनेमें विष्कम्भका क्रम बना।

प्रदेशोंके रूपमें भेद व अभेद—उसमें रहने वाले प्रदेश हैं। जब उसका विष्कम्भ क्रम देखा तो हमें एक-एक प्रदेश समझमें आये। प्रदेशकी निष्पत्तिमें रहने वाले क्रमसे हैं। जैसे एक प्रदेश यह उसके आगे यह प्रदेश है, इस तरह समझना चाहिए। एक कमरा है इसमें एक आकाश है। अगर उसके विस्तारमें क्रमसे गये और कहें कि यह इतना है, यह इतना है तो उसके हिस्से हो गये, यह १० हाथ है तो एक-एक हाथका क्रम भी तो बन गया। काल द्रव्य और परमाणुको छोड़कर शेष सभी द्रव्य विस्तारात्मक हैं। आकाश निरवधि है। धर्म-द्रव्य, अधर्मद्रव्य ३४३ राजू प्रमाण हैं, ३४३ घनराजूमें जितना प्रदेश है, उतने ही आत्मामें प्रदेश देखे जाते हैं। वह एक अरूप है। अब उसीमें परिणामकी बात चलती है। द्रव्यकी जो वर्तना है वह भावदृष्टिसे समस्त एक है। समस्त गुणोंका एक प्रतिनिधिस्वरूप द्रव्यका जो स्वभाव है वह एक है। फिर भी प्रवाहकी क्रमकी प्रवृत्तिमें रहने वाले सूक्ष्म अंश हैं वे परिणाम कहलाये। द्रव्य वृत्तिसे गुण और पर्याय लिया। जब गुणदृष्टिसे देखा तो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य गुणमें लगाये जावेंगे और जब पर्यायरूपसे देखा तो पर्याय सामान्य ध्रौव्य और पर्याय-विशेष उत्पाद, व्यय युक्त हो जावेंगे। अब प्रथम प्रदेशोंमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य घटावें। गुण जो होते हैं, उसमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य होता है, यह तो प्रायः प्रसिद्ध है।

प्रदेशों व पर्यायोंमें उत्पाद, व्यय—अब प्रदेशोंमें और पर्यायोंमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य बतलावेंगे। जितने प्रदेश होंगे, उसी तरह क्रम भी मान्य होगा। चौकी विस्तारमें लें तो यह

एक है, इसमें विस्तार क्रम भी है। एक प्रदेशको छोड़ दूसरेपर आये तो पूर्व पर्यायिका व्यय हुआ और नवीनका उत्पाद हुआ। एक गज कपड़ेमें एक-एक सूत्र मिला तब वह बन पाया है। यह क्रम जो है परस्परमें व्यतिरेक सहित है। अगर उन सूत्रों द्वारा बनाये कपड़ेको गज नहीं मानोगे तो एक गज ही एक सूतसे बन जाना चाहिए। इससे यह भिन्न नहीं है और क्रम भी है। दूधमें जो चिकनाई है वह दूधके ही अंश हैं। वह अंश १ अंश, २ अंश, ३ अंश आदि करके दिमागमें न्यारे-न्यारे हैं। अगर उन्हें बुद्धिमें जुदे-जुदे न करो तब वह क्या एक या दो अंश इकट्ठे रूप ही रह जायेंगे। परस्परमें प्रदेश व्यतिरेक है। आत्मा में जो एक प्रदेश है वह दूसरा नहीं है तथा जो दूसरा है वह तीसरा नहीं है, इस तरह सब प्रदेशोंके बारेमें समझना चाहिए। अगर यह क्रम न हो तो आत्मा कालद्रव्यके समान एकप्रदेशी ही रह जायगा। छात्रोंके समूहको बैच कहते हैं। अगर बैचको ही एक लड़का समझ लिया गया तो फिर अलग लड़कोंको नहीं बुला सकोगे। इसलिए उनमें एक-एक मिल करके जो छात्र है वह बैच है। इसी तरह पर्याय एकके बाद एक होती रहती है तथा द्रव्य स्थायी बना रहता है तथा परिणामोंके परस्परमें व्यतिरेक निबन्धन द्रव्य कर्म और नोकर्मकी जो सामान्य पर्याय है वह एक है। लेकिन पर्याय विशेषोंमें भेद पड़ा हुआ है, इससे एक है व अनेक है।

संख्येयोंमें क्रम व अक्रम—प्रदेशोंमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य पड़ा हुआ है। यह क्षेत्र इतना लम्बा चौड़ा विस्तार वाला है, वह अपने ही स्थान स्वरूपमें उत्तररूपके प्रदेशोंसे उत्पन्न होता और पूर्वरूपसे व्यय होता है। यह क्रम उत्पाद व्यय बिना नहीं बन सकता है। क्षेत्रका काल क्रम प्रदेश बिना नहीं बन सकता। दस लड़कोंके समूहमें से एकके बाद एक बताया तो पूर्वका स्थान व्यय हो गया और स्वस्थानका एक उत्पाद हो गया। वहीं प्रदेशोंमें पूर्व रूपसे उच्छिन्न तथा उत्तररूपसे उत्पन्न है। अगर छात्रोंको बैच (छात्रमण्डल) तरफसे देखें तो उत्पाद व्यय नहीं होगा। पदार्थोंमें जो प्रदेश देखा वह पूर्वरूपसे व्यय तथा उत्तररूपसे उत्पन्न है। उच्छिन्न और उत्पन्न दोनों एक साथ चलते हैं। लेकिन यह ढंग सदैव एकसा चलता रहता है तथा बहुप्रदेशी प्रत्येक द्रव्यके प्रदेश एक दूसरेमें सटे हुए हैं, निरन्तर हैं। कल्पना करके रहनेपर उसमें क्रम है। दोनोंमें उत्पाद व्यय है, किन्तु सूत्र सबमें स्पर्श करता हुआ सूचित होता है। जैसे एक मालामें बहुतसे दाने हैं, वहां एक छोड़ा और दूसरा लिया तो छोड़ने वालेका व्यय हुआ, और आगे आने वालेकी उत्पत्ति हुई तथा सम्पूर्ण दाने एक धागेमें पिरोये हुए हैं, इसलिए वे सब एक मालारूप भी हैं। इसी प्रकार पूर्वरूपसे उच्छिन्न और उत्तररूपसे उत्पन्न यह क्रम प्रत्येक पर्यायमें, प्रदेशोंमें पाया जाता है। द्रव्यदृष्टिसे वह प्रदेश अनुत्पन्न है और अप्रलीन है। अनुत्पन्न और अप्रलीनका तात्पर्य न उत्पन्न है और न प्रलीन है। इस तरह ये प्रदेश उत्पाद, व्यय एवं ध्रौव्यत्वकपनेको धारण कर रहे हैं।

सर्वत्र स्याद्वादका प्रसार है—यहां भी उत्पाद व्यय है। जैनधर्मके यह तत्त्व अटल हैं जो कि समन्तभद्राचार्य जैसे दिग्गज महारथीके पाससे निकलकर यह स्याद्वाद एक दूसरे आचार्योंके पास पहुंचता रहा है, और वह स्याद्वाद वैसाका वैसा ही स्थिर है। यह स्याद्वाद अखण्डित है। कोई कहे कि यह लड़का हमारा है। तो प्रश्न है कि वह लड़का भिन्न है या अभिन्न है। अगर भिन्न है तो वह सर्वथा तुम्हारा नहीं बन सकता और अगर अभिन्न कहते हो तो लड़का या आप दोनोंमें ही वह एक होना चाहिए या जिसका है उसको ही अकेला होना चाहिए। एक नष्ट हो जायगा, एक ही बचना चाहिए। स्याद्वाद बिना न तो परमार्थ चल सकता है और न इहलोकका व्यवहार चल सकता है। अकलंक नाटकमें यही तो दिखाया है। बौद्धोंकी नगरीमें एक सेठजी रहते थे, जो कि क्षणिकको मानते थे। सेठजी की गाय ग्वाला चराने ले जाया करता था। महीना पूर्ण होनेपर ग्वालेने सेठजी से चराई मांगी। सेठजी ने कह दिया कि जो गाय तुम चराते थे वह अब कहाँ है? वह तो दूसरी ही गाय है तथा तुम भी दूसरे ग्वाले हो। ग्वालेको जब चराई मिलती नहीं दिखी तो वह भी चालाक था। उसने उपाय खोज निकाला और गायको ग्वालेने अपने घर बांध लिया। अब सेठजी के घर गाय नहीं आयी तो वे ग्वालेके यहाँ पहुंचे और कहा कि हमारी गाय लाओ। ग्वाला बोला कि जो गाय आपने मुझे सौंपी थी वह तो खत्म हो गई और यह तो दूसरी ही गाय है तथा जो ग्वाला था वह भी गुजर चुका, यह तो दूसरा ही ग्वाला है। यह सुनकर सेठजी ने सोचा कि २००) ६० की गाय जा रही है तो हाथ जोड़ने लगे और कहा कि वही मेरी गाय है और तुम भी वही ग्वाले हो। मेहरबानी करके हमारी गाय हमें दे दो। इसपर ग्वालेने कहा कि वही तुम्हारी गाय है तो तुम भी वही सेठजी हो, पहले हमारी चराई यहाँ रख दो तब गाय मिलेगी। सेठजी ने विवश होकर ग्वालेकी चराई चुकाई और अपनी गाय वापस ले ली। तब से उन्हें प्रत्येक पदार्थ क्षणिक न माननेकी शिक्षा मिल गई।

सर्वथा क्षणिकता हो तो आपत्ति—अगर इस तरहसे क्षणिक प्रत्येक पदार्थ मानने लगे तो द्रव्यका द्रव्यत्व, स्थायित्व ही समाप्त हो जायेगा। यह क्षणिक सिद्धान्त साक्षात् व्यवहारमें भी नहीं टिक सकता तब और आगेकी कल्पना करना तो असंभव है। जहाँ कि उनका प्रवेश नहीं है। कोई हैरान होकर मानने लगते हैं कि जीव तो है, किन्तु भौतिक है। मरनेपर समान नष्ट हो जायगा, उनका यह मत भी खण्डित हो जाता है कि जब तक जियो तब तक मौजसे जियो और मौज उड़ाओ। अगर ऐसी बात होती तो वही क्यों बौद्धमें मठ बनाकर या अन्य प्रकार व्यावहारिक सभ्यतादि धर्म कार्योंको करते? प्रत्येक द्रव्य सत् है और वह उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक सिद्ध है। अतः एक परलोकको सामने रखकर ही कोईसा कार्य करना हितकर है। अब यहां प्रदेशोंमें क्रम निबन्धनक उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य

देखिये और परिणामोंमें भी क्रम निबन्धनक उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य देखिये—जैसे कि वस्तुके वे प्रदेश अपने स्थानमें प्रदेश स्वरूपसे तो दृष्टिमें उत्पन्न हुए और पूर्व प्रदेश रूपसे उच्छिन्न हुए तथा उस वस्तुमें सर्वत्र परस्पर अनुस्यूतिसे सूत्रित एक प्रवाहरूपसे तो वे प्रदेश न उत्पन्न हैं, न उच्छिन्न हैं, अतः ध्रौव्य हैं। इस तरह उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक अपने आत्मा को धारण करते हैं। इस तरह विष्कम्भक्रम हुआ। इसी तरह उस वस्तुके वे परिणाम (गुण-परिणामन) अपने समयमें स्वरूपसे तो उत्पन्न हैं और पूर्व परिणामके रूपसे विलीन हैं और द्रव्यदृष्टिमें चूंकि सर्वत्र परस्पर अनुस्यूति (निरन्तर प्राप्ति) से सूत्रित एक प्रवाहरूपसे तो वे अनुत्पन्न हैं और अविलीन हैं, न उत्पन्न हैं, न विलीन हैं, अतः ध्रौव्य हैं। इस तरह वे परिणाम भी उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यात्मक आत्माको धारते हैं तथा जैसे कि वस्तुमें पूर्व प्रदेशके उच्छेदरूप जो सीमाका अन्त है वही तो उत्तर प्रदेशका उत्पादात्मक है और वही परस्पर अनुस्यूतिसे सूत्रित एक होनेसे उभयात्मक है अथवा ध्रौव्यात्मक है।

विष्कम्भक्रम व व्यञ्जनपर्याय—प्रदेशोंके उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यके प्रकारमें कालकी दृष्टि नहीं लगाना चाहिये, क्योंकि यह विष्कम्भक्रम बताया जा रहा है। कालक्रमसे तो परिणाम (परिणामन) का विवेचन होता है। विष्कम्भक्रमकी भाँति परिणाम क्रममें भी देखें—वस्तुमें पूर्वपर्यायके उच्छेदनात्मक जो सीमाका अन्त है यही उत्तरपर्यायका उत्पादात्मक है और वह ही परस्पर परिणामोंकी अनुस्यूतिसे सूत्रित एक प्रवाह होनेसे उभयात्मक है अथवा ध्रौव्य है। इस परिणामनमें दृष्टि गुणपर्यायोंमें लगाना चाहिये। विष्कम्भक्रममें व व्यञ्जनपर्यायमें कुछ अन्तर है। विष्कम्भक्रममें तो परिवर्तन नहीं और व्यञ्जनपर्यायमें परिवर्तन देखा जाता है। कल्पना करो कि इस जीवद्रव्यमें पूर्वमें मनुष्य थे और देव हो गये। तो वहाँ अनेक वैभव पाया, उसमें रमते रहे। बादमें देवसे मनुष्य होना था किन्तु कुछ करनी बिगड़ गई तो पंचमकालमें ढकेल दिया कि चलो वहाँके दुःखोंको भोगो। लेकिन यह दुःख भी इसी मनुष्यगतिसे टलता है और स्वाभाविक सच्चे सुखको प्राप्त कर सकते हैं। पंचमकालमें भी शरीरकी संहनन शक्ति कमजोर है तब भी इस पंचमकालमें शक्तिको न छिपाकर भी व्रत, संयम, एकादश प्रतिमायें तथा महाव्रत धारण किये जायें और उनका विधिवत् पालन किया जाय तो उनका अच्छा फल मिलेगा।

उत्पाद व्ययकी मित्रता—जब देवगतिसे मनुष्यगतिमें आये तो उच्छिन्न और उत्पाद दोनों एक साथ होते हैं। पहले देवपर्याय थी, फिर मनुष्य हुआ, इसमें समयका भी अंतर नहीं हुआ। क्योंकि जिस समय देवपर्याय व्यय हुई उसी समय मनुष्यपर्यायका उत्पाद हो गया। इस तरह यह उत्पाद व्यय अनुस्यूति सूचित हैं। जैसे पानीका प्रवाह सतत एक गतिसे बहता रहता है उसे कहीं रुकनेकी जरूरत नहीं है, थोड़ा भी अन्तर नहीं पड़ता है उसी

तरह पर्यायोंका एक प्रवाह है जो सदैव चलता रहता है, कहीं भी विराम लेनेका नाम नहीं लेता, बीचमें भङ्ग भी नहीं है। वह पर्यायें विशेष-विशेष अनुस्यूति सूत्रसे सूत्रित हैं। पर्याय सामान्य व्यापक है और पर्याय विशेष व्याप्य है। अगर उन पर्यायोंमें भेद नहीं किया जावे तो इस तरह देखना चाहिए कि वह कभी उत्पन्न ही नहीं हुई। इस तरह वस्तु अपने आपको उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सहित बनाता है। पूर्व प्रदेशका जहाँ उच्छेद है, वहाँ एक प्रदेशकी जो समाप्ति है, वही सीमाका अन्त है। जो सीमाका अन्त कहो या उच्छेदक कहो वही उत्तरके उत्पादरूप है, और वही सीमा पूर्वापर प्रदेशकी अनुस्यूतिसे सूचित है सो वही ध्रौव्यरूप है।

वीतराग महर्षियोंकी प्रतिभा—दिगम्बर जैन महर्षि कितने सम्पन्न थे, इसका हम अनुमान ही नहीं कर सकते। यहाँ क्षेत्र और पर्यायोंकी तुलना करते हुए उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य घटाना है। यहाँ व्यय शब्द शोभा नहीं देता, इसलिए उच्छेद शब्दोंको अधिक दर्शाया है। मान लो यह क्षेत्र है, इसमें विष्कम्भक क्रम लगाया। यह जिस प्रदेशपर पहुंचा उसका उत्पाद हुआ, वह भवसे अनुस्यूति सूत्रित है। जिस तरह मालाका घागा टूट जानेसे एक-एक दाना करके वह बिखर जाती है, फिर वह पूर्ण माला नहीं कहला सकती उसी तरह कोई कहे कि हमें आत्मामें से एक ही प्रदेश दे दो, तुम्हारा इसमें कोई खर्च नहीं होगा और न कुछ बिगड़ेगा। केवल समुद्घात करते समय एक ही प्रदेशकी कमी तो पड़ेगी। यह असंभव है, क्योंकि जो पूर्व प्रदेशकी सीमाका आदि है वही अन्त है। जो अंत है वही अन्यका आदि है या उत्तर का उत्पाद है। जो एक पूर्व प्रदेशका अन्त है वही एकका उत्पाद है, उत्तरपर्यायका शुरुआत है वही उत्पाद है। परस्पर अनुस्यूति सूत्रित होनेसे वही उत्पाद है और अंत है। ऐसा अनुस्यूति सूत्रित होनेसे अंत नहीं रहता। चनेका लड्डू बनाया, उसमें अंतर रहेगा ही, उसमें पुद्गल पर्यायकी अपेक्षा उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य उनका है। ऐसे चनेके लड्डू की भांति प्रदेश रचना नहीं।

वीतराग देवका शासन निर्दोष है—जिनेन्द्रदेवकी वाणीमें अनेक विशेषतायें स्पष्ट हो जाती हैं। क्षेत्रमें बतला दिया उत्पाद और उच्छेद एवं अनुत्पाद व अनुच्छेद। प्रवाहित पर्याय सामान्य है, उसमें विवक्षित पर्याय विशेष है। उत्तरपर्यायसे उत्पाद है, पूर्वपर्याय विशेषसे व्यय है और द्रव्य सदा ध्रौव्य रहता है। जिस पर्यायपर दृष्टि दी उसका उत्पाद हुआ। जो भी पूर्वपर्यायका उच्छेदात्मक है, उस ही सीमाके अंदर अंत है, वही सीमाका उत्पाद है। व्यय उत्पादरूप पड़ता है और अंत आदिरूप पड़ता है। जन्म मरणरूप पड़ता है और मरण जन्मरूप पड़ता है। जो पूर्वपर्यायका उच्छेदरूप है। उस प्रवाहके अंदर उसीकी सीमाका अन्त है। उस प्रवाहके अन्तर्गत विशिष्ट सीमाका अंत लेवें, जो सीमाका अंत है वही उत्पाद है। उसी पर्यायको देख रहे हैं। प्रत्येक द्रव्य अनुस्यूति सूत्रित है। त्रैकालिक एक द्रव्य अनुभवात्मक है या अनुत्पादक अनुच्छेद है।

प्रत्येक वस्तु त्रिदेवतामय है—इस तरह इस द्रव्यका स्वभावसे ही त्रिलक्षण परिणमन पद्धति दिखी। द्रव्य, क्षेत्र, काल परिणामकी परिणति पर्याय नये पुराने ढंगसे चलेगी। जो पद्धति त्रिलक्षण है वह चल रहा है, ऐसा जो हुआ स्वभाव है, उस स्वभावका अतिक्रमण नहीं हो सकता है। इस तरह द्रव्यको त्रिलक्षण ही मानना चाहिए। यह स्याद्वादकी एक और खूबी है, यहाँ स्याद्वादमें सभीको घटाना पड़ेगा। प्रश्न कर सकते हैं कि सिद्ध भगवान कर्मोंसे मुक्त है या अमुक्त? अगर बहुतसे बहुत बुद्धि लगाई और कहा कि कर्मोंसे अमुक्त है। वह ज्ञानावरणादि कर्मोंसे छूटे या नहीं? भैया! वास्तवमें स्याद्वाद पदार्थमें होता है। यह बात लगाने की जुदी है। यह स्याद्वादका व्याज है। जहाँ वस्तुमें स्याद्वाद आता है, उसको भिन्न-भिन्न तरहसे छिन्न-भिन्न करके सर्व तरहसे अपेक्षा लेकर पुष्ट करके दिखला दिया जाता है। वैसे स्याद्वादका लक्षण उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य वाला है। यहाँ अमृतचन्द जी सूरि कहते हैं कि इस स्याद्वाद (सप्तभंगी नय) की खुले दिलसे अनुमोदना करना चाहिये, मुदित होना अर्थात् प्रसन्न रहना चाहिए। सब द्रव्योंको कांट-छांटकर अच्छी तरह जान लिया कि प्रत्येक द्रव्य स्वतंत्र-स्वतंत्र है, सत् है, उसमें किसीका मिश्रण नहीं है। तब हर्षित हो झूठी पुष्टई छोड़कर स्याद्वाद पद्धतिकी रुचि करनी चाहिए। इसकी रुचिमें, अनुमोदनामें न संक्लेशको स्थान है और न हापड़-धूपड़का ही काम है। यह तुमसे कोई नया प्रस्ताव नहीं करा रहे हैं। लेकिन जो सिद्ध बात है, उसकी अनुमोदन मात्रा ही तो कथन है। अगर कोई व्यक्ति किसी प्रस्ताव को पास करता है तो उसके बाद समर्थन करने वालेको सोचना पड़ता है कि यह समर्थन सबके या कुछके विपरीत न पड़ जावे, वह सबकी ओर देखता है, सबके भाव परख लेता है तब समर्थन कर पाता है। इसके बाद अनुमोदना करने वालोंका भय हट जाता है। वह निश्चिन्त हो उस बातका खुलासा कर सर्वमें हृदयसे अनुमोदन करता है, यहाँ तत्त्व सिद्ध हो चुका, अब अनुमोद लो। इसलिए यह स्याद्वाद सर्व तरफसे ग्राह्य है।

पदार्थमाला मालाकी तरह त्रिलक्षणा है—यहाँ मोतीकी मालाका उदाहरण दिया जाता है। कोई यहाँ यह शंका करे कि मोतियोंकी मालाका ही उदाहरण क्यों दिया जाता है? सूतके गुरियों वाली या गांठों वाली मालाका उदाहरण भी तो दे सकते थे? उसके लिए सोचनेकी बात है, जो पुरुष बड़ा होता है, उसके मनमें बड़ी ही बात तो आती है। थोड़ा अंतर हो तो भले हो लेवे। बड़े-बड़े जो उद्भट मुनि विद्वान् थे, वह भी अच्छे श्रेष्ठ धनवान घरानेके थे। अच्छी जगह पले-पुसे थे, शिक्षा-दीक्षा भी अच्छी मिली थी। वह इस तरह नहीं थे कि खाने-पीनेके लिए मुनि हो गये हों। इसलिए मुक्तादाम (मोतियों) का उदाहरण देना ही श्रेष्ठ था। न्यायशास्त्रमें काफी दृष्टान्त आते हैं जो कि लौकिक जीवनके आचरणको कितना १०० टंची सोनेके समान शुद्ध रखनेको तैयार है।

दृष्टान्त भी प्रायः धर्मवृत्ति सम्बंधित है—अधिकतर स्याद्वादमें घट पट रज्जूका उदाहरण आता है। घट—घड़ेको कहते हैं, पट—कपड़ेको कहते हैं और रज्जू—रस्सीको कहते हैं। घड़ा याने लोटा मिट्टी, पीतल, ताँबा, गिलटका भी हो सकता है। छन्ना भी कपड़ेका होता है। जो भी सफरमें कहीं जावे, उसके साथ लोटा, डोर, छन्ना, ये तीनों वस्तुयें जरूर होनी चाहिए, जिससे शुद्ध पानीकी उपलब्धि हो सके। न्यायशास्त्रमें जहाँ भी देखो वहाँ यही तीनों उदाहरण सामने आ जाते हैं, यह बात नहीं कि उन्हें अन्य उदाहरण मिलते नहीं हों। जो जिस तरहका होता है, उसके संस्कार बड़े दृढ़ होते हैं, वह चिरकाल तक नहीं छूटते, वह चाहे राजभवनमें या धर्मभवनमें या तपोवनमें, श्मशानमें या वेश्यागृहमें भी क्यों न ला दिया जावे, उसमें सदाचारके संस्कारकी बात सर्वत्र रहती। राजशाही खर्च वाला गरीबी आ जाने पर भी अपनी साज-सज्जामें कमी नहीं कर सकता तथा कंजूस व्यक्तिको राजकोष भी पूर्ण दान देनेके लिए सौंप दिया जावे, पर वह अपनी लोभवृत्तिसे बाज नहीं आयेगा और वह कोष की संपत्तिको अपनी बनाना चाहेगा, लेकिन दान देते समय अति पश्चाताप ही होगा। अगर ब्रह्मचारी पुरुष वेश्यागृहमें धकेल दिया जावे तब भी वह अपनी रक्षा करेगा।

संस्कारके अनुसार भाव प्रगट होते—संस्कारकी बातके सम्बंधमें एक मनोरंजक कथानक है। एक नगरमें से बादशाह घूमनेके लिए निकला। नगरके बाहर जानेपर गड़रियों के कुछ बच्चे बकरियां चराते हुए मिले। वहींपर एक गड़रियेकी नवयुवती लड़की भी भेड़ें चरा रही थी। उसका सर्वांग लावण्यमयी (खूबसूरत) था। उसे देखकर बाहशाह मोहित हो गया। तब बादशाहकी शादी उस लड़कीसे कर दी गई। वह लड़की बादशाहकी रानी बनाकर महलोंमें लायी गई। जहाँ बड़े-बड़े कमरे, स्नानगृह, भोजनगृह, अतिथिगृह, शृङ्गारगृह, शयन-कक्ष, विनोदस्थान आदि बने थे। शृङ्गारगृहमें उसे ठहराया गया। वहाँपर राजा-महाराजाओं, रानियों, नेताओं, साधु-महात्माओं, प्रकृति, भरना, पहाड़के, सुन्दर-सुन्दर फल सहित वृक्षोंके अनेक चित्र लगे थे, उसे उनमेंसे कोई भी पसंद नहीं आया। एक तरह गाय, भैंस, शेर, हिरण, बारहसिंघा, समुद्र, पेरिसके राग रंग आदिके चित्र भी लगे थे। यह भी पसन्द नहीं आये। सबको छोड़कर आगे बढ़ती जावे नववधू। कुछ आगे जानेपर प्राकृतिक बकरियों एवं भेड़ोंका चित्र लगा था। वहाँ आकर रुक गई और बड़े गौरसे देखा तथा टिक-टिक करने लगी। तब ज्ञात हुआ जो जैसे संस्कारोंमें पलेगा वह उसके जीवनमें दृढ़ रहेंगे। इसमें उत्पादक व्यय ध्रौव्यके लिये दृष्टान्त अपनी प्रवृत्तिके अनुसार बनाये जा सकते हैं। अपने गुण अवगुण समय पाकर महान स्थानपर भी पहुँच जानेसे प्रवट हो जाते हैं। धार्मिक बच्चेके संस्कार बड़ी अवस्थामें भी प्रकट होकर लहलहाते फल सृष्टि नजर आवेगे, जिसमें अनेकोंका हित समाया रहता है। द्रव्यका असली तत्त्व (निचोड़) समझमें आ जाय, वही वास्तविक वैराग्यका कारण

बनेगा ।

वास्तविक वैराग्यका साधक तत्त्वज्ञान—वास्तविक वैराग्य तत्त्वज्ञानके बिना नहीं होता । तत्त्वज्ञानके प्रसारके लिये ही यह आचार्यदेवका उपकार है । द्रव्यगत विशेषताओंका वर्णन करके अखण्ड द्रव्यस्वरूपपर पहुंचाना यह तत्त्वज्ञ वीतराग महर्षियोंकी ही कौशल है । अनेक प्रकारसे समझकर आचार्यदेव कहते हैं कि इस प्रकार स्वभावसे ही विलक्षण परिणाम-पद्धतिमें एकमेक हुए इस द्रव्यका सत्त्व भी त्रिलक्षणात्मक अनुमोदना चाहिये, क्योंकि सत्त्व भी तो स्वभावका अतिक्रमण नहीं कर सकता । अहा ! इस द्रव्यस्वभावकी जो अनुमोदना करता है, उसका मोह नष्ट हो जाता है । मोह नष्ट हो जावे अर्थात् स्वरूपोपलब्धि हो जावे, इससे बढ़कर और कुछ सम्पदा ही नहीं है । देखो स्वरूपोपलब्धिमें भी उत्पाद स्वरूपोपलब्धि का है, व्यय मोहभावका है, दोनोंमें अनुस्यूत एक तत्त्व है ही । त्रिलक्षण परिणाम पद्धतिकी कृपासे सब व्यवस्था है ।

मोतीमालाकी विशेषता—उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यमें मुक्ताफल दामका उदाहरण बड़ा अच्छा जंचता है । परिस्थितिके अनुसार अन्य भी उदाहरण घटित हो सकते हैं । मोतियोंकी माला कैसी जिसकी बहुत बड़ी लम्बाई है । यहाँ छोटी मालाका ग्रहण नहीं किया गया । सुगमतासे समझानेके लिये दृष्टान्त भी बिना कंजूसीके दिया जा रहा है । वह प्रलम्बमान माला उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यसे सहित है, इसको विधिवत् घटावेंगे । उस मालाका जितना भी तेज है वह सबका सब तेज शोभायमान हो रहा है, इस तरहकी मालामें मोतियोंका समूह है तथा कान्तिकी अवधारणा है । पहले बताया था प्रवाह सामान्य और प्रवाह विशेष—यह दो बातें होती हैं । प्रवाहविशेष मालामें मोतीके दाने हैं और प्रवाह सामान्य है वह समस्त मुक्तावोंका कान्ति समूह माला तथा मालामें जो धागा (सूत्र) पड़ा हुआ है वह द्रव्य या ध्रौव्य है । धागे में ही मोतियोंके दाने हैं, उन मुक्ताफलोंमें उत्तरोत्तर तेज पाया जाता है । अगले-अगले तेजमें अन्य-अन्य मोतियोंका उदय पाया जाता है तथा पिछले-पिछले मोतियोंमें जिन्हें कि छोड़ते जा रहे हैं, उनका अनुदय पाया जाता है । सब ही तेज सहित मोतियोंके दाने परस्परमें मिलकर माला (हार) के नामको प्राप्त होते हैं, जो कि सूत्रके आश्रय रहते हैं । अगले-अगले मोतीपर दृष्टि देते हैं तो उसका उदय तथा पीछे छूटे हुए पूर्व मोतीका अनुदय होता है । उन सबमें सूत्र पड़ा हुआ है, इसमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य मौजूद है । नेत्रकी अपेक्षा धागेमें लम्बे चौड़े जो मोती पड़े हुए हैं वह अन्य चीज नहीं हैं । जिस मोतीको पूर्वमें ग्रहण किया था, उसे अब ग्रहण नहीं कर रहे हैं, यह व्यय हो गया तथा जिसे आगे ग्रहण किया गया, उसका उत्पाद हो गया एवं वह मोतीके परमाणु जो कि सूत्रमें पिरोये हुए हैं वह ध्रौव्य भी हैं ।

पदार्थ सब नित्यवृत्तिसे वर्तमान हैं—इसी प्रकार जिसने नित्यवृत्ति अंगीकार कर

रखो है, किसीसे वह नहीं कहेगा कि हमारा परिणामन करो या न करो अथवा वे तो परिणाम कर ही रहेंगे, ऐसा ही उनका अधिकार है। नित्यवृत्तिसे रचा गया द्रव्य है। गुण द्रव्यसे जाना जाता है, पर्याय द्रव्यसे जानी है, द्रव्य पर्यायसे जाना जाता है तथा गुणसे द्रव्य एवं पर्याय जानी जाती है या गुणसे पर्याय, पर्यायसे गुण आदि रचे गये हैं तथा वह सब एकमेक हैं। जिसके द्वारा देखा वह लक्षण हो गया एवं जिसे देखा वह लक्ष्य हो गया। द्रव्य गुण पर्याय तो उसका स्वरूप है, परिणामन स्वभावसे है। परिणामन औपाधिक नहीं हैं। परिणामन मात्र निरुपाधि है एवं स्वाभाविक है। वस्तुके द्रव्यत्व गुणसे अपने आप व्यक्तता है। नित्यवृत्तिसे ग्रहण किया जो द्रव्य उसमें अपनी-अपनी पर्यायें हैं। उनमें शोभायमान जो पर्याय है उसमें उत्तर उत्तर पर्यायिका उदय तथा पूर्व पूर्व पर्यायिका अनुदय होता है, किन्तु सबका परस्परमें मिलकर वह त्रिलक्षण सूत्रमें लक्षित की जाती है। जैसे किसीकी अच्छी बुद्धि है, कुछ समय बाद उसका दिमाग बिगड़ गया तो अच्छी बुद्धिका व्यय हुआ और खराब बुद्धिका उत्पाद हुआ अथवा खराबके बाद अच्छी बुद्धि आई तो अच्छीका उत्पाद हुआ है और खोटी बुद्धिका व्यय हुआ तथा मनुष्य वही है ध्रौव्य पर्यायिकी अपेक्षासे। उत्पाद व्यय बिना दुकान भी नहीं चल सकती है, न रोटी खाई जा सकती है, न कुछ पढ़ सकते हैं, न सुन सकते हैं और न सुना सकते हैं। उत्पाद व्यय वस्तुका ऐसा स्वरूप है जो मेटनेपर भी नहीं मिट सकता।

सभी भंडे वस्तुस्वरूपके प्रतीक हो सकते—कोईसा भी भंडा हो उसमें जिनशासनके तत्त्व घट सकते हैं। तिरंगे भंडेमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य घट सकता है। हमारे देशका राष्ट्रीय भंडा भी इन तीनोंसे युक्त है। हरा रंग उत्पादका सूचक है। जिस तरह कोई व्यक्ति धन, मकान, भाई, बन्धुओंसे युक्त हो, उसको कहते हैं 'भाई तुम तो खूब हरे भरे हो।' केसरिया या लाल (लाल-पीला) रंग व्ययका सूचक है तथा मध्यमें सफेद रंग ध्रौव्य बना हुआ जो कि दोनोंकी मध्यावस्था दर्शाता है। उत्पाद व्यय ध्रौव्यके बिना कोई सिद्धान्त नहीं बन सकता। जिन्होंने एक अद्वैत ब्रह्म माना है, वहाँ यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि अद्वैत ही है तो यह दृश्य क्या चीज है? तो कहेंगे यह उसकी माया और आराम है, तब ये दो बात ब्रह्म और माया हुई। देखो भैया! यही तो द्रव्य पर्यायिकी बात है। माया अर्थात् मा = मत, या = यह, जो ब्रह्म है सो यह नहीं। जो यह है सो ब्रह्म नहीं। ब्रह्म मा या। तब दो बात तो माननी ही पड़ी। माया मैं नहीं हूं। अतएव आत्मा चैतन्यस्वरूपको प्राप्त कर लेवे। मायाका नाम पर्याय और आरामका नाम ब्रह्म। द्रव्यमें और भेददृष्टि लगाई तो गुण बन गये तथा गुणोंपर सामायिक दृष्टि लगाई तो पर्याय बन गये एवं गुण और पर्यायपर सूक्ष्मदृष्टि लगाई तो द्रव्य नजर आ गया। जो यह है वह सा मा याने ब्रह्म नहीं है। जो ब्रह्म है सो मत या। जो द्रव्य है वह पर्याय नहीं है और जो पर्याय है वह द्रव्य नहीं, यह अतद्भावका अन्तर पड़ गया।

जिसको सात तत्त्वोंका यथार्थ परिचय नहीं हुआ, वह मिथ्यादृष्टि है। जिसको सात तत्त्वोंका परिचय हो गया वह सुदृष्टि है।

सब कुछ दृष्टिमें एक है व अनेक है—प्रादेशिक भेदकी अपेक्षा चौकी, तख्त, पुस्तक है। मात्र सत् रूपसे यह सब ब्रह्म है। गोबर, लकड़ी, पशु, पक्षी, कीड़े-मकोड़े, गाय, हंस, कौआ, उल्लू, स्त्री, नागिन, चेतन अचेतन सब ब्रह्म हैं। आपके यहाँ (जैनसिद्धान्तमें) सत् है वही यहाँ ब्रह्म हुआ। अद्वैतवादी कहते ब्रह्म व्यापक है और जैन कहते द्रव्य व्यापक है। वह ब्रह्मको क्षेत्र अपेक्षासे सर्वगत मानते हैं और अपना सत् समस्त व्यक्तियोंमें रहता है इसलिए सत् है। मनुष्यत्व व्यापक है वह क्षेत्रापेक्षया है। यही बात अन्य मत धारण कर लेते हैं। मनुष्य बैठे हुए इन सबमें मनुष्यत्व है, यह जिनदर्शन है, लेकिन वह (अद्वैतवादी) मनुष्योंके बैठनेके अन्तरमें मनुष्यत्व मानते हैं अर्थात् वहाँ भी मनुष्य हो सकता है, वह अभी आया नहीं है इसलिए खाली जगह पड़ी है। उनका तो हुक्म व्यापक है। जिस तरह कचहरीमें एक झूठ कह दो तो दस बातें उसके साथ और खोजनी पड़ती हैं। सत्यके लिए नहीं खोजना या सोचना पड़ती। वह कहेंगे ब्राह्मणत्व व्यापक है तो यहाँ भी व्यापक है, प्रत्येक स्थानपर व्यापक है। वह अभी यहाँ आया नहीं और आ जायगा, ब्राह्मणत्व व्यक्त होकर प्रगट हो जायगा। यही अविचारित रमणीय है।

अपनी सासर्थ्यसे आगे बढ़ो—जैनोके यहाँ कहा है, सत्, द्रव्य, उत्पाद व्यय ध्रौव्य तत्त्व, आदिको यथार्थ मानना सर्वज्ञकी आज्ञा है, इसके विपरीत जरा भी जीभ हिलाई तो मिथ्यादृष्टि हो जाओगे। अन्य मत वाले कहते हैं अगर तुम ईश्वरको नहीं मानोगे तो नास्तिक हो जाओगे तथा मुसलमान कहते हैं अगर कुरानशरीफको नहीं माना तो काफिर कह जाओगे। यह शब्द धर्म मानने वालोंके लिए रिजर्व हैं। यह जन्मजात तो संस्कार घर करे बैठे हैं, उनसे आगे नहीं चल सकते। जैनसिद्धान्तमें भय नहीं कराया गया। वहाँ तो स्पष्ट है कि अनुभव करो। अब अनुभवमें जो आ सकता है वही तो अनुभव किया जायगा। प्रयोजनीभूत जीवादि सात तत्त्वोंका यथार्थ अनुभव किया जा सकता है। उसे जिसने किया उसे पता है कि जिन शासनमें जो कहा है वह यथार्थ है। यह अनुपम और हितके लिये सर्वोपरि अनुभव है। अब उसकी इतनी भक्ति बढ़ी कि परोक्षगत पदार्थ भी जैसे जैनशासनमें कहे गये वे भी सत्य हैं। जिसको सात तत्त्वोंका यथार्थ परिचय नहीं हुआ वह मिथ्यादृष्टि है। जिसको सात तत्त्वोंका परिचय हो गया वही उपेय तत्त्वोंको अनुभवमें लावेगा तथा जैसा आगममें पढ़ा था वैसा ही जीवनमें उतारकर आचरण करेगा, उसीको प्रमाण मानेगा। अज्ञानी भक्त जिनेन्द्र भगवानके डरसे ही आज्ञा पाल रहे हैं। ज्ञानी सर्वज्ञकी भक्तिसे प्रत्येक बातको मानता है। अज्ञानी सोचता है अगर नहीं पालेंगे तो नरकमें जावेंगे। ज्ञानी जन अनुभव और भक्तिसे प्रत्यय करते हैं। जब

ज्ञानियोंकी समझमें यह आ गया कि जीवादि तत्त्वोंका व अनुभव ध्यानोंका व आत्मतत्त्वोंका यह विवेचन अनुभवसिद्ध है तो उनका प्रत्येक वाक्य सत्य ही है। इस प्रत्ययके साथ युक्तियाँ और अनुभव भी साथ-साथ चलने लगते हैं। जिनका जो प्रत्यक्षसे सम्बंध रखते हैं, वह उसपर विशेष लक्ष्य देते हैं, जैसे जो बात औरोंके सामने आ जावे, उसे अधिक महत्त्व देते हैं—हजारों के दान देकर नाम प्रगट करवाना, पुस्तकोंपर छपाना, गरीबकी दो रोटी या चार पैसा देनेकी भी सुध नहीं रखेंगे। बड़े ठहरे, बड़ा ही दान देंगे और बड़ेको बड़ी जगह देंगे। छोटे या छोटी जगह (संस्थायें) तो रुंदतेमें और रुंद जावें, इसकी उन्हें चिंता नहीं, यह तो लौकिक बात है। ज्ञानियोंको तो धुनि आत्मदृष्टिकी ही रहती है। प्रमाण सब करते चले जाते। सब आज्ञाओंमें सर्वज्ञका सबसे पहले यह उपदेश है कि उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त सत्—सब उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे कार्य चलेगा व चल रहा है। श्वेताम्बरोंमें भी सबसे पहले उत्पाद व्यय ध्रौव्य ही लिया है।

रत्नत्रय भी त्रिलक्षणात्मक है—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र्याणिमें भी यह घटित होता है। सम्यग्दर्शन व्ययरूपसे जाना जाता है और सम्यग्ज्ञान उत्पादरूपसे जाना जाता है तथा सम्यक्चारित्र्य ध्रौव्यरूपसे जाना जाता है। विपरीत अभिप्रायको नष्ट करके, निज तत्त्वका निर्णय करके उससे चलित नहीं होना चाहिए, यह रत्नत्रय है। विपरीत अभिप्रायका व्यय करना सम्यग्दर्शन है, निज तत्त्वको स्थापित करना सम्यग्ज्ञान है तथा जो चलित नहीं होवे, उससे वह सम्यक्चारित्र्य है। कोई भी ग्रंथ या शब्द लो, उसमें उत्पाद व्यय है। राजाका उत्पाद हुआ, यह क्या ध्रौव्य बिना है तथा साधारण मनुष्यपना व्यय हुआ। सूक्ष्म-सूक्ष्म पर्यायें व्यय हुआ करती हैं। मरना जब होता है तभी दूसरी पर्यायका उत्पाद हो जाता है। मरण याने पूर्वपर्यायका व्यय हो चुका। कोई भी बात हो सबमें उत्पाद व्यय है। वस्तुस्वरूप के विरुद्ध कहीं नहीं जा सकते। वस्तुका जो स्वभाव है वही धर्म है। वस्तुके स्वभावके अनुकूल प्रवृत्ति होवे वह भी तो धर्म है। दृष्टि और आश्रयभेद करके मन, वचन, कायके जो विकल्प चलें उसके कारण जो प्रवृत्ति हुई वह भी धर्म है। लोकमें किन-किन चीजोंको धर्म कहते हैं। शुभ मन, वचन, कायके जो विकल्प चले उसके कारण जो प्रवृत्ति हुई वह भी धर्म है। अन्य पंचकल्याणक उत्सव कार्य करनेके लिए जो कार्य किया जायगा वह भी धर्म है। उत्सव करनेकी अनुमति लेनेके लिए कलक्टर आदिसे मिले होंगे वह भी तो धर्म है। धर्म शब्दमें कितने-कितने व्यवहार चले, यह सब किसी मूल लक्ष्यको ठीक रख लें, व्यवहारधर्म है। वस्तु उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है।

उत्पाद व्यय ध्रौव्य भी त्रिलक्षणायुक्त है—उत्पाद व्यय ध्रौव्यमें भी प्रत्येकमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य कहे जा सकते हैं। उत्पाद भी व्ययमय है और व्यय भी उत्पादमय है। स्याद्वाद वस्तुमें लगा करते हैं, किन्तु हमारे यह खेलनेके स्थान हैं कि जहाँ चाहे लगाते जाओ। यह

स्याद्वादका विलास है । भगवान भी अपने गुणोंमें ज्ञानगुणसे अमुक्त हैं, कर्मसे मुक्त हैं । उसका आक्रमण प्रत्याक्रमण पास ही पास है । हमारा शरीर हमसे भिन्न है या अभिन्न ? अगर भिन्न कहेंगे तो तुम मार-पीटकर बराबर कर दोगे, क्योंकि आत्माका तो कुछ बिगड़ता नहीं है । अभिन्न भी कहनेपर कहेंगे आत्मा तो अमर है, इसलिए भी शरीरको पीट सकते हो । नार-कियोंके शरीरके तिल-तिल बराबर टुकड़े हो जाते हैं, किन्तु मरते नहीं, फिरसे पाराके समान शरीर मिलकर इकट्ठा बन जाता है, ऐसा समझा दोगे । इसलिए कहना होगा कि कथंचित भिन्न है और कथंचित अभिन्न है । आत्माका स्वरूप पूर्ण जुदा है और शरीरका स्वरूप पूर्ण जुदा है । जब तक वह इकट्ठा बना है तब तक यह सब कार्य चल रहे हैं तथा जब इस शरीर से मुक्ति प्राप्त कर ली जायगी तब इस शरीरकी भी कीमत बढ़ जायगी, इसके पूर्व कोई नहीं पूछता है । जो पूछता है वह लोकव्यवहारके डरसे । व्यर्थका वितंडावाद छोड़कर स्याद्वाद कथित धर्मपर श्रद्धा करके उसीके अनुसार चलना चाहिए । अन्यथा प्रवृत्ति करनेसे कोई कार्य सिद्ध नहीं होगा । यह स्याद्वाद त्रिलक्षणसे लक्षित है ।

उत्पाद व्यय ध्रौव्यमें अविनाभाव है—सत्का लक्षण उत्पाद व्यय ध्रौव्य सहित बत-लाया है । अब उसमें अविनाभाव सम्बंधको सिद्ध करते हैं । वैसे सामान्यतया सभी जानते हैं कि उत्पाद व्यय ध्रौव्यका अविनाभाव सम्बंध है । तो भी उस बातको प्रकरणवश कहनेके लिए, स्थिरताके लिए सत्यपर प्रकाश डाला गया है अर्थात् उत्पाद व्यय ध्रौव्यको दृढ़ करके अविनाभाव बताते हैं या उत्पाद व्यय ध्रौव्यको दृढ़तापूर्वक कहना ही अविनाभाव सम्बंधकी स्थापना है ।

ए भवो भंगविहीणो भंगो वा एत्थि संभव विहीणो ।

उप्पादोविय भंगो ण विणा धोव्वेण अत्थेण ॥१००॥

सर्ग, संहार व स्थितिका अविनाभाव—उत्पाद व्यय विहीन नहीं है । व्यय उत्पाद-विहीन नहीं है । उत्पाद और व्यय दोनों ध्रौव्य अर्थके बिना नहीं है । इसीमें ये बातें भी गभित हैं कि ध्रौव्य उत्पादविहीन नहीं है, ध्रौव्य व्ययविहीन नहीं है । एक तत्त्वको ही अनेक दृष्टियोंसे देखा जाता है । तत्त्व वही है जो उत्पाददृष्टिसे देखा, व्ययदृष्टिसे देखा, ध्रौव्यदृष्टिसे देखा । इसी कारण इन सबका परस्पर अविनाभाव है । उत्पत्ति जो है वह भंग विहीन नहीं है तथा व्यय जो है वह उत्पाद बिना नहीं है । उत्पाद जो है वह व्यय बिना नहीं है, और भंग कहिए व्यय वह उत्पादहीन नहीं है । उत्पाद व्यय बिना और व्यय उत्पाद बिना नहीं है तथा उत्पाद व्यय ध्रौव्य बिना नहीं है । इसीको अमृतचंद्राचार्य सूरि स्पष्टतया समझाते हैं ।

सर्ग संहारके बिना नहीं होता है और संहार सर्गके बिना नहीं होता है । सर्ग एवं संहार उत्पाद व्यय ध्रौव्यके बिना नहीं होता । ध्रौव्य जो है वह उत्पाद व्ययके बिना नहीं

होता है। एक मिट्टीका घड़ा है, उसमेंसे कोई चाहे यह घड़ा नहीं फूटे और खपरियाँ (ठीकरे) मिल जावें अर्थात् घड़ेकी पर्याय तो व्यय न होवे, नष्ट न होवे तथा ठीकरे मिल जावें, यह हो सकता है क्या ? यह साक्षात् असंभव है या इस तरह कोई चाहे घड़ा तो फूट जावे, किन्तु उसमेंसे खपरियां न होवें। जैसा कि बच्चे चाहते हैं कि घरके बर्तन फूट जावें या गुस्सेमें आकर फोड़ डालें तथा माताजी को पता न चले, क्योंकि बर्तन फोड़नेकी प्रवृत्ति इसलिए हो जाती है, जब किसी बच्चेको माँ, भाई वगैराने पीट दिया तथा इच्छित वस्तु नहीं मिली तो घरके मिट्टीके बर्तन (गागर, मटकी घेला) फोड़कर क्रोधका उपशम करता है, क्योंकि 'खिस-यानी बिल्ली खम्भा नोचें' यही हाल बच्चों तथा बड़ों तकका होता है। बच्चेका वह कार्य भी प्रकट हो जाता है। छिपाये कितना भी। उसी तरह घड़ा फूटनेपर खपरियां नियमसे होंगी। इससे सिद्ध है उत्पाद व्ययके बिना नहीं और व्यय उत्पादके बिना नहीं है। कोई चाहे कि वस्तु रही आवे और व्यय न होवे, ऐसी कोई भी वस्तु नहीं मिलेगी।

क्या सुमेरु पर्वत सर्वथा ध्रुव है—कह सकते हो सुमेरु पर्वत जैसाका तैसा रहा आता है, घटता-बढ़ता नहीं है ? उसमें भी प्रति समय परमाणु आते रहते हैं और जाते रहते हैं। कोई भी हो उसमें आना जाना उत्पाद व्यय हर समय लगा रहता है। वस्तुका ऐसा स्वभाव ही है। जिस समय सर्ग (उत्पत्ति) है, उसी समय संहार है तथा जिस समय संहार है, उसी समय उत्पत्ति है। घड़ेका व्यय तो ठीकरेकी उत्पत्ति है तथा ठीकरेका उत्पाद घड़ेका व्यय है, और इसका विनाश सद्भाव बिना होता नहीं है। विनाश एवं सद्भाव इनमें परस्पर अनुस्यूत ध्रौव्य है। ध्रौव्य कूटस्थ नित्यकी तरह नहीं है। लुहार जिसपर लोहा कूटता है वह उसके सामने जो मूढ़ा होता है वह कूटस्थ है। धोंकनी धोंकी जा रही है, भट्टीमें लोहा गर्म किया जा रहा है, गर्म होनेपर लुहार संड़ासीसे गर्म लोहेको पकड़कर निहाई (मूढ़ा) पर जमाता है, उसपर घन (हथौड़े) पटके जाते हैं, तो यहाँ संड़ासीमें, हथौड़ेमें, मनुष्यके हाथमें हलन-चलन या अदला-बदली हो रही है, किन्तु निहाई नहीं बदल रही है, वह जैसीकी तैसी स्थित रहती है। हथौड़ों की संड़ासीकी, पिटने वाले लोहेकी सबकी दशा बदल रही है, किन्तु कूट वहीँका वहीँ है। वैसे तो उत्पाद व्यय उसमें है, किन्तु मोटा दृष्टान्त है, इस तरहकी द्रव्य ध्रौव्य होकर भी कूटस्थ नित्य नहीं है। इसलिए सर्ग है सो संहार है और संहार है सो सर्ग है और सर्ग संहार अर्थात् उत्पाद व्यय ही ध्रौव्य है।

उत्पाद व्ययका आधार क्या है ?—क्षणिकवादेने माना है कि जो बात (पदार्थ) पहले समयमें है वह दूसरे समयमें नहीं है तथा जो दूसरे समयमें है वह तीसरेमें नहीं, तीसरी वाली चौथीमें नहीं आदि। अगले-अगले समयमें नवीन-नवीन ही बात मानी है। जो पहले थे वह अब नहीं है, इस तरह मूलभूत तत्त्व कुछ नहीं माना है। जैनसिद्धांत वाले मूलभूत तत्त्व

को लेते हैं। अनन्त उत्पाद व्ययका ध्रौव्य है। अनेक परम्पराओंका नाम संतति है। इन दोनोंमें अन्तर क्या रह गया? कोई एक है उसमें परिणामन हुआ, इसमें भी उत्पाद व्यय ध्रौव्य समायो हुआ है तथा संततिमें एक परम्परासी हुई है, इसमें एक द्रव्य रहा नहीं। द्रव्य मान्यतामें बात निराधार नहीं। क्षणिकमें निराधार है। ध्रौव्य उत्पाद व्ययके द्वारा इसी तरह जाननेमें आता है। अगर उत्पाद व्यय न रहे तो ध्रौव्य क्या रहेगा? यह परम्परा बराबर चल रही है और जो ध्रौव्यको स्थिति है वही सर्व संहार है तथा उत्पाद है, फिर स्थायी रहता क्या है? इसी तरह द्रव्य रहता है। वर्तमान उत्पाद पूर्व संहार यही स्थिति है।

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य तीनों एक साथ हैं—जिस समय जो घड़ेकी उत्पत्ति है, उसी समय मृत्पिण्डका व्यय है, क्योंकि सद्भाव अन्यके अभावरूप है और अभाव अन्यके सद्भावरूप है। भाव अन्यके अभावरूप ही है। जैसे सद्भाव अभावरूप है, उसी तरह भाव भी समझना। जब मृत्पिण्डका व्यय है तभी घड़ेकी उत्पत्ति है। कोई कहे कि मृत्पिण्डको घड़ेरूप न बनाकर अन्यरूप परिणामन कर देंगे तो घड़ा नहीं बनेगा, यह भी ठीक नहीं, क्योंकि घड़ा नहीं बनाया गया तब घड़ा नहीं, किन्तु अन्यरूप तो परिणामन हो गया। अभाव जो है वह भावान्तरके सद्भावरूप हैं। किसीने कहा कि भाई कमरेमें जाकर समयसार उठा लाओ। वह व्यक्ति समयसार उठानेके लिए कमरेके अन्दर गया, उसे समयसार नहीं मिला तब ऐसा तो नहीं है कि कमरा एवं अन्य वस्तु फर्श वगैरा कुछ नहीं दिखा। समयसारके अभावका निश्चय चौकी, आलमारी, आला आदि देखकर ही तो हुआ। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता कि कुछ भी नहीं दिखा और अभाव सिद्ध कर दें। अभाव सद्भावरूप ही रहता है। सप्तभंगी न्यायमें स्याद्अस्ति, स्यादनास्ति और स्याद्व्यवक्तव्य यह तीन मूल भंग मुख्य तौरसे कहते हैं। किसी दृष्टिसे है हो। अनेकान्तमें सर्वथा ही भी नहीं चलेगा।

स्यात् एवका प्रभाव—अनर्थकारी शक्ति रोकनेके लिए स्याद तथा एव लगा है। ऊँची नीची लाइन होनेसे दोनों तरफ दो इंजन लगाये जाते हैं। समान लाइन (पटरी) होनेपर एक ही इंजनसे काम चल जाता है। जहाँ निर्णयकी जरूरत पड़ेगी, वहाँ स्याद्वादकी जरूरत पड़ेगी। अगर कोई गड़बड़ी हुई तो स्याद्वाद संभाल लेगा। इसके लिए स्याद तथा एव निष्पत्तिक तय किये गये हैं। यथा—द्रव्यदृष्टिसे वस्तु नित्य ही है, पर्यायदृष्टिसे वस्तु अनित्य ही है। दृष्टि लगा लो तो ही कहनेमें फिर संकोच क्या है? द्रव्यदृष्टिसे नित्य बोलें तो ही तो कहीं नहीं गया, पर्यायदृष्टिमें भी दृष्टि न लगाओ तो ही लगानेसे भी कार्य सिद्ध हो सकता है। वस्तु है स्वद्रव्य क्षेत्र, कालसे है, परद्रव्य क्षेत्र, कालसे नहीं है। अभाव सद्भाव स्वरूप ही है। कल्पनामें कुछ न आवे और सद्भाव समझ जावें, यह हो नहीं सकता। प्रतीतिमें कुछ नहीं है और सद्भाव समझ जावें, यह मिथ्या (भूठ) बात यहाँ नहीं चल सकती।

भाव अभावरूप है व अभाव भावरूप है—भाव भावान्तरके अभावरूप है और अभाव भावान्तरके सद्भावरूप है। अंगुली एक है उसे जब टेढ़ी कहेंगे तो सीधी नहीं है तथा सीधी कहेंगे तो टेढ़ी नहीं है, दोनों एक ही अंगुलीकी विवक्षावश उत्पाद व्यय गभित पर्यायें हैं। घड़े का सद्भावमृत् पिण्डका अभाव है। घड़ेका अभाव मृत्पिण्डके सद्भावरूप है। कुम्भ (घड़े) की उत्पत्ति व मृत्पिण्डका व्यय इसी ढंगसे स्थित रह सकता है। व्यतिरेक समझनेके लिये अन्वय समझमें आना जरूरी है। अन्वय अर्थात् जो सबमें जावे सो अन्वय है। एक बाँस दस हाथ जगहमें पड़ा है तो १० का ज्ञान भी तो होना चाहिए, हाथको भी जानते होंगे, स्थान विशेष को भी जानेंगे, यह सब ज्ञानके साथ बाँसका ज्ञान होता है। अन्वय जो है वह व्यतिरेकसे आक्रान्त होकर उत्पन्न होता है तथा सब व्यतिरेक अन्वय रूपमें होते हैं। जो मिट्टीकी स्थिति बनी, वह घड़ेका सर्वा संहार है। अयुतसिद्धमें मिट्टीका व्यतिरेक कहाँ रहा? मैं आत्मा हूँ, जीव हूँ, इस तरहके अनुभवमें शरीरका सद्भाव होते हुए भी उसका भान नहीं रहता, इससे जाना कि पृथक् है। कोई मनुष्य पर्यायमें आया, इसके पहले तिर्यञ्चमें था, तो यहाँ तिर्यञ्च-गतिका व्यय है और मनुष्य पर्यायका उत्पाद है एवं मनुष्यपर्यायका उत्पाद तथा तिर्यञ्चका व्यय है।

एकका उत्पाद एक—एकका व्यय,, यही स्थिति है इन उत्पाद व्यय ध्रौव्यका, इस तरह परस्पर अविनाभाव सम्बंध है। यह सम्बंध एक द्रव्यमें घटना द्रव्यान्तरोंके साथ नहीं, उत्पाद व्यय ध्रौव्यको घटाकर आचार्य थके नहीं। उत्पादमें जो विशेषता है वह परनिमित्त है, किन्तु उत्पाद वस्तुका स्वभाव है, वह चलता ही रहेगा जो कि स्वभावसिद्ध है तथा स्वतः सिद्ध है। यहाँ विशिष्टतापर ध्यान नहीं देना है। इस तरहके उत्पाद व्यय स्थितियाँ जो हैं वह अविनाभाव सम्बंध रखते हैं, वह एक दूसरेके बिना नहीं चल सकते। नवीन-नवीनका उत्पाद नहीं तो पूर्वका व्यय कैसा, पूर्व पूर्वका व्यय नहीं तो नवीन पर्यायका उत्पाद कैसे हो सकता है? क्रमसे एक-एक दशा चलती रहती है। मालामें एक दानेके बाद एक दाना है द्रव्यमें अस्तित्वरूप संतति है। बौद्धोंकी संतति जो है वह इससे भिन्न है।

विकल्पजालसे छूटना ही श्रेय है—बौद्धोंने कल्याणके उपाय बताये हैं। तुम्हें आत्माका भ्रम लग गया है, जिससे दुःखी हो रहे हो। यहाँ तो प्रतिसमय नयी-नयी आत्मा पैदा होती रहती है। पहलेको तो दुःख नहीं रहता। वह तो उसी समय नष्ट हो जाता है तथा जो अब आत्मा है वह दूसरा है। हम वही हैं—इस भ्रमको छोड़ दो, इष्टानिष्ट कुछ भी नहीं है। जो आया सो गया। चार्वाकोंको तो दूसरेके दर्दकी चिन्ता नहीं है। उनका तो सिद्धान्त इसी दृढ़तापर टिका है। 'यावज्जीवेत् सुख जीवेत्' सुखको नहीं बिछुड़ने दो। उसे जिस तरह हो प्राप्त करना चाहिए। शरीरकी पुष्टई करके जियो सो उत्तम है, माल खाओ, न्याय अन्यायके

ध्यानके भी आहुति जिसमें दी जाती है, उन्हें तो वह प्रिय है, किन्तु तुम अपना भला कर लो। ऐसी श्रद्धा कर लो, अब हम नहीं रहे, यह बौद्ध मानते हैं। वह भी विकल्परहित होना चाहते हैं, किन्तु पूर्णरूपसे सफल न हो सकें, यह बात दूसरी है। प्रयत्न सबका यही है, कैसे विकल्पजालसे छूटें और शान्ति मिल सके, यह प्रयास चल रहा है। किन्हींका यह सिद्धान्त है कि हम तुम एक ही हैं, किससे रागद्वेष करें? अपनेमें तुम द्वेष कर रहे हो। सम्पूर्ण दुनिया वही एक ब्रह्म है तो रागद्वेष क्यों करें? विकल्प मिटानेका उनका यह उपाय है। चार्वाकोंका ही कहना है कि शरीर गया सो हम गये, फिर विकल्प क्यों करें? मौज उड़ायें।

हम अपने आप रूप ही हैं, विकल्प क्यों करें—सबने विकल्प दूर करनेके जो उपाय बताये हैं, उनमें अंतमें यही बात देखी जाती है, हम हैं और परिणामते रहते हैं। शरीर तो नाश होने वाला ही है, फिर व्यर्थमें किसकी आदर इज्जत शानके लिए संसारभरका ताना-बाना बुनते रहें? इस जीवनको सफल करनेके लिए जो सार तत्त्व आत्माको निरखना है, वही सार है। यह जैनसिद्धान्तमें बड़ी दृढ़तासे सिद्ध किया गया है। द्रव्यके लक्षणमें सन्देहकी जरूरत नहीं रह जाती, यह सब जानकर आत्मतत्त्वको निरखना चाहिए। इसके लिए ही उत्पाद व्यय ध्रौव्यका प्रतिपाद रुचिकर है। इससे ही अविनाभाव सम्बंध निकलता है।

अन्वय व्यतिरेकोंमें पाया जाता है—अन्वय वह कहलाता है जो स्थायी तत्त्व है अथवा जो सबमें बना रहे तथा व्यतिरेक वह है जो सबमें न होकर उसी भिन्न एकमें पाया जावे। अन्वय व व्यतिरेक एक दूसरेके बिना नहीं हो सकते। अगर ऐसा नहीं मानोगे तो उत्पाद व्ययको भी अलग-अलग मानना पड़ेगा। कहो उत्पाद अलग है, व्यय अलग है तथा ध्रौव्य अलग है। तब उनके न्यारे-न्यारे होनेसे स्वतंत्रता जुदी-जुदी हुई। जब उत्पाद व्यय ध्रौव्य जुदा-जुदा मान लिया तब उत्पाद खोजने वाला व्यक्ति घड़ेमें उत्पाद ही उत्पाद देखेगा, क्योंकि व्यय और ध्रौव्य तो जुदे मान लिये हैं। इस समय मृत्पिण्डका व्यय जुदा होगा तथा घड़ा जुदा पैदा होगा। यह स्थिति होनेपर मृत्पिण्डका व्यय नहीं होगा तथा घड़ा बन जायगा। तब पूछा कि कुम्भकी उत्पत्तिका कारण क्या है? तो मृत्पिण्डको व्यय अर्थात् मिट्टीके लोंदोको व्यय कहा जिससे घड़ा बना, अब व्यय तो माना नहीं, सो उन्होंने कारण नहीं माना है तब घड़ेका न होना ही रहेगा। अगर केवल सर्ग (उत्पत्ति) ही सर्ग माना तो संहार नहीं होगा। उत्पादका कारण संहार है, सो संहार बिना उत्पाद ही न रहेगा तथा दूसरी कल्पना यह आवेगी कि असदकी उत्पत्ति मृत्पिण्डका व्यय नहीं है और घड़ा बन जायगा। हो जावेगी मिट्टी की जरूरत तो नहीं है, फिर भी घड़ेका निर्माण हो गया तो असदका उत्पाद हो जायगा और कमरे वगैरामें घड़े ही घड़े बन जावेंगे और वह काफी पैदा होनेसे मनुष्योंके सिर फूटने लगेंगे।

अटपट मिसमिरेजम नहीं हो सकता—मिसमरेजम वाले भी यों ही पदार्थकी उत्पत्ति नहीं कर देते। उन्हें भी कुछ न कुछ मूलभूत पदार्थ हड्डी, लकड़ी, मसाला आदि रखना पड़ता है व चीज रखते हैं या मंगाते हैं, किन्तु यहां एक नया ही मिसमरेजम चालू हो जायगा। जहां कि बिना मूलभूत पदार्थके ही उत्पत्ति दमादम होने लगेगी। ऐसा नहीं है, व्ययके बिना उत्पाद नहीं है। किसीके ३ वर्षका बच्चा होवे और वह उतना ही बना रहे, क्योंकि माता पिता उतना छोटा भी देखना चाहते हैं और तभी ३० वर्षका भी हो ले, क्योंकि माता-पिता ऐसा भी देखना चाहते हैं तो क्या यह हो जायगा? जब बच्चा चार वर्षका हुआ, उसके पहले तीन वर्षका भी था तथा आगे भी प्रतिदिन प्रति मिनट प्रति सेकंड बढ़ता ही रहा तथा जब १८ वर्षका हो गया उसके पहले १७ का भी था तथा १७ के पहले १६ का भी था। १८ वर्षका होनेपर सत्रहवें वर्षका व्यय हो गया और १८वें वर्षका उत्पाद हुआ। इसलिए उत्पादके बिना व्यय नहीं और व्ययके बिना उत्पाद नहीं।

व्ययके बिना उत्पाद नहीं—अगर व्यय बिना उत्पाद मानोगे तो असत्की उत्पत्ति हो जायगी। जिससे मूलभूत कोई भी द्रव्य नहीं ठहरेगा। घड़ेका तो दृष्टांतभर दिया है। मृत्पिण्ड की अनुत्पत्तिमें कुम्भ पैदा हो गया, ऐसा ही सबका हाल समझें, सो सबकी अनुत्पत्ति हो गई। कुम्भ ही क्या जगतके सर्व पदार्थ अनुत्पन्न हैं? घड़ा न होवे तो मनुष्य प्याससे व्याकुल हो जावें। अगर असत्की उत्पत्ति होने लगे तो आकाशके फूल मानना पड़ेगा। फूल तो वृक्षोंमें ही पैदा होते हैं। खरगोशके सींग, गधेके सींग, मनुष्यके सींग भी मानना पड़ेगा एवं बन्ध्या औरतके पुत्रोत्पत्ति भी कह सकते हो। जब यह बातें सिद्ध नहीं हो सकतीं तो कहना पड़ेगा कि असत्की उत्पत्ति न कभी हुई, न हो सकती है और न कभी होगी। व्ययके बिना उत्पाद नहीं है। मिथ्यात्वके व्यय बिना सम्बन्ध पैदा नहीं हो सकता तथा पूर्वपर्यायिके बिना नवीन पर्यायिकी उत्पत्ति नहीं हो सकती। कोई सोचे कि सांसारिक सुख भी बना रहे तथा आत्म-कल्याण भी कर लेवें, यह दोनों साथ नहीं हो सकते। जब सांसारिक सुख छूटेगा तब आत्म-कल्याण कर सकोगे। परपदार्थोंमें रुचि होगी तब आत्महितसे वंचित रहेगा तथा आत्महित करते समय परपदार्थोंसे रुचि छूटेगी।

उत्पादके बिना व्यय नहीं—यह विवाद चलनेपर किसीने कहा कि यह बात सिद्ध नहीं हुई तो हम उत्पत्ति उत्पत्ति न देखकर हम केवल व्यय व्यय ही मानेंगे। अब जो संहार को सिद्ध करना चाहेगा वह उत्पत्ति नहीं देखेगा। कुम्भका व्यय तो होवे तथा उत्पाद न होवे यह भी असंभव है। यदि व्यय तो पदार्थोंका होता रहे और उत्पाद न हो तो फिर सर्व संहार का अवसर आ जायगा। एक अंगुली है, अगर इसको सीधी करेंगे तब टेढ़ीपनका अभाव रहेगा तथा टेढ़ी करनेपर सीधीपनका अभाव रहेगा। दोनों एक साथ नहीं हो सकते कि टेढ़ी

भी रही आवे तथा सीधी भी रही आवे । संहारको देखना चाहते तो सर्ग मानना ही पड़ेगा । उत्पाद ठीकरोँका तो माना नहीं, फिर उत्पादके बिना संहार किसका और वह संहार कैसा ? उत्पाद नहीं मानते तो व्यय हो ही नहीं सकता । व्यय जब हुआ तब उत्पाद तो हुआ नहीं और व्यय होता रहेगा तो समूल नाश हो जायगा । इससे सत्का उच्छेद हो जायगा । उत्पाद है तब व्यय है और व्यय है तब उत्पाद है । उत्पादके अभावमें यदि व्यय मान लिया तो सत्का उच्छेद ही हो जायगा । अभी दो बातें सिद्ध की गईं । मृत्पिण्डका नाश नहीं हुआ तो सभी पदार्थोंका नाश नहीं हो सकता, व्यय नहीं हो सकता, पर नष्ट होते जा रहे हैं ? मरते-मरते तो दुनियामें आफत ही आफत मच रही है । यह न होवे तो सभी मनुष्योंका अवस्थान कहाँ होगा ? खैर, प्रकरणमें आवें । उत्पाद बिना व्यय होता ही है, अगर ऐसा ही मानोगे तो सभीका नाश हो जायगा ।

सत्के नाशमें तुम भी कहां टिकोगे — अगर सत्का नाश हो जाय तो तुम्हारा ज्ञान सत है, तब तो उसका भी नाश हो जायगा । ज्ञानका उच्छेद होनेसे सभी विषय कठिन पड़ जायेंगे । कोई कहे हमारे जीभ नहीं है, बोल नहीं सकता हूँ । अगर जीभ नहीं होती तो क्या यह शब्द बोल लेता । ज्ञानका उच्छेद हो भी जावे, ऐसा कहो तो वह कैसे बन सकता ? जान तो रहे हो । जो जाननेकी शक्ति विशेषका काम है वही तो ज्ञान है । कुछ लोग मानते हैं सब माया है, भ्रमजाल है, कुछ भी नहीं है । यह सब भूठा है अर्थात् यह सच है । कोई कहे कि हमारे गाँवके सब मनुष्य भूठे हैं, चालाक हैं, चापलूस हैं । तो क्या कहने वाला इन सबसे भिन्न है ? उसने स्वयं अपने बिना भूठेपनकी स्वयं साक्षी देकर प्रतिनिधित्व किया है । यदि सब गाँव भूठा है तो जो यह कहा जा रहा है वह भी भूठ है । क्या इसकी बातका विश्वास किया जा सकता है ? यह तो है ही नहीं कि सत्का उच्छेद हो गया हो । सबका सब भ्रमसा दिख रहा है । यहां कुछ है नहीं सब भ्रमसे दिखते हैं । सत इस दृष्टिसे है कि वह वास्तविक चीज सब अक्षुण्ण है । यह वास्तविक नहीं है । वर्तमान यह है । यह तो है ही । दुनियाभरके पदार्थ हमारे ज्ञानमें आ गये हैं, इसलिए हैं और जो हमारे ज्ञानमें न आवें वह नहीं है, क्या यह भी सही प्रतीत होता है ? हमारे ज्ञानमें यदि आ जावे कि यह चौकी है, पुस्तक है, चटाई है, दुकान है तो सब जगहसे भागकर दुकान, चटाईको हमारे पास ही आना चाहिए । तुम जानते जाओ दुकान है, करोड़ रुपया है तो क्या जाननेसे अपने पास आ गये ? दुकान अपने स्थान पर है, रुपया अपने स्थानोंपर है और ज्ञान ज्ञानके साथ है तथा पदार्थ अपने स्थानपर हैं ।

निश्चयतः सब ध्रुव है—यह जगत कैसा है ? प्रश्न होनेपर उत्तर दिया है, सत् है, खंड है । अनेक पर्यायोंमें स्वरूप ध्रुव्य है । कोई पदार्थ किसीका स्वामी नहीं है । अपने-

अपने परिणामन भिन्न-भिन्न करते रहते हैं। दुःख है तो केवल इस बातका कि परममें अपनेको स्वामीकी भावनामें रत रखते हैं। परके स्वामी न आज तक हुए हैं, न कभी होंगे। न हमारा कोई स्वामी है। ममत्व बुद्धि अनादिकालसे दुःख देती आ रही है। अन्य लोग मानते हैं कि जब प्रकृति और पुरुषका मेल हो गया तब सब कार्य ठीक हो गये, और मानते हैं उसीकी इच्छापर यह सब कार्य चल रहे हैं। यह कल्पना अज्ञानान्धकारसे ही भरी हुई है।

भाववान भावका भेद बनाने वाला स्वयंका कर्ता है। तो उसे यह दिखता है, रागद्वेष आदि किसके हैं? यदि रागद्वेष पौद्गलिक हैं तथा उनको करने वाला, भोगने वाला जीव है, फिर भी विवेकपूर्वक उन सबका भेद कर लिया जाय तो यह आत्मा उन रागादिकका कर्ता नहीं रहेगा। यह बात भी नयविवक्षासे है। स्वभावमें जो रागादिक हुए हैं निश्चयनयसे उनका कर्ता आत्मा है तथा बाकी पौद्गलिक कर्मोंका कर्ता यह नहीं है। जीव जब जैसा परिणामन करता उस समय उसी तरहकी कर्मवर्णायें आकर बंध जाती हैं। ऐसा निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है।

सब पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं—स्वरूपास्तित्वमें कोई पदार्थ किसीका स्वामी नहीं है। सब पदार्थ भिन्न-भिन्न हैं। कोई किसीका कर्ता नहीं है। अपने-अपने कर्मके अनुसार फल भोगते हैं। परको कर्ता-धर्ता मानना दुःखका कारण है। जीव स्वयंका कर्ता है उसमें अन्य किसीकी चतुराई नहीं चल सकती। इस जीवने अपनी चतुराई बता-बताकर अनेकोंसे रिश्ते जोड़े। वह रिश्ता चाहे भले महत्त्व न रखे, किन्तु यह उसका पीछा नहीं छोड़ता। क्योंकि धारणा जमी हुई है, यह हमारा उपकार कर देंगे या मैं इनका उपकार कर दूंगा जिससे यश मिलेगा। यही इच्छा गर्तमें ढकेले दे रही है।

व्यतिरेक बिना अन्वय नहीं—इसी तरह स्थिति रहती है। उत्पाद व्यय ध्रौव्य सहित सब पर्यायें रहती हैं, जो ऐसा न मानें उनसे पूछो कि तुमने व्यतिरेक तो माना नहीं, जिससे कि पर्यायकी स्थिति रहती है। क्योंकि व्यतिरेक मान लो तो उत्पाद व्यय ध्रौव्य भी मानना पड़ेगा, फिर तो तुम्हारा सम्पूर्ण मसला ही बिगड़ जायगा। इसलिए उत्पाद व्यय ध्रौव्यके डर से व्यतिरेक भी नहीं माना। व्यतिरेक तो रहा नहीं तब अन्वय भी किसके आधारसे रहेगा और व्यतिरेककी संततिको छोड़कर अन्वय किसको कहोगे? क्योंकि अन्वयमें ही व्यतिरेक समाया हुआ है। जैसे मृत्पिण्डसे घड़ेकी उत्पत्ति है तथा घड़ेके व्ययसे खपरियाँ रूप बनकर पुनः जर्-जरे होकर भी मिट्टीमें परिणम जाते हैं। कहो उत्पाद नहीं है और व्यय भी नहीं है तो आपत्ति ही आपत्ति उपस्थित होगी, और जब कुछ भी नहीं माना तो क्षणिक रह जायगा और उसी क्षणिकको नित्यपना रह जायगा। तब कहना होगा कि क्षणिक ही नित्य है। सबसे बड़ी आपत्ति तो यह है कि भेद माना तो उसीपर डटे हैं और अभेद माना तो उससे टससे

मस नहीं हुए। इसीको डाटशाही कहते हैं। डाटशाहीमें दुनियामें किसीको कुछ समझते ही नहीं हैं। पहले डाटशाही चलती थी अब नहीं रही। इस तरह जहाँ भी देखो वहाँ डाटशाही के बिना नाम ही और नहीं लेते। एक बार किसीकी बारात लड़की वालेकें यहाँ आ गई। जब दरवाजेपर बारात ऊबने जाती है तो लड़केका टीका करनेका दस्तूर किया जाता है। तो टीकेमें लड़केको ५१) ६० टीका किये गये। इतनेमें लड़केका पिता तुनककर बोला कि अगर टीकामें लेंगे तो ५०१) ६० लेंगे, नहीं तो दूल्हेको खड़ा खड़ा जला देंगे। कहाँ तो नाता ऐसा कि रूपयोंपर दूल्हेकी शानके साथ हम टिकेंगे, नहीं तो दूल्हेको ही खत्म कर देंगे। इसी तरह मानेंगे तो भेद ही मानेंगे और भेद नहीं मानेंगे तो अभेदपर ही डटे हैं। मिट्टी ही नहीं रही तो अन्य वस्तु कहाँपर रहेगी ?

अन्वय बिना व्यतिरेक नहीं—यह आपत्ति उन्हें अच्छी नहीं लगी तो क्षणिकको ही नित्यपना मान लिया जो कि अपनी बुद्धिका नित्य है। जीवका एक समयका जो परिणामन है उसीको द्रव्य मान लो अथवा जीवके जो कल्पना है या विकार है। उसीको तो द्रव्य माना है। लगता भी ऐसा है कि जो कल्पना है, विचार है, वही आत्मा है। यह माननेसे चित्त क्षणों में भी आत्मा आ जायगी। जो कि यह सिद्ध नहीं होता। जो है नहीं, उसका सद्भाव करना आकाशके फूलोंकी कल्पना करना है। इसलिए उत्पाद व्यय ध्रौव्य अलग-अलग हैं, नवीन-नवीन पर्यायोंके उत्पादके द्वारा उन सबमें रहने वाला जो एक अन्वय है, उसके बिना न रह सकने वाला द्रव्य है। वह द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्यके बिना नहीं रह सकता है। जैनधर्ममें वस्तुस्वरूपकी बड़ी विशेषता बताई है। वर्षों तक पढ़ते रहो, लिखते रहो तब कहीं उसके सारतत्त्वको जान सकते हैं। एक तरफ सबकी सब तुम्हारी कहानियाँ तथा एक तरफ वस्तु-स्वरूपका विशद विवेचन। यह बड़ा गम्भीर है। इसमें प्रवेश हो जानेपर अनेक भ्रमोंसे निवृत्त हो जाते हैं। केवली भगवानकी कितनी विशाल-विशाल सभायें लगती थीं ? उनमें सभी जीव आकर धर्म श्रवण करते थे। गणधर देव दिव्यध्वनिको झेलते थे तथा दूसरोंमें उसको गुञ्जायमान करते थे। प्रत्येक जीव अपनी-अपनी भाषामें समझ लेता था। किसीको दिक्कत नहीं होती थी। उनकी महिमाका वर्णन कौन कर सकता है ? उन सब उपदेशोंमें से प्रथम व प्रधान उपदेश वस्तुस्वरूपका है।

अन्वित तत्त्व सत्य है—उद्योतमान प्रगट हुआ है निरंतर त्रिलक्षणताका चिह्न जिसमें ऐसा द्रव्य अवश्य मानना चाहिए। मनुष्य कहते तुमने हमें लाञ्छन लगा दिया। लाञ्छनका यह मतलब नहीं कि कोई सच्चा झूठा दोष लगा दिया हो, किन्तु लाञ्छन अर्थात् विशेष बात दर्शाई गई है या प्रकट की गई है या उसका चिह्न दिखाया गया है। कार्तिक बदी अमावस्या को प्रातःकालमें भगवान महावीरको केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई थी और शामके समय गौतम गण-

धरको केवल ज्ञानलक्ष्मीकी प्राप्ति हुई थी। उस दिन शामके समय लक्ष्मीकी पूजा करते हैं, किन्तु लक्ष्म शब्द लक्षणका पर्यायवाची है, इसलिए आत्माके लक्षणोंकी पूजा हुई। वह लक्षण आत्माका द्योतक है, तब लक्ष्मीकी पूजा अर्थात् आत्माके लक्षणोंकी पूजा या ज्ञानलक्ष्मी की पूजा चली थी। ज्ञानमय आत्माका स्वभाव है। उसकी आराधना करना चाहिए। अधिक उपादेय जो चीज है उसको लक्ष्म करके कहते हैं, जो पूर्ण उपादेय है उसे लक्ष्मी कहते हैं। मनुष्योंने अब पूर्ण उपादेय समझ रखा चाँदी, सोना, रुपया पैसा आदि, इसलिए सबको छोड़कर चंचला लक्ष्मीकी पूजा करने लगे। इसे ही उन्हें लक्ष्मी कहते ठीक प्रतीत हुआ।

रुच भी खोट शुद्धिमें बाधक है—एक्सप्रेस डिलीवरी चिट्ठीपर १२ नये पैसेका टिकट लगता है और अगर १२ नये पैसेका ही टिकट लगा दिया तो वह एक्सप्रेस डिलीवरी नहीं मानी जायगी और १२ नये पैसे निरर्थक जायेंगे। इसी तरह अगर अपने द्रव्यस्वरूपके अनुकूल उपयोग बन गया तो श्रेष्ठ है। अन्यथा यहां भी थोड़ीसी खोट हो तो मोक्षमार्गमें बाधा हो जायगी। मनुष्य सोचता है यह तो थोड़ासा ही पाप कर रहा हूं, उसे मैं अपने पुण्यके द्वारा चूर कर दूंगा। कितनी भूलसे भरा सिद्धान्त है? जैसे कोई अलानमें पाप कर जावे वह पापबन्धका करने वाला है वैसे जो धर्म आचरण करते हुए, जानते हुए पापरूपी कीचड़में पैर डाले। वह भी पापका बन्धक है। वस्तुतः तो यहां भी अज्ञान है। व्यवहारमें ज्ञान वाला कहते हैं कीचड़में पैर डालकर धोनेकी अपेक्षा न डालना ही श्रेयस्कर है। यह कीचड़ ऐसा भी दलदल हो सकता है जहांसे निकलना ही कठिन हो जायगा। इसलिए परपदार्थोंको जानते हुए भी अपना उपयोग निजमें चित्त लगे, इस तरहका होना चाहिए तथा अपने आप में उसको देखना चाहिए।

सर्ग, संहार स्थितिके बोधमें सम्यक्परिचय—वस्तुके स्वरूपके अवगमका बड़ा उच्च प्रसाद है। इससे संसारके सारे क्लेश समाप्त हो जाते हैं। देखो वस्तुमें सर्ग, संहार, स्थिति तीनों धर्म अनवच्छिन्न हैं। सर्ग संहारके बिना नहीं होता, संहार सर्गके बिना नहीं होता, सर्ग संहार दोनों स्थितिके बिना नहीं होते, स्थिति सर्ग संहार दोनोंके बिना नहीं होती। जो ही सर्ग है वह ही संहार है। जो ही संहार है वह ही सर्ग है। जो ही सर्ग संहार दोनों है वह ही स्थिति है। जो ही स्थिति है वह ही सर्ग संहार दोनों हैं। सर्ग माने उत्पाद, संहार माने व्यय व स्थितिके मायने ध्रौव्य है। जैसे कि जो ही कुम्भका सर्ग है वह ही मृत्पिण्डका संहार है, क्योंकि भाव भावान्तरके अभावके स्वभावसे ही अवभासित है। जो ही मृत्पिण्डका संहार है वह ही कुम्भका सर्ग है, क्योंकि अभाव भावान्तरके स्वभावसे ही अवभासित है। जो ही कुम्भका सर्ग और मृत्पिण्डका संहार है वह ही मृत्तिकाकी स्थिति है, क्योंकि व्यतिरेक मुखसे ही अन्वयका प्रकाशन होता है। जो ही मृत्तिकाकी स्थिति है, वह ही कुम्भका सर्ग है

और मृत्पिण्डका संहार है, क्योंकि व्यतिरेक अन्वयका उल्लङ्घन नहीं करते ।

यथार्थ ज्ञान ही सत्य शरणा है—इन तत्त्वोंको जिस तरहसे जिनेन्द्र भगवानसे कहा है उनसे विरुद्ध नहीं होना चाहिए । द्रव्यका यथार्थ लक्षण ही स्वीकार करना चाहिए अन्य रूपसे नहीं । स्वमेव करोतीति स्वीकरोति । मानना, मंजूर करना, अंगीकार करना और स्वीकार करना—इनका भिन्न-भिन्न अर्थ होता है । स्वीकारसे मानना शब्द नीची श्रेणीका है अर्थात् जिसे हम कहते हैं, उसे मानना चाहिए, इसमें निज जैसा भाव प्रकट नहीं होता । मंजूर करना अर्थात् हमारी बातको जरूर मानना चाहिए । अंगीकार करना अर्थात् अपना अंग बनाकर ही रहना चाहिए तथा स्वीकार करनेमें विशेष अर्थ ही ध्वनित होता है । स्वीकार अर्थात् अपना जीवन सही स्वरूपमें रहना चाहिए, इसका नाम स्वीकार करना होता है । असली स्वीकारता अपने आत्मद्रव्यको स्वीकार करना है । प्रत्येक शब्द अपना जुदा-जुदा महत्त्व रखते हैं । आचार्योंने उनका बड़ा उत्तम विधिवत् रूप जमाया है । अंग्रेजीमें भी इसी तरहके शब्द मिलते हैं । किन्तु हिन्दीमें उनको वाक्यमें विधिवत् नहीं बैठाते । यह लड़का अनाथ है, इसलिए आप नाथ, रक्षक बन जावें यही भाव तो है, किन्तु उसको यों ही हेय दृष्टिसे जानकर छोड़ दिया तो क्या महत्त्व रखा आपने कहने वालेका ? लोकव्यवहारमें जैसी दृष्टि रखकर बोला जाय वैसा ही ध्यान कार्यमें लाना चाहिए । अनुबोद्धव्यमू क्रियामें स्पष्ट झलक रहा है, द्रव्यका स्वरूप ही उत्पाद व्यय ध्रौव्यमय है । कोई सोचे मेरा क्या नुकसान हुआ उत्पाद व्यय ध्रौव्य द्रव्यका स्वरूप है तो रहा आवे । लेकिन द्रव्यका सच्चा स्वरूप ज्ञात होनेसे आत्मद्रव्यको परखनेका यह एक सच्चा उपाय मिलता है । जैसा वस्तुका स्वरूप है वैसा ही और उसके अनुकूल अपनेमें घटाकर जानना चाहिये । इसके बिना पदार्थ को ठीक ढंगसे न जाननेपर आत्माका श्रद्धान ही क्या होगा ? इस सम्बन्धमें एक उदाहरण बड़ा ही हृदयस्पर्श करने वाला है मोही प्राणियोंको ।

यदि ऐसी अविनाभावनी त्रिलक्षणा पद्धति नहीं मानी जाती तो इसका यह परिणाम होगा कि सर्ग अन्य है, संहार अन्य है और स्थिति अन्य है । यदि ऐसी ही हठ कर ली जावे कि ये अन्य-अन्य हैं तो केवल सर्गमें आनेके यत्न वाले कुम्भका उत्पादन कारणका (पूर्वपर्याय युक्त उपादान अथवा पूर्वपर्यायका) व्ययका अभाव होनेसे असर्ग ही होगा अथवा असत्की उत्पत्ति होना पड़ेगी । कुम्भका सर्ग नहीं हो सका, ऐसा ही सर्व भावोंकी बात लगा लो, किसी भी भावकी उत्पत्ति न होगी । असत्का उत्पाद होना मानोगे तो आकाशपुष्प, खरशृङ्ग आदिकी भी उत्पत्ति हो पड़ेगी । इसी तरह केवल संहारमात्र मृत्पिण्डको भी संहारका कारण (उत्तर पर्यायका उत्पाद) तो मिला नहीं तो संहार ही न हो सकेगा या सत्का उच्छेद हो जावेगा । यदि कहो कि न हो मृत्पिण्डका संहार, तो ऐसी सभी भावोंकी बात है, किसीका भी संहार

न हो सकेगा । यदि सत्का उच्छेद मानो तो ज्ञानादिका उच्छेद हो जायगा । इसी प्रकार केवल स्थिति चाहने वाली मिट्टीको व्यतिरेकाक्रान्त स्थितिका अन्वय न मिलनेसे स्थिति (ध्रौव्य) ही न रहेगी या क्षणिकके ही नित्यता माननी पड़ेगी, मृत्तिकाकी स्थिति नहीं हो ले । ऐसी ही तो सब वस्तुओंकी बात है, सभीकी स्थिति न रहेगी । क्षणिकके नित्यता आ जाय, ऐसा मानो तो चित्तक्षणोंके भी नित्यता आ जावेगी । अहो ! कितने ऊँचे तत्त्वज्ञानकी बात है ? तत्त्वज्ञानके प्रसादसे सहज ही वे निर्मोहता आ जाती है । शिवपुरी जिलाके अन्तर्गत वहरवास नामका एक गाँव है । वहाँपर एक वैश्य हलवाई रहता था, वह हलवाई गिरीका काम करता था । ईश्वर भक्ति करनेमें भी बड़ा प्रसिद्ध था । सभी मनुष्य इसके गुणको देखकर दंग हो जाते थे । उसके एक २५-३० वर्षका इकलौता पुत्र था । वृद्धकी वही लाठी था, जिसे जीवनमें संतोष दे पाता । वह बीमार हुआ और २-४ दिनमें ही मृत्युको प्राप्त हो गया । तब गाँवके सभी मनुष्य समझाने आये दुःखी होकर । गाँव वालोंकी विचित्रता तो देखो, उसे संतोष दिलाना तो दूर रहा, लेकिन और दुःखी करना चाहते हैं । सभी आ आकर कष्ट देना चाहें, यह रोता क्यों नहीं ? लेकिन उसकी दृढ़ता देखो, वह कहे कि हमारा पुत्र होता तो रहता, सुख देता, वह तो ईश्वरका भेजा हुआ था, ईश्वरने ही उसे उठा लिया । उसने अपनी श्रद्धाकी बात कही तथा उसके चेहरेपर पहलेकी अपेक्षा जरा भी सिकुड़न नहीं आई । देखा हो जो भीतरसे दुःखी रहता है वह औरों से बोलता तक नहीं । अगर वह जबरदस्ती हंसनेकी भी चेष्टा करे तब भी उसका उदास चेहरा अन्तरङ्ग स्थितिको प्रकट कर देता है । जब मामूली स्थितिमें यह धैर्य है तब जहाँ तत्त्वज्ञान भी हो तथा अन्य विकल्प चिन्ता, अफसोस आदि न हों वहाँ इस आत्मज्ञानको ही सर्वोपरि मानना चाहिए यह तो हो ही जाता है ।

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यमें दृढ़ मित्रता है—इस गाथामें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यका अविनाभाव बताया गया है और अन्यथा रूपकमें यह भी टीकाकार पूज्य श्री अमृतचन्दजी सूरिने यह बताया है कि इनका अविनाभाव न मानोगे तो इन तीनोंमें से कुछ भी नहीं ठहर सकता । इस कारण यह मानना चाहिये कि उत्तरोत्तर व्यतिरेकोंके (पर्यायोंके) सर्ग होनेके द्वारा और पूर्व पूर्व व्यतिरेकोंके (पर्यायोंके) संहार होनेके द्वारा और सर्वत्र अन्वयके अवस्थान होनेके द्वारा अविनाभूत और जिसमें त्रिलक्षणता निरन्तराय प्रकट है, ऐसा द्रव्य अवश्य मानना चाहिये । भैया ! ऐसा ही सब मान लो, इसमें ही सिद्धि प्राप्त होगी । अब जो यह कहते हैं कि उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य यह द्रव्यसे भिन्न हैं, उनको इस दृष्टाहिताको नष्ट करते हैं । उत्पत्ति आदिकी द्रव्यसे भिन्नता है, इसका संहार करते हैं । द्रव्यसे उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी अभिन्नता है, इसे कह चुके कई बार । पुनः प्रश्न उठ खड़ा हुआ, सो द्रव्यसे भिन्नता नहीं है, इसे न माननेपर कहते हैं अथवा लो पदार्थकी भिन्नता ही समाप्त करे देते हैं तो बोलनेका अवसर ही न मिलेगा ।

इसीको भगवान् कुन्दकुन्दाचार्य गाथामें कहते हैं—

उत्पादद्विदि भंगा विज्जते पज्जयसु पज्जाया ।

दव्वे हि संति णिपदं तम्हा दव्वं हवदि सव्वं ॥१०१॥

अखंड द्रव्यके परिचयका द्वार—उत्पाद, स्थिति और भङ्ग पर्यायोंमें होते हैं और पर्यायों नियमसे द्रव्यमें ही होते हैं। यह सब बात ध्रुव सत्य है। अतः यह सब द्रव्य ही है। उत्पाद और स्थिति और भंग माने विनाश यह पर्यायोंको आलम्बते हैं। पर्यायों द्रव्यको अवलम्बित करती हैं। पर्यायों नियमसे द्रव्यमें होती हैं। इसलिए पर्यायों ही द्रव्य कहलाई। वस्तु क्या ध्रौव्य मात्र है? नहीं, तो देखो ध्रौव्य भी अंश हो गया। द्रव्यका यह अंग हुआ। किसीका वर्णन करना अर्थात् उसके टुकड़े करना भंग है, आत्मामें चैतन्य है यह भेदसे है तो उत्पाद स्थिति और विनाश यह पर्यायोंमें है और पर्याय द्रव्यमें है। वह द्रव्य सबका सब एक है, किन्तु प्रति समय उसमें जो परिणमन होता रहता है यह पर्यायों हैं। पर्याय यह तो एक धर्म है, एक चीज नहीं है। जो पहले कहा वह सब द्रव्य है। द्रव्यमें उत्पाद व्यय और स्थिति निरन्तर रहती है। सब मात्र नवीन-नवीन उत्पाद ही करते रहते हों, यह बात नहीं जिस समय नवीन उत्पाद है उसी समय पूर्वपर्यायका व्यय भी है। किन्तु समझना है यह बात हममें भी है और समझना है यह दशा इसमें भी है। यहां 'है' द्रव्यार्थिकनयका विषय है और 'दशा' पर्यायार्थिकनयका विषय है। द्रव्य ही जिसका प्रयोजन है वह द्रव्यार्थिकनय है तथा पर्यायार्थिकनय ही जिसका प्रयोजन है वह पर्यायार्थिकनय है, इसे अमृतचन्दाचार्यजी सूरि ही अपनी टीकामें स्पष्ट करेंगे।

सर्गसंहारस्थितिके त्रिकमें परस्पर आलम्बन है—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य यह द्रव्य से जुड़े नहीं हैं। इसीको यहाँपर कहते हैं। उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य ये पर्यायोंको आलम्बते हैं। उत्पाद व्यय और ध्रौव्य ये पर्यायोंपर निर्भर हैं, यह कहना उतना अच्छा नहीं जितना कि अच्छा भाव आलम्बितमें है। तो उत्पाद व्यय ध्रौव्य पर्यायोंको आलम्बते हैं और पर्यायों द्रव्यको आलम्बती हैं। उत्पाद व्यय ध्रौव्योंमें से कोई एक पूर्ण द्रव्य है। उत्पाद भी एक पूर्ण द्रव्य नहीं है और व्यय भी एक पूर्ण द्रव्य नहीं है तथा ध्रौव्य भी एक पूर्ण द्रव्य नहीं है, क्योंकि इसकी अनिष्टापत्तियाँ पहले ही कह चुके हैं। उत्पाद व्यय ध्रौव्य भी द्रव्यका अंश है। जो अंश होता है उसे पर्यायों कहते हैं। ध्रौव्य तो अंश होनेसे पर्याय है। ध्रौव्य उसे कहते हैं जो व्यतिरेकोंमें अन्वय रखे। पर्यायोंमें अन्वय रखने वाला है वह पर्यायोंके आलम्बन बिना कैसे हो सकता है? द्रव्य पर्यायोंको और पर्यायों द्रव्यको आलम्बती हैं। पर्यायों द्रव्यकी दशामें हैं। द्रव्य पर्यायोंको आलम्बती हैं, पर्यायों द्रव्यको आलम्बती हैं। चूँकि उत्पाद व्यय ध्रौव्यको द्रव्य आलम्बता है। इसलिए समस्त उत्पाद व्यय ध्रौव्य, पर्यायों एकमेक द्रव्य हैं, द्रव्यान्तर नहीं

है। जैसे अंगुलीको एक द्रव्य मान लें। तो सीधी अंगुली एक द्रव्य है। सीधापन उत्पाद पर्याय को आश्रित करता है। सीधेपनकी दशाको आश्रित करती है। इसको टेढ़ी करनेपर सीधेपनवा व्यय हो जायगा तथा टेढ़ी अंगुलीका उत्पाद हो जायगा तथा अंगुली पूर्वकी है ही।

द्रव्यकी निज विशेषतायें ही अनेक हैं—पुद्गल द्रव्य है, इसमें रूप है वह अभिन्न है या नहीं? चूँकि रूप रूपत्व रूपको आलम्बता है और रूप पुद्गलको आलम्बता है। सो रूप रूपत्व पुद्गलसे अनर्थान्तर है। अंगुलीमें सीधेपनका उत्पाद हुआ या नहीं? सीधापन सीधी दशाको कहते हैं। यहाँ सीधापन अंगुलीको आश्रित करता है। अब विशेष-विशेष देखो, व्यय उत्पादको आलम्बता है। उत्पाद व्ययको आलम्बता है। ध्रौव्य उत्पाद और व्यय (पर्याय) दोनोंको आलम्बता है। दोनों दशाओंमें एक स्थिति रही वह द्रव्यमें रहने वाले द्रव्यको आलम्बती है। उत्पाद व्यय ध्रौव्यने पर्यायोंका आलम्बन किया और पर्यायोंने द्रव्यको आलम्बा, दूसरा द्रव्य नहीं आलम्बा, अतएव द्रव्य पर्यायोंके द्वारा आलम्बित होता है और पर्यायों द्रव्यके द्वारा आलम्बित होती हैं, क्योंकि समुदाय तभी होता है जब समुदायी होवे। समुदायी समुदाय को आलम्बता है।

वृक्षका उपयोगी दृष्टान्त—एक वृक्ष है। उसमें स्कंध, तना, शाखायें, डालियाँ, टहनियाँ, पत्ते, फूल सब हैं, इससे उनके समुदायका नाम वृक्ष हुआ। वृक्षको पादप भी कहते हैं। अर्थात् जो पैरोसे चलते-चलते थक गया है, इस तरहसे थके हुए पैरोंकी रक्षा शीतल छायासे करे वह पादप कहलाता अथवा पैरोसे जो पानी पावे सो पादप, पैरोसे याने जड़ोंसे यह वृक्ष स्कंध शाखाके द्वारा ही आलम्बित होता है। शाखा स्कंध आदि वृक्षको आलम्बती है। देखो ना, जैसे समुदायी वृक्ष जो स्कंध मूल शाखादि समुदायात्मक है वह स्कंध शाखादिसे आलम्बित होता हुआ ही प्रतिभात होता है। इसी तरह समुदायी द्रव्य जो कि पर्यायोंका समुदायस्वरूप है वह पर्यायोंके द्वारा आलम्बित होता हुआ प्रतिभात होता है। इसका भाव यह है कि शाखा, मूल, स्कंध आदिको छोड़कर वृक्ष और क्या है? वृक्ष जाना ही जाता है शाखा, स्कंध, मूल आदिके अवगमसे। पर्यायोंको छोड़कर द्रव्य और क्या है, कहाँ है? द्रव्य जाना जाता है पर्यायोंके अवगमसे। हां तो पर्यायोंसे आलम्बित द्रव्य प्रतिभात होता है। पर्यायों उत्पाद, व्यय व ध्रौव्यके द्वारा आलम्बित होती हैं अर्थात् उत्पाद, व्यय, ध्रौव्योंपर पर्यायों आलम्बित हैं। ये उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य अंशरूप धर्म हैं। जैसे बीज, अंकुर और पादपत्व अंश धर्म हैं। दृष्टान्तमें अंशी तो पादप (वृक्ष) है और बीज, अंकुर और पादपत्व अंश है। जैसे बीज बोया, उसका अंकुर हो गया तो यहाँ बीजका तो व्यय है, अंकुरका उत्पाद है व पादपत्व सबमें है, सो उसका ध्रौव्य है। यहाँ अंशी पादपके बीज, अंकुर व पादपत्वरूप तीन अंश व्यय, उत्पाद व ध्रौव्यरूप अपने धर्मोंसे आलम्बित होते हुए एक साथ प्रतिभात होते हैं। इसी प्रकार अंशी

द्रव्यके उच्छिद्यमान (व्ययको प्राप्त हो रहे), उत्पद्यमान व अवतिष्ठमान भावरूप तीन अंश व्यय, उत्पाद व ध्रौव्यरूप अपने धर्मीसे आलम्बित होते हुए एक साथ प्रतिभात होते हैं। यह एक दूसरेके उपकारके समान है। जैसे गुरु शिष्यका उपकार विद्या पढ़ाकर करता है तथा शिष्य गुरुका उपकार रुपया पैसा द्रव्य देकर अथवा भक्तिसे सन्तोष देकर करता है। प्रत्येक द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्यको आलम्बता है। द्रव्य उत्पन्न होता है तो यह विकल्प नहीं करना चाहिए कि मैंने उत्पन्न किया। द्रव्यको उत्पन्न करनेकी शक्ति किसीमें नहीं है वह तो स्वयं पैदा होता रहता है और नष्ट होता रहता है। दो का मिलकर एक परिणामन कभी नहीं होता है तथा एक द्रव्यकी दो पर्यायें कभी नहीं होती हैं। तब फिर यह कैसे माना जा सकता है कि किसीके द्वारा द्रव्य उत्पन्न किया जा सकता है। आत्मा और शरीर दोनों जुदे-जुदे परिणामन कर रहे हैं।

दृश्यमान स्कंध एक चीज नहीं—एक स्कंध जो अनन्त परमाणुके संघातरूप हैं उसमें भी एक-एक करके अनन्त परमाणु होते हैं, वह सब जुदे-जुदे परिणाम रहे हैं। उनमें जो प्रत्येककी एक-एक शक्ति है वह इसी तरह परिणाम रही है। निमित्तनैमित्तिक भाव होनेके कारण आत्मा और शरीर एक स्थूलरूप बन जाता है तब भी एक नहीं रहता है। तभी तो आत्मा जितना है उतनेसे भावदृष्टिका बोध हो जाता है। यह जाननेसे कोई कठिनाई नहीं होती है। शरीर और आत्माकी मिलकर एक पर्याय यदि होती तो मुक्ति असम्भव थी। उसी तरह दो पर्यायें एक साथ मिल जावें या दो आत्मायें एक साथ मिल जावें, यह कभी नहीं होता है। अगर तुम मानो भी तो विकल्प ही करते रहो वहां केवल विकल्प पर्याय है। द्रव्य-दृष्टिका भिन्न अनुभव रहता है और पर्यायदृष्टिका भिन्न रहता है। लेकिन एक द्रव्य दूसरे द्रव्यमें नहीं मिलता है और न एक पुद्गल दूसरे पुद्गलमें मिलता है। अगर जीव और पुद्गल इन दो की मिलकर स्थूलतया यह व्यञ्जन एक पर्याय है। तो वहाँ भी शरीरके अस्तित्व में शरीरका परिणामन है तथा आत्माके अस्तित्वमें आत्माका परिणामन है। एक दूसरेका परिणामन मिलकर इकट्ठा नहीं है। जैसे कोई मकानके छोटे दरवाजेमें से निकला, वहाँ चौखट सिरमें लग गई तो वहाँ खून भी निकल आनेपर भी या वेदमा होनेपर भी शरीरकी बात शरीरमें है, आत्माकी बात आत्मामें है। यही कारण है, किन्हीं-किन्हींको अपने दूसरे ही काम की धुन रहती है। उस समय उन्हें छोटी-मोटी चोट हो जानेपर उसका कुछ ज्ञात ही नहीं होता और कामकी धुनमें मस्त रहते हैं। जितने द्रव्य हैं उतनी पर्यायें चल रही हैं। जितने कर्म स्कंध हैं उनका उतना ही भिन्न-भिन्न परिणामन हो रहा है जितने अणु हैं। यह नहीं हो सकता है कि दो पर्यायें एक द्रव्यको आश्रित कर लेवें तथा एक-एक द्रव्य दो-दो पर्यायोंको आश्रित कर लेवें।

प्रत्येक द्रव्यका परिणमन उसमें स्वयंमें है—अभी कानखजूरा निकला तो उसने किसके पास जाकर क्षोभ किया ? आप लोग चार-चार छः-छः हाथ दूर बैठे हुए हैं तब भी क्या वह आपके पास पहुंचा है ? नहीं पहुंचा, फिर भी कुछ न कुछ व्याकुलता (हलन-चलन) आपमें हुई है व कुछ लोग तो डरकर दूर भाग गये थे । यह सबके उदयकर्मका नोकर्म या निमित्त तो जरूर था, किन्तु यह जो परिणमन हुआ है वह मेरा है या और किसीका है ? सबका परिणमन सबमें अपना-अपना है । तब शाखा, स्कंध, टहनियाँ, पत्तेरूप आलम्बन एक दूसरेमें है, यह भी अभेदको नहीं बता सकता है । आश्रय, निर्भर आदि शब्दोंमें आलम्बन शब्द बढ़िया मिला । क्या शाखा, तना, मूल, पत्तेरूपसे सबका समुदाय जो द्रव्य है वह पर्याय को आश्रित करके है ? क्या द्रव्यमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य हैं वे क्या द्रव्यको आश्रय करके हैं या स्वतंत्र हैं ? इसके एकान्त उत्तरमें दो धारणायें बन जाती हैं । इसमें दो रहस्य छिपे हैं । एक वैशेषिक लोग हैं जो उस तरहके अभिप्रायको प्रकट करने वाले हैं । भारतवर्षमें जितने दर्शनशास्त्र प्रचलित हैं उनमें प्रायःकर वैशेषिक दर्शनकी मुख्यता है । वैशेषिकको जानता कोई नहीं है कि कौन हैं । लेकिन कोईसा भी किसी भी मतका स्याद्वादको छोड़कर ग्रथ उठा लो, उनमें वैशेषिक दर्शन प्रायः मिल जायगा । ईसाई, पारसी, मुसलमान, चार्वाक, सनातन धर्म आदि सभीमें प्रायः आधे शास्त्र वैशेषिक मतके सिद्धांतके होंगे । वे साक्षात् प्रसिद्धिमें नहीं हैं, किन्तु प्रसिद्धि तो उपासनामें चलती है ।

मूल सबका अहिंसा है—मुसलमान मुहम्मद साहबकी कल्पनाके अनुसार चलते हैं । एकने बताया कि पहले सब मुसलमान अहिंसापुजारी या जैन थे । अरबमें मक्का मदीना उनका तीर्थस्थान है । उसमें एक पाटिया लगा है, उस पाटियेके अंदर जैनमूर्तियां उत्कीर्ण हैं । उसे न तो वे निकालते हैं, न और किसीको निकालने देते हैं । जिस तरह बंदीनाथमें सुनते थे कि वहाँ जैनमूर्ति है । उसके लिए सैंकड़ों आदमी देख भी आये हैं कि वह जैनमूर्ति है तथा उस मूर्तिके संरक्षकोंसे पूछो तो वह भी कह देते हैं कि यह जैनोंकी ही मूर्ति है । लेकिन ये और वे विशद रूपसे कह नहीं सकते हैं कि यह दिगम्बर जैनोंकी मूर्ति है । सुना है कि अरब देशमें एक बार एक व्यक्तिकी अश्रद्धा हो गई तो उसने विपरीत बातोंका पोषण शुरू किया, किन्तु उसकी माँ के आदेशसे मूर्तियाँ नहीं उठाई, पत्थरका पाटिया लगा दिया । जैनधर्ममें बताया है कि जहाँ मोह और मद न हो वह जैनधर्म है । जैनमूर्तिका मुख पूर्व दिशामें होता है और दर्शन करनेपर पश्चिमको मनुष्यका मुख रहता है, इससे वह पश्चिमको मुख करते हैं, यह तो स्वाभाविक ही है । वही पद्धति उन सबमें है । प्रायः यही तो होता है, अगर एक देशमें महंगाई या मही आती है तो दूसरे देशपर भी प्रभाव पड़ता है या कोई खोज होवे तो उसका आविष्कार भी दूसरे देशोंमें अपनाया जाता है । दूसरे देशमें क्या अपने ही देशमें किसी शहरमें धार्मिक प्रभा-

वना या कलह हो तो दूसरी जगह भी मनुष्योंमें वह चिनगारी फैल जाती है, और वे वैसा करनेके लिए तैयार हो जाते हैं। इसी कारणसे पश्चिममें सभी मुसलमान भाई मुंह करते हैं नमाज पढ़ते समय। अरब रेगिस्तान है, रेत ही रेत अधिक पाई जाती है। वहाँ पानी जमीन में काफी नीचे मिलता है। इससे पानी ज्यादा खर्च न हो, इससे मुनियों खरीखे टोंटीदार कभण्डल, टोंटीदार लोटा या डबला काममें लाते हैं तथा टेहुनीकी ओर उल्टे हाथ धोनेसे भी कम पानी खर्च होनेकी वजहसे कोचोंसे नीचेको हाथ धोते हैं तथा वह लोग जब मक्का मदीना जाते हैं तब जू, एकेन्द्रिय वनस्पति जीव तक नहीं मारते, यह अहिंसाकी अपेक्षा कुछ अंशोंमें है तथा ध्यानमें एकाग्रता लानेके लिए कानोंमें अंगुली लगाकर चिल्लाने लगे, तब उन्होंने सोचा, कोई कितना भी हल्ला मचावे, हमारे चिल्लानेके सामने किसका हल्ला वहाँ सुनाई देगा तथा अरबमें गेहूं आदि पैदा न होनेसे अनुपयोगी पशुओंसे पेटकी पूर्ति करने लगे हों तब दिनका बंधन रखा हो याने शेष दिनोंमें हिंसा न करें।

प्राचीन शास्त्रोंमें जो वैशेषिक दर्शन है, उसमें क्रिया और गुण जुदे-जुदे माने हैं। उनके यहाँ जो क्रिया है वह अपने यहाँ उत्पाद है तथा जो गुण है वह अपने ध्रौव्य हैं। तब उन्हें समझाया है कि क्रिया और गुण जुदे-जुदे नहीं हैं। दूसरी बात यह है रहस्यको कि यहाँ कर्ता कर्मवाही ज्यादा थे? एक द्रव्य दूसरेको परिणाम देता है। यह उनका अहङ्कार था, उन्हें समझानेके लिए उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी व्याख्या बताई है कि वह जुदे नहीं हैं। अगर जुदा माना तो उत्पादको दूसरा द्रव्य मानना पड़ेगा। यहाँ अगृहीत व गृहीत मिथ्यात्व वालों दोनोंको समझाया है।

द्रव्य सभी त्रिलक्षणात्मक हैं—जिसमें शाखा, तना, टहनियाँ, पत्ते, फूल आदिका समुदाय पाया जावे उसे समुदायी कहते हैं। उन सबका समूह-विशेष वह वृक्ष है। इन सबके द्वारा वह आलम्बित है। इस तरह उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य इन त्रिलक्षण युक्त पर्यायोंसे लक्षित वह द्रव्य है। उससे भिन्न नहीं है। पर्यायोंका समुदाय ही जिसमें समाया हुआ है, ऐसा वह द्रव्य है। अब कुछ वर्तमान स्थितिमें भी देखो संसारी आत्मा भी पर्यायोंसे सहित है। पर्यायों को छोड़कर आत्मा नहीं पाया जाता है। इस तरहसे देखनेपर पर्यायोंने द्रव्योंको आलम्बा है तथा द्रव्य पर्यायोंके द्वारा आलम्बित होता है। द्रव्यसे पर्याय और पर्यायसे द्रव्य बना याने सिद्ध हुआ साधन, सिद्धि पर्यायसे द्रव्यकी निष्पत्ति है। यह इस तरह पर्यायोंके समूहका नाम ही द्रव्य है तथा द्रव्यसे ही पर्याय उत्पन्न होती हैं। यह तो प्रसिद्ध ही है कि पर्यायोंके द्वारा द्रव्य आलम्बित है तथा वह द्रव्य उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यके द्वारा आलम्बित है। कोई उत्पादका विचार करे तो उसके द्वारा नवीन निष्पत्तिका ज्ञान होता है तथा व्ययका विचार करनेपर पर्यायका संहार मालूम होता है एवं ध्रौव्यपर विचार करनेसे उत्पाद व्ययको छोड़कर एक

जुदी ही वस्तु स्थिरता है जो उत्पाद एवं व्यय दोनोंका मध्यवर्ती है ।

उत्पाद व्यय ध्रौव्य आशिक धर्म है—जिस तरह बीज अंकुर और वृक्षका परस्पर एकमेक सम्बन्ध है, बीजके व्यय बिना अंकुर उत्पन्न नहीं हो सकता तथा अंकुरके उत्पाद बिना बीज व्यय नहीं और दोनोंके बिना वृक्ष नहीं है तथा वृक्षमें भी बीजका समुदाय है । बीज बोनेसे अंकुर बन गया, यहाँ अंकुरका उत्पाद और बीजका विनाश है, तथा पादपत्व धर्म बीजमें था व वृक्षके अंकुर पत्ते आदिमें भी है । पादप (वृक्ष) तो अंशी है उनका समुदाय जो हुआ वह एक एक करके सब अंश है । यहाँ बीज तो भंग लक्षणमें देखा, अंकुर उत्पाद लक्षणमें देखा गया तथा वृक्षत्व बीज व अंकुर दोनोंमें है । वह तीनों भंग एक साथ प्रतिपन्न होते हैं । अंश जो धर्म है वह उत्पाद व्यय ध्रौव्य—इन सब पर्यायोसे सहित है । वह तीनों जो अंश हैं—नष्ट होना उत्पद्यमान तथा स्थित होना—ये सब रहते हैं । यह उत्पाद व्यय ध्रौव्य इन तीन लक्षणोंसे लक्षित है । वह तीनों एक साथ चलते हैं । द्रव्यसे यह भिन्न चीज नहीं है ।

टूट फूट कल्पनामें होती है—कहा जाता है तुमने हमसे नाता तोड़ लिया, अमुकने हमारी मण्डलीका व्यक्ति तोड़ लिया । हालाँकि यहाँ नाता तथा पार्टीका आदमी तोड़ा नहीं गया है, भिन्नता दर्शनके लिए इस तरह कहा जाता है । इसी तरह यहाँ आचार्य महाराज द्रव्यकी भिन्नताको तोड़ रहे हैं अर्थात् द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे भिन्न नहीं है, सबका सब मिलकर एक ही द्रव्य है, ऐसा सिद्ध कर रहे हैं । उत्पाद व्यय ध्रौव्य अंशोंमें चलते हैं । अगर यह मानो कि ये पर्यायोमें नहीं चलते हैं ये उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य द्रव्यके ही होते हैं तो द्रव्य का उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य हुआ, यह अनिष्ट प्रसङ्ग आ जायगा । ऐसा मान लेनेपर साराका सारा विप्लव मच जायगा । यदि कहो कि द्रव्यका ही उत्पाद होता है तो उत्पादसे पहिले तो द्रव्य है ही नहीं, सो असत्का उत्पाद मानना पड़ेगा या जितने उत्पाद हैं उतने द्रव्य मानने पड़ेंगे अर्थात् उत्पाद मुद्रित द्रव्योंके अनन्तपना आ जायगा । इसका तात्पर्य यह है कि एक द्रव्यमें भूत भविष्य वर्तमान सब पर्यायों अनन्त होती हैं, सो एक द्रव्यकी उन अनन्त पर्यायोंको प्रत्येक पर्यायको एक-एक द्रव्य मानना पड़ेगा । यदि कहो कि द्रव्यका ही व्यय होता है तो सब द्रव्योंका संहार होनेसे शून्यता आ जावेगी अथवा सत्का उच्छेद हो जावेगा । इसका तात्पर्य यह है कि व्यवस्था तो यह है कि एक द्रव्य है उसमें प्रति समयकी पर्यायें विलीन होती रहती हैं । अब पर्यायोंके विनाशकी जगह द्रव्यका विनाश मान लिया, सो तो द्रव्य ही मिट गया । यह तो सबकी चर्चा है, सभी द्रव्य मिट गये । यदि वहो द्रव्यका ही ध्रौव्य या द्रव्यका ध्रौव्य ही रहता है तो क्रमभावी भावों (पर्यायों) का तो अभाव हो गया, इससे द्रव्य का ही अभाव हो जायगा अथवा उनमें अर्थक्रिया ही न रहेगी । भंग उत्पाद व्यय ध्रौव्य पर्यायोंके होते हैं और वह द्रव्यके ही हैं, ऐसा मान लिया । सब द्रव्यों कैसी हुई ? अमूल

हुई । क्षणमें भंग हो गया, विप्लव मच गया तथा विनाशको प्राप्त हो गई । अर्थात् इतने समय तक दृष्टिमें आई, फिर नष्ट हो गई । इस तरह माननेपर यह हो जायगा, जैसे कि कहते कि हृष्ट पुष्ट छोटे बच्चोंको बुरी (तिरछी) दृष्टिसे देखनेपर नजर लग जाती है उसी तरह द्रव्योंके प्रति कटाक्ष किया गया है । यथा मोही जीव परपदार्थोंपर बुरी नजर करते हैं तो वह उन्हींको फंसनेकी कारण बनती है । द्रव्यपर कटाक्ष आया, सबकी सब द्रव्य कटाक्षित हैं तो क्या वह थोड़े ही समयमें ही नष्ट हो जायेंगी या उन्हें नजर ढीट लग जायगी । अगर द्रव्योंकी इस तरहकी नजर लगने लगे तो वह क्षणभरमें कटाक्षित हो जायेंगी या समाप्त हो जायेंगी । द्रव्य ही शून्य हो जायगा । इन द्रव्योंपर किसीका भी कटाक्ष नहीं ठहरता है । वह स्वयं स्वतन्त्र सत हैं ।

चैतन्य विकास व चैतन्य प्रभु है—लोग तो ईश्वरका भी अपमान करनेमें नहीं चूकते । कहते हैं अमुक ईश्वरका अवतार हुए थे । अवतार अर्थात् उतरना, जिसने ईश्वर संज्ञाको मोक्षमें जानेसे प्राप्त कर पाई, उसे ही पुनः लोकमें उतारकर निन्दा की जाय । अगर कोई व्यक्ति १० वीं कक्षामें पहुंच जाये और उसे कहें यह तो प्राइमरीकी चौथी कक्षामें आ गया तो उसका अपमान ही होगा । और यहाँ हम ईश्वरको पुनः संसारमें उतारकर पतन करना चाहते हैं । कैसा हास्यपूर्ण व्यंग है तथा यह क्या ईश्वरकी महिमा गाना है या कि उसको गालियाँ देना है ? अगर कहो द्रव्य नहीं है तो सम्पूर्ण जगत शून्य हो जायगा, कहो द्रव्य शून्य नहीं होगा तो असद्की उत्पत्ति हो जायगी । जिससे अनेक आपत्तियाँ आवेंगी ।

उत्पाद व्यय भूलभूत द्रव्यका नहीं—द्रव्यका उत्पाद होता है, यह मानोगे तब भी कहना ठीक नहीं है क्योंकि उत्पाद तो द्रव्यकी पर्यायका होता है । द्रव्यका काम ही यह है कि प्रति समय अपूर्व अपूर्व पर्यायमें वर्तते रहना । द्रव्य स्वभावसे ही परिणामनशील है । वर्तते रहना द्रव्यका स्वभाव है । वर्तते रहनेमें दृश्य उत्पन्न हुई वह नया मौलिक सत नहीं आ गया है, किन्तु वह सतकी ही दशा हुई है । अगर द्रव्यका ही उत्पाद व्यय ध्रौव्य मानो तो क्या दोष है ? यदि ऐसा मानो तो व्ययसे सत्का उच्छेद ही हो जायगा । अगर द्रव्यका ही उत्पाद होता है तो प्रत्येक समयमें उत्पादसे मुद्रित जो द्रव्य हैं उन द्रव्योंकी अनन्तता हो जायगी अर्थात् अनंतों द्रव्यें बन जायगी, जितनी दशा हैं वे सब द्रव्य कहलावेंगी, जैसा बौद्धोंने एक संस्कारमें अनन्तों आत्मायें मानी हैं । उनके यहाँ खत्म हुई दूसरी उत्पन्न हुई यह क्रम लगा रहना मानते हैं, यही क्षणभंगुरपना है । उनके यहाँ जो आया वह नया द्रव्य है । जैन लोग कहते नयी-नयी दूसरी पर्याय है । द्रव्य तो उत्पादसे मुद्रित (रचित) था ।

व्यय भी पर्याय दृष्टिसे है—द्रव्यका ही व्यय मानोगे तो जगत द्रव्य शून्य हो

जायेगा तथा द्रव्यसे उत्पाद माननेपर अनन्ते द्रव्य हो जायेंगे। सीधे रूपमें वही एक ही अंगुली है तो टेढ़ी रूपमें वह एक थी, यदि ऐसा नहीं मानते तो यह भाव हुआ कि फिर नयी अंगुली ही पैदा होना चाहिए और नई अंगुली भी नहीं है तो असदका उत्पाद हो जायगा। जो वस्तु चाही वही प्रकट हो जाना चाहिए इच्छा करनेपर। तब घड़े ही घड़े उत्पन्न हो सकते हैं, मनुष्य ही मनुष्य, चौकी, पत्थर आदि उत्पन्न हो जायेंगे तो सिर भी फूट जायेंगे। और जो नहीं है उसका उत्पाद हो जायगा। द्रव्य उत्पन्न नहीं होता है द्रव्यकी पर्यायें उत्पन्न होती है, द्रव्य अपने स्वभावसे विपरीत नहीं परिणमता है। कहो द्रव्यमें ही ध्रौव्य है तो उसमें यह आपत्ति रहती है कि द्रव्य ध्रौव्यात्मक होते हुए भी उत्पाद व्ययसे सहित रहती है। वह उत्पाद व्ययसे जुदी नहीं रह सकती है। क्रमसे होने वाली जो पर्यायें हैं उनमें क्षणिकता जैसे है वैसे द्रव्यमें क्षणिकता आ जायगी। द्रव्यका ही उत्पाद व्यय ध्रौव्य है, यह बात नहीं है। वह पर्यायोंमें ही घटित होना है। पर्यायें द्रव्यसे जुदी नहीं हैं।

उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य तो स्पष्ट है—आत्माके बारेमें भी विचारो। आत्मा एक पदार्थ है। वह प्रति समयमें नवीन-नवीन पर्यायें धारण करता रहता है। यह आत्मा पहले था, अब भी है और आगे भी रहेगा। आत्माका स्वभाव ही इस तरहका है। उसमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य चलता रहता है। द्रव्यकी ध्रुवता है, ध्रौव्यमें कुछ भी अदला-बदली नहीं होती है। द्रव्यके बलसे उत्पाद व्यय ध्रौव्य है अर्थात् ध्रौव्यात्मक भी द्रव्यमात्र ध्रुव है। उत्पाद व्यय ध्रौव्य यह प्रत्येक द्रव्यका एक स्वभाव ही है। जो सबने किसी न किसी रूपसे माना है। कुछ लोग कहते ज्ञानसे मोक्ष होता है। अज्ञान नष्ट हुआ और ज्ञान पैदा हुआ, यही तो मतलब रहा। जैन लोग भी यह मानते हैं कि ज्ञानसे मुक्ति है तथा और लोग भी कहते हैं कि ज्ञानसे मुक्ति होती है। अज्ञानावस्थामें जीव है, अज्ञानावस्था नष्ट हुई, ज्ञानावस्था पैदा हुई तथा आत्मा वही रही जो पहिले थी। यथार्थ चिन्तन हुआ, यही मोक्षका उपाय है। कुछ भी कहो, बिना उत्पाद व्ययके कार्य नहीं निकल सकता। भोजन करनेपर क्षुधा दूर हो गई तथा उदरपूर्ति होनेसे असन्तोषका व्यय हो गया तथा सन्तोषका उत्पाद हो गया। अतएव कहना होगा कि सब जगह उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी सिद्धि है।

वस्तुस्वरूपका जयवाद—यहाँ आचार्य कहते हैं कि हे उत्पाद व्यय ध्रौव्यों! तुम पर्यायोंको आलम्बो, और हे पर्यायों! तुम द्रव्यको आलम्बो। तो क्या ऐसा नहीं है, और आचार्य उन्हें हुक्म या आशीर्वाद दे रहे हैं क्या? नहीं, बात तो ऐसी ही है अकाट्य। इस वस्तुसिद्धिकी सफलतासे संतुष्ट होकर आचार्य जयवाद कर रहे हैं। भगवानसे कहते कि जय-वन्तो रहो। तो क्या वह तुम्हारे कहनेसे जयवन्ते हो रहे हैं? इसके पहले क्या वह जयवन्ते नहीं हैं? यहाँ कह रहे हैं कि हे उत्पाद व्यय ध्रौव्य! तुम पर्यायोंका आलम्बन करो। हे

उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्त अंशो ! तुम द्रव्यका आलम्बन करो । उत्पाद व्यय ध्रौव्यके द्वारा पर्यायें आलम्बित की जाती हैं । जो सही बात है उसे सिद्ध करनेके लिए संतोष मना रहे हैं । इस तरहसे कि पर्यायें द्रव्यका, द्रव्य पर्यायोंका आलम्बन करो । जिस तरह बेटासे दादी खुश हो जावे तो कहती है कि 'बेटा चिरजीव रहो, जुग-जुग जियो, नातन-पूतन फलो, दूधन कुल्ला करो, तुम्हारी खूब आयुबेल बढ़े ।' हालाँकि वह पूतरा बेटा दृष्टपुष्ट समृद्धिशाली सब कुछ है, फिर तो इस दादीका उल्लास है । इसलिए वह सदैव अच्छा ही अच्छा देखना चाहती है, कष्टों को वह थोड़े भी नहीं देखना चाहती, अतएव मनकी आन्तरिक भावनार्यें प्रकट की जाती हैं । नहीं तो बेटेपर कष्ट भी आ जावे तो यह वृद्धा दूर करनेके लिए क्या कर सकती है ? केवल प्रेम बढ़ा सकती है या दवायें दे सकती है, किन्तु होनहारका निर्माण इसके हाथमें नहीं है । इसी तरह द्रव्योंके लिए उनके सही लक्षणमें लोगोंके चित्तमें विकार न आवे, इसकी कामनायें अमृतचन्दजी सूरिने की हैं । एक परिणतिकी सिद्धि की गई है । उत्पाद व्यय ध्रौव्यको यथार्थ नहीं जान रहे थे, अब जान गये तो हमें तो नवीन ही खोज है । उत्पाद व्यय ध्रौव्य पर्यायोंमें हैं व पर्यायें द्रव्यमें हैं यह स्पष्ट हुआ ।

आत्माको जानकर भी जाननेसे परे ज्ञानशक्तिमय है—इससे प्रतीत होता है कि आत्मा एक अजर अमर स्वतन्त्र द्रव्य है तथा परिणमनशील भी है । वह अनादिकालसे कर्माधीन हो घूम रही है । अतएव आत्मद्रव्यको सामने मानकर भावोंकी निर्मलतामें वृद्धि करनेकी कोशिश सदैव करनी चाहिए । मलिन भावोंसे बचते रहनेमें लाभ है । यह सब द्रव्योंसे सम्बंध रखता हुआ भी आत्मा निर्मल ज्ञेयाकार रहता है । अब उत्पादिकका क्षण भेद खण्डित करके द्रव्यका स्वरूप प्रकट करते हैं, द्योतन करते हैं । द्रव्यपना तो है ही, उसे ज्ञानज्योतिमें प्रकाशित करते हैं ।

समवेदं खलु दव्वं संभवठिदिणाससण्णिदद्वेहि ।

एकम्हि चेव समये तम्हा दव्वं खु तत्तिदयं ॥१०२॥

द्रव्य संभव, स्थिति, विनाशसे संज्ञित अर्थोंसे समवेत है । इसलिये एक ही समयमें द्रव्य तन्त्रितयात्मक है अर्थात् उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यमय है । द्रव्य एक ही समयमें संभव (उत्पाद) स्थिति और विनाशसे सहित है । वह तीनोंसे युक्त एकमेक होकर ही द्रव्य रहता है । यह अक्रम हो गया है । मतलब उत्पाद व्यय ध्रौव्य सहित जो अर्थ सत्ता है उनसे समवेत है । भले प्रकारसे सर्वांगमें प्राप्त है । तादात्म्य सम्बंध है, समवेतमें सम व अव उपसर्ग है, इतः क्रिया है और पूरी क्रिया द्योतक संज्ञा है अर्थात् जो भले प्रकारसे सर्वाङ्गमें व्याप्त होते हैं उसे समवेत कहते हैं । तो द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्य कर सहित है या समवेत है । इसलिए वह तीनों मिलकर द्रव्य हैं । द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्य (वभाव वाला है । द्रव्यमें जो पदार्थ हैं वह भी

उत्पाद व्यय ध्रौव्य कर सहित हैं। पदार्थमें स्वभाव पड़ा है कि वह प्रतिसमय अपूर्व अपूर्व पर्यायोंमें उत्पन्न होता रहता है, विलीन होता है तथा स्थित रहता है बनता। बिगड़ता और बना रहता है। इसको बहुत-बहुत क्यों समझाया गया, अवश्य ही पदार्थ स्वभावसे उत्पन्न होते, विलीन होते तथा बने रहते हैं। यह सब बातें द्रव्यको विरासतमें मिली हैं। अगर यह न मानें तो अनेक विकल्प उठ खड़े होंगे।

द्रव्यको पैदा करनेकी शक्ति किसीमें नहीं है—द्रव्य अपूर्व-अपूर्व पर्यायोंमें चलता है। यह जान गये कि द्रव्यको अन्य पैदा नहीं करता है। इससे कर्तृत्वपनेकी बातका खंडन हो गया है। द्रव्य स्वभावसे पैदा होता है। यह कहनेसे पर्याय या क्रिया द्रव्यसे भिन्न नहीं है। यह न माननेपर क्रियायें द्रव्यादि यह भिन्न हैं, इस तरह भेद मानना पड़ेगा। इस तरह एक वस्तुकी बात अन्यसे न छेड़ना चाहिए। नहीं तो आत्माकी क्रियामें भी भिन्नता माननी पड़ेगी। तब कल्याण मार्गमें बाधा उपस्थित होगी। भिन्न एक नहीं बनेगा तब फिर स्वानुभव नाम किसका रहेगा? स्व जुदा और अनुभव जुदा कहने लगे तो निर्विकल्पता कैसे आवेगी? फिर इस तरह पद-पदपर आपत्तियाँ आ जावेंगी। निर्विकल्पता तब आती है जब द्रव्यका अभेद अनुभव होता है।

मोह दूर कैसे होता है—द्रव्य स्वभावसे उत्पन्न होता है, यह प्रतीति होनेपर मोही जीवोंके कर्तृत्वका भाव खत्म हो जाता है। मैंने अमुक मकान दुकान बनाई, पुत्र भाई आदि का पालन-पोषण किया आदि विकल्प भी छूट जाते हैं। क्योंकि पर्यायसे द्रव्य द्वारा ही बनने का विश्वास आने लगता है। इस विश्वाससे मोह दूर होता है।

ध्यान उपयोगके लिए तत्त्व ही मुख्य है। द्रव्यमें पर्यायें स्वभावसे विलीन होती हैं। यदि ऐसा न माना जावे तो अर्थ हुआ कि द्रव्यकी पर्यायें किसी अन्यके द्वारा व्ययको प्राप्त होती हैं। द्रव्यका व्यय तब तो पराधीन ठहर जायगा। पराधीन रहनेसे सूचना देनी पड़ेगी। किसीको स्मरण न रहा तब उत्तरपर्याय ही क्या बनेगी? द्रव्यकी पर्यायें स्वभावसे द्रव्यमें विलीन हो जाती हैं। यह अहङ्कार जो लगा है वह मिटना कठिन है कि द्रव्यकी पर्यायें मेरे द्वारा नष्ट होती हैं, भिटा सकता हूँ, यह बुद्धि होनेपर कर्तापना अपनेको सिद्ध करना चाहता है, जो कि कहना कोई अर्थ नहीं रखता, इसे पहले खण्डित कर चुके हैं।

द्रव्यस्वभावके ज्ञानकी महिमा—द्रव्यमें पर्यायें स्वभावसे विलीन होती हैं। द्रव्य स्वभावसे स्थिर रहता है। यह दृष्टि आनेपर सब शंकायें चकनाचूर हो जाती हैं। इस तरहकी जो भी विशेष बातें हैं उन्हें विज्ञान युक्तिसे देख लेवें। जब यह तत्त्व चित्तमें समा जाता है तब संतोष होता है, जो घबड़ाहटका नाम नहीं लेता। सभी पदार्थ अपनी सहायतापर ही स्थित हैं। लेकिन जो अपना सहायक दूसरेको मानते हैं तथा दूसरेकी सहायता करने वाले

अपनेको मानते हैं उसे ही अनेक तरहके विकल्पजाल आते हैं। विकल्पजालोंसे वह बच पाता है जिसने मान लिया है—अनन्तानन्त पुद्गल, अनन्त जीवद्रव्य तथा एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य और असंख्यात कालद्रव्य इन सबसे रहित मैं एक निराला हूं। वह अपने बलसे रहेगा एवं अशान्तिका पात्र नहीं बनेगा। जिसने यह समझा है कि मेरे सहाय यह लोग हैं या मैं इनकी सहायता करता हूं उसे कितने विकल्पजाल नहीं करना पड़ते? द्रव्य स्वभावसे विलीन होता है, स्वभावसे अवस्थित रहता है तथा स्वभावसे ही उत्पन्न होता है। चूंकि वह द्रव्य पर्यायसे भिन्न नहीं है। यहां द्रव्यका वर्णन किया गया है। मैं भी एक द्रव्य हूं, तुम भी एक द्रव्य हो, सभी अपनी स्वतंत्र सत्ता रखते हैं। द्रव्यका स्वभाव ही ऐसा है कि प्रतिसमय अपूर्व अपूर्व पर्यायोंमें आता है तथा पूर्व पूर्व पर्यायों उसमें विलीन होती हैं और द्रव्यत्व बना रहता है, इसलिए वह विलक्षणसे युक्त द्रव्य ही है।

प्रकृतिक शङ्का—यहाँ कोई शङ्का करते हैं—बहुत सुना, किन्तु व्यवस्थित बुद्धि नहीं हो सकी। जो वस्तुका जन्मक्षण है या पदार्थकी उत्पत्तिका समय है वह उत्पन्न करनेमें ही लगा है। व्ययके कार्यमें उसकी शक्ति नहीं लग रही है। पर्याय उत्पन्न हुई यह उत्पत्तिका ही समय है, वहाँ व्ययका कार्य नहीं होना चाहिए। लम्बी शङ्का होते हुए भी शंकामें व्यवस्थित बुद्धि रखना है। जो पर्यायके उत्पादका समय है वह उसीमें व्याप्त है। उत्पादके समय उत्पाद ही है, यह शङ्काकर कह रहा है कि एक समयमें अपोजिट (उल्टे) दोनों काम होते रहेंगे। पदार्थके ध्रुव रहनेका जो समय है उसके अन्तरालमें उत्पाद व्यय दुर्ललिता होनेसे हटानेपर नहीं हटाये जा सके। जो हठात् बनकर रहे उसे दुर्ललित कहते हैं। जो स्थितिका समय है वह जन्मके व नाशका समय नहीं होना चाहिए। जब उत्पाद हुआ तब उत्पाद कहना चाहिए एवं व्ययके समय व्यय कहना चाहिए और अब ध्रौव्य हुआ, इस तरह होना चाहिए। इस तरह दुनियाके कार्य चलते हुए भी नाश, उत्पाद तथा स्थिति यह समझमें नहीं आता। उत्पाद रहनेपर उत्पाद ही रहने दिया जाय, क्योंकि उत्पत्तिके समयमें मरणकी चर्चा शोभा नहीं देती। जो जन्मका समय है वह उसीमें ही व्याप्त है, जो व्ययका समय है वह उसीमें व्याप्त है तथा जो स्थितिका समय है वह उसीमें व्याप्त है। ऐसी शंकाकार शंका करता है।

उक्त शंकाका उत्तर—इसे बच्चे भी जानते हैं कि उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनों साथ रहते हैं। यह तो ठीक है पर उसे स्पष्ट समझे तब है ना। व्ययकी बात होते समय उत्पाद भी उसी समय नियमसे हो जाता है। नाशका क्षण तभी आवेगा जब उत्पत्तिका समय होगा। प्रश्न—वस्तु उत्पन्न तो हुई नहीं और नाश कहते हो कि यह नहीं हो सकता। जो नाशका क्षण है वह मिलेगा कैसे? जब उत्पन्न हो चुकेगा तब नाशकी बात आवेगी। उत्पन्न हो गया और उसी समय नष्ट भी हो गया, यह कैसे बनेगा? नाशका लक्षण उत्पन्न तथा स्थिति

का लक्षण एक नहीं है, फिर भी उत्पाद व्यय एक समय मान तो लो तुमने द्रव्यके प्राण ही घोंट डाले कि उसी एक ही समयमें उत्पन्न और नाश हो रहा है। जो नाश होता वह जन्मता नहीं, जो जन्मता वह नाश नहीं। इस तरह हम उत्पादिकमें विचार करते हैं तो यहां विशेष तौरसे विचार करनेपर बहुत विचार करनेपर भी उत्पादादिक क्षणभेद हमारे हृदयमें उतरता है। वस्तुका उत्पाद उसी समय होगा जब उत्पन्नकी शक्ति होगी। नाशका समय होता है तभी व्यय होता है तथा ठहरनेके समयपर ही ठहरना चाहिए। इस प्रकार तीनों कार्य एक साथ नहीं हो सकते। उत्पाद स्थिति और व्यय इस तरहका क्रम शंकाकारकी समझमें आया। आचार्य अमृतचन्द जी सूरि समाधान करते हैं कि भाई “द्रव्य ही अपने द्वारा उत्पन्न होता है, अपने द्वारा नष्ट होता है व अपने ही द्वारा स्थित रहता है” यदि ऐसा माना जाता तो यह क्षणभेद अवश्य हृदयभूमिमें उतरता, किन्तु ऐसा तो माना ही नहीं गया। पर्यायोंका ही तो उत्पाद है, पर्यायोंका ही व्यय है, पर्यायोंका ही एक प्रवाहरूप ध्रौव्य है। इसमें क्षणभेदकी बात कहाँसे उठावोगे ? जैसे कि घड़ा बनने व मृत्पिण्ड मिटने व मृत्तिका बने रहनेमें यह बात देखें—कुम्हार, दण्ड, चक्र आदिसे आरोप्यमाण संस्कारकी सन्निधि होनेपर वर्धमान (घड़ा) उत्पन्न हुआ तो यहां घड़ेका जो जन्मक्षण है वही तो मृत्पिण्डका नाशक्षण है और खूब परख लो, वही समय मृत्तिकाकी स्थितिका भी है। इसी प्रकार अन्तरङ्ग बहिरङ्ग साधनोंसे आरोप्यमाण संस्कारकी सन्निधिमें द्रव्यकी उत्तरपर्यायिका उत्पाद हुआ। जो उत्तरपर्यायिके उत्पाद का समय है वही तो अनन्तर पूर्वपर्यायिके नाशका क्षण है और खूब परख लो, वही समय द्रव्यत्वकी स्थितिका है। जैसे देखा ना, घड़ा है, उसका बनना, फूटना तथा मिट्टी रहना, यह अवस्थायें तीनों एक साथ हुईं। इसी तरह प्रत्येक पदार्थमें पर्यायें उत्पन्न अवस्थित तथा नाश को प्राप्त एक साथ होती हैं, यह प्रतीति हो जानेपर आत्मामें प्रकाश हो जायेगा एवं सारे भ्रम ध्वस्त हो जायेंगे। जब प्रत्येक वस्तु स्वभावमें उत्पन्न, विलीन तथा अवस्थित रहती है, फिर आगे कहनेको मौका ही नहीं रह जाता। अगर कोई अंधे मनुष्यसे पूछे कि तुम्हें क्या चाहिए ? तो वह दो आंखोंको छोड़कर और कुछ नहीं माँगेगा। इसी तरह हम दुखियोंको वह ज्योति चाहिए जिससे सारे दुःख ध्वस्त हो जावें। इतना लम्बा-चौड़ा प्रकरण होनेपर तत्त्व यही निकलता है कि द्रव्य वही उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे युक्त है। दिगम्बर जैनाचार्योंकी प्रत्येक बात सत्य होती है। अगर आप उत्पाद व्यय ध्रौव्यको समझनेके लिए साक्षात् आंखोंसे देखना चाहो तो गेहूं, चना वगैरा पेटिमें बन्द करके दो-तीन वर्षको रख छोड़ो, उनमें उतने समयमें कुछ न कुछ परिवर्तन होकर मिल जायगा। कोई कुछ करने तो नहीं गया और परिवर्तन हो गया अर्थात् हुन लग जानेसे कुछ हिस्सा आटे रूप परिणम जायगा तथा गेहूं भी रहा आयेगा और कुछ गेहूंकी पर्याय नष्ट व्यय भी हो जायगी। अतएव कहना होगा कि प्रत्येक द्रव्यका

स्वभावसे विकसित होना, विलीन होना और अवस्थित रहना ही तीनों कार्य एक साथ हैं।

प्रत्येक वस्तु स्वयंमें उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त है, अतः अत्यन्त स्वतंत्र है—मैं किसीका कर्ता नहीं, मेरा कोई उपकार करने वाला नहीं है। यह व्यर्थका अहंकार कर रहा था, अमुक को मैंने बनाया, धन कमाया, उत्पन्न किया आदि अथवा मैं उक्त कोई कार्य करता हूं, कर सकूंगा, इन विकल्पोसे कोई लाभ नहीं होगा। इन विषयभोगोंने जन्म-जन्ममें अनेक दुःख दिये, फिर भी उन्हींमें लिप्त हैं। भला उनका कौनसा सुख मिलनेका है? उनका जितना सेवन किया जायगा उतना ही ताप बढ़ेगा। इन विकल्पोसे पिण्ड छुड़ाकर परमपिताके ध्यानमें अपने सर्वस्व को लगा देवें तब सब कुछ मिलनेका है। द्रोणाचार्यने वृक्षपर कागजकी चिड़िया रखकर सर्व शिष्योंसे पूछा कि तुम्हें क्या दिखता है? कोई वृक्ष कहे, कोई पत्ते, डालियां तथा कोई चिड़िया बतावे। लेकिन जब अर्जुनसे पूछा गया तो उसने कहा कि हमें आँखके सिवाय (चिड़ियाकी) कुछ नहीं दिखता। जब इस तरहकी ध्यानकी एकाग्रता आ जावे कि आत्माके अलावा कुछ नहीं दिखता। उस समय कोई निन्दा करता रहे या तुम्हारी चुगली करे, कष्ट देनेका प्रयत्न करे, द्रव्य हरणको विचारे, शरीर विदारणकी सोचे तब भी तेरे आत्मप्रभुका कुछ भी नहीं जानेका है। पूजन करते समझ पड़ा जाता है—‘अर्हन् पुराण पुरुषोत्तम पावनानि, वस्तूनि नूनमखिलान्ययमेक एव। अस्मिन् ज्वलद् विमल केवल बोधवह्नौ, पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥’ हे अरहन्त भगवान्! पुराण पुरुषोत्तम! मैं जो अष्ट द्रव्य चढ़ा रहा हूं, यह मुझे एक ही मालूम पड़ रहे, उसे मैं जुहोमि, चढ़ाता हूं। यही नहीं मैं सम्पूर्ण वस्तुओंका होम करता हूं अर्थात् मैं उन सबसे मोह छोड़ विरक्त होता हूं। इसपर भी सन्तोष नहीं, तब कहता कि मेरे पुण्यभाव जो संसार वैभवका कारण है, उसे भी मैं छोड़ता हूं। केवल अपना स्वात्मानुभव स्वरूप ही ग्रहण करता हूं। जिन पुण्यभावके द्वारा कर्म बँधते थे उसे भी होमता हूं। यही पूजा सच्ची पूजा है, न कि बदलेमें कुछ माँगना।

द्रव्यमें उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य एक साथ हैं—द्रव्यके उत्पाद व व्ययके समय जुड़े-जुड़े नहीं हैं। व्ययका क्षण जुदा है तथा उत्पादका क्षण जुदा है, अगर यह बात सिद्ध हो जाय तो द्रव्यको अपने ही द्वारा उत्पन्न होना चाहिए व अपने ही द्वारा नष्ट होना चाहिए तथा स्थिर भी अपने बलपर कुछ अन्य चीज होना चाहिए तो तुम्हारी शंका सिद्ध हो जायगी। तब क्षण-भेदकी जरूरत पड़ेगी। ऐसा होनेपर उत्पाद व्यय ध्रौव्य तीनोंका क्षण और-और मानना पड़ेगा। परन्तु इसको तो माना नहीं है कि द्रव्यको ही उत्पाद व्यय ध्रौव्य माना है। वह पर्यायोंमें रहकर उत्पाद व्यय ध्रौव्यको प्राप्त होता है। वह तीनों असमय है। अगर यह नष्ट नहीं माना जायगा तो ध्रौव्य किस समयमें कहेंगे, उत्पाद किस समयको कहेंगे व व्यय भी किस समयको कहेंगे? मृत्पिण्डसे घड़ा बनाया गया। वहाँ घड़ेकी उत्पत्ति तथा मृत्पिण्डका

विनाश (व्यय) हो गया और मिट्टीका सद्भाव दोनों अवस्थाओंमें रहा कहलाया। शङ्काकारकी शङ्का यह थी, मृत्पिण्डका समय जुदा होता है, घड़ा बननेका समय जुदा होता है और स्थित रहनेका समय अलग होता है। समय जुदा-जुदा तो तब हो सकता है जब हम मिट्टीका ही उत्पाद मानते, मिट्टीका ही व्यय मानते तथा मिट्टीको ही ध्रौव्य मानते। तब तुम्हारा कहना ठीक था। जिस समय मृत्पिण्डका व्यय हुआ, उस समय मिट्टी नष्ट नहीं हुई, मिट्टी वही है तथा मृत्पिण्डसे घड़ेकी उत्पत्ति हुई, तो क्षणभेद कैसे हो सकता है? पूर्व पर्यायका व्यय किया तो उत्तर पर्यायका उत्पाद हो गया या उत्तरपर्यायका उत्पाद तथा पूर्वपर्यायका व्यय यह क्रम चलते हुए भी दोनों कार्य साथमें होते हैं। जैसे मृत्पिण्डका अभाव घड़ेके सद्भाव रूपमें है। किसीके घरमें पड़ौसीका लड़का गिलास फोड़ जावे तो काँचके टुकड़े लेकर लड़केके माँ-बापको बताने जाता है और कहता है कि देखो तुम्हारे लड़केने हमारा काँचका गिलास फोड़ दिया। हालाँकि वहाँ गिलास नहीं है, लेकिन पूर्वमें गिलास था, इसलिए वह गिलासका ही भाग है। गिलासका अभाव वहाँ उन टुकड़ोंके सद्भावरूपमें है, इससे सिद्ध हुआ अभाव सद्भावरूप होता है। पर्यायकी स्थिति भी एक समय है। वही व्यय तथा उत्पत्तिका समय है। उसीको व्यय कहते हैं तथा वही उत्पत्तिको प्राप्त होता है। इस तरह क्षणभेद नहीं है।

पर्यायमात्र ही द्रव्य मत समझो—पर्याय ही को द्रव्य नहीं मानना चाहिए। जिसने पर्यायको द्रव्य माना, उसे गालियाँ मिल रही हैं। पर्यायमें संलग्न व्यक्तिका कौन आदर करता है? स्रोतभूत द्रव्य अनादिकालसे है। ऐसा कौनसा द्रव्य है जो नया बन रहा है तथा पुराना मिट रहा है। कोई भी द्रव्य मूलसे नष्ट नहीं होता तथा पुरानेके आधारको छोड़कर नया द्रव्य उत्पन्न नहीं होता। देखो—जैसे घड़ा, मृत्पिण्ड व मृत्तिकात्वमें प्रत्येकमें रहने वाले उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य त्रिस्वभावस्पर्शिनी (तीनों स्वभावका स्पर्श करने वाली) मृत्तिकामें सामस्त्यरूपसे एक समयमें ही देखे जाते हैं। इसी प्रकार उत्तरपर्याय, पूर्वपर्याय व द्रव्यत्वमें प्रत्येकमें रहने वाले उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य त्रिस्वभावस्पर्शी द्रव्यमें सामस्त्यरूपसे एक समयमें ही देखे जाते हैं। इससे यही सिद्ध हुआ ना कि उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य सब एक ही समयमें अर्थात् साथ-साथ ही हैं। अब और देखो—जैसे घड़ा, मृत्पिण्ड व मृत्तिकाकालमें रहने वाले उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य मिट्टी ही हैं, कोई अन्य पदार्थ तो नहीं। इसी प्रकार उत्तरपर्याय, पूर्वपर्याय व द्रव्यत्वमें रहने वाले उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य द्रव्य ही तो हैं, अर्थान्तर नहीं हैं। भैया! द्रव्यका स्वरूप अच्छी तरह समझमें आता है तो द्रव्यकी स्वतंत्रता समझमें आ जाती है, और जब द्रव्यकी स्वतंत्रता समझमें आती है तब मोह ठहर नहीं सकता। जिनके वस्तुस्वरूपका अवगत नहीं है वे ही बहिरात्मा परपदार्थोंकी ओर आकृष्ट होकर व्यर्थका नाच नचाते हैं।

मदारी लोगोंको देखा होगा—वह डमरू डम-डम-डम-डम करके बजाते चलते हैं और

भीड़ इकट्ठी होनेपर अपना खेल शुरू करते हैं। कई खेल दिखाते-दिखाते किसी लड़केको जमूड़ा बनाकर कहता है कि बोलो जमूड़े क्या खाओगे? जमूड़ेदाऊ कहते हैं कि मथुराके पेड़े या आगराका पेठा खायेंगे। तब फिर वह हाथकी सफाईसे पेड़े और पेठा तैयार दिखा देता है। लेकिन वह पेड़ा और पेठा केवल मुंहमें पानी भरने मात्रको होता है। कुछ दिखाना मात्र है। खानेके लिए कुछ नहीं मिलता जमूड़ेको। जमूड़े जैसेके तैसे रह जाते हैं। अगर उनमें जीव-जन्तु, रुपया, पैसे, पेड़ा, मिठाई या फल आदि बनानेकी ताकत होती तो वह स्वयं क्यों इस तरहके पैसे-पैसेको अपना खेल दिखाते फिरते? यही हाल हम संसारी जीवोंका हो रहा है। यह मनमोहक पदार्थ जमूड़े बनाकर आते हैं और हमें खूब नाच नचाते हैं। हम उनकी सेवा करते हैं दिन-रात, और वह अपना लुभावना रूप दिखाकर हमसे विदा ले जाते हैं। हमें कुछ नहीं मिलता। अगर उन पदार्थोंनि विदा लेनेमें देर की तो पहले वह हमारी इस पर्यायसे विदा कर देते हैं। यह चक्र सदैव चलता ही रहता है। इसमें कोई क्या सुधार करेगा? सुधार करना है तो अपने आत्मद्रव्यको सबसे भिन्न निराला अनुभव किया जाय। यह सब पर्यायोंके ही खेल हैं।

नया द्रव्य न उत्पन्न हुआ और न होना — मनुष्यपर्यायका व्यय हुआ तथा देवपर्याय की उत्पत्ति हुई, लेकिन आत्मद्रव्य जो पहले था वही स्थित है, उसमें तबदीली नहीं हुई। अतएव द्रव्य अपने आ। किसी पर्यायरूपमें उत्पन्न होता है तथा खूब ही स्थित रहता है एवं स्वतः ही पूर्वपर्यायके अभावरूपमें नष्ट होता रहता है। यह बात माननेसे बहुतसे सन्देह समाप्त हो जाते हैं। जैसे कुलाल, दंड, चक्र, चीवर बाह्य पदार्थ हैं, इनसे आरोपमान संस्कारोंकी सन्निधि होनेसे वर्धमान (बढ़ता हुआ घड़ा) का जो जन्मक्षण है वही मृत्पिण्डके नाशका क्षण है तथा वर्धमानके उत्पाद व मृत्पिण्डके नाशमें रहने वाला व मूल तत्त्वकी स्थितिका क्षण एक है। मृत्पिण्डको कुम्हारके द्वारा धीरे-धीरे बढ़ाया जाता है। सो वर्धमान है तथा छोटे-छोटे डबलोंको कुम्हार ठोक-ठोककर घड़ा तैयार करता है, सो घड़ा है। इसके पूर्व घड़ा नहीं है। ठुक-पिटकर घड़ा तैयार हो जाता है। फूटा होनेपर कुम्हार पानी तथा मिट्टीके घोलसे जोड़ता जाता है। राख उसके लिए ठोकते समय बनने वाले घड़ेपर जरूरी होती है एवं घड़ा बननेपर फूटे घड़ेके मुंहपर (घघरा) उसे सूखनेको जमा देता है। तत्पश्चात् पककर पक्का घड़ा बन जाता है। पानी भरे जानेपर उसीको कलश भी कहते हैं। इन सब पर्यायोंमें क्षणमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य है। माघनन्दि मुनि कुम्हारके यहाँ रहने लगे थे। उन्होंने भी वहाँ थप-थप करना, मिट्टी कमाना, आवा लगाना कार्य देखा होगा व किया होगा। उन्होंने उसी वातावरणमें एक महन्वपूर्ण स्तुति बनाई थी। वहाँ मुनिके जीवमें प्रतिक्षण उत्पाद व्यय ध्रौव्य हैं। वर्धमानके बाद सामान्यतया घड़ा कहते हैं। वर्धमानका जो जन्मक्षण है उससे आरोपित होनेपर पदार्थ

सामान्य नियत है। कोई पदार्थ रुककर नहीं बनता। जैसी योग्यता होती है, उसी तरहका निमित्तनैमित्तिक सम्बंध मिल जानेपर वैसी पर्याय बनती है। अक्षुण्ण द्रव्यमें यथायोग्य सन्निधान व सम्बंध पाकर पर्याय पैदा होती है। किसीने उसकी रचना नहीं की है। जिन किस्मों की योग्यता होती है उसी तरहका बाह्य सन्निधान मिट जाता है तो वह निमित्त होता है। द्रव्य अपने अक्षुण्णपनेसे जुदा नहीं होता। जो वर्धमानकी उत्पत्ति है वही व्ययका क्षण है तथा स्थितिका क्षण भी वही है।

नय पक्षके आग्रह व्याधिका नय पक्ष इलाज—किसी व्यक्तिको अगर शरीरमें गर्मीका रोग हो जाय तो उसको शीतल गुण वाली दवा दी जाती है, उसमें भी कुछ गर्मपनकी दवा साथमें रहती है। नहीं तो शरीरमें जाकर वह नुकसान कर जावेगी। उसी तरह ठंडका रोग हो जाने वाले व्यक्तिको गर्म दवा दी जाती है। उसमें शीतल दवाके अंशका ध्यान रखना जरूरी है, हीनाधिकता होनी चाहिए, नहीं तो ठंड गर्मका रोग सन्निपातका रोग हो जायेगा। इसी तरह जो अपनेमें यह धारणा बनाये बैठा है कि मैं किसीको कर देता हूं, मेरे द्वारा ही यह कार्य चलता है, उनके लिए निश्चयनयका इलाज है, वह कार्यकारी है। कोई निश्चयपक्ष के रोगी हैं तो ये कहते हैं कि आत्मामें सब पर्याय हैं, स्वभावसे प्रकट होती हैं, उनकी दृष्टिमें उनका इलाज ही नहीं क्या? जब स्वभावसे होती है तो अब क्या करें? उनके लिये व्यवहारका इलाज है। उसमें भी स्याद्वादका जो ध्यान रखा गया है, उसका अनुसरण करना चाहिए। उसका पक्ष भी साथमें रहनेसे कार्य चलेगा। व्यवहार बिना भी तो कोई कार्य नहीं हो सकता। निश्चयनयको लेकर कोई मुनिको भी आहार न दे तो तीर्थके प्राण ही संकटमें डाल देगा। निश्चयनय बिना तो समाधिकी पात्रता नहीं आवेगी। अगर एककी बुराई है तो सबपर उसे घटित नहीं करना चाहिए। कोई एकान्तके भी रोगी हैं तो उनकी भी चिकित्सा करनी चाहिए अनेकान्तसे। इस तरहका कोई ग्रन्थ नहीं मिलेगा, जिसमें निश्चयके साथ व्यवहारका वर्णन नहीं किया गया हो। समयसारकी एक गाथा व प्रकरण भी इस तरहका नहीं है जिसमें निश्चयके साथ व्यवहारका वर्णन न हो तथा व्यवहार एकान्त भी नहीं मिलेगा। तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) में सामान्यज्ञान होते हुए ही निश्चय व व्यवहारका वर्णन साथ-साथ चलता है। 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।' इसमें सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र व्यवहार है तथा मोक्षमार्ग निश्चय है। 'तत्त्वार्थ श्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्' तत्त्वोंका अर्थ याने वस्तुस्वरूप सहित श्रद्धान करना व्यवहार है और सम्यग्दर्शन निश्चय है। 'तन्निर्गणदधिगमाङ्ग'। इसमें निर्गण सम्यग्दर्शन निश्चयनयका प्रतीक है और अधिगमज सम्यग्दर्शन व्यवहारनयका प्रतीक है। 'जीवा जीवास्त्रय बन्ध संवरनिर्जरा मोक्षास्तत्त्व' इस सूत्रमें जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष व्यवहारनयसे हैं व तत्त्व निश्चयनयसे है। इसी तरह प्रत्येक सूत्रमें

अर्थ निकल सकता है। ये आचार्य भी स्याद्वादके कितने मंजे हुए पुरुष थे कि बात बातमें बात यथार्थ चल रही है।

हितदृष्टि निश्चयनयमें ध्वनित होती है—केवल निश्चयनय है तथा व्यवहारनय नहीं है ऐसा तो नहीं है। प्रमाण न हो तो वह बात कैसे मानी जाय या जानी जा सकती है? निश्चयनय वीतरागताका निमित्त है। जिस दिन तत्त्वका यथार्थ निश्चय होगा उस दिन व्यवहारसे सभी मुख मोड़ लेंगे। जो वर्धमान (घड़ा बनने) का समय है वही नाशका समय है। उत्पत्तिमें पूर्वपर्यायिका नाश तथा उत्तरपर्यायिकी उत्पत्ति है। व्ययमें पूर्वपर्यायिका व्यय उत्तरपर्यायिका उत्पाद है। स्थिति सदा है। इस तरह सत्की पहिचान होती है। मैं भी सत् हूँ। नवीन-नवीन पर्यायों प्रगट होती हैं तथा पुरानी पर्यायिका विनाश होता है। कोई नया द्रव्य उत्पन्न नहीं होता तथा पुराना द्रव्य विलीन नहीं होता है। उन दोनों समयोंमें रहने वाला स्थितिका काल है। मैं एक होकर नवीन पर्यायमें जाता हूँ तथा पुरानी पर्यायिकी छोड़ता हूँ। एक ही समयमें उत्तरपर्यायिका उत्पाद व पूर्वपर्यायिका नाश होगा। देख लो असलियत, जो सहज निरपेक्ष ध्रुव तत्त्व है उसे तो देखता जानता कौन है और जो मायाजाल है उसपर ही प्राणी हामी हो रहे हैं। वस्तुकी इस त्रितयात्मकताको ही कुछ दार्शनिकोंको प्रामाणिक अखण्ड की दृष्टि न रखकर अद्वैत व माया—इन दो प्रकारोंमें रखना पड़ा है। इसपर प्रश्न होना प्राकृतिक है कि मायाका आधार क्या है? तब इसके उत्तर अनेक कल्पे जान पड़े।

देखो मोहकी लीला—जो क्षणभरको ठहरते व नष्ट हो जाते हैं उस क्षणभर ठहरी हुई चीजमें मोह हो रहा है। मेरी बात नहीं मानी तो गुस्सा आ गया। मेरी बात नहीं रही। बात तेरी थी भी नहीं। जब बोला तब भी तेरी बात नहीं थी। बिस समय बता रहे उस समय भी नहीं है। थोड़ासा धन, बल, विद्या, नेतागिरी आ गई तो अब तो अहंकार में बात नहीं करते। चक्रवर्तीके धनकी कल्पना भी तो करो जिसके यहाँ ६६ हजार रानियाँ, ८४ लाख हाथी, १८ करोड़ घोड़े तथा ३२ हजार मुकुटबन्द राजा सेवा करते थे। इस तरह का वैभव होनेपर भी ज्ञानी होनेसे उनमें सुख नहीं मानते, वैराग्यमें सुख मानने हैं और देखो अज्ञानी असन्तुष्ट हैं परपदार्थोंके न मिलनेसे। अज्ञानी इस तृष्णामें लगा रहता है, कुछ धन पुत्रादिसे संपन्न और हो जाऊँ। वैभव तो सुखका हेतु है नहीं। विकल्पोसे धनी गरीब मान रहा है, विकल्पोपर ही गर्व करता है तथा दुःखी भी होता है। जब अपने स्वरूपमें आया तो सब गर्व चला जाता है। अपना कुछ है नहीं और अब गया भी कुछ है नहीं, फिर गर्व व दुःख किसका किया जावे? ज्ञातादृष्टा बनना ही कल्याणप्रद है।

शान्ति पानेका सच्चा उपाय करो—जगतके सभी प्राणी शान्ति चाहते हैं। प्रयत्न भी जो कुछ करते हैं वह शान्तिके लिए करते हैं। ठीक प्रयत्न कौनसे हैं, इस बातपर मोही

जीवोंने विवेक नहीं किया। उन्हें मनमें जो कुछ आया उसे ही बरने लगे। इसीसे संसारी जीव भूठे प्रयत्न करनेपर शान्ति नहीं पा सके। तुम शान्ति दिलाना किसीको चाहते हो तथा शान्तिका स्वरूप क्या है? किसे शान्ति देना चाहिए? शरीरको शान्ति देना चाहते या आत्माको, जिसे शान्ति देना उसे जानो व शान्तिको भी जानो। आत्माकी बात किसी न किसी रूपमें सर्वत्र प्रसिद्ध है। लोगोंके मुँह सुना जाता है, अमुककी आत्मा विलप रही है। सन्तान नहीं थी, धन नहीं था तो सन्तान होनेपर कह दिया—सन्तोष हो गया, धन मिल गया तो कह दिया भगवानने सुन ली। वृद्धावस्थामें सहारा मिल गया। कुछ लोग कहते हैं वह बाल-बच्चोंकी खबर नहीं लेता है जिससे अमुककी आत्मा विलप रही है। बहुतसी बातें हैं, किन्तु ज्ञानियोंका उपाय तो देखो सबका एक लक्ष्य, एक मार्ग। ज्ञानी वही है जिसने आत्मस्वरूपको यथार्थ तथा अवगत कर लिया। वह आत्मस्वरूपको पानेका इच्छुक बाल-बच्चोंका मोह छोड़ कल्याणके मार्गमें चल पड़ता है। आत्मस्वरूप जाने बिना शान्ति नहीं मिलनेकी। जब तक आत्मस्वरूप नहीं जाना तब शान्ति नहीं मिलेगी। किसको? जिसको शान्ति देना है उसीका निश्चय नहीं कर पाया, तब वह शान्ति किसको दी जायेगी? धन इकट्ठा हो जावे तो यह क्या आत्माको शान्ति दे देगा? सन्तान हो जाय तो क्या वह दे देगा? इनमें शान्ति नहीं, इनमें स्वयंका शान्तिपना भले हो किन्तु वह हमें शान्ति देनेको समर्थ नहीं है। इन कार्योंमें रत रहने वाले शान्तिका अवलोकन कर पाते होंगे, इसमें सन्देह है। हाँ इन्द्रियोंकी कुछ इच्छायें मर जावें तो शान्तिका सुख देखा जा सकता है इसे स्वीकार कर सकते हैं। दुनियामें जन्म लेकर ऊंचे-ऊंचे ओहदे प्राप्त करना, सन्मान पानेके भूखे रहना, यह आत्माको शान्ति दिलानेके साधन नहीं किन्तु तृष्णाग्नि को प्रज्वलित करनेके ही कारण हैं। किसी देशका राज्य भी मिले वह शान्ति नहीं दे सकता। छह खण्ड पृथ्वीका अधिपति चक्रवर्ती भी सारे वैभवको ठुकराकर निर्जन बनमें जाकर ध्यान करता है। उसे परपदार्थ बेड़ियाँ व हथकड़ियाँ मालूम हो रही थीं, अतएव उन्हें छोड़कर सहज आनन्दमें रमण करनेका उत्सुक इहलोकके पदार्थोंको धूलके समान छोड़ आता है। स्वादिष्ट भोजनमें भी शान्ति नहीं, रंगबिरंगे औरोँको मोहित करने वाले सुवर्णभूषणों तथा कपड़ोंमें भी शान्तिका लेशमात्र नहीं। इन सबको हित जानकर आत्मा विह्वल है। इन लौकिक सुखों तथा दुःखमें शान्ति नहीं। शान्तिका स्वरूप समझनेके लिए व्याकुल है। कुछ विरक्त चित्त वाला वह इनमें फंसना नहीं चाहता।

तब तो विरक्त होनेसे ही लाभ है—अब तो दिमागमें समा चुका विवेकके बलसे आत्मबल बढ़ाकर शान्तिका साम्राज्य प्राप्त किया जाये। जिसके कारणसे अशान्तिमय जीवन बिता रहे हैं वह कोई भी वस्तु काम नहीं आवेगी। घरके लोग, पड़ोसी आदर सत्कार करें, इससे भी सुख नहीं, न शान्ति ही है। इन समागमोंको पाकर अशान्त हो रहे हैं। इन दृष्ट

समागमोंमें प्रीति करनेके अदसरोको भी टाल देवें तब शान्ति है। इस स्थितिके लिए सतत अभ्यास रखना पड़ेगा। बिना अभ्यासके तो कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता है। मनुष्य दूसरों की प्रशंसा करते हैं कि अमुक व्यक्ति कितना शान्त है, क्षमापरिणाम वाला है तथा विद्वान है, धनवान हो गया, किसी कला विशेषमें प्रवीणता पा गया है। यह प्रशंसा करना ठीक है। करना चाहिए, किन्तु उसके इन गुणोंकी परीक्षाके लिए यह भी तो अनुमान करें कि इसके जीवनमें कितने समयके अभ्यासका इतिहास छिपा हुआ है? कोई भी व्यक्ति किसी गुणमें बिना प्रयासके आगे नहीं बढ़ जाता। उसे अपने जीवनके अभूल्य क्षण उस कार्यकी बलिवेदी पर अर्पण कर देना पड़ते हैं। तब कहीं वह समाजका कुशल कर्णधार माना जाता है। भैया! पदार्थका यथार्थस्वरूप समझ चुके तब भी प्रयास न करो तो दोष किसका? वह भय भी निराधार है कि अमुक वस्तु हमें मिलेगी या नहीं? यहाँ तो सांसारिक सुखोंको होमकर एक चिरकालसे जो न मिला, इस तरहके स्वसंवेद्य आत्मसुखकी अभिलाषा होना चाहिए। मनुष्यके द्वारा इस तरहकी कौनसी वस्तु है जिसे वह प्राप्त न कर सके? लौकिक कार्योंमें गजबकी मानसिक शारीरिक शक्ति लगाकर उन्हें प्राप्त कर लेते हैं। तब क्या अपने अन्दरकी वस्तुके लिए भीख माँगनेकी आवश्यकता है? कदापि नहीं, केवल तत्त्वनिर्णय कर अटल हो जाना चाहिए। तब अपनी ज्योति स्वयं जागृत होकर स्वात्मानुभवका बोध करा देगी।

ज्ञेयोंका यथार्थस्वरूप समझा जाना बड़ा पुरुषार्थ है—यहाँ ज्ञेयाधिकारमें वस्तुस्वरूप का ही वर्णन चल रहा है। यह विस्तृत वर्णन आश्चर्यमें डालने वाला है। यह विकल्पमें आने वाली वस्तु क्या है? इस सत्को यथार्थ समझाया है। इस बातके आनेपर नींव मजबूत बनाकर इसपर जो वैराग्यका महल खड़ा होगा वह अनेक विकल्पके झकोरे, घूप, पानीसे ढलने वाला नहीं होगा। दुनियाके सम्पूर्ण पदार्थोंमें मैं एक अद्वितीय पदार्थ हूँ। इन सबको समझने के लिए 'सत्संख्या क्षेत्रस्पर्शन कालान्तरभावाल्प बहुत्वैश्च' पदार्थको जाननेके लिए सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्श, काल, अन्तर, अल्प बहुत्व और भावकी भतिकी आवश्यकता होती है। उदाहरणके लिए घड़ी समझना है—एक घड़ी है यह सत् हुआ। कितनी है? करोड़, अरब आदि। यह संख्या हुई। कहाँ मिलती है? शहरमें, यह क्षेत्र हुआ। स्वामी अमुकचन्द की है। संभवतया क्षेत्रकी अपेक्षा अमेरिका, इंग्लैण्ड कहीं भी जा सकती है। यह स्पर्शन है। कितने समय रहेगी? २० वर्षकी गारन्टी है। यह समय हुआ। यह न रहे और फिर आये, यह अन्तर हुआ। यह घड़ी न रहेगी तो दूसरी घड़ी कितने समय बाद आवेगी या कब तक रहेगी? किस ढंगकी घड़ी बनी है यह अल्पबहुत्व है। यह घड़ी फूट गई तो उसी तरहके परमाणु कब तक बनेंगे आदि आदि भाव गुण हैं। डिजाइन इस तरहकी है, यह प्रदेशात्मक है। इस तरह की शीलसे चिह्नित है तथा निर्मित है। इस तरह सब बातें समझमें आती हैं। इसी तरह

की विशेषतायें प्रत्येक पदार्थपर घटित होती हैं। यही बात पट्खण्डागम ग्रंथमें (धवल, महा-धवल) है। इन विवेचनाओंको जाननेके लिए पदार्थका स्वरूप ज्ञात करना होगा।

ये पदार्थ कितने हैं—जितने अखण्ड हैं उतने ही पदार्थ हैं। क्या यह दिखने वाला सब कुछ एक पदार्थ है ? नहीं, यह तो अनेक द्रव्योंका समूह है। तभी ये अलग-अलग हो जाते। जिसके टुकड़े करते-करते अन्तिम टुकड़ा रह जाय वह एक अखंड पदार्थ है। शरीर भी एक चीज नहीं है। जो भी दिखता है वह एक नहीं है। जिसके टुकड़े हो सकें, वह अनेक हैं। कुछ संघातोंके मेलसे यह दीखता है। खंड-खंड होकर अविभाज्य अंश समझमें आवेगा, वह अन्तिम टुकड़ा होगा। वह आखिरी हिस्सा अपने आप होगा। घड़ीमें अनन्त परमाणु हैं। जो अखण्ड है वह एक है। शरीर तो यहीं बिखर गया, फिर रहा क्या ? अन्य कहते हैं कि आत्माके टुकड़े नहीं हो सकते हैं। इस तरह जगत्में कितने आत्मा हैं ? अंगुलके असंख्यातवें भागमें निगोदिया जीव रहता है तथा उसके सहारे अनन्त जीव रहते हैं। आलूमें निगोदिया जीव रहते हैं तथा अपने शरीरमें भी तो निगोदिया जीव रहते हैं। जरासे देहमें अनन्त जीव हैं।

सत्की उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तता—जो सत् होता है वह उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे सहित पाया जाता है। वह उत्तरोत्तर नव्य नव्य आविर्भाव करता है। वह स्वयंमें चलता है उसे कोई अन्य नहीं कर सकता। द्रव्यमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य बने ही रहते हैं। सत्से उत्पाद व्यय ध्रौव्य भिन्न है क्या ? आचार्योंका कहना है कि भिन्न नहीं है, वह एक ही है। शंका यह थी उत्पादका क्षण, व्ययका क्षण तथा स्थित रहनेका क्षण जुदा-जुदा मानना चाहिए। वर्धमान जो मृत्पिण्ड हो उसी समय मृत्पिण्डका व्यय है तथा घड़ेका उत्पाद है और मिट्टीका वही स्थितिक्षण है। मिट्टी पूर्वमें थी तथा घड़ेमें भी है, अंगुली जिस समय सीधी है तब टेढ़ीसे हुई है। कोई कहे कि हे अंगुली ! तुम टेढ़ी मिट जावो, किन्तु सीधी मत होओ या सीधी मिट जावो, किन्तु टेढ़ी मत होओ तो क्या वह रुक जायगी ? रुकेगी भी नहीं तथा दोनोंका एक समय है। क्षणभेद नहीं है। जो उत्पादका समय है वही व्ययका समय है तथा स्थित भी दोनों समयमें समान हैं। आत्मामें अज्ञानका व्यय तथा ज्ञानका उत्पाद एवं चैतन्य आत्मा स्थित रहा वह आत्मा ही है, अन्य चीज नहीं। यह सब अन्य अधिकरणनिष्ठ नहीं है, उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे भिन्न चीज नहीं है। हमारा उत्पाद व्यय हममें ही है दूसरेमें नहीं। मेरा परिणामन मुझमें ही है, दूसरेमें नहीं।

आत्मामें शरीरके अणुके साथ भी स्वामित्व है क्या ?—जैसे आपके पास १०) का नोट है। सौदा लिया तो दूसरेको दे दिया, दूसरेके पाससे तीसरेके पास गया। यह क्रम बराबर चालू है। इसी तरह इस शरीरका परमाणु आज कुछ और रूप है, कल दूसरे रूप हो गया। एक शरीर दूसरे शरीररूप भी परिणाम सकता है। यह शरीर मांसपिण्ड ही तो है।

ऊपरसे त्वचाका आवरण पड़ा है, जिसका पालिश दिख रहा है। यह शरीर अपवित्रताका घर है तथा इसपर स्वामित्व भी नहीं है। जब इस तरहका है तब रमनेकी कौनसी प्रिय वस्तु रह जाती है ? दूसरोंकी कुलीगिरी ही तो कर रहे हैं। मालिकाई नहीं तो फिर राग करनेकी वरमनेके लिए क्या अच्छी चीज रह जाती है ? शरीर ही रागका विषय नहीं रहा तब दुनियामें रहा क्या ? यह वैभव किसके लिए जोड़ें, रिश्तेदारियाँ भी बढ़ाकर क्या करेंगे ?

हम आठ वर्षके बचपनसे ही विद्यालयमें पढ़ते रहे ! एक महीनाको घर आये, जिसमें भी घरपर ही रहे। रिश्तेदारों आदिके यहाँ नहीं गये। इस तरह २० वर्षकी उम्र हो चुकी थी, तब तक रिश्तेदारोंको जानते ही न थे। माँ कहे कि यह तुम्हारे फूफा हैं, ये चाचा हैं आदि। तो मैं कहूँ 'सो हमें क्या करना।' माँ बोली—जानना पहिचानना पड़ता है, आगे काम आवेंगे। तब यह कह देता—'तुम्हीं जानती पहचानती रहना। बहनोईसे भी वास्तविक काम नहीं पड़ता, सालेसे भी काम नहीं पड़ता। इसी शरीरपर ही स्वामित्व नहीं' फिर दुनियांपर क्या स्वामित्व होगा ? मकान ईंट, गारेका बनाया तब तक तो भद्दा लगता है, बाद में सीमेन्ट, कलईकी पालिश कर देते हैं तो सुहावना लगता है। इसी तरह मांसपिण्डपर त्वचा की पालिश है। यह आत्मा इस शरीरको देखते-देखते एक सेकेण्डमें छोड़कर चला जायगा। इसका कोई भी विश्वास नहीं। सफर करने जाते हैं, कब इस तरहका मौका आ जाय कि प्राणोंसे हाथ धोने पड़ें। आये दिन सुनते व अखबारोंमें पढ़ते रहते हैं कि अमुक व्यक्तिने अमुक को मार डाला और मारने वाला फरार हो गया, चोर डाकुओंने खत्म कर दिया आदि या रेल मोटर पलट गई, गिर गई। तब इस शरीरका क्या विश्वास किया जाय, कब तक सुरक्षित रहेगा ? यह उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाला होकर भी इसका दूसरेमें स्वामित्व नहीं जा सकता। प्रेम करे, मोह करे वह दूसरेमें नहीं जा सकता, केवल कल्पनाओंके पुल बाँधना है। द्रव्यकी द्रव्य, क्षेत्र, कालकृत विशेषतायें पर्यायें हैं। यह द्रव्यके अंश हैं। अब द्रव्यके उत्पाद व्यय ध्रौव्य अनेक द्रव्य पर्यायके रूपसे विचार करते हैं।

पाडुभवदि य अण्णो यज्जाओ यज्जओ भवदि अण्णो ।

दव्वस्स तं पि दव्वं गोव पणट्ठं ण उप्पण्णां ॥१०३॥

उत्पन्न होनेपर भी अनुत्पन्नता—द्रव्यकी अन्य (उत्तर) पर्याय तो उत्पन्न होती है और अन्य (पूर्व) पर्याय व्ययको प्राप्त होती है तथा द्रव्य न तो उत्पन्न होता है और न नष्ट होता है। इसमें अनेक द्रव्यपर्यायके रूपसे द्रव्यके उत्पाद व्यय ध्रौव्यका चिन्तन किया गया है। चिन्तन विचार करना भी अर्थ है और चिन्ता करना भी अर्थ है, सो यहाँ विचार किया गया है यह बात तो ठीक है, किन्तु साथ ही भीतर चिन्ता भी की गई है, क्योंकि यह आत्मा अनेक द्रव्यपर्यायोंमें ही चलकर तो हैरान है, दुःखी है, सो जो दुःखका कारण है उसकी चर्चा करते

हुए बिसे अफसोस न होगी ? द्रव्यकी अन्य पर्यायों उत्पन्न हो रही हैं तथा दूसरी पर्यायें व्यय को प्राप्त हो रही हैं और द्रव्य न उत्पन्न हुआ और न व्ययको प्राप्त हुआ । द्रव्य वह है जो अखंड हो, जिसे बहिरात्मा कहते हैं । 'मैं' वह तो एक चीज नहीं । देखो शरीरके अंदर आत्मा है वह अखंड द्रव्य है तथा नोकर्म वर्गणायें अनंत हैं । तैजस वर्गणायें उनसे भी अनंत हैं । इस तरह अनंत द्रव्य हैं । उनमें जो पर्याय दिखती है वह स्थूलपर्याय है । अनेक पर्यायोंके द्वारा जो मिलकर प्रादेशिक पर्याय होती है उसे द्रव्यपर्याय कहते हैं । द्रव्यमें रहने वाले प्रदेशोंमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य घटानेके लिए देखो, एक ही द्रव्यके अनेक प्रदेश हैं । जैसे-जैसे चिन्तनके लिए दृष्टि गई वैसे-वैसे पूर्वपर्यायका तिरोभाव तथा उत्तरपर्यायका आविर्भाव होता जाता है । द्रव्यकी प्रत्येक शक्तियाँ परिणमती रहती हैं, पूर्वपर्यायका उच्छेद होता रहता है तथा उत्तरपर्यायका उत्पाद होता रहता है । द्रव्यकी पर्यायें अनुस्यूति सूत्रित ही हैं, उनमें अन्तर नहीं पड़ता ।

अनेक द्रव्योंके संयोगमें कैसी दशा होती है—अब कहते हैं कि दो द्रव्य मिल गये तो कैसी बात बन जाती है व कैसा परिणामन हो जाता है, इसे कहते हैं । यह प्रकरणके अन्तर्गत ही प्रकरण बदला है । अनेक द्रव्य मिलकर कैसे परिणमन होते हैं, इसे कहते हैं । द्रव्य मिलते हैं वह एक जातिके तो पुद्गल ही पुद्गल मिलते हैं व जीव पुद्गल, इन दो जातिके भी मिलते हैं अर्थात् जीव और पुद्गल ही मिलते हैं । धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और कालद्रव्य तो एक-एक हैं । इनका न कोई ऐसा परिणामन है जिसे दो का कह सकें । वह जुदी-जुदी ही परिणमती रहती है । अब रह गये जीव और पुद्गल । पुद्गलका पुद्गलसे मिलकर कुछ हो सकता है व पुद्गल तथा जीव भी आपसमें मिल सकते हैं, किन्तु जीवका जीवमें मेल नहीं होता । तीन काल व तीन लोकमें भी जीवका जीवसे मिलकर परिणमन नहीं होता है । फिर भो कहता है कि यह मेरा है, मैं इनका स्वामी हूं, यह मेरे द्वारा रचा गया है, मैं इनकी रक्षा करता हूं । मैं नहीं होता अथवा आश्रय नहीं देता तो पेट भरना भी मुश्किल हो जाता । पुद्गल-पुद्गल मिलकर परिणामन बन जायगा, जीव पुद्गलका मिलकर परिणामन हो जायगा । लेकिन जीवका जीवमें मिलकर परिणमन नहीं होता है । साधारण वनस्पतिका जीव भी एक साथ जीते-मरते हुए कभी भी आपसमें नहीं मिलते हैं, वह सब अपना स्वतंत्र-स्वतंत्र अस्तित्व रखते हैं । प्रत्येक जीव अपने-अपने पुण्यके अनुसार सामग्री प्राप्त करता है । जो यह कह रहा है कि मैंने इसका यह कर दिया, कर रहा हूं, यह भ्रममात्र है । पुद्गल-पुद्गल मिलकर यह किताब बनी, चौकी बनी । अनंत पुद्गल स्कंध मिलकर चौकी आदि बनी हैं तथा पुद्गल व मिलकर मनुष्यका पुतला बना है । द्रव्यपर्यायमें भी सूक्ष्मदृष्टिमें लानेसे कोई द्रव्य किसीमें नहीं मिलते हैं । वहाँ तो एक ही का प्रकट तौरसे देखनेमें आता है । यह अवगत होना कि जीव व पुद्गल आपसमें मिलकर इस रूप परिणाम जाते हैं—यह स्थूलदृष्टिका परिणाम है । निश्चय-

नयसे वह दोनो भिन्न-भिन्न हैं। पुद्गल भी आपसमें मिलकर स्कंध बनते हैं तथा वही स्कंध अनन्त पुद्गल परमाणुओंसे वेष्टित होता हुआ विशाल आकारकी वस्तु बन जाता है। जीवका जीवके साथ बंधन नहीं है।

द्रव्यपर्यायोंमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य—हाँ तो द्रव्यपर्यायोंमें उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य देखें—जैसे एक समानजातीय द्रव्यपर्याय त्र्यणुक स्कंध है। देखो इसमें ३ पुद्गल द्रव्य हैं, उनके विशिष्ट संसर्गमें यह स्कंध पर्याय हुई है, सो इसे समानजातीय अनेक द्रव्यपर्याय कहते हैं। इस त्र्यणुक पर्यायमें एक अणुका सम्बंध और हो जाय तो देखो अब चतुरणुक स्कंध हो गया। सो चतुरणुक द्रव्यपर्यायका उत्पाद हुआ, त्र्यणुक द्रव्यपर्यायका व्यय हुआ, किन्तु वे तीन व चार पुद्गल अविनष्ट व अनुत्पन्न होते हुए ही अवस्थित हैं। सो यहां उत्पाद, व्यय व ध्रौव्य तीनों प्रसिद्ध हुए। इसी प्रकार सभी समानजातीय द्रव्यपर्यायें उत्पन्न होती हैं व नष्ट होती हैं और समानजातीय वे सब द्रव्य अविनष्ट व अनुत्पन्न होते हुए ही अवस्थित रहते हैं। ये सब पर्यायें अध्रुव हैं अतः मायास्वरूप हैं। अब असमानजातीय द्रव्यपर्याय देखें—कोई मनुष्य है वह आयु पूर्ण कर देव हो गया तो क्या हुआ देवत्वनामक असमानजातीय अनेक द्रव्यपर्यायका तो उत्पाद हुआ और मनुष्यत्वनामक असमानजातीय अनेक द्रव्यपर्यायका व्यय हुआ, किन्तु जीव-द्रव्य और वे सब पुद्गल द्रव्य जिनके कि सम्बंधमें वह द्रव्यपर्याय हुई व है, वे सब द्रव्य अनुत्पन्न व अविनष्ट होते हुए अवस्थित रहें। ये सब पर्यायें अध्रुव हैं, अतः मायास्वरूप हैं।

अहङ्कार बड़ा पाप है—हम ही सब कुछ हैं, और दूसरोंका हमारे सामने कोई महत्त्व नहीं है। मनुष्यकी पर्यायकी सफलता इसमें नहीं है। जितना गौरव आपका है उससे ज्यादा दूसरा भी तो समझता है। निर्भीकताको कोई नहीं छुड़ाता, किन्तु दूसरेको अपनेसे टकरानेकी कोशिश अहितकर है। मनुष्य भी होकर लपेरे घसीटे रहें आये तो जीवनमें क्या कर लिया? तिर्यंच होते रहे तब भी कौनसा बड़प्पन कर पाया? नारकी जीवोंके दुःख सुनकर तो शरीरके रोम खड़े हो जाते हैं। देव भी छोटी जातिके हुए, तब भी कोई लाभ नहीं। बड़े भी हुए तब भी क्या? इस लोकमें भी बहकाने वाले बहुत मिलेंगे। सहारा देने वाले बहुत कम ही मिलेंगे। अगर कोई निर्मोही जीवन बितानेकी मनमें ठानता है तो माता-पिता हुए तो वह समझाकर रोकेंगे, स्त्री घरसे जानेमें सर्वप्रथम बाधक होगी। किसी-किसी स्त्रीको पति भी धर्मसाधन नहीं करने देता, यहाँ तक कि अगर स्त्री रात्रिभोजनका त्याग करे हो तो पति रात्रिमें जबरदस्ती खिलानेकी कोशिश करेगा, सफल न होनेपर उसके प्रति उपेक्षाभाव धारण कर लेगा। निर्मोही इनके मनानेसे भी नहीं रुका तो फुआ, मामी, चाची, भाभी आदिका झमेला होगा। कहेंगी कि इस वनमें यह क्या करने बैठे हो, पराई लड़कीको ब्याहकर तड़फती छोड़े जा रहे हो। दादीका इन सबसे ज्यादा मोह रहेगा समझानेका, मगर इन बाधाओंसे न रुककर तत्त्वज्ञानी

अपने लक्ष्यमें सतत बढ़ता जाता है। तत्त्वज्ञानी घर रहता है तब भी विवेकसे रहता है तथा घर छोड़ता है वहाँ भी विवेकसे रहता है। ज्ञानी घी, मीठा, मसाले, दूधकी आवश्यकता समझता है तो लेता है अन्यथा उन्हें भी हेयदृष्टिसे आवश्यक न समझकर छोड़ देता है। वह देखता है कि मेरे शरीरका काम रूखा-सूखा खानेसे चल सकता है तो उसीमें सन्तुष्ट रहता है। घरमें भी उपेक्षाभावसे समय देखता हुआ रहता है कि कब मैं इस बंधनसे छूट सकूँ ? विवेकके बल पर घर रहता है तथा अपने परिणामोंको यहाँके आंधीके झकोरोसे बचाता है। यह बातें दूसरों को बार-बार सिखानेपर भी गले नहीं उतरतीं। उनसे बार-बार मोह छोड़नेकी कहो तब भी लेशमात्र टससे मस नहीं होते हैं।

ज्ञानीको ज्ञानकला कोई सिखाने नहीं जाता है—बादशाही राज्यमें छोटे-छोटे राज्य भी रहते थे। एक छोटे राज्यका राजा गुजर गया। उसका बच्चा था जो कि नाबालिग था। तब राज्यका सारा प्रबंध बादशाहके हाथमें आ गया, बच्चेका पालन-पोषण वगैरा होता रहा, उचित धन खर्चको मिल जाता। अब वह बच्चा १८ वर्षका बालक हो गया। बालक राजकुमारने अपने राज्यकी मांग की। इसके पूर्व ही राजमाता राजकुमारको बुलाकर समझाती है। अगर बादशाह इस तरह कहे तो यह जवाब देना, इस तरह उत्तर देनेकी कई बातें समझा दीं। दसों बातें समझा दी गईं। बादमें राजपुत्रने कहा—इतनी बातोंमें से अगर राजा कुछ भी न पूछेगा तो क्या कहेंगे ? इसपर राजमाता बोलीं—अब तुममें सही प्रतिभा आ गई है। बादशाहने राजकुमारको बुलाया और आपसमें दोनोंकी बातें हुईं। बातें होते-होते बादशाहने राजकुमारके दोनों हाथ पकड़ लिए। बादशाहने पूछा कि अब तो जकड़ लिया, अब तुम क्या कर सकते हो ? तब राजकुमार प्रसन्न होकर बोला—अब तो आनंद हो गया। क्योंकि जब विवाह होता है उस समय तो लड़का लड़कीका एक-एक हाथ ही मिलता है जिससे जीवन भर निभाना पड़ता है। आपने तो दोनों हाथ ग्रहण किये हैं, अब तो कोई चिन्ता ही नहीं रही। तब राज्य सम्मानके साथ लौटाकर बादशाहने राजा बना दिया। कहना होगा कि यह कुशलतायें पूर्व जन्मके संस्कारोंसे वर्तमानमें परलवित होकर फूलती-फलती हैं। उत्तम धर्म भी पूर्व भवके शुभ संस्कारोंसे मिलता है। ज्ञानीको ज्ञानकला कोई सिखाता नहीं है। स्वयं ही ज्ञानी ज्ञानकलासे वर्तमान होने लगता है। जैसे राजपुत्रमें प्रतिभा थी तो किसीके बिना बताये भी उत्तर दे दिया। जैसे ही ज्ञानी पुरुषका अलौकिक अहिंसाका लक्ष्य हो जाता है तब समस्त आचरणमें ज्ञानकलाकी ही छटा रहती है।

स्कन्धोंका प्रादेशिक उत्पाद व्यय—जीव और पुद्गलका प्रकरण चल रहा है। जैसे किसी तीन अणु वाले पुद्गलमें तीन ही परमाणु हैं, वह दिखेंगे नहीं। संख्यात असंख्यात पुद्गलका स्कंध भी आँखोंसे नहीं दिखता है तब तीनकी बात ही कौनसी ? एटम बमको अणु

कहते हैं, वह भी तो अनेक पुद्गल परमाणुओंके स्कन्धसे बना होता है। तीन अणु बाल्य स्कन्ध हैं उनमें एक और मिलनेसे चार पुद्गल परमाणुओंका स्कन्धका हो गया। तो यहाँ तीन वाला नहीं रहा अब चार अणुका स्कन्ध ही कहलावेगा। जैसे पहले एक तिगड्डा था, उसमें से एक रास्ता और निकल आनेसे चौराहा कहलाने लगता है। उसमें तिगड्डेका अस्तित्व होते हुए भी चार रास्ता (चौराहा) ही कहलावेगा अथवा तीन लड़केका पिता जो था उसके चौथा लड़का हो जानेपर चारका बाप कहलाने लगता है। पुद्गलमें पुद्गल मिलकर जो पर्याय बने उसे समानजातीय पुद्गल कहते हैं। तिर्यंच कीड़े, देव वगैरा मिटकर मनुष्य बने तो वह असमानजातिके कहलाते हैं। भिन्न-भिन्न जातिके मिलकर जो द्रव्यकी पर्याय बने उसे असमानजातिकी कहते हैं। तीन अणुके स्कन्धमें चौथा अणु मिल गया। तब त्र्यणुकता नष्ट हुई चतुरणुकता उत्पन्न हो गयी। इसी तरह समानजातिक पर्याय प्रति-समय नष्ट होती रहती है और पैदा होती रहती है।

प्रादेशिक पर्यायमें भूतार्थता नहीं है—इस समानजातिक पर्यायमें भूतार्थपना नहीं है, मायापना है। कभी बादल दिखते हैं, उसमें मन्दिर, हाथी, महल, पहाड़ जैसे दृश्य दिखते हैं और देखते देखते नष्ट हो जाते हैं। शरीरके भी अणु समय पाकर बिखर जाते हैं। एक राजा था। वह अपने महल पर बैठा हुआ बादल देख रहा था। उसमें उसे एक मन्दिर का दृश्य दिखा। वह बहुत अच्छा मालूम हुआ। उसने विचारा—इस तरहका मन्दिर मैं बनवाऊंगा। इसलिए वह नीचे से स्याही दवात (कूची रंग) के साथ कलाकारको बुलाने लगा। कलाकार आ नहीं पाया। वह देखते-देखते ही मन्दिर वहाँसे अदृश्य हो गया। बस उसने सोचा हमें भी इसी तरह देहसे उठ जानेमें देर नहीं लगेगी। एकदम विरक्त हो गया। क्योंकि जिस-जिसका संयोग हुआ है उस उसका वियोग नियमसे होगा। द्रव्योंका दुःख नहीं है, वियोगकी पीड़ा नहीं है। दुःख तो इसका है, यह मेरा है। अपने लड़केकी नाक किस तरह से धोती आदिसे पोंछ लेते हैं। दूसरेकी देखी तो कह दिया, यह लड़का किसका है, नाक साफ करलो। दूसरेके लड़केसे क्यों इस तरहका प्रेम नहीं है? कारण उसे अपना नहीं मान रहा है। अगर वियोगका दुःख होता तो जिन्होंने घर त्यागी मुनि हुए, उन्हें ज्यादा दुःख होना चाहिए था। कानी लड़की मर जाये तब जितना दुःख होता है, उसकी अपेक्षा चक्रवर्ती ६६ हजार रानियां, ६ खण्ड पृथ्वीका वैभव छोड़ देता है उसे उतने गुमा ही दुःख होना चाहिए। दुःख केवल भ्रमका है। दुःख भी आया, गया, वह भी स्थायी नहीं रहता। विप्लव हुआ, अचानक घटना आ घटी तो प्राण निकल गये अथवा खुद मौतसे मर गये। धन, वैभवकी भी यही दशा है। या तो देखते नष्ट हो जाता है या स्वयं छोड़कर चल बसते हैं। रहता किसीके पास कुछ नहीं। अगर आपका ५) ६० का नोट भी गिर जावे तो

विषाद होता है तथा हाथोंसे हजारों रुपया दान कर देते हैं जिसका पश्चाताप नहीं होता है । वस्तु बिछुड़ेकी कोई विशेषता नहीं, भावमें आया । हाय ! वह मेरे इष्ट थे, मुझे छोड़कर चले गये, दुःख तो इसका है । अज्ञानी कुछ भी सोचे परन्तु पदार्थ फिर भी स्वतन्त्र होकर जुदा जुदा परिणामन कर रहे हैं । संसारावस्थामें त्याग स्वयं करके ही कल्याणसे पात्र बन सकते हैं । पात्रको दान देने पर पात्रदान कहलाता है, तथा साधर्मी भाइयोंको दिया हुआ द्रव्य समदान कहलाता है, किन्तु जिन्होंने कुछ दिया या नहीं दिया और वैराग्यभाव छोड़कर चल दिये वह सर्वदान कहलाता है । जितने भी माया रूप दिखते हैं उनका आकर्षण नियमसे बिछुड़ेगा ।

जिसमें लाभ हो वही काम करो—सर्वत्र अपने आपको ज्ञानधन एकाकी मानता रहे यही सबसे बड़ा वैभव है । अगर आपको व्यापारमें (१००) मिलनेकी जगह (१५०) की उम्मीद हो तो (१००) का प्रलोभन छोड़ दोगे । उसी तरह इस नश्वर देहसे स्वर्ग मोक्षकी सम्पदायें प्राप्त की जा सकती हैं तब इसी देहकी साज संभालमें पड़ा रहना कहाँ तक श्रेष्ठ है ? इन मायामय पदार्थोंसे काफी प्रेम बढ़ा चुके । तुमने जितना प्रेम बढ़ाया उन्होंने उतना ही धोखा दिया । यह इन्द्रजाल समान जरामें आँखें बरकाकर ओझल हो जाते हैं । आपको अगर भोजनके समय रोटी व पूड़ी दोनों परोसी जा रही होवें, तब रोटी पसन्द नहीं होनेसे 'ऊं हूं' कर देते हैं तथा पूड़ीकी पूछनेपर 'हूं' कहकर इच्छा प्रकट करते हैं । यह मोहका ठाट तो देखो जिसपर प्रमत्त ज्ञानी हंसे बिना न रहेंगे । मोही जीव दाँतों तले अंगुली दबाकर सोचते हैं कि अमुक व्यक्ति किस तरह इतने वैभवको छोड़कर चला गया होगा ? इसके उत्तरमें वह स्वयं सोचे—६ खंड पृथ्वीसे भी बढ़िया कुछ प्रतीत हुआ होगा तभी तो ध्यान मुद्राको प्राप्त करनेके लिए सबको छोड़ जाते हैं । बच्चेको कोई पकड़कर जबरदस्ती अ आ इ ई पढ़ावे और उसका खेलनेमें मन होगा तो वह कैसे पढ़ लेगा ? वह तो आँसू पोंछता हुआ बिलखेगा । जिसका चित्त आत्मीय आनंदके लिए उत्सुक हो रहा है वह क्या यहाँ फंसनेमें सुख मान सकता है ? वह तो स्वप्नमें भी उनसे शान्ति संतोष सुखकी आशा नहीं कर सकता है । जबसे धर्ममें, आत्मकल्याणमें मन लग रहा है तभीसे जीवनकी शुरुआत समझना चाहिए । आत्मीय सुख स्वाधीन स्वतंत्र है । उसकी उपासनामें यह जीवन रत रहे, यही भावना योग्य है ।

मिलकर भी भिन्न-भिन्न होकर भी मिले—यहाँ द्रव्यपर्यायमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य घटाया जा रहा है । अनेक मिलकर जो क्षेत्रपरिणामन है उसे द्रव्यपर्याय कहते हैं । जैनधर्म की द्रव्यस्वरूप कथनकी बड़ी विशेषता है । अनन्त परमाणु मिलकर जो चौकीरूप बने हैं उसे द्रव्यपर्याय कहते हैं । पशु, मनुष्य, देव, तिर्यञ्च आदिकी पर्याय भी जीवमें पुद्गल मिलकर इस रूप बन जाते हैं । समानजातीय और असमानजातीय इस तरह दो तरहकी पर्यायें होती

हैं। पुद्गल-पुद्गल मिलकर जो पर्याय बनी वह समानजातीय है तथा जीव और पुद्गल मिलकर जो पर्याय बनी वह असमानजातीय है। त्रिअणुकसे चतुरणुक बनना वह तीनसे चार अणु हुए हैं कि वह तीन नष्ट नहीं हुए हैं और चौथा अणु पैदा नहीं हुआ है। हाँ त्र्यणुकका चतुरणुक हो गया। जितनी भी समानजातीय पर्याय हैं उन सबमें यह कार्यक्रम लगा है। संयोगकी वजहसे जो आकार बना है वह द्रव्यकी पर्याय है। पूर्वपर्याय नष्ट होना तथा उत्तरपर्याय उत्पन्न होना यह लगा ही रहता है तथा नष्ट होते हुए एवं उत्पन्न होते हुए भी वह ध्रुव है। यह समानजातीय चर्चा करनेके बाद असमानजातिका कथन चलता है। जो एक जातिकी होती है वह असमानजाति होती है, किन्तु यह न होकर जीव और पुद्गलोंका जो मेल हो वह असमानजाति पर्याय कहलाती है। जो बराबर न हो वह असमानजाति हुई। आकाशको भी तो आसमान कहते हैं। इन सबमें सारतत्त्व या सारभूत क्या है? यह देखना है। पुद्गल जीव मिलकर यह ढाँचा बना है। वह बिछुड़ेगा नियमसे, किन्तु असमंजसमें पड़ा है। तत्त्वज्ञान न होने तक असमंजस बनी हुई है। किसीको देखते हो किस तरहके परिणाम होते हैं? अगर अपना माना तब तो ममताके मारे उसी तरह भुक्त पड़ता है। अगर उसे अपना नहीं माना तो उपेक्षा बुद्धि धारण कर ली। वह मेरा पुत्र है, यह मेरी श्रीमती जी हैं, यह नौकर, दासी मेरी है, मकान मेरा है, दौलत मेरी है—यह विश्वास जमा बैठा है। यहाँ तक कि ४-६ आदमियोंके समूहको अपनी गोष्ठी मान लेता है। औपाधिक भाव ये भिन्न पदार्थ फिर भी अपने बनाता है।

निश्चयनयका तो उपयोग न करो—तत्त्वज्ञान वह है जहाँ निश्चयदृष्टिसे पदार्थोंका ज्ञान होकर फिर निर्विकल्पता लाई जावे। निश्चयनयका विषय है केवल अखण्ड विभक्त एक पदार्थ है। यदि निश्चयनयसे देखें तो यह स्कंध सब बिखर जायगा याने उपयोगमें एक-एक असंयुक्त द्रव्य ही आवेगा। निश्चयनय कहते हैं उसे जहाँ न जोड़ देखा जावे और न तोड़ देखा जावे। जोड़-तोड़ देखना व्यवहारनय है। जैसे कहा कि आत्मामें कर्म बंधे हैं तो यह व्यवहार हो गया। जीवमें रागादि हैं, यह व्यवहार हो गया। क्योंकि इनमें जोड़ बताया गया है। यदि कहा जाय कि आत्मामें ज्ञान है, दर्शन है, चोरित्र है आदि तो यह भी व्यवहार हो गया, क्योंकि इसमें अखण्ड आत्माको तोड़ा गया है। जहाँ न जोड़ हो और न तोड़ हो, ऐसे अखण्ड परिपूर्ण द्रव्यको देखो। निश्चयका अर्थ है—‘निर्गतः चयः यस्मात् स निश्चयः।’ जहाँसे चय अर्थात् संचय निकल चुका है याने जोड़ खत्म हो चुका है उसे निश्चय कहते हैं। इस परिभाषासे यह सिद्ध है कि जहाँ जोड़ न देखा जावे वह निश्चयनय है अथवा निःशेषेण चयः यत्र स निश्चयः याने स्वयंमें जो कुछ है उसका ऐसा चय हो कि तोड़ न करना पड़े वह निश्चयनय है। बहुतसे आदमी खड़े दर दिथे जावें जिसमें अमरीका, जापान, इंग्लैंड, भारत, अफ्रीका

आदिके सम्मिलित हों। उन सबमें किसी देशका एक आदमी खड़ा कर दिया जावे तथा सबसे कहा (पूछा) कि यह किसका रिश्तेदार है, तो उनमें कोई भी नहीं बता सकेगा। लेकिन जो उस देशका परिचित व्यक्ति होगा वह शीघ्र कह देगा कि यह अमुकका भाई, चाचा, मामा आदि है। जिससे पहिचान हो गई उसे अपना मान लिया। पुद्गलमें राग प्रकृति भाव हुआ है, यहाँ भी आत्मामें राग नहीं है। यह अत्यंत भिन्न है। शरीर भी अपना नहीं है, फिर बाहरी परिग्रह अपना कैसे हो सकता है? निश्चयनयसे सबको इकहरा देखें तो एक-एक परमाणु नजर आवेंगे। सब स्वार्थवश ही नाते-रिश्ते हैं। जब किसीकी मृत्यु हो जाती है तो शरीरसे कौन प्रेम करता है? जीवसे भी कौन प्रेम करता है? न कोई जीवसे प्रेम करता है और न कोई शरीरसे प्रेम करता है। अपनी कषायसे प्रेम करता है। छोटे मुन्नाको खिलाते समय उसे छातीसे जोरसे मसलते हैं, लेकिन मुन्नाको कितना दर्द हो रहा है, इसे वे क्या जानें? यहाँ तो उनकी कषाय पुष्ट होनी चाहिए। जब पवनञ्जयको अपनी कषाय पुष्ट करनी थी तब वह अञ्जनाको बिना देखे तीन दिन भी नहीं रह सका, शादीके पहिले और अञ्जनाके पास दौड़ा हुआ गया। उसके बाद २२ वर्ष तक भी नहीं देखा। बादमें आया और अञ्जना नहीं मिली तो बोला—चिता लगाकर मर जाऊंगा। अपने कषाय परिणामनसे सभी इस तरह का व्यवहार करते हैं।

जीव व्यञ्जनपर्यायदृष्टिमें भी उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है—असमानजातिके जितने भी भव धारण किये—देव, नारकी, मनुष्य, तिर्यञ्चगतिके (यह सब असमानजाति पर्यायें हैं) उनमें एकमें उत्पन्न हुआ, पुनः दूसरीमें जाकर पैदा हो गया। जीव और पुद्गल तो अविनष्ट और अनुत्पन्न हैं। कोई आत्मा मनुष्यपर्यायमें था सो देव उत्पन्न हो गया, मनुष्य मिट गया, जीव वही है। इसी तरह समस्त असमानजातिमें लगा लेना। प्रत्येक द्रव्य स्वभावसे उत्पाद और व्यय करता है। जब तक तत्त्वज्ञान नहीं है तब तक दरिद्रता है। अज्ञान मिटा और दरिद्रता हटी, तत्त्वज्ञानका यही मूल है। यह द्रव्य एक है, वह अपनेमें उत्पाद व्यय कर रहा है। यह चौकी है वह अपने स्पर्श, रूप, रस, गंधसे परिणाम रही है। इसमें अनन्त परमाणु हैं वे सब ही अपनी सत्ता रखते हैं, अपने परिणामनसे परिणमते हैं। जगतके सब द्रव्योंको इकहरा अलग-अलग देखो। एक मनुष्य जाति पर्यायरूपमें आत्मा स्वयं उत्पन्न होती है व नष्ट होती है। देवोंको त्रिदश कहते हैं, क्योंकि उनकी तीनों अवस्थायें एकसी रहती हैं। उत्पन्न हुए और अन्तर्मुहूर्तमें युवा अवस्था हो गई, वह जवानी उनकी वृद्धावस्था तक बनी रहती है। जीव न नया उत्पन्न हुआ और न नष्ट हुआ तथा वे पुद्गल भी अनुत्पन्न अविनष्ट रहते हैं। पुद्गल न नष्ट होते हैं और न उत्पन्न होते हैं। द्रव्य अपने आपसे ध्रौव्य है चूँकि यह द्रव्य-पर्यायिका प्रकरण चल रहा है सो पर्यायरूपमें वह उत्पन्न हुआ और नष्ट हुआ कहते हैं। अनेक

को देखकर एकको देखे तो वह द्रव्यपर्याय है तथा एकको देखकर 'बहुतोंको देखे तो वह गुण-पर्याय है। तत्त्वार्थसूत्रमें आया है—'शब्द बन्ध सूक्ष्म स्थूल संस्थान भेद तम छाया।' शब्द सुनाई दिया, यह द्रव्यपर्याय है। अंगुली बंध गई आपसमें और कहें पर्याय किस अंगुलीकी है। किसी एककी है ? नहीं। दोनोंकी भी नहीं है। द्रव्यपर्याय बंधन है। बंधन टूट गया, दोनों भिन्न-भिन्न हो गईं, यह भेद भी द्रव्यपर्याय है। हल्का, पतला, सूक्ष्म है यह किस गुणकी पर्याय है ? यह द्रव्यपर्याय है, मोटे बन गये तो यह भी द्रव्यपर्याय है। चौकीका यह क्रम आकार बन गया, यह भी द्रव्यपर्याय है। अंधकार यह भी द्रव्यपर्याय है। प्रकाश भी पर्यायके रूपमें नजर आता है, यह भी द्रव्यपर्याय है। आतप यह पुद्गलमें हुआ।

जीवके भी विचित्र परिणामन—जीव समाज यह क्या है ? जीव पुद्गलके सम्बंधसे एकेन्द्रिय आदि हुआ है, यह द्रव्यपर्याय है, गुणस्थान गुणपर्याय है। आत्मामें अनेक गुण हैं। उनमें वे सम्यक्त्वगुण और चारित्र्यगुण आदि सब परिणतिमें चल रहे हैं, यह गुणपर्याय है। इन्द्रियमार्गणाके भेद एकेन्द्रिय आदि ये सब द्रव्यपर्याय हैं। कायमार्गणा यह भी द्रव्यपर्याय है। कषाय गुणपर्याय है। जो गुणका विकार है वह गुणपर्याय है, वह चाहे विभाव या स्वभावपरिणामन रूप हो अपने स्वरूपसे यह द्रव्य ध्रौव्य है तथा गुण परिणति रूपसे उत्पाद व्यय रूप है। उनमें जो मूलभूत द्रव्य है वह नष्ट नहीं होता है। उत्पाद व्यय ध्रौव्यके बिना कुछ बात नहीं चलती है। अगर हम ध्रौव्यमात्र होवें तो हाथ भी नहीं हिलना चाहिए तथा ध्रौव्य न होवें तब भी हाथ नहीं हिल सकता। उत्पाद बिना भी न हम हाथ हिला सकते, न पैरोंसे चल सकते और न मुंह चला सकते तथा व्यय न होवे तो भी हाथ, पैर, कान संचालन नहीं कर सकते, न चक्षु, कान आदि भी काम दे सकते। वस्तुतत्त्वका स्वरूप जैनधर्ममें विशद मिलता है। सुभवितव्यता बिना इसको समझनेका भाग्य नहीं है तथा समाजमें दया नहीं है, अतः वे इससे वंचित रहते हैं। क्योंकि इसको प्राप्त करनेका उद्योग करें तो समय, पैसा एवं श्रम लगाना पड़ता है। द्रव्यको जब इकहरा-इकहरा समझनेकी वृत्ति आ गई तो आकुलता किस बातकी रह जाती है ? समस्त द्रव्य स्वतंत्र हैं, स्वतःसिद्ध हैं, वे इसी तरह अनंतकाल तक वर्तते रहेगे।

रागद्वेष भी खुद-खुदमें ही कर पाता है—बन्दरियाको अपने बच्चेपर सबसे ज्यादा मोह होता है। सदैव छातीसे लिपटाये या पीठपर बैठाये फिरती है। अगर कहीं वह पानीकी बाढ़ आ जाय और पानी यहाँ तक आ जाय कि बन्दरिया डूबने लगे तो वह अपने बच्चेको नीचे करके उसपर ही बैठ जाती है। भैया ! सब अपनेसे ही तो प्रेम करते हैं। आप लोग भी ठीक करते हैं। अगर आपपर भी कर्मोंकी प्रबल बाढ़ आने लगे तो सब छोड़ देना। जब देख लिया कि सभी सामग्रियाँ मौजूद हैं इनमें कोई सारतत्त्व न निक्ला है और न निकलनेका है

तो सबको छोड़कर आत्मकल्याणके लिये चल दिये । मुनि भी तो यही कहते हैं । अगर ज्ञान पर आपत्ति आने लगे तो सर्वसे विरक्त हो, निजमें लवलीन हो जावे और शरीरकी भी प्रीति छोड़ देनी चाहिए । दुनियामें एक-एक द्रव्य है—यह समझनेकी अधिक-अधिक दृष्टि आवे । राजुलकी नेमिनाथसे नौ भवकी प्रीति थी । यहाँ तो थोड़ा भी राग हो जाय तो कहते हैं कि स्त्रीसे अपन दोनोंका अगले भवमें भी सम्बंध जरूर होगा । अगले भवमें सम्बंध हो इसका मतलब है भव-भवकी बेदकूपी साथ लिये आ रहा है । प्रेममें कभी न आ जावे, इसके लिए अनेक-अनेक प्रकारके पति-पत्नी हाव-भाव बनाते हैं । कपड़े इतने बारीक कि शरीर भी अंदर से दिखता रहे तथा आजकल तो क्यासे क्या प्रसाधन चले हैं, जिन्हें देखकर आजका मानव दंग रह जाता है । कालिजों वगैरामें पढ़ाने वाली अध्यापिकायें तक क्यासे क्या बेढंगा रूप बनाकर आती हैं ? इसका लड़कियोंपर क्या प्रभाव पड़ता होगा सो वही जाने । इन सबमें प्रत्येक जीव अपना भाव ही करते हैं । जानी इन्हें देखकर विरक्त हो जाते हैं । दुनियामें क्या है ? सब मायाका नाच है । मायामें ढके हुए वस्तुस्वभावको जो पहिचान जाते हैं, वे तत्त्वज्ञ हैं, कृतार्थ हैं । देखो भैया ! पदार्थ तो प्रत्येक एक-एक है और सबके साथ माया भी है, परमार्थ स्वभाव है । माया बिना परमार्थ नहीं, परमार्थ बिना माया नहीं । इन अनेक द्रव्यपर्यायों में भी देखो—द्रव्य अनेक हैं, वे सब अपने-अपने स्वरूपसे ध्रुव हैं और द्रव्यपर्याय द्वारसे उत्पाद व्यय रूप हैं । इस तरह द्रव्य उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक प्रसिद्ध ही हैं ।

द्रव्यका निष्कम्भ और विस्तार—द्रव्यको पर्यायें दो तरहसे देखी जाती हैं—(१) द्रव्यके प्रदेशोंके रूपमें । (२) गुणकी परिणतिरूप पर्यायें हैं । जैसे चौकी है वह दो प्रकार से परिणमी हुई देखी जा सकती है । (१) नर्म, कठोर, भारी आदि रूपमें देखी जा सकती है तथा (२) अणु त्रिअणु, चतुरअणु संख्यात असंख्यात और अनन्त अणु वाले स्कन्धोंके पिण्ड रूपमें स्कन्ध हुआ करते हैं । यह अनन्तों परमाणुओंके स्कन्धोंमें चौकी देखी जाती है । शक्ति की अपेक्षासे चरित्र, सम्यक्त्व आदि गुण भी देखे जाते हैं तथा प्रदेशोंकी अपेक्षा मनुष्य, तिर्यच आदि गतिमें जीव देखा जाता है । अभी पूर्व गाथामें उत्पाद व्यय ध्रौव्य घटाकर बताया है । अब गुण पर्याय रूपमें उत्पाद व्यय ध्रौव्य घटाते हैं । अब द्रव्यकी तीनों अवस्थायें उत्पाद व्यय ध्रौव्य घटाते हैं । एक द्रव्यकी पर्यायों (गुणस्थानों) के रूपसे उत्पाद व्यय ध्रौव्यका विचार करते हैं ।

परिणमदि समं दव्वं गुणदो य गुणंतरं सदवतिट्ठं ।

तम्हा गुणयज्याया भणिया पुण दव्वमेवेत्ति ॥१०४॥

द्रव्य गुणसे गुणान्तररूप स्वयं परिणमता है । इस कारण गुण पर्याय ही अवशिष्ट सत् होते हुए द्रव्य ही है ऐसा तत्त्ववेदियोंने कहा है । यहाँ गुणसे शक्ति अर्थ नहीं लेना है,

किन्तु पूर्व गुणपर्यायको छोड़ता हुआ अन्य गुणपर्यायरूप द्रव्य परिणामता रहता है यह भाव लेना । गुणविकास या गुणविकारको भी गुण कह देते हैं, क्योंकि गुण परिणमनसे गुणसे पृथक् अन्य नहीं है । उत्थानिकामें कहा है कि विचार करते हैं या चिन्ता करते हैं । विचार एक खुशीका होता है तथा दूसरा परेशानीसे, गम्भीरतासे या समझदारी आदिसे होता है । यह गुणपर्याय है जो कि असली बात है । यह आत्मा ऐसा परिणामा था, इस तरह था, इत्यादि विविध परिणमन बताये जावें वहाँ चिन्ताकी बात नवीन प्रतीत होती है । सम्बन्धकी अपेक्षा से गुणपर्यायमें मोह, राग, द्वेष पर्यायें हैं उनका विचार किया जाता है । गुणपर्यायोंमें सिद्धों के गुणोंकी भी पर्याय आ गई है तो भी याने संसार अवस्थामें विषय परिणमन हैं । कैसे लक्ष्यमें देकर यह प्रकरण समझता सुगम होगा ? उत्पाद व्यय ध्रौव्य घटाना है यहाँ ।

गुणपर्यायका आधार एक द्रव्य—द्रव्य जो है वह एक गुणसे दूसरे गुणपर्यायरूप परिणामता है । व्यवहारमें कहते हैं पहले अमुक व्यक्तिमें बहुत अच्छी आदत थी । अब इस तरहके दुर्गुण गये हैं या पहले अमुक व्यक्तिका कितना बुरा चाल-चलन, बोलना आदि था, अब देखो तो बोलीमें फूल भरते हैं । द्रव्य एक पर्यायरूपसे दूसरे पर्यायरूप स्वयं परिणमता है । जो द्रव्यकी पर्याय है वह द्रव्यसे भिन्न नहीं है । आत्मामें ज्ञान, दर्शन, सम्यक्त्व, चारित्र आदि गुण पाये जाते हैं । यह गुण अनादिसे हैं और अनन्तकाल तक रहेंगे । सब जीवोंमें यह गुण पाये जावेंगे । ज्ञानगुणकी क्या पर्याय है ? मतिज्ञानादि । दर्शनगुणकी क्या पर्याय है ? चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन—ये आत्माकी ही पर्यायें हैं । सुख आनन्द भी जीवमें होते हैं । चारित्रगुणकी पर्यायें संयम असंयम हैं । सम्यक्त्व गुणकी क्या पर्यायें हैं ? उपशम सम्यक्त्व, क्षायिक, मिश्र आदि यह सम्यक्त्व गुणकी पर्यायें हैं । क्रियावती शक्तिकी पर्यायें गमन आदि । जिस द्रव्यमें जितनी शक्तियां होती हैं वह अपने परिणमनकी ही करती हुई होती हैं । परसंयोगमें यह द्रव्य ऐसा बन गया । जो गुणपर्याय है वह एक द्रव्यकी पर्याय हैं । आत्मा रागपरिणामका ही कर्ता है तथा उसीका भोक्ता है एवं उसीको ग्रहण करने वाला है । अशुद्ध निश्चयपनसे कर्मके उदयसे होने वाले भावोंको ही देखकर रागी है यह बतलाया है ।

द्रव्यका शुद्धाशुद्धत्वेन निरूपण—द्रव्य शुद्ध और अशुद्ध रूपसे देखा गया है । शुद्ध अर्थात् अकेला मात्र देखना और अशुद्ध अर्थात् दो का संयोग रूपसे देखना । दोनोंके मिलनेसे यह जीव और पुद्गलका पिण्डरूप शरीर बना है । अशुद्धकी बात देखना व्यवहार है, केवल की बात शुद्ध है । अशुद्ध निश्चयपनसे यह साधकतम है । हमारी केवलताके साध्यमें निश्चयनय साधकतम है वह उपादेय है । व्यवहारकी बात भी सही है । विरोध करके चलें तब तो वह ठीक नहीं बन सकता है । बात पूरी मान लो, किन्तु साध्य है निश्चयनय । शुद्धरूपसे

साध्य क्या है ? केवल आत्मा सिद्ध करना चाहते हैं । तुम्हें सिद्ध करना है आत्माको । तब साध्य क्या है ? तुम्हारा साध्य आत्मा मात्र है । जो दो की दृष्टि है वह साधकतम नहीं है । वह न हो, ऐसी बात नहीं है । शरीरका एकत्रैवावगाही सम्बन्ध है । उस सम्बन्धका ही नाम यहाँ संयोग है । साधकतम क्या है ? तुम्हें किसका सहारा लेना चाहिए । यह गुणपर्यायों जो होती है यह केवल एकमें हैं । यह आकार जो बन गया, उनमें विचित्र सम्बन्ध ऐसा होता है, उसमें कर्मोदय बाह्य हैं । यह एक द्रव्यमें आते हैं । गुणपर्याय बोलो या आयतक्रम, एक द्रव्यपर्याय कहो, यह सब गुण द्रव्यपर्याय हैं । एक एक कर सभी अपने स्वरूपास्तित्वमें हैं निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध होनेपर भी प्रत्येक द्रव्य अपनी परिणतिमें परिणमता है । कोई किसीका नहीं है । सब अपने-अपने प्रसन्न होनेके नाते चल रहे हैं । अगर किसीको बुखार आ गया तो धरके आदमी कहने लगते हैं—इसकी अपेक्षा यह हमें हो जाता तो अच्छा रहता, यह तो कहना मात्र है । कोई भी किसीका दो डिग्री भी बुखार नहीं ले सकता । जिसपर यह बीतती है उसे ही भोगना पड़ता है । दूरकी न सोचकर इतना ही तो कर लिया जाय कि अपने शरीरको वृद्ध न होने देवें । एक भी बालको सफेद न होने देवें । निमित्तनैमित्तिक भावसे सभी कार्य होते हैं, पर कोई किसीका कर्ता नहीं है ।

अपनी आकुलताकी निवृत्तिके लिये ही जीवका यत्न—आचार्य महाराज ग्रन्थ लिख गये, उससे हम तो यही मालूम करते हैं कि उन्होंने दया करके लिखा है । लेकिन जो शुभ विकल्प आचार्य कर रहे थे उसकी आकुलता न सही गई, इससे उन्हें यह लिखना पड़ा—हम तो कारण बन गये तथा आचार्य महाराज अच्छे काममें लग गये जिससे अशुभोपयोग न हो । जगतके प्राणी दुःखी हैं इससे प्रेरित होकर लिखा होगा तथा वह विषय कषायोंसे छूट सकें, खोटे परिणाम न होवें तथा खाली बैठ कौन सकता था, इससे पूज्याचार्योंको जिनवाणी रुचि, उसे लिख दिया । उनके यह परिणाम न होते होंगे कि इसे लिखो । अपनी रुचिसे प्रेरित होकर रक्षाके लिए आचार्योंने लिखा है । यह सज्जनोंकी ऐसी प्रवृत्ति होती है कि मौलिक लाभ हो जाय, ऐसे पुरुषोंके निकटमें ही वह लाये हैं । आचार्योंका लोहा महान् है, वह स्वयं ज्ञान ध्यानमें रत रहते थे, वह भी दूसरोंको कल्याणमार्गमें लगानेके लिए संकेत करते रहे । जो त्यागी बनकर यह समझें हमने दूसरोंके उपकारके लिए त्याग किया है इससे इन्हें हमारी आज्ञा माननी ही चाहिए, सेवा करना ही चाहिए, यह उनके उस पदके विरुद्ध है । क्रोध न करनेका उपदेश दूसरोंको देवें और स्वयं उसमें प्रवृत्त हो जाय तब उनकी बात कौन मानेगा ? जो भी कार्य किया जाता है वह स्वयंके लिए किया जाता है । तपस्या की जाती है वह अपने लिए ही की जाती है । कोई किसीके लिए कुछ करता ही नहीं, वह तो अपनी विषयकषाय शान्त करनेके लिए करता है । कभी-कभी देहात्मोंमें पूजन करने वाला तक नहीं मिलता । शहरों

तकमें भी अगर दूर मन्दिर हुआ, एकके सुपुर्द ही काम रहा, जब शहरोंमें पूजन होनेमें देर हो जाती है तब मनुष्य कहते हैं—भगवान कितनी देर तक उपासे बैठे रहे। सभीने भोजन कर लिया, किन्तु भगवानका पूजन करनेसे वह तो उपयोग करते नहीं, जो ऐसा कहते हैं वे तो अपने गुणोंमें वृद्धि लानेके लिए नित्य पूजन की जाती है और करना चाहिए। यह श्रावकोंका प्रथम कर्तव्य है।

अब यहां उत्पाद व्यय ध्रौव्य आम्रफलपर घटित करते हैं—आमको सहकार कहते हैं। सहकार अर्थात् यह अज्ञानी जीवोंकी रसनाइन्द्रियकी पुष्टिके लिए बारहों महीने काम देती है। अचार बनाकर मनुष्य काममें लेते हैं। लेकिन इसके बारेमें कहा है—‘जो खावे अचार, उसके रहे न कोई विचार।’ इसमें अनंत त्रस जीवोंकी उत्पत्ति हो जाती है। जैनियोंकी सतेज इन्द्रियाँ शुद्ध वस्तु खाने वाले फिर भी महीनों वर्षोंका अचार खाते हैं यह ही उनके पथभ्रष्ट का कारण है। इसके अतिरिक्त सूखा अमचूर मर्यादित लिया जावे तब उत्तम है। वर्षों महीनों का अचार (अथाना) है, वह खाने योग्य नहीं। २४ घंटेका ही अचार खाद्य होना चाहिए। उसको चलित नहीं होने देना चाहिए। अचार याने जिसमें अनेक आत्मा विचरने लगे। खैर, अब उत्पादादि देखें—आम स्वयमेव हरित भावरूप है, वह पकानेपर पीलेरूप होता है, वह पूर्वोत्तर परिणत होता है। पूर्वकालमें हरा रंग था, उत्तरकालमें पीला हो गया। उन दोनोंमें अनुभव न हुआ। अपनी सत्ताको जो पहले प्राप्त था वही सत्ता आमकी अब भी है। जिस तरह कोई मनुष्य पूर्वभवमें देव था वह अब मनुष्य हो गया तो उसकी आत्मा तो वही है। इसी आत्माके पूर्वपर्यायका व्यय हुआ। एक अंगुली वही है जिसे टेढ़ी की गई तथा सीधी की गई। आम जो हरित था वही पीली पर्यायमें आ गया, किन्तु अंश वहीके वही हैं तथा इस प्रकार भी वह पर्याय नहीं बदलता कि मुंहसे बात निकाली और आम नीला पीला रूपमें हो जावे। एक पुरुष मानकषायके वशीभूत था, कारण पाकर क्रोधमें आ गया। यहां मनुष्य तो नहीं बदला, मनुष्य तो वहीका वही है। केवल मानका व्यय और क्रोधका उत्पाद हुआ है। कोई अज्ञानसे अस्त था और ज्ञानमें आ गया, तब भी पूर्वकी आत्मा पूर्वका मनुष्य ही है। किसीके ज्ञानका व्यय हो जाता है तथा अज्ञानका उदय हो जाता है। कुछ लोग कहते हैं कि हम ५० या ४० वर्षके हो गये तो यहां शरीरपर दृष्टि गई। यदि सही तौरसे विचार करें तो हमसे अधिक अवस्थामें वृद्ध और कोई नहीं। जिस तरह अनादिकालसे हम घूम रहे हैं, उसी तरह अनादिकालके सभी जीव हैं। तब अवस्थामें अनादिकालकी अपेक्षा सभी बराबर हुए।

अपने अपराधका दण्ड खुदको भोगना पड़ता—इस जीवने ११वें गुणस्थानमें भी जाकर राग किया तो वहाँसे आ आकर निगोदिया जीव तक हो जावेगा। संसारमें कितने भव धारण करना पड़े इसकी कोई तादाद नहीं। अनन्त भव धारण कर रहे हैं, किन्तु वह राशि

अक्षय अनन्त नहीं है। निगोदिया जीव १ स्वासमें १८ बार जन्म-मरण कर लेता है। वह स्वास नाकसे ली जाने वाली नहीं है, किन्तु जितने समयमें एक बार नाड़ी खटकती है, उस स्वासको ग्रहण करना चाहिए। इस तरह ग्यारहवें गुणस्थानसे गिरे हुए जीवकी भी यह दशा होती है, तब अपनी तो बात कौनसी? युवा अवस्थामें विवेक नहीं किया, तब तो चमक-दमकमें पतनसे कौन बचा सकता है। अपनी बात सोचें जो पुरुष बाल्यावस्थामें तो ज्ञान प्राप्त नहीं करता, अभ्यास नहीं करता, जवानीमें विषयरत रहता है वह बुढ़ापा आनेपर होने पर अर्धमृतकसम करेगा क्या? आत्मतत्त्वका उपयोग क्या करेगा? अपने अपराधका फल खुदको भोगना पड़ता है।

द्रव्यको गुण, पर्यायोंसे पहिचानो—प्रत्येक द्रव्यमें अनंत शक्तियाँ होती हैं। वह अपूर्व-अपूर्व परिणामनसे परिणमती रहती हैं, उनमें उत्पाद व्यय और ध्रौव्य रहता है। यह गुण और पर्यायोंमें चलता है। बहुत प्रसिद्ध है तो वह उत्पाद व्यय है। जहाँ क्रोधसे मान कषाय आयी वहाँ क्रोधका व्यय और मानका उत्पाद होता है। मानका व्यय होकर माया उत्पन्न हो सकती है या मायाका व्यय होकर लोभका उत्पाद हो सकता है अर्थात् किसी कषायके बाद कोई दूसरी कषाय हो जाती है। जीव पुद्गलका मेल होनेसे असमानजातिक पर्याय होती है। स्वभावव्यञ्जन पर्याय तथा स्वभाव अर्थ पर्याय भी पर्याय है। यह सब बनता है, बिगड़ता है और बना रहता है। जो सत् होगा उसमें उत्पाद व्यय होता ही है। उदाहरणके लिए जैसे आम है, वह शुरूमें हरित भावसे था तथा समय पाकर पीले रूपमें उत्पाद हो गया है तो यहाँ हरे रंगका व्यय हो गया। वह इस रूप स्वभावसे ही परिणमा है तथा सहकार (आम) जो एक फल है वह शुरूसे ही है। जिसमें दोनों अवस्थायें अनुभव न की गई हैं। आम वृक्षपर लगते ही शुरूमें काला होता है, बादमें नीला तथा नीलेसे हरा व हरेसे पीला एवं साथ साथमें लाल रंग भी किसी-किसीमें हो जाता है तथा जब सड़ जाता है उस समय सफेद हो जाता है। यहाँ सब रंगोंका उत्पाद व्यय क्रमशः चलते हुए भी आम द्रव्य स्थानीय मौजूद है। प्रत्येक पदार्थ स्वयमेव उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे युक्त है। वह किसीकी दयासे उत्पाद व्यय नहीं कर रहे हैं। इसी तरह प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वभावमें रहते हैं। कोई पदार्थ मेरा उत्पाद व्यय नहीं कर सकता। कोई सोचे कि मैं इसका यह कार्य कर दूँगा या इसको इस तरह बना दूँगा, अमेरिका भेजकर पढ़ा दूँगा आदि यह सब व्यर्थके विकल्पमात्र हैं। यह विकल्प आकुलतायें ही मचाती हैं। यह कार्यक्रम चलता है। स्वरूपास्तित्व उसके ज्ञाननेत्रमें भूल रहा है। सब पदार्थ अपनी-अपनी सीमा लिये हुए हैं। सब अपनी-अपनी परिणतिसे परिणमते हैं। ऐसा वह द्रव्य पूर्वावस्थासे उत्तरावस्थामें पहुँचा। पूर्वावस्थामें जो गुण थे वे उत्तरावस्थामें परिणम गये। गुण तो दूसरे गुणरूप परिणम नहीं सकते, किन्तु उसका अर्थ हुआ जैसे बालकपना व्यय

हुआ और युवावस्था प्राप्त हुई। आप कह सकते हैं कि बाल्यावस्थामें अवस्थितपने वाला मनुष्य मिट गया और जवान अवस्थामें अवस्थित वाला मनुष्य हो गया या बालपना नष्ट हुआ, युवापना उत्पन्न हुआ, पर बाल्यावस्थामें स्थित मनुष्य जवानीकी अवस्थामें अवस्थित हो गया। इसमें गुणसे गुणान्तर हो गया।

अवस्थामें अवस्थित गुण भिन्न है या नहीं—पहले जो ज्ञानगुण मतिज्ञानरूप था वह केवल ज्ञानरूप हो गया, यह एक सत्त्वमें ही होता है। दोनोंमें रहने वाली एक सत्ता ही हुई। कोई कहे बाबूजी ! आप तो पहलेकी अपेक्षा बदल गये। इसका तात्पर्य पहले जैसी कषाय नहीं मिली, इससे ऐसा कहते हैं। जहां कषायसे कषाय न मिली वहाँ मित्रता बिगड़ गई। जहाँ दोनोंकी कषाय मिल गई, मित्रता बन गई। जो लोग दूसरेको शत्रु मानते हैं वह शत्रुके प्रति नम्रतासे दो दिन ही तो चलकर देखें। अगर एक समय भी प्रेमपूर्वक बोल लेवें तो सब संकट मिट जावें। जैसे कि रोग मिटानेके लिए थोड़ीसी चिकित्सा काम दे जाती है। एक मिट्टीकी पट्टी पेड़पर रखनेसे हल्का शरीर हो जाता है, उसी तरह प्रेमपूर्वक बोलनेसे या साथमें भोजन खिला देनेसे दुश्मन नम्र हो जाता है। कुछ बुजुर्ग तो यह स्वयं चाहते हैं कि हमारा पुत्र या गांवका कोई व्यक्ति थोड़ेसे प्रेमके शब्द तो बोल लेवे। भैया ! अनेक विकल्पोंसे भला तो यह है कि निज स्वरूप ही दृष्टि करो सब स्वयं हो लेगा। अज्ञान अवस्थामें ही मनुष्य सदैव नहीं रहता है। कभी-कभी अज्ञान छोड़कर ज्ञानमें आ जाता है। मिथ्यात्वसे सम्यक्त्वमें भी आ जाता है। एक दृढ़ताकी आवश्यकता है तब जो संकट अनादिकालसे लग रहे हैं, उन्हें छोड़कर निजहितमें रत हो जावें। यह क्या शरीरके वशका काम है ? जो चक्रवर्ती हो जावे अथवा तीर्थंकर, कामदेव आदि हो जावे, यह सब आत्मबलसे प्राप्त होता है।

बड़ा-बड़ा वैभव भी आत्मबल बिना नहीं मिलता है—जब तक उस निज तत्त्वपर दृष्टि नहीं गई तब तक आपत्ति है। जो भी उत्तम सामग्रियाँ मिली हैं उनका निमित्त पुण्योदय है। उनमें पुण्य कार्यका आत्मबल भी तो कारण है। इसके लिए आत्मधर्म जैसा उत्तम रत्न किसे मिलेगा ? यह बड़ा दुर्लभ है। शास्त्र ज्ञानरूपी पानी छेनीसे बार-बार पापकर्म रूपी कलंकको धो सकता हूँ। इससे धन वैभव आदिपर भी कोई असर नहीं पड़नेका। धर्मध्यानमें लगनेसे कुछ कभी आ जावे, यह संभव नहीं। उदयागत अशुभ पूर्वबद्ध कर्म भी होवें तो समझे कि थोड़ा उपसर्ग आया है। इससे गरीबी आदिके दुःख भोग रहा हूँ। सोचे कि धर्मके प्रतापसे संकट टलकर थोड़ा अवश्य हो जायगा या पूर्णतया टल जावेगा। संकल्प दृढ़तासे करनेपर सब कार्य सिद्ध हो सकते हैं। कहा भी है—‘शनैः पन्था’ अर्थात् रास्ता धीरे-धीरे ही तय किया जाता है। यकायक २० मील १ घंटेमें पैदल नहीं चल सकते। धन भी धीरे-धीरे इकट्ठा होता है। किसीके पुण्यके उदयसे धन पुराने मकानमें रखा मिल जाय, यह बात दूसरी है।

पर्वतपर भी धीरे-धीरे चढ़ा जा सकता है। यदि जरूरतसे ज्यादा दौड़कर चढ़े तब आधे रास्ते में ही थकावटसे चूर हो जावोगे। 'शनैः कन्था' कथरी भी धीरे-धीरे सिली जाती है तथा धैर्य से विद्या और ज्ञानकी उपलब्धि होती है। छोटा बच्चा यकायक चाहे एम. ए. हो जावे तो होना असम्भव है। इन सबका अपवाद भी हो सकता है। जैसे विशिष्ट तपस्या करनेसे चौथे कालमें अल्प ज्ञानके बाद ही केवलज्ञान पैदा हो जावे। पूर्व भवके संस्कारसे विद्या विना पढ़े ही या अल्प यत्नसे आ जावे या जैसे राकेटमें बैठकर आकाशके ऊपरी हिस्सेपर पहुंच जावे। सभी कार्योंमें धैर्यकी अपेक्षा आवश्यक है। अगर प्रति दिन आध-आध घंटा समय धर्मध्यानके लिए दें तो एक माहके पन्द्रह घंटे हुये। उतने समयके लिए सब दुनियाके कार्योंसे निश्चिन्त हो जावें तथा सोचें कि मुझे इस समय और कुछ करना ही नहीं। अपनी आत्माको इसके प्रति उड़ेल देवे। उसी समयमें १०-५ मिनट दृढ़ संकल्प हो, 'जिनेन्द्रदेवका स्मरण या सर्व विकल्पोको छोड़ एकाग्र सर्व विचार बंद करके तल्लीन होनेकी कोशिश करें। प्रति वर्ष १ माह या १५ दिन एकान्त स्थानमें धार्मिक वृत्ति वाले त्यागी मुनिके संपर्कोंमें जाकर आत्म-लाभ लेवें, तब उस आनंदको देखें। प्रायः कर चौमासेके समय तो व्यापार मंदा होनेसे व्यापारी वर्गको भी अच्छा सुअवसर धर्मध्यानका मिलता है।

आत्मदर्शनमें ही आत्महित है—प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र-स्वतन्त्र परिणामन करता हुआ अपने उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे जुदा नहीं होता है। पुण्यके फलसे अगर थोड़ी लक्ष्मी मिली और उसीमें हर्षित हो गये तो कोई निजी हित नहीं देखता। पापमें दुखित रहना यह भी विषम रास्ता है, जहाँ कंकड़-पत्थर, काँटोंसे मार्ग युक्त रहता है। परकृत आपत्ति आजावे यह भी तो विषम समस्या है। इससे निवृत्त होनेके लिए ज्ञानी जीव यह विचार करता है। सब पदार्थ क्षणभंगुर हैं, इस भयंकर अटवीमें संकटोंका सामना करते हुए स्वकर्तव्यसे विचलित न होनेपर वह उपहार मिलता है जो सदैव जीवनमें बहार देता हुआ अगले भवको भी सुख-सम्पन्न करता है। ज्ञानीका बल विशेष दर्शनीय होता है, जो अपने बलपर खड़ा होकर सर्व कार्य करता है।

धर्मकार्य बिना जीवनकी खुटाई—एक कथानक है—किसी समय एक मनुष्य मर गया। जिसे ले जाकर मरघटमें डाल आये। वहाँसे एक स्याल (लड़ई) निकला, उसने मनमें सोचा आज तो ज्यादा परिश्रम नहीं करना पड़ा और भोजन मिल गया। तब वह हाथोंकी तरफसे उसको खाना शुरू करना चाहता है। इतनेमें एक कुत्ता जो वहीं खड़ा था, वह रोकता हुआ कहता है, भों ! भों ! स्याल ठहरो 'हस्तौ दान विवर्जितौ' इस मनुष्यके हाथोंको खाना योग्य नहीं क्योंकि इन हाथोंने कभी भी दान नहीं दिया। तब स्याल कानकी तरफसे खानेको जाता है। तब वहाँ भी कुत्ता कहता है 'श्रुतिपुटौ सारस्वत द्रोहिणौ' अरे स्याल ! इन कानों

को नहीं खा, इन कानोंने कभी धर्मकी बात नहीं सुनी। फिर स्याल पेटकी ओर खानेको गया। कुत्ता रोककर कहता है—‘अन्यायोपाजितवित्तपूर्णमुदरम्’ इस पेटमें अन्यायसे कमाया हुआ धनके द्वारा भूख शान्त की गई है। इसलिए इसे मत खा। पीठकी ओर स्याल लपका। तब श्वान (कुत्ता) बोला—इस ओर मत जा, इसने कभी परस्त्रीको पीठ नहीं दिखाई। अब क्या था पैरोंकी ओर खानेको गया। तब कुत्ता कहता है—ठहरो जी, ‘पादौ न तीर्थं गतौ’ इसने इन पैरोंसे कभी तीर्थयात्रा नहीं की है। इसके पैर तो खुदके उदरपोषणार्थ ही यहां वहां दौड़ते फिरे। आँखके समीप स्याल गया तो कुत्ता बोलता है—इन आँखोंसे देव, गुरु शास्त्रके दर्शन कभी नहीं किये। कलेजा भी खानेको गया तो कुत्ता कहने लगा—इसके कलेजे में (मनमें) कभी भी शुभभाव नहीं आये। वैज्ञानिकोंके अनुसन्धानसे पशु, पक्षी आदिका शरीर नाना काम आ सकता है, किन्तु इस शरीरकी न चमड़ी काममें आती है और न हड्डी, बाल आदि कुछ भी काममें नहीं आता। यह भी इसका पुण्यकर्म समझना चाहिए कि मनुष्यका अवयव काममें नहीं लेते अन्यथा काममें लेते होते तो कितने गरीब मनुष्योंको खरीदकर संहार कर दिया जाता। जिस तरह हजारों बन्दरों, मछलियों, मुर्गियों तथा बकरों आदिको मौतके घाट उतार दिया जाता है। पशुओंके पापकर्मका उदय समझना चाहिए जिससे वह अपने जीवनभर जी भी नहीं पाते। कसाईखानोंमें उनको बर्बरतासे मौतके घाट उतार दिया जाता है।

हे मानव इस शरीरके स्वरूपसे शिक्षा लो—इस शरीरकी अपवित्रतापर भी विचार करनेसे वैराग्यकी तरंगें उठ-उठकर टकराती हैं। नश्वर शरीरके बारेमें सोचना भी श्रेयस्कर है, तभी तो वह हितके कार्योंमें लगेगा। देवोंका वैश्वयुक्त सुन्दर शरीर होता है। भोग-भूमियों (मनुष्यों) का भी सुन्दर शरीर होता है जिससे उन्हें विरक्त होनेका अवसर ही नहीं आता। उसका दुरुपयोग करनेपर एकेन्द्रियमें जाकर पैदा होना पड़ता है। जहाँ शरीरका विकास ही नहीं कि इन्द्रियाँ संहनन होनेसे कुछ किया जाय।

उत्पाद व्यय ध्रौव्यकी अपनेमें निगरानी कर अपनेको परखो—भैया ! वस्तुस्वरूपके भीतर प्रवेश करो। एक द्रव्य जितना होता है उतनेपर ही दृष्टि रखकर पूर्वोत्तरकालवर्तिनी परिणतियोंको भी देखो। एक द्रव्यकी पर्याय गुणपर्याय रूपसे दिखती है, क्योंकि गुणपर्यायका समुदाय ही तो द्रव्य है। गुणपर्यायोंकी एकद्रव्यता कैसे है ? सो आमके दृष्टान्त द्वारा समझ ही लिया होगा। जैसे कि आम फल स्वयं ही हरितरूपसे पीतरूप परिणमता हुआ पूर्वके हरित भाव व उत्तरके पीतभावसे अनुभूत की है अपनी सत्ता जिसने, ऐसा होता हुआ वही आम्र-फल होनेसे एक ही वस्तु है, वहां कोई जुदी-जुदी वस्तु नहीं हैं, ‘जुदा-जुदा आम्रफल नहीं है, वही एक है। इसी प्रकार द्रव्य स्वयं ही पूर्ववस्थामें अवस्थित गुणसे (पूर्व गुणपर्यायसे) उत्त-

रावस्थामें अवस्थित गुणरूप परिणामता हुआ पूर्वपर्याय (पूर्वावस्थित गुण) व उत्तरपर्याय (उत्तरावस्थित गुण) के साथ अवशिष्टसत्ताक होनेसे एक ही द्रव्य है, वहां कोई द्रव्यान्तर नहीं है। तथा जैसे ही कि पीतभावसे उत्पद्यमान, हरितभावसे व्ययमान, सहकार फलत्वसे अवतिष्ठमान, वह एक वस्तुके पर्यायद्वारसे सहकार फल ही है, उसी प्रकार उत्तरावस्थावस्थित गुणसे उत्पद्यमान, पूर्वावस्थावस्थित गुणसे व्ययमान व द्रव्यत्व गुणसे अवतिष्ठमान वह एक द्रव्यपर्याय द्वारसे द्रव्य है। इस तरह एक द्रव्यमें गुणपर्यायद्वारसे होने वाले उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य एक द्रव्य ही हैं। यह द्रव्यका साधारण स्वरूप है। इन सब उत्पाद, व्यय, ध्रौव्योंको आत्म-स्वरूपमें देखो।

आत्मज्ञानके उद्यमकी वास्तविक उपासना—जिस अपने ज्ञानके बिना यह जीव अनादिकालसे विकल्पजालोंमें भ्रमण करता आया है वह आत्मज्ञान कैसे हो ? प्रथमानुयोग शास्त्र मन बहलानेके लिए नहीं बना है। जिसमें महापुरुषोंके जीवन-चारित्र्यको पढ़कर स्वयंमें उथल-पुथल मच जाती है कि इन महापुरुषोंके पास इतना विशाल वैभव था उसे ये यों ही छोड़कर चले गये, तब मैं क्यों न उद्यम करूँ ? चरणानुयोग शास्त्र बना वह भी सनकमें आकर नहीं बना, किन्तु चारित्ररहित जीवन कोई महत्त्वप्रद नहीं, इसी तथ्यपर लिखा गया है। करणानुयोग शास्त्रमें महान् ज्ञान भर दिया। इसका तात्पर्य यह नहीं कि उससे कोई मौलिक मौज लेना हो तथा द्रव्यानुयोगमें द्रव्यकी चर्चा करके भीतरसे खोखला बना रहना, यह भी इसका विषय नहीं। समस्तका प्रयोजन यह है कि जो अनेक प्रकारकी तरंग उठ-उठकर जीवनकी शान्ति भंग कर देती है, वह टिकाऊ रह सके। वह सब इस प्रयोजनको लिए हुए है कि स्वाध्याय करके ज्ञान बढ़ाया जाय। जैसे धनकी महिमा है, वैसे ज्ञानकी महिमा आत्मामें दृढ़ कैसे हो ? वह किस रूपका हुआ करता है तब आत्माका प्रत्यय भी दृढ़ कर लेवे। कुशल कारीगर महलकी नींव दृढ़ करके आगे बढ़ते हैं। तत्त्वज्ञान और वैराग्यका महल उठानेके लिए आचार्यों ने एक ठोस नींव रखी है। आत्मा सत् है, यह सत् उसे कहते हैं जिसमें सत्ता है। वह सत् सत्तासे जुदा नहीं है। केवल समझने और समझानेका भेद है। इसीको आज फिर कहते हैं। अब सत्ता और द्रव्यके अभिन्नपनाको बताते हैं। इनमें केवल एक भाव और भाववानका फर्क है। एक स्वरूप दृष्टिसे देखा तो आत्मा नजर आया। द्रव्यमें सत्ता उपन्यस्त है। कितना उत्तम शब्द दिया है कि अर्थान्तर है, सत्ता द्रव्यसे जुदा पदार्थ नहीं है। इसीका उपन्यास है अर्थात् ये पासमें रखते हैं। उपन्यास पढ़ने वाला भी अपने लिए उसी रूप बनानेकी चेष्टा करता है। अगर उसमें अच्छी शिक्षा हुई तो ग्रहण कर लिया। यदि उसमें किसी भोले पत्र का वर्णन है तो अश्रुपात तक होने लगता है अथवा किसी छली पातकी पात्रका वर्णन है तो उसपर खिजलाहट उठती है। उपन्यास पढ़ते समय कोई जेब भी काट लेवे तो ध्यान नहीं

रखते । सत् सत्तान्तर नहीं है । इसको उपन्यास करते हैं, इस रूप अपना उपयोग बनाते हैं । इसे कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं ।

ण हवदि जदि सद्व्वं असद्व्वं हवदि तं कहं दव्वं ।

हवदि पुणो अणं वा तम्हा दव्वं सयं सत्ता ॥१०५॥

द्रव्यकी सद्रूपता—यदि द्रव्य सत् नहीं है तो क्या निश्चय हो गया कि वह असत् बन गया । है ही नहीं तो द्रव्य ही क्या ? द्रव्य तो सत् रहा नहीं तब द्रव्य सत्तासे अन्य रहा, सत्तासे पृथक् रहा, यह कैसे हो सकता है ? कोई भी मूलसे असत् बात नहीं कर सकता । ऐसा कोई नहीं है जिसका मूल नहीं और उसे मान लेवे । जैसे ईश्वर जगतका कर्ता है तो यहाँ ईश्वर तो है ही तथा जगत भी है । तुम्हारा यह विकल्प 'ईश्वर जगतका कर्ता है,' यह हो गया । बस अब इस विकल्पका मंडन-खंडन है, आकाशका फूल है । यहांपर आकाश होता ही है और 'है' भी तथा फूल भी होता है । 'गंधेके सींग' गधा होता है उसके सींग नहीं होते । तब भी यह ज्ञात होता है कि किसीके सींग होते हैं । गंधेके सींग यह विकल्प असत् है । सर्वत्र मूल तो होता ही है यहाँ कुछ मूल भी नहीं, तो असत्का भी कोई आधार है । विवक्षा-वश असत्का आधार तो अन्यका सद्भाव पाया जाता है । दुनियामें जितने शब्द हैं उनका मूल्य है । यह शब्द निर्वाच्य भी नहीं है । अगर निर्वाच्य होते तो उनका महत्त्व भी क्या रहता ? जैसे मैं कहूँ 'घ, ला, ट, ओ' इनका भी कुछ महत्त्व है । उनको बखेड़कर इस तरह कर सकते हैं, घट लाओ । कोई द्रव्य ऐसा है जिसमें स्वरूप अस्तित्व नहीं हो । यदि एक द्रव्य स्वरूपसे सत् न हो तो क्या बनेगा ? कोई भी द्रव्य दूसरे द्रव्यका अकर्ता है । ईश्वर भी जगतका अकर्ता है । हम भी अपने द्रव्यके कर्ता हैं, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य स्वरूपसे सत् होता है । सत्से सत्ता भिन्न नहीं है ।

अभाव भी किसी न किसीके भावरूप रहता है—एक व्यक्ति विलायत गया, वहाँ उसका भाषण होना था । वहाँ उसके लिए विषय दिया गया 'शून्य' पर बोलनेके लिए तो उसने वहांपर भी दो तीन घंटा बोल दिया है । 'है' के लिए ही यहाँ जिक्र कर रहे हैं । यहाँ तो 'है' के स्वरूपका जिक्र कर रहे हैं । 'है' ऐसा है । कुछ लोग यह कहें कि आत्मा सो परमात्मा, किन्तु आत्मा भी है, इसपर दृष्टि नहीं है । जो है वह स्वयं अपने आप है, किसीकी कृपासे नहीं है । दो विकल्प किये थे—अगर द्रव्य स्वरूपसे सत् नहीं है तो दोनोंमें विकल्प उत्पन्न होते हैं । द्रव्य असत् हो गया तो धौष्यपना तो रहा ही नहीं । आत्मा अपने आपको धारण ही नहीं कर सकता अर्थात् अपना स्वरूप अस्तित्व ही नहीं रख सकता । यहाँ तो ऐसा कह देते हैं कि उसने अपना अस्तित्व ही मिटा दिया, अपनी बात ही नहीं रख सका सो गिर गया । द्रव्य अस्तित्वसे रहित नहीं, स्वयं हूँ । मेरा कोई बिगाड़ या सुधार करने

वाला नहीं है। हम ही अपने बिगाड़से सुधार तथा सुधारको बिगाड़रूप कर लेते हैं। कोई किसीका सुधारने वाला नहीं, फिर भी मोहवश परद्रव्यके लिए आकुल-व्याकुल होते-चले जा रहे हैं। अगर धन है तो उसको चोर डाकू लूट भी ले जावें, किन्तु इस अनुपम ज्ञानधनको कौन लूटने वाला है, वह सदैव काम देता रहता है। जब सन्तोष मिलेगा तब तत्त्वज्ञानसे मिलेगा। अगर कहीं द्रव्यस्वरूपसे ही असत् हो जाय तो असत्पनेको प्राप्त हो जायगा। सत्ताके बिना अपना स्वरूप धारण कर लिया। जब मान लिया या मानते हो द्रव्य है तो अब सत्तासे लिपटने की क्या जरूरत है? सत्ताके बिना ही वह है और वह सत्ताके बिना ही हो गया है। द्रव्य सत्ता को नष्ट कर देगा, अप्रयोजन कहने या करने वालेकी कोई विशेषता नहीं रहती। अनर्थक चीज ही क्या हो सकती है? लोकव्यवहारमें इस तरह लगा लो, कोई भी वस्तु न होवे, यह होना सम्भव है क्या? बड़े-बड़े आफीसर लोग आजकल सबकी जानवरोंकी उपयोगिता सिद्ध कर रहे हैं। इसे अर्थक्रिया नहीं कह सकते। सब निज अर्थ क्रियाकारी है, सब अपने-अपने अंदर क्रिया करते हैं। कोई किसीका कर्ता होता वो कोई पदार्थ कहीं रख दो और उसका ध्यान न रहे तथा फिर कुछ समय बाद देखा जानेपर उसे नहीं मिलना चाहिए था या ज्योंका त्यों रहना चाहिये था।

आत्मचिह्नकी प्रतीति बनाये रहो—एक लड़केका नाम रलिया था। उसकी माँ लड़के से बोली—बेटा, साग-भाजी बाजारसे जाकर खरीद लाओ तो रलिया कहता है कि हम बाजार जावेंगे तो वहाँ रुल जावेंगे। इसलिए मैं नहीं जाता। तब माँ ने उपाय सोचा और कहा कि तेरी कलाईमें कपड़ा बांधे देती हूँ, उसे देखते रहना और कहना कि हम नहीं रुले। वह बाजारमें गया और साग-भाजी खरीदकर घर आने लगा, तो कपड़ा कच्चे घागेसे बंधा था, जिससे भीड़-भड़क्कामें वह टूट गया। तब चिल्लाता हुआ आया और घर आकर बोला कि माँ मैं रुल गया, माँ मैं रुल गया। तब माँ बोली कि यह मेरा लड़का जैसाका तैसा खड़ा है, इतनेपर कहता है—‘मैं रुल गया।’ यह क्या बबाल है? तब माँ ने उसे सुला दिया और सोतेमें माँ ने उसे वैसा ही कपड़ा बांध दिया। तब वह सोकर उठा तो दिखाया कि यह तो कपड़ा तेरा जैसाका लैसा बंधा है, इससे वह सन्तुष्ट हो गया। इसी तरह जब तक स्वरूपास्तित्वमें नहीं है तब तक यह भ्रम हो रहा है कि परपदार्थोंसे मेरा भला बुरा होता है। स्वरूपास्तित्व ध्यानमें आ जाय तो क्यासे क्या हो जाय। एक यहीके राजेन्द्रकुमार लड़केके बारे से सुना था। एक समय सेठजी के यहां हाथी खरीदा हुआ आया तो बोला—हमें तो हाथी चाहिए और रोने लगा। तब उसे उसके पिता हाथीके पास लिवा ले गये और कहा कि यह है हाथी। तब भी नहीं माना तो उसके ऊपर बैठा दिया, फिर भी नहीं माना और कहने लगा कि इसे खरीद लो। उस हाथीको आंगनमें खड़ा करा दिया। तब भी वह न माना और बोला

कि तुम तो इसे हमारी कुज्जी (लौटा) में रख दो। वह कुजियाकी जगह यह भी कहने लगे कि जेबमें रख दो तो उसकी इच्छा कौन पूर्ण कर सकता है ? इसी तरह यह जीव अनेक प्रकारके भूटे-भूटे विकल्प करता रहे तो उसे कौन समझा सकता है ? अगर कोई भी अनुकूल या प्रतिकूल चले तो तुम्हारा क्या बनाता बिगाड़ता है। कुछ लोग इस बातपर गुस्सा होते हैं कि अमुक-अमुक व्यक्ति आदि मंदिरमें नहीं आते। लेकिन उनके इस क्रोधसे क्या लाभ मिलने का ? क्रोधित न होकर उन्हें वस्तुस्वरूपका उपदेश समझाया जाय तब कहीं हृदयमें बैठ जावे तो उत्तम है।

जिसको अपने आपकी दया नहीं है वह क्या अपना भला करेगा—अपनी खुदकी गर्ज होगी तभी तो शुभ व आत्मकल्याण सम्बंधी कार्य करेगा। दुनियामें और भी तो देश हैं। अमेरिका, इंग्लैण्ड, जापान, चीन, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया आदिमें भी तो हैं। क्या उनका भी यह सुधार कर सकता है ? जो भी व्यक्ति भला-बुरा कार्य करता है वह अपने माफिक अच्छा ही तो करता है। क्योंकि मिथ्यात्वसे ग्रस्त है चित्त जिसका वह तो उसी तरहके कार्यमें प्रवृत्त होगा। यदि उसका पुण्योदय होता तो वह उन कार्योंसे मुख कभीका मोड़ लेता। जगतमें अनंत आत्मायें तो हैं, फिर इन्हीं एक या थोड़ेसे व्यक्तियोंको देखकर क्यों दुःखी होते हो ? जितने भी जीव हैं वह अपनी-अपनी योग्यतासे परिणमन करते चले जाते हैं। कोई किसी द्रव्यको परिणमा देवे, यह नहीं हो सकता। प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने स्वरूपमें स्थिर है। पुराणों में पढ़ो तो ज्ञात होगा। बड़े वैभवशाली महापुरुषों, राजाओं, सेठोंने खूब गृहस्थीका साज-सामान इकट्ठा किया और जब दिल ऊब गया तो उन्हें दृष्टि पसारकर पुनः देखनेकी भी इच्छा नहीं हुई और विरक्त होकर जंगलकी राह ली, जहां उनकी परीक्षा ठंडी, गर्मी, धूप, बरसात, वायु प्रकोप एवं जीव-जन्तुओं आदिने खूब ली तथा उसमें यह १०० के खरे सोनेके सामान उतरे। ऐसे ही आत्मायें पूज्य हैं। अपने आत्मतत्त्वको देखो—तुम शुद्धसत्ताक हो, स्वयं सत् हो। द्रव्यका स्वरूप ऐसा ही है। द्रव्य स्वभावसिद्ध है, स्वयं सत्स्वरूप है। यदि द्रव्य स्वरूप से सत् न हो तो या तो वह असत् हो जायगा या सत्तासे पृथक् हो जायगा। असत् होता हुआ तो ध्रौव्य असंभव होनेसे द्रव्य अपने आपको भी न धार सका, तब द्रव्य अस्तको प्राप्त हो गया, शून्य हो गया। द्रव्य (सत्) सत्तासे पृथक् है तो जब सत्ताके बिना ही द्रव्यने अपनेको कायम रखा तो सत्ताका इतना ही प्रयोजन था कि सत् कायम हो सो तो बिना सत्ताके ही सत् होगा, सो सत्ता ही अस्तको प्राप्त करा दी गई। फिर यथार्थ बात क्या है ? बात यथार्थ यह है कि स्वरूपसे ही सत् होता हुआ द्रव्य ध्रौव्यके संभव होनेसे आप अपनेको धारता हुआ द्रव्यको उठा देता है अर्थात् प्रसिद्ध कर देता है तथा सत्तासे अपृथक् होता हुआ द्रव्य (सत्) अपनेको धारता हुआ इस ही प्रयोजनको रखने वाली सत्ताको भी प्रकट कर देता है, प्रसिद्ध कर देता है।

द्रव्य स्वयं सत् है—द्रव्य स्वयं सत् न होवे तो दो आपत्तियां आवेंगी—(१) द्रव्य असत् हो जायगा । (२) सत्तासे न्यारा मानना पड़ेगा । द्रव्य असत् होनेसे कुछ भी नहीं रहेगा । जब सत्ता ही नहीं है तो द्रव्यकी मौजूदगी ही कैसे रहेगी ? सत्ताके बिना अपना स्वरूप नहीं रह सकता । सत्ता ही मुख्य है और देखते जाओ, फिर उत्पाद व्यय ध्रौव्य वाला सदैव बना रहता है । यह लक्षण द्रव्यका निरखते जाओ । कार्य यह हो जावे और यह नहीं हो पावे, यह सब अपने-अपने विकल्पमें कार्यक्रम बनाता रहता है । वृद्धता न आवे इसके लिए उस प्रकारके कार्य किये जावें तब हैं । तीर्थंकरोंको कहाँ वृद्धपना आता है या अत्यधिक पापसे उत्पन्न नरक में नारकी जीवोंको भी वृद्धपना नहीं आता है । द्रव्य स्वभावसे तथा स्वरूपसे ही सत् है किसी की कृपासे नहीं है । विलीन हो मोह जावे तो निज स्वरूप समझमें आवे । स्वरूपसे सत् है तभी द्रव्य है, नहीं तो द्रव्यपना भी प्राप्त किसको होता है ? सम्बंधकी बात भी देखो तो जीव का पुद्गलके साथ सम्बंध होनेसे कुछ बनता भी है । लेकिन जीवसे जीवका कुछ भी नहीं बनता । जो इतना पृथक् है तब भी जो मोह होता है वह जीवको लक्ष्य लेकर होता है । यह जीव मित्रोंसे मोह करता है, स्त्रीसे मोह करता है, पुत्र, भाई, पिता, माता, बहनोई, साला, चाचा, भतीजा आदि किस-किससे मोह करता है ? यह मोहकी लीला विचित्र है । यह सब व्यावहारिक मोह करता है । अगर द्रव्यको लिया जावे तो पुद्गल व जीवसे भी मोह नहीं करता । शुद्ध चैतन्यसे मोह किया जाता है क्या ? बिगड़े जीव पुद्गलसे मोह करते हैं । शुद्ध चिद्रूप आत्मतत्त्वका विचार करो, स्वरूपसे सत् हो गया तो ध्रौव्यपना संभव हो गया । वस्तु-स्वरूपसे सत्ता है, सत्तासे अभिन्न है, वह स्वतः सत् है तथा उसकी सत्ता द्रव्यसे अभिन्न है । स्वरूपसे सत् न मानो तो आपत्ति । सत्तासे अभिन्न न मानो तो आपत्ति । द्रव्यमें सत् और सत्ता दोनों रहते हैं । यहाँ ऋजुसूत्र नय जैसी विशेष्य विशेषणके अभाव वाली दृष्टि चलती भी है और तीर्थप्रवर्तनके लिये नहीं भी चलती है । जैसे कोई कहे—“कौआ काला” यह ठीक नहीं है, क्योंकि जितना सारा कौवा है वह सारा काला नहीं और जो-जो काला है वह सब कौवा नहीं, यहाँ जो-जो सत्ता वाला है वह सत् है और जो-जो सत् है वह-वह सत्तावान है । जैसे कहो—काला कौआ । तो कौवेसे काला रंग क्या भिन्न है ? वह कृष्ण वर्णके संयोगसे नहीं बना । कौआ जब अपने आप काला है तो उसको जुदा कहनेकी जरूरत क्या है ? उसी तरह सत्ता और सत् स्वयं अभिन्न हैं, उनको भिन्न-भिन्न कहनेकी जरूरत क्या है ? द्रव्य अपने आप परिणमता है उसे कोई परिणमाता नहीं है । द्रव्यमें जो विशिष्ट परिणमन है वह भी निमित्तका सन्निधान है तो वह अपने आप परिणमता जाता है ।

किसी भी द्रव्यका स्वभाव औपाधिक नहीं होता है—स्वभावसे ही प्रत्येक द्रव्य परिणमता रहता है । इसलिए द्रव्यको स्वतः सत्के साथ मानना चाहिए । द्रव्यके पास जाओ

अथवा आत्माके पास जाओ, दोनोंका फल एक है। विशेष पर्याय या भेदमें विकल्पता चलती है। विकल्प करनेका संस्कार है। उसे द्रव्यस्वरूपके उपयोगरूपी करण से नष्ट करो सत्से द्रव्यको मानना चाहिए, उसके समीप पहुंचना चाहिए। निरखकर क्या करना? उस रूप उपयोग बनाकर अनाकुल रहना। भोजनको देखने मात्रसे संतुष्टि नहीं होती है। किन्तु उस भोजनको खा लेना चाहिए तब संतुष्टि होगी। उसी तरह सत्त्व देखनेका प्रयोजन क्या? निर्विकल्प शान्ति एवं निर्मोहता होवे तो आगे बढ़ा जावे जिससे कर्मनिर्जरा होवे। हमें तथा आपको कौनसा कार्य करना है? मुख्य लक्ष्यपर दृष्टि होना चाहिए। ऐसा तत्त्वज्ञान हो कि निर्विकल्पताका स्वाद लेते रहें। कोई कहे सन्तानको पढ़ा लिखाकर योग्य बना दें, अच्छी नौकरी दिला दें तब कुछ करेंगे तो क्या यह सोचने वाले वृद्ध नहीं होंगे या मृत्यु नहीं आवेगी। जब वृद्धता आ जाती है तब अपना शरीर स्वयंपर नहीं सधता है। वचन लटपटाने लगते हैं, पैर कमजोर हो जाते हैं; नाक, कान, आँखोंकी शक्ति कमजोर हो जाती है। मृत्युका भरोसा नहीं, फिर भी ख्याली पुलाव बनाता रहता है। तुम इन्हें खास मानो तो उनका कार्य होगा और न मानो तो उनका कार्य न होगा। जब तक राग भाव बना हुआ है तभी तक तो तुम धन वैभव, कुटुम्बीजनोंमें मोह कर रहे हो। सोचते १ लाखका धन हो जावे, फिर १ लाखसे, १ करोड़ हो जावे और एक अरब भी हो जावे, किन्तु साथमें इसका भी पता है खुदपर क्या बीतेगी? लोगोंके मुँह सुना जाता है कि जिसके पोता, पड़पोता, पंती संती अर्थात् पाँचवी पैरी हो जावे और बुढ़ा आँखोंसे देख लेवे तो उसके साथ सोनेकी नसेनी (छोटी सी) मरनेपर रखी जाती है। क्योंकि नसेनी स्वर्गके चढ़ानेके काम आती है, लेकिन नसेनी उतरनेके भी तो काम आती है। तुम क्या स्वर्गमें भेजनेके ठेकेदार हो जो इस प्रकारकी लीला करते हो? उसने लड़केमें मोह किया, नातीमें मोह किया, पोतेमें मोह किया, पंतीमें मोह किया और संतोमें मोह किया तो इतनी पीड़ीका मोह ही करता रहा, ऐसी दशा में चढ़ना संभव है या उतरना। यह मोहका ही तो फल है कि तुम इन्हीं सन्तापोंमें पलते रहो। इस मोहमें मिथ्या बुद्धि, मिथुनबुद्धि और युग्मबुद्धि हो जाती है तब अपनेको अन्यके मोहसे पृथक् कहाँ कर सकेगा? मोहरूपी ममता पिशाचिनी परमें ही भ्रमण करती है।

निज स्वरूपास्तित्वकी प्रतीति धर्मका मूल है—अपने स्वरूपास्तित्वमें आना यही धर्मका मूल है और यही धर्मकी शुरुआत समझना चाहिए। यही स्वरूपास्तित्व सर्वश्रेष्ठ है और वह सत्से जाना जाता है। सत्ता जुदी है और मैं जुदा हूँ, यह भेद इसमें उत्पन्न नहीं होता, इसलिए इसे नहीं करना चाहिए। किसी व्यक्तिके लिए भोजन बनाया और उसे परोसा नहीं तथा कहे यह हलुवा है, इसमें गंजबासोदा मिलकी सूजी पड़ी है, सहारनपुर शुगर मिल्सकी शकर है, चंदोसीका उत्तम घी पड़ा है तथा अमुक-अमुक प्रकारका मेवा इसमें

है। यह छुहारा, छोटी दाखकी साग है, पूड़ियाँ, कचोड़ियाँ आदि हैं। वर्णन तो दुनियाभर का कर डाले और परोसनेमें विलम्ब करे तो बुद्धिमत्ता नहीं, किन्तु वह वर्णन सुनकर थालीमें लेकर मुँहमें रख लेगा तो सब विशेषतायें उस भोजनकी समझा जावेगा। अनेक विकल्प बनानेसे क्या फायदा होता है? जिसको समझा रहे हैं उसे मुखपर रखनेमें एक सेकेंडमें सब समझमें आ जावेगा। दुनियाके इसी तरहके वर्णन मेरे कोई काम नहीं आनेके। संसारका कौनसा पदार्थ मेरा आलंबन हो जायगा? केवल अपना स्वभाव ही साथ रहेगा, वही समझमें शीघ्र आ सकता है। भाव और भाववान अपृथक् नहीं है। चेतनका चैतन्य ही स्वभाववान हुआ, पृथक् नहीं है। बुद्धिकृत ही तो अन्तः क्रिया है और कुछ भिन्न नहीं है। यह स्वयं अपने परिणामनमें परिणामता चला जाता है। कोई विरक्त होवे और मंत्री उल्टा समझाने लगे, कुटुम्बी लोग भी ऐसा ही समझाने लगे तो भी उसे कोई भी नहीं रोक सकता है। तत्त्व ज्ञान जग गया फिर उसे परपदार्थोंमें फँसनेकी क्या आवश्यकता रह जाती है?

वैराग्यको कोई कैद नहीं कर सकता—सुकमालको विशाल महलोंमें बन्द किया गया, अनेक प्रयत्न किये कि यह बाहर नहीं निकल पावे। सुकमालमें जब तत्त्वज्ञान जग चुका तो कपड़ोंकी पोटलियाँ उठाकर धोती साड़ियों आदिको ऎंठकर रस्सी जैसी बनाता है और महलके पिछले भागपर लटकाकर उसके सहारे उतर जाता है। जिसके ध्यानमें यह समा चुका कि इस संसारमें अनादिके दुःख भोग रहा हूँ। अब इन बन्धनोंको तोड़ना है, वह कदापि इस मोहजालमें नहीं रुक सकता। कुछ लोग कहते हैं—जिनेन्द्रदेवकी पूजन कर लो, पाठ किया करें, माला जप लिया करें जिससे तुम्हारा वैभव सुरक्षित बना रहेगा और मनो-वाञ्छित फल मिलेगा। कुछ अंशों तक तो इसे ठीक कह सकते हैं, कारण वह अन्य देवोंपर श्रद्धा न कर जिनेन्द्रपर श्रद्धा कर रहा है, जिससे फल तो मिलेगा ही, लेकिन लक्ष्य यह न रहे कि मैं पूजन, सामायिक, पाठ, दर्शन, भक्ति इसलिए कर रहा हूँ कि मेरे धन वैभव आदि बढ़ जावें। बिना फलकी इच्छासे यह कार्य होना चाहिए। क्योंकि इन धार्मिक कार्योंसे मोक्ष के संस्कार जो परम्परासे दृढ़ हो रहे थे, उनके बदले हमने यहींपर इस भूसे रूप संपत्ति मांगकर उसको नष्ट कर दिया या उस फलसे वंचित हो गये। वह वञ्चना रत्न पाकर चिड़िया उड़ानेमें फेंक देनेके समान है तथा पूर्व भवका जो पापबंध होगा उसे तो धर्म करते हुए भी भोगना होगा। अपनी तो बात क्या श्रीरामचन्द्र, श्रीपाल, सुकमाल, सुदर्शनसे महा-पुरुष जैसे व्यक्ति नहीं छूटे। हाँ धार्मिक कार्य करनेसे उस पापकर्मका अनुभाग कम हो जाता है। सातिशय सम्यग्दृष्टिके सातिशय पुण्य बंधता है। पुण्यकी सीमा है वह उसे प्राप्त होगा। कोई महान पुण्यके प्रभावसे इन्द्र, चक्रवर्ती, तीर्थंकर, कामदेव आदि हो जाता है। सम्यक्त्वसे पुण्य नहीं बंधा, किन्तु सम्यक्त्वरूप निर्मल परिणामोंके होते हुए जो राग रहा है, उसके

निमित्तसे पुण्य बंधा है। एक प्रधानमंत्रीकी कोठीका चपरासी भी प्रधानमंत्रीके प्रसङ्गमें होनेसे काफी इज्जत पा जाता है। अगर कोई त्यागी अकेला स्कूल आदिमें जावे तो उसे वहांका चपरासी भी नहीं पूछता, किन्तु चार सेठ साथमें होवें तो वही मास्टर, मुनीम, चपरासी सेठोंसे ज्यादा आवभगत (आदर) त्यागीजी की करते हैं। यह बात तो यों ही कह दी, अचरज करते हुए न देखें।

तत्त्वदर्शनकी महिमा—सम्यग्दृष्टिके जो राग रहता है उससे बड़े-बड़े वैभव मिलते हैं। अगर यह गलती न रहे तब कहना ही क्या? मोक्षलक्ष्मीका स्वामी शीघ्र हो सकता है। इस वैभवके मुकाबले वह कितनी अनुपम अनमोल निधि सदैवको मिल जाती है, वह हमारे अनुभवमें नहीं आ पा रही। सर्वार्थसिद्धिका मूल तत्त्वज्ञान है। द्रव्य स्वयं सत्स्वरूप है, यह यहां बताया जा रहा है। इससे अनेक बातें प्रकट हुईं, द्रव्य सत्तासे पृथक् नहीं है, द्रव्य सत्ता के समवायसे सत् नहीं है, द्रव्य उत्पाद व्यय ध्रौव्यात्मक है। द्रव्य प्रदेशगुणपर्यायात्मक है इत्यादि। इस गाथामें द्रव्य व सत्तामें अनर्थान्तरता बतानेके लिये युक्तियां देकर अब अंतमें आचार्यदेव कहते हैं कि द्रव्यको स्वयं सत्स्वरूपसे मानना चाहिए, क्योंकि अब भाव भाववानमें पृथक्ता न होनेसे उनमें अनन्यता है। यहां मानना चाहिये इसका वाचक 'अभ्युपगन्तव्यं' शब्द दिया है—“अभि-उप-गन्तव्यं” अर्थात् सर्व ओरसे अति निकट जानना चाहिए जिससे शिक्षा मिलती है कि द्रव्यके सामान्य शुद्ध स्वरूपके उपयोग द्वारासे सामान्य आत्मतत्त्वमें उपयुक्त होना चाहिए। अब पृथक् तथा अन्यत्वका लक्षण खोलते हैं। यहाँ उन्मुद्यति शब्द दिया है, जिसका अर्थ हर्षपूर्वक प्रकट करते हैं। जिस तरह शीशीमें सत् आदि द्रव्य भरे हों उनको निकालते हैं, उस भरे हुए तत्त्वपर अपृथक्त्व व अन्यत्वपनेकी छाप लगाकर उद्घाटन करते हैं तथा अपृथक्त्व एवं अन्यत्वको जानते हुए वह हमारे सामने है, उसका उपयोग करना हमारी शक्तिपर निर्भर है। मनुष्य एक पैसेकी हंडी भी ठीक बजाकर लेता है। उसी तरह जिस तत्त्वको ग्रहण करना चाहते हैं, उसे खूब ठोक-बजाकर स्पष्ट करके प्राप्त करो, तब उसका अनुसरण करो। जो उसे विवेकपूर्वक ग्रहण करेगा वह असली तत्त्वको पावेगा। अब पृथक्त्व और अन्यत्वका लक्षण उन्मुद्रित करते हैं।

प्रविभक्तपदेसत्तं पुधत्तमिदि सासणं हि वीरस्स ।

अण्णतमत्वभावो ण तव्भवं हवदि कथमेगं ॥१०६॥

प्रविभक्तप्रदेशपना होनेसे पार्थक्यकी सिद्धि तथा अतद्भाव होनेसे अन्यत्वकी समझ—
प्रविभक्तप्रदेशपना (जुदे-जुदे प्रदेश होने) को ही पृथक्त्व कहते हैं। ऐसा श्री वीर भगवानका शासन (उपदेश) है तथा अतद्भाव (लक्षण एक न होने) को अन्यत्व कहते हैं। जो तद्भवत् (सर्वथा एक ही लक्षणरूप) नहीं है वह कैसे एक है? पृथक्त्वमें तो सब कुछ अलग-अलग है

ही, किन्तु अतद्भावको ऐसा समझना कि एक ही वस्तुमें व्यवहार प्रवृत्तिके लिये जो गुण गुण की स्थापना की जाती है उसमें लक्षणमात्रका भेद करना होता है, उस दृष्टिसे एक वस्तुमें ही अतद्भाव सिद्ध होता है। अन्यपना देखना चाहते हो तो सही सत्तामें, जिसमें विभाग न हो, उसे इस तरह मानो—विभक्त हो गया है पृथक्त्व प्रदेशपना जिसमें, ऐसा वह प्रदेश पृथक् नहीं हुए, इस तरह देखो। यह अंगुली है, इसमें गुलाबी रंग है, वह अंगुलीसे पृथक् नहीं है। जो अंगुली है उसीके साथ उसका रंग है तथा जब हम रंगका वर्णन भिन्नपनेसे करना चाहें तो भिन्न है भी, किन्तु उसका प्रदेश जुदा-जुदा नहीं है। वहाँ अन्यत्व लक्षण भेदसे है। सत् और सत्तामें फर्क (डिफरेन्स) तो है, किन्तु पृथक् (सपरेशन) नहीं है। जिस तरह सपरेटा दूध (मक्खन निकला दूध) रहता है, इस तरह जुदा-जुदा नहीं है। जिसमें बिल्कुल जुदापन ही गया है, इस तरह सत् सत्तासे जुदा नहीं है। प्रदेश जिसमें पृथक् हो जावें, उसे प्रविभक्त प्रदेश कहते हैं। यह वीर भगवानका शासन है, इसमें तत्त्वका मंथन खूब किया गया है। मंथन करनेके बाद जैसे मक्खन निकलता है, उसी तरह यहाँ तत्त्वको खूब वाद-विवादपूर्वक ग्रहण किया गया है। अन्यत्वमें अतद्भाव है। अतद्भावी मात्र ऐसा अन्यत्व है, जो समझमें एक रूप न हो। अतद्भाव होनेसे वे सब सत् हैं, यह कैसे कह सकते हो? सत् अपने गुणोंसे परिपूर्ण है, उसमें किसीका मिश्रण नहीं है। इस तरहका मैं एक आत्मा अपने-अपने गुणोंमें परिणमता हुआ स्वभावसे पृथक् नहीं हूँ। इसीके ऊपर आगे भगवान कुन्दकुन्दाचार्यकृत गाथा पर आचार्य अमृतचंदाचार्य सूरि जी प्रकाश डालेंगे।

द्रव्य और सत्ता जुदी चीज है या एक—‘द्रव्य और सत्ता जुदी चीज है या एक’ इसपर विचार चल रहा है। द्रव्य और सत्ता प्रदेशसे जुदी नहीं हैं किन्तु वाच्यवाचक भावसे तथा लक्षणसे जुदी हैं। साधारण रूपसे यह भी मालूम है कि द्रव्य पिण्डपनेकी अपेक्षा क्षेत्रपने की अपेक्षा, कालपनेकी अपेक्षा, भावकी अपेक्षासे पहिचाना जाता है। अन्यत्वका यह दूसरा स्वरूप है। दो भाई एक घरमें रहते हों और उनमें आपसमें मनमुटाव हो जावे तो कहा जाता है अब तो तुम दूसरे हो गये। हालांकि भाई वही हैं किन्तु दिल फटनेसे बीचमें भेदकी एक दीवार पड़ गई है। इससे दूसरे कहे जाने लगे। कुछ समय वाद अलग-अलग घरमें रहने लगे। चकिया चूला जुदे-जुदे बंट गये। तब कहा जाता है अलग अलग घरमें रहने लगे। सत् और सत्ता जुदे-जुदे हैं या अन्य अन्य हैं। जुदे जुदे हैं या पृथक् पृथक् हैं। दोनों जुदे तो हैं तथा अतद्भावरूप अन्यपना है किन्तु प्रदेशपनेकी अपेक्षा जुदे नहीं हैं, बिल्कुल पृथक् हैं प्रदेश जिसके, ऐसा वह पदार्थ, प्रविभक्त जुदे-जुदे हो गये हैं प्रदेश जिसके ऐसा वह पदार्थ पृथक् है, यह अनेक द्रव्योंमें घटित है। यह बात सत्ता और सत्में संभव है क्या? यह सत्ता और सत्में संभव नहीं है। कोई कहे आग वहीं पड़ी रहे और गर्मी यहाँ दूर आ जावे तो यह संभव नहीं।

जैसा कि देहाती लोग कहते हैं—आँच (गर्मी) दे दो । अगर ऐसा होने लगे तो केवली जुदा रहना चाहिए तथा उसकी गर्मी विशिष्ट जुदी रहनी चाहिए । सत्ता और सत् जुदा नहीं किया जा सकता । पदार्थोंका यथार्थ सत् समझ जानेपर स्वरूप जाना जायगा, कौन किस तरह द्रव्यको मानते हैं । प्रथम दार्शनिकोंमें लो, वह कहते हैं—सत् अलग है, सत्ता अलग है और समवाय अलग है । अब व्यवहारी जनोंकी बात लो तो वह कहते हैं हमारा सुख दुःख इन भाई साहब पिता आदिपर निर्भर है, जीना मरना भी पुत्रादि या पिता पर निर्भर है । अपनी अवस्थाके अनुसार कहते हैं । सुख दुःख यह भी तो सत् है । यह क्या दूसरेसे आवेगा ? यहाँ शून्य है तो उन्होंने कहाँ अपनी सत्ता मानी है । तुम सत्ताके पुञ्ज हो । तुम सत्ताके केन्द्रबिन्दु हो । सत्तासे ही तुम्हारा सत् एकमेक होकर प्रकाशित है । हम कैसा भी खेल खेलें, जिससे आत्माका विकास हो, वही हमारा प्रधान लक्ष्य सत् है ।

‘आत्मा सो परमात्मा’—आत्मा और परमात्मामें एक भी गुण कम नहीं है । आत्मा में परमात्मा होनेकी शक्ति है, किन्तु यहाँ वह अज्ञानान्धकारसे लुप्त प्रायः है । वह भी समय पाकर अपना विकास परमात्मा जैसा कर सकता है । हममें और परमात्मामें यह भेद नहीं है कि एक यह जीवित घोड़ा है और दूसरा लकड़ीका काल्पनिक घोड़ा हो । अगर यह काल्पनिक घोड़ा होता तो वह परमात्मा नहीं बन सकता, जिस तरह कि बच्चे लकड़ी पैरोंके नीचे डालकर टिक-टिक करके हाँकते हैं और दौड़ पड़ते हैं, उस लकड़ीके घोड़ेमें चाल नहीं आसकती । यह समझ लीजिए हम कुमांगपर चलने वाले घोड़े हैं जो कि तिरछे टेढ़े-मेढ़े रास्तेपर चलते हैं । लेकिन चैतन्य प्राण परमात्मा समान ही है । तत्त्वज्ञान जिस दिन हो गया उस दिनसे सीधे चलने लगेंगे, उल्टा चलना छोड़ देंगे । मुझे ऐसा न दिखे, न कुछ ऐसा प्रतिभासमान होवे कि एक द्रव्यके द्वारा दूसरे द्रव्यका परिणमन हो रहा हो “भात्रैक द्रव्येण द्रव्य द्वयपरिणामः क्रियमाणः प्रतिभातु,” एकके द्वारा दो का परिणमन किया जा रहा हो, ऐसा न दिखे । मुक्ति मिले न मिले, हमें प्रभुकी कुछ चाह नहीं, केवल रागद्वेषकी ज्वालासे छुटकारा हो और रागमें अंधे न होवें । हे भगवन् ! मुझे मोक्ष मिले अथवा न मिले, किन्तु रागके वशीभूत होकर मैं अंधा न हो जाऊँ और न द्वेषकी ज्वालामें मैं भुलसा जाऊँ । हे देव ! मुझे केवलज्ञानकी जरूरत नहीं है और न अनन्तज्ञानकी भी जरूरत है । मैं तो केवल यह चाहता हूँ कि खुदको जानता रहूँ तथा खुद ही खुदको जानूँ तो देखता रहूँ । मुझे अनंत सुख नहीं चाहिए, किन्तु आकुलताका तापभर मिट जावे । मुझे अनंत शक्ति भी नहीं चाहिए, किन्तु खुद ही खुदमें समा जाऊँ । खुदका खुदके समा जानेमें भी वीर्यकी आवश्यकता होती है, क्योंकि वृद्ध अवस्था में अपना शरीर भी संभालना कठिन हो जाता है । ऐसी ऊपरी बात तक तो देखी जाती है । नाकसे लवाब निकल पड़ता है, मल मूत्रकी बाधा हो जाती है, आँखोंसे मैल लगा रहता है ।

शरीर कमजोर होनेसे थोड़ेसे परिश्रमसे ही पसीना आने लगता है। इस तरह हमारे शरीरकी दशा इनको संभालनेकी बनी होवे तो भी इनकी बाधायें मेरे उपयोगमें दखल न दें। जो आत्माका उपयोग है उसको रखनेकी जरूरत है। हमको यहाँ वहाँकी पूजा, मान-बड़ाई मिले या न मिले, किन्तु जो चैतन्य तत्त्व है उसकी पूजा करता रहूँ। रागमें अंधे हो जाना और द्वेष में जलना, ये दो ही धन्धे इस प्राणीके चल रहे हैं।

राग द्वेषके आकर्षणसे जीवका संसरण—दही बिलोते समय मथानीमें एक रस्सी रहती है जिसे रई (नेतना) कहते हैं। उसके दो छोर निकालकर बिड़ोलन किया जाता है। जब रईके एक छोरको खींचते हैं तो एकको ढीला कर दिया जाता है। इसी तरह रागद्वेष रूपी दो रस्सियाँ लगी हैं तथा आत्मा मथानी बनकर यहाँ वहाँ (चारों तरफ) घूम रहा है। अगर आपके किसी प्रेमी मित्रादिका किस्सा सुनावें, वह आपकी बहुत प्रशंसा कर रहा था, आपसे मिलनेको उत्सुक है, तुम्हारी कीर्ति व उत्कर्ष सदैव चाहता है, यह सुनकर आप बड़े खुश होंगे, अत्यधिक राग बढ़ेगा। अगर इसीके विपरीत कहना शुरू कर दें, अमुक मित्र होकर भी तुम्हारी सदैव निन्दा करता है, गालियाँ बकता रहता है। तब उसके प्रति द्वेषकी भावना जागृत हो जायगी। देखो हुआ क्या? केवल मनकी कल्पना। यह प्राणी अज्ञानसे संसार-समुद्रमें घूम रहा है। दूसरे मतानुयायी भी रागद्वेषसे पिण्ड छुड़ानेमें कुछ-कुछ सफल हुए हैं। इससे उच्च श्रेणीका एवं वस्तुस्वरूपका सच्चा कथानक वीतराग शासनमें है। राग द्वेष तो आत्माकी तरंगें हैं। समुद्रकी तरंगें खूब जोरसे उठा करती हैं, फिर वह उसीमें समा जाती हैं। आत्मा खुदमें समाया हुआ बन जावे तो वह मूलसे सुखी बन जावे। आत्माके द्वारा आत्मा ही जानने योग्य होता है। अभी सामान्य द्रव्यका प्रकरण चल रहा है। इसीमें विशेष द्रव्यका प्रकरण आयेगा। हमारा, तुम्हारा उत्पाद व्यय स्वभावसे चल रहा है। तुम्हारे उस परिणामनमें विशेषता आती जाती है वह विशिष्टता औपाधिक है, किन्तु परिणामन औपाधिक नहीं है। रेलगाड़ीका चलना गाड़ीमें हो रहा है, किन्तु उसका जो निर्दिष्ट पथसे चलना हो रहा है, वह औपाधिक है। आत्माका परिणामना स्वभाव है, वह परिणामता रहता है, किन्तु जो विशेषता उत्पन्न होती है वह औपाधिक है।

पृथक्पना सत्ता और सत्में संभव नहीं है—गुण और गुणीपनेका उसमें अतद्भाव रूप अभाव है। वह प्रदेश जुदा नहीं रह सकता। सफेद वस्त्रमें है, वस्त्रसे सफेद जुदा नहीं है। अगर वस्त्रसे सफेद गुण जुदा रहता हो तो उसे बुलाना पड़ेगा जरूरत होनेपर। कहेंगे—ओ सफेद गुण तुम यहाँ आओ, नाराज मत होओ, किन्तु इस तरह तो नहीं है, कपड़ेका शुक्ल गुण वस्त्रसे न्यारा नहीं है उसी तरह सत्ता सत्से भिन्न नहीं है। जिस स्थानपर शुक्ल गुणका प्रदेश क्षेत्र है उसी स्थानपर कपड़ेका क्षेत्र है। उसमें गुण गुणीका प्रदेश विभाग नहीं

है। जो ही सत्ता गुणका प्रदेश है वही सत् गुणका प्रदेश है। इसलिए सत्ता और सत्के प्रदेश विभाग नहीं है। तब आत्मा चैतन्य जुदा-जुदा नहीं है। इस तरह होनेपर भी दोनोंमें अन्यत्व बना है, क्योंकि सत्ताका लक्षण जुदा है और सत्का लक्षण जुदा है। इन दोनोंमें अन्यपना नहीं हो तो कपड़ेको टटोलनेपर सफेद गुण टटोल लेना चाहिए। तब जो जो वस्त्र है वह सफेद गुण है, इस तरहकी व्याख्या करनी पड़ेगी और जो जो सफेद है वह वह वस्त्र है। वस्त्रके लिए हवासे फड़फड़ाता हुआ समझकर कानसे जान सकते हैं। नाकसे भी उसको गन्ध द्वारा जाना जा सकता है। स्पर्शनइन्द्रिय अर्थात् हाथसे छूनेपर भी जाना जा सकता है। रसनाइन्द्रियके द्वारा भी वह जाना जा सकता है, किन्तु सफेद गुण केवल चक्षु (आँख) इन्द्रियों द्वारा ही जान सकते हैं, ऐसा अन्तर है। फिर भी सफेद जुदे स्थानमें हो और वस्त्र जुदे स्थानमें हों, यह बात नहीं है। इस तरहका होनेपर भी अन्यपना है। आम है उसे हाथके स्पर्शसे जान सकते हैं। अन्य इन्द्रियोंसे भी जान सकते हैं, किन्तु रसको सबसे नहीं जान सकते। वह जीभसे चखनेपर ही जाना जायगा। अगर आम और रस एक होते तो आप देखने मात्रसे संतुष्ट हो जाते, वही आप दूसरेको दे देते, वह भी पेट भर लेता, इस तरह कई को देनेपर भी उसमें कमी नहीं आती।

चेतनसे चैतन्य जुदा नहीं है—यही बात आत्मा और चैतन्यमें है। चेतन स्वभाववान है और चैतन्य स्वभाव है, ज्ञान स्वभाव है, ज्ञानी स्वभाववान है। आममें रूप, रस, गंध, वाँ भी रहता है, किन्तु किसी गुणमात्र ही आम हो जावे, ऐसा नहीं है। इस दृष्टिसे चैतन्य और आत्मा भी जुदे कहलाये, किन्तु प्रदेशसे भेदकी बात नहीं है। आग तथा गर्मी जुदी नहीं हैं, अनन्य हैं। 'आँच दे दियो हमें तनकसी' तो यहाँ आँच (गर्मी) अग्निसे जुदी नहीं है। यहाँ वह आगकी याचना ही तो कर रहा है। यह आग और केवला जुदा नहीं हैं। सत्ता और सत् भिन्न-भिन्न इक्ष दृष्टिसे हो सकते हैं। वस्तुका सहजस्वरूप अभेददृष्टिसे ज्ञात होता है। आत्मा के स्वरूपमें एक टंकोत्कीर्ण ज्ञायकभावको ग्रहण करना चाहिए। एक पत्थरकी मूर्ति बनवानी है तो आप विशालकाय लम्बे-चौड़े पत्थरको लेंगे। बादमें कारीगरको बुलाया गया और कहा कि इस पत्थरमें इस आकारकी मूर्ति बनानी है। इस चित्रको तुम खूब सोच समझकर देख लो। तब कारीगर कहता है—हाँ इसी तरहकी मूर्ति बन जायगी। कारीगरके हृदयमें वह मूर्ति समा चुकी, उसका भव्य पूर्ण प्रतिबिम्ब दिख गया है। हालाँकि मूर्ति बनी नहीं। जिस तरहकी मूर्ति कारीगरको दिखी है, उसी तरहसे वह पत्थरमें का मुलम्मा (क्रिचें) छेनी हथोड़ा की ठोकरसे अलग कर देता है और मूर्ति प्रकट हो जाती है। अब जो मूर्ति निकली है वह वहीसे निकली है बाहरसे नहीं बनाई गई, जिस तरह मिट्टी मसाले आदिसे बनाई जाती है। चेतनमें जो बाहरी भाव है उसे प्रज्ञावान कारीगर रागद्वेष रूपी पत्थरोंको हटाता जावे तब

परमात्मा प्रभु परिणतिमें भी विकसित होनेको तैयार है। वह इसी आत्मामें है, प्रदेशसे भिन्न नहीं है।

प्रदेशभेदके अभावमें एकत्वकी प्रसिद्धि—जुदे-जुदे प्रदेश होनेको पृथक्त्व कहते हैं। यह पृथक्त्व सत्ता और द्रव्यमें सम्भव ही नहीं, क्योंकि गुण गुणोंके प्रदेश भिन्न-भिन्न नहीं होते। जैसे सफेद वस्त्रोंमें जो ही शुक्ल गुणके प्रदेश हैं वे ही वस्त्र गुणोंके प्रदेश हैं। इस तरह देखो उनमें प्रदेशभेद तो नहीं रहा। इसी तरह सत्ता और द्रव्यमें जो सत्ताके प्रदेश हैं वे ही द्रव्यके प्रदेश हैं। इस तरह देखो उनमें प्रदेशभेद तो नहीं रहा, फिर भी उनमें अन्यत्व तो है, क्योंकि अन्यत्वका लक्षण वहाँ घटित है। अन्यत्वका लक्षण अतद्भाव है सो अतद्भाव सत्ता व द्रव्यमें है, क्योंकि गुण और गुणोंमें तद्भाव नहीं होता। जैसे कि एक ही चक्षुरिन्द्रियके विषयरूप और अन्य चार इन्द्रियोंके विषयसे परे शुक्ल गुण होता है और वस्त्र कैसा होता है कि वह सभी इन्द्रियोंका विषयभूत है। सो भेद हुआ ना। मात्र चक्षुरिन्द्रियका विषयभूत शुक्ल गुण समस्त इन्द्रियोंका विषयभूत वस्त्र कैसे हो सकता है? देख लो, तद्भाव तो इनमें न रहा। इसी प्रकार सत्ता तो ऐसी है कि वह आश्रय करके रहती है, निर्गुण है, एक गुण-स्वरूप है, विशेषणको बनाने वाली है, वृत्तिरूप है और द्रव्य कैसा है कि वह अनाश्रित होकर रहता है, गुणवान है, अनंत गुणोंका पिण्ड है, विधीयमान विशेष्य है, वृत्तिमान है। सो देख लो भैया! तद्भाव तो इनमें न रहा।

जो अन्यत्वकी पृथक्त्वके साथ व्याप्ति नियम नहीं—पृथक्त्व और अन्यत्व जुदे अर्थको द्योतित करते हैं, जिस तरह स्वभाव और स्वभाववानकी पृथक्ता है। जैसे सफेद वस्त्र है, यहाँ सफेद गुण वस्त्रसे जुदा नहीं रहता है। वस्त्रका वाच्य जुदा आता है तथा शुक्लका वाच्य अलग ढंगसे आता है। जो शुक्ल गुण है वह कैसा है? सफेद गुण चक्षुरिन्द्रियसे देखनेमें स्पष्ट मालूम पड़ जाता है। बाकी चार इन्द्रियोंके सफेद गुण विषयभूत नहीं हैं। इस तरहका वह शुक्ल गुण है। उत्तरीय वस्त्र कैसा है, वह सभी इन्द्रियके द्वारा जाननेमें आता है, क्योंकि वह सर्वपर्यायात्मक शोभायमान होता है। आम आँखोंसे भी दिखता है तथा चूसनेमें भी मालूम पड़ता है तथा घ्राणेन्द्रिय, रसनाइन्द्रिय, कर्णइन्द्रिय, स्पर्शनेन्द्रिय एवं चक्षुसे भी जाना जाता है। लेकिन आमका रस रसनाइन्द्रियसे जाना जाता है तो क्या आम व रस अथवा वस्त्र व सफेदी दोनों एक बात हो गई। जिसका विषय एक रसनाइन्द्रियसे जाना जायगा वह सब इन्द्रियोंका विषय कैसे बन जायगा? चक्षु इन्द्रियको प्राप्त होने वाला सफेद वर्ण है। वह समस्त इन्द्रियोंके द्वारा जाना जाने वाला वस्त्र कैसे हो जायगा? यह बात ऋजुसूत्रनयसे नहीं चल रही है। ऋजुसूत्रनयका विषय तो अति सूक्ष्म है। इसकी दृष्टिसे काला कौआ कहना असत्य है। अन्य नयोंमें सच है। वह सर्वांग काला ही नहीं है। अन्दर शरीरका खून लाल

भी है तथा जो-जो काला होता है वह कौआ ही नहीं होता है। कोई कहे कि रई जल रही है। यह कहना सच भी है और भूठ भी है, क्योंकि जो जलती हुई है वह रई नहीं है तथा जो जली नहीं वह रई है। चौकी ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षासे नहीं बोल रहे हैं। जो चौकी है याने चार कोने वाली है वे सब विवक्षित चौकी नहीं हैं। किसी आदमीको गुस्सा आया तो आप क्या इसे जान जाओगे ? जिस समय क्रोधको पर्यायदृष्टिसे कहोगे, उस समय वह क्रोध नहीं, जब बोल लोगे उस अन्य समयमें लक्ष्यभूत पर्याय नहीं। दूसरी चीज गुस्सा है, इससे क्या जान गया ? यह नयोंकी वकालत है। हम जब चौकी कहते हैं तब उस शब्दसे भिन्न है चौकी या अभिन्न ? यदि भिन्न है तो वाच्यवाचक सम्बंध कैसा ? फिर तो चौकी शब्दसे घड़ी, पुस्तकको भी तो कह सकते हैं। चौकी शब्दसे घोड़ा, गधा भी तो भिन्न हैं। यदि वाच्यवाचक अभिन्न हो जाय तो चौकीसे अभिन्न कह सकते हैं। इस तरह हम सही कहीं भी नहीं बोल पाते हैं। जब सही नहीं बोल पाते तो ज्ञातादृष्टा बने रहो, दुनियाके विकल्पजालोंमें नहीं पड़ो। यहाँ शुक्ल वस्त्रको सामान्य दृष्टिसे घटा रहे हैं। जो शुक्ल गुण है वह आँखसे जाननेमें आने वाली चीज है। पाँचों इन्द्रियों और केवल एक इन्द्रियके द्वारा ही उस वस्तुको जानना, यह एक ही समान नहीं है। प्रदेशकी अपेक्षासे शुक्लकी सत्ता भिन्न नहीं है। जो-जो शुक्ल है वह-वह वस्त्र नहीं है तथा जो-जो वस्त्र है वह भी शुक्ल गुण वाला ही नहीं है, क्योंकि वस्त्र लाल पीले रंगका भी हो सकता है।

यदि कुछ है तो उसमें सत्ता व परिणामनशीलता नियमसे है—सत् अर्थात् 'है' और उसमें रहने वाला अस्तित्व सत्ता है। मेरा स्वभाव सत् है। मैं स्वयं ही परिणाम रहा हूँ। मेरा अन्य कोई परिणामन नहीं करता है। बाहरी वैराग्य थोड़े समयमें लुप्त हो जाता है। स्वरूपास्तित्वसे उठा वैराग्य लुप्त नहीं होता है। भ्रमसे रस्सीको सर्प जान लिया। अब समझमें सर्प आनेपर भी वीरता, निर्भयता बतानेके लिए रस्सीमें जो भ्रम है उसे हठात् छुपावे व उस समय वह रस्सी भी बोले तो भूठ है। इस समय वह रस्सी भी कहे तो भी अन्दरसे कंपकंपी लगती रहेगी। भले किसी कारणसे यह कह देवे कि रस्सी है। अन्तरङ्गमें यह बात आ जावे कि सर्प है तथा बाहरसे यह भी जानते हुए कि रस्सीमें भ्रम है, तब भी वह डरता हुआ आगे बढ़ेगा। लेकिन वह बढ़ना उसके लिए हृदयसे सहायक नहीं है। इसी तरह जब तक द्रव्यके स्वतंत्र स्वरूपास्तित्वकी प्रतीति नहीं है तब तक मिथ्या बुद्धि है। कोई सोचे मैं अमुक कार्य करता हूँ, इतनी बड़ी भारी गृहस्थीका संचालन करता हूँ, सभीको आपस में एक साथ रहनेके लिए बाध्य किये हुए हूँ या मेरा कार्य अमुक राज्यकर्मचारी गुरु, सेठ, मित्रके द्वारा होता है, मैं बड़ा भारी त्यागी हूँ, मेरे उपदेश द्वारा मनुष्य धर्माचरण करते हैं आदि कल्पनायें जब तक बनी हुई हैं तब तक स्वरूपास्तित्वकी प्रतीति नहीं हुई समझना

चाहिए। जब तक स्वरूपास्तित्व प्रतीतिमें नहीं आया तभी तक वह इन पदार्थोंसे हिताहित की कल्पनाओंके दृढ़ बन्धनसे जकड़ा है किन्तु स्वरूपास्तित्व होनेपर उन पदार्थोंके प्रति कोई भी लगाव नहीं रह जाता है। सर्पको रस्सी जानकर भी चले तब भी आकुलता है, किन्तु जहाँ रस्सी समझ चुका वहाँ भ्रम नहीं रहता। उसी तरह जब तक पदार्थोंका स्वतन्त्र-स्वतन्त्र स्वरूपास्तित्व नजरमें नहीं आया तब तक कितना ही बल क्यों न लगाया जावे, वह सब निरर्थक जाता है। जब तक भीतरकी गति स्थिर नहीं हुई तब तक वह असफल ही होता रहेगा।

निजस्वरूपास्तित्वकी दृढ़ प्रतीति करो— यह जो खेल लगा हुआ है, वह बन्द होकर स्वरूपास्तित्वकी दृढ़ प्रतीति हो जावे तब उसे विचलित कोई भी नहीं कर सकता। अचछी तरह ज्ञान हो गया यह रस्सी है, तब उससे कोई हजार बार भी क्यों न कहे कि इसे सर्प जान जाओ तो भी नहीं जाननेका। यह कह सकते हो कि कुछ प्रलोभनसे नाम मात्रका उच्चारण भले कर दें, लेकिन उसके अन्तरङ्गमें वह स्थान नहीं जमनेका। वह ज्ञानी निश्चय किसी भी दबावमें नहीं कह सकता कि सर्प है। जिसके उत्पाद व्यय ध्रौव्य सत्ताके परिज्ञानसे स्वतन्त्र अस्तित्वका निर्णय हो गया, तब कोई उससे कहे कि थोड़ी देरको तुम इसे अपना लड़का, अपनी स्त्री कह दो तो वह नहीं कहेगा। स्वतन्त्र स्वरूपास्तित्वका अद्भुत प्रभाव है। जब सुकौशल राजसुत विरक्त हो गये तो उनको रोकनेका काफी षड्यन्त्र रचा गया। घरके कुटुम्बी जन समझा रहे हैं, राज्यकर्मचारी समझा रहे, यहां तक कि राज्यमंत्री कहता है कि आपकी रानीके जो गर्भ है उससे संतान होनेपर १ वर्षके भीतर ही घर छोड़कर चले जाना, विरक्त हो जाना तो सुकौशल कहता है—जो भी गर्भमें सन्तान है मेरी तरफसे उसके पैदा होते ही राज्यतिलक कर देना और एकाकी सबको छोड़कर चल देते हैं। कभी कभी लड़ाईमें भी तो वैराग्य हो जाता है, वहाँ विगत राग है। लड़ाई हो गई तो आपसमें मुंहसे बोलते तक भी नहीं। उनसे कोई कहे कि तुम पहले इतना भर कह दो—हमसे जो कसूर हुआ होवे उसे क्षमा कर दो तो वहाँ वह रुचिके विरुद्ध नहीं बोलेगा और कहेगा कि हम शुरुमें क्यों बोल जायें ? नहीं तो गौरव घट जायगा। जब पदार्थोंका स्वतन्त्र अस्तित्व ज्ञात हो गया तो वह शरीरमें फंसा रहनेपर भी आत्माके आनन्दको पावेगा। ज्ञानी जीव शरीरसे विरक्त रहते हैं।

तत्त्वज्ञान हो तो विरक्त होते देर नहीं लगती— जब एकान्तमें सीता दर्पणके सामने बाल पोंछ रही थी उस समय कहींसे नारद आ गये, जिनकी परछाई आइनेपर पड़ गई। परछाई आते ही सीता डरकर भाग गई। नारदने इसे अपना अपमान समझा। वह सोचता है कि जिस नारदका राजा महाराजा भी सम्मान करते हैं, सिंहासन देते हैं, उस नारदके लिए

यह राज्यघरानेकी छोकरी मेरा यह अपमान करे, पीठ दिखाकर भाग जावे। तब नारदने सोचा, इसका मजा चखाना चाहिए। इसलिए नारदने सीताका चित्रपट बनाया और जहाँ विजयार्द्ध पर्वतपर भामण्डल घूम रहा था वहींपर इसे डाल दिया और नारद छिप गया। घूमते-घूमते भामण्डलने चित्रपट देखा और उसपर अंकित युवा लड़कीका चित्र देखकर एकदम मोहित हो गया। बस हाय ! मेरा जीना निरर्थक है जो कि इसको प्राप्त नहीं किया। उसके बिना भोजन पानी भी छोड़ दिया। अगर आज भी कोई यह बात सुनावे कि हमारा लड़का अमुक लड़कीपर मोहित होनेसे भोजन नहीं करता है, तो मनुष्य ताज्जुब करेंगे और उस लड़के की निन्दा ही करेंगे। लेकिन मोक्ष जाने वाले महापुरुष जीव भी बिना जाने रागमें इस तरह अंधे हो जाते हैं। भामण्डल रागमें अंधा होकर चित्रपटकी लड़कीकी तलाशमें चल दिया। आगे जाते ही वह स्थान आता है जहाँ सीता और भामण्डलका भाई-बहिनका सम्बंध था। भामण्डलको एकदम जातिस्मरण आया, वह तो मेरी बहिन है और विरक्त होकर चल देता है। तत्त्वज्ञान हो तब विरक्त होते देर नहीं लगती।

पापवृत्तिके कारण जिसमें महानता है वह विडम्बनासे उपस्थित होनेपर एकदम संभलता है। जब स्वरूपास्तित्व समझमें आ चुका, शरीर और आत्मा भी न्यारी-न्यारी है, तब किसीमें कर्ता कर्मपनेकी बुद्धि नहीं रहती है।

किसीके स्वरूपास्तित्वमें सन्देह मत करो—मनुष्य सोचते हैं कि मेरा लड़का है, अगर मैं आत्मकल्याणमें लग गया तो इसका पालन-पोषण कौन करेगा ? इसकी चिंता क्या, जिसका जैसा पुण्योदय होगा उसे वैसा निमित्त दूसरा मिल जायगा। दूसरोंका पुण्योदय है इससे मैं उनकी सेवामें निमित्त बन रहा हूँ, मैं बच्चेका सेवक बन रहा हूँ। बच्चा ठाटसे मौज करता है, किन्तु पिता यहाँ-वहाँ पैसा कमानेके लिए मारा-मारा फिरता है। वह भूख प्यास मानापमानके भी दुःख सहता है; सत्य, झूठ बोलता है, दूसरोंको फंदेमें फंसाता है, तब द्रव्य उपार्जन कर पाता है। अगर उसी समय यह तत्त्वज्ञानकी लहर उठ खड़ी होवे कि मेरा परिणामन स्वतंत्र होता है, दूसरेका स्वतंत्र होता है। एक द्रव्य दूसरेका परिणामन नहीं करता है। मैं व्यर्थमें ही रागद्वेष कषायरूपी भट्टीमें जल रहा हूँ। मुझे यह प्रतीतिमें न आवे कि मेरे द्वारा दूसरेका परिणामन होता है तथा दूसरेके द्वारा मेरा परिणामन होता है तो कर्तृत्व बुद्धिका घोर क्लेश तो न रहे। बच्चे तालाबमें नहाने जाते हैं और ठंडका समय होनेसे सभी बच्चे पानीमें उतरनेसे डरते हैं। कोई डरसे सीढ़ियोंपरसे नहाना चाहता है, तो कोई पानीमें धीरे-धीरे प्रवेश करता है जिससे उसे पानी ठंडा महसूस हुआ और भाग आता है। लेकिन कोई बच्चा त्रिलम्ब न करके हिम्मत भर तथा दौड़नेकी कसरत कर और एकदम ऊपरी हिस्सेसे शीघ्र गिर पड़ता है। उसे ठंड महसूस नहीं होती। इसी तरह जो धीरे-धीरे धर्म करते हैं वह जाड़ेका कारण

है, किन्तु जो तत्त्व निर्णाय करके एकदम उतर पड़ता है वह सच्चा आत्मकल्याणी है।

‘है’ की विशेषता बताना ही गुणभेद है—सत् और सत्तामें जुदापन नहीं है, यह सिद्ध करनेके पश्चात् अब सत् और सत्ताका लक्षण जुदा कहेंगे। यहाँ भिन्नता दर्शायी जा रही है, वह सर्वथा सम्भव नहीं है। अतएव इसे सत् और सत्ताका भेददृष्टिसे वर्णन करना कह सकते हैं। यह भेद प्रदेशकी अपेक्षासे नहीं है, केवल लक्षणभेद है। जैसे शुरूमें दृष्टान्त दिया था, सफेद वस्त्र है, यहाँपर सफेद रूपका वाच्य दूसरा है और वस्त्रका वाच्य दूसरा है। सफेदरूप चक्षुइन्द्रियसे देखनेमें आ सकता है, लेकिन सफेदरूप ही वस्त्र नहीं है और वस्त्र मात्र रूप नहीं है। इसी पद्धतिसे सत् और सत्तामें विशेषता है। सत्ता आश्रयवर्तिनी है, आश्रय करके रहने वाली है अर्थात् वह सत्को छोड़कर नहीं रहती है। यहाँ केवल स्वभाव और स्वभाववानका वर्णन है। रूप वस्त्रका आश्रय करके रहता है, यह कहनेसे वस्त्र और रूप अलग नहीं हो जाता है और न यही बात है कि वह सफेदरूप वस्त्रके ही आश्रय रहता हो। सफेद रूप कागजमें भी हो सकता है, दीवारकी कलईमें भी होता है। सफेद संगमरमर मारबलमें भी होता है। सत्ता किस तरहकी है ? आश्रय करके रहने वाली है, निर्गुण है, एक गुण समुदित निर्गुण है अर्थात् एक गुणसे समुदित है। उसमें अन्य गुण नहीं, सत्तामें निर्गुण है। यदि सत्तामें भी सत्ता हो तो उस सत्तामें भी सत्ता है या नहीं। तब इस तरह कहोगे कि सत्ता में सत्ता है, उस सत्तामें दूसरी सत्ता है, दूसरीमें तीसरी सत्ता है। इस तरह अनेकों विकल्प-जाल खड़े होते जावेंगे। इसलिए यहाँ कहते हैं सत्ता स्वयं गुण है। अतएव इस सम्बंधमें प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि गुणके गुण नहीं पूछे जाते, भावका भाव नहीं जाना जाता। वस्त्रमें सफेदी है तो उस सफेदीमें अन्य सफेदी नहीं पूछी जाती है। अगर कहीं चेतनमें चैतन्य है तो चैतन्य के सम्बंध बिना पहला चेतन जड़ हो गया। कोई पुरुष वस्तुमें यह बात उपस्थित कर देते हैं, जिससे दोष आ जाते हैं। वह अन्योन्याश्रित हो जाते हैं। उसको समझानेके लिए जो भेद किया जायगा वह अपने-अपने आधारसे चलेगा। सत्ता कैसी है ? जो द्रव्य है उससे युक्त है।

‘है’ समझमें ठीक आया तो सब समझमें आ गया—यहाँ ‘है’ इसको ही सिद्ध कर रहे हैं। ‘है’ अर्थात् सत् है। ‘है’ में भेद तो नहीं है, किन्तु अतद्भाव है। इन्सानकी इन्सानियत कहना, यह इन्सानसे भिन्न नहीं है। इन्सानियत इन्सानके ही आधारपर है। उसी तरह सत् सत् आश्रय रहती है। वह सत्ता आश्रित होते हुए निर्गुण है और एक गुणकी शक्लमें उदित हुई है। जो एक गुणकी बनी हुई है वह गुण ही हुआ। वह एक गुणरूपसे प्रकट हुई है। गुणके रूपमें ही उदित हुई है। लेकिन गुणके रूपमें किसीके द्वारा बनी नहीं है। वह तो स्वतः वस्तु अंश है तथा निर्गुण है, एकरूपसे समुदित हुई है। सत्ता विशेषणरूप भी है। विशेष-

षणको बनाने वाली है। सत्तासे क्या ज्ञात हुआ अर्थात् द्रव्य सत्तावान है। सत्ताको कोई बनाने वाला नहीं है। सत्ता विशेषणवान भी है। सत्ता द्रव्यका सद्भाव बनाने वाली है। इसलिये सत्ता विशेषण बनाने वाली व स्वयं विशेषण है तथा सत्ता वृत्ति स्वरूप है। वर्तना ही जिसका स्वरूप है। विशेषण रूप है विशेषणकी विधायिनी है, ऐसी वह सत्ता द्रव्यमें ही बन सकेगी। वह द्रव्य और रूपसे भिन्न है। जैसे इन्सानमें इन्सानियत रहती है। यहाँ कोई प्रश्न करे, इन्सानियत किसमें रहती है? इन्सान स्वयं अपने गुणोंसे युक्त रहता है, वह स्वतंत्र है। सत्ता भी किसीको आश्रय करके रहती है, किन्तु द्रव्य स्वतंत्र है वह किसको आश्रय करके रहता है, स्वयं निर्भर है। वह अनेक गुणोंके रूपमें समुदित हुआ है। अनेक गुणोंका पुञ्ज है, अनेक गुणों से समुदित है।

विशेषणत्व भिन्नत्वका नियामक नहीं—जैसे वृक्षमें तना, डालियाँ, टहनियाँ, पत्ते आदि हैं, वह सब मिलकर एक वृक्षरूप है, विशेष्य है। वैसे तो दुनियामें जो भी नाम लो वह विशेष्य वहीं है। दुनियामें किसीका भी नाम नहीं है। चौकी कहोगे तो चार कोनों वाली जो वस्तु है वह चौकी हुई। पुद्गल जो पूरे और गले, वह है। भीत कहोगे तो जो ईंटोंसे बनी गई है वह भीत है। सब विशेषण शब्द हैं। किसीका कुछ भी नाम नहीं है, तब भी मरे पचे जा रहे हैं। दिन-रात इसीमें लगे रहते हैं कि किस तरह पैसा कमावें, किस तरह बच्चोंका पालन-पोषण करें, कीर्ति कैसे प्राप्त हो? जिसे दूसरे शब्दोंमें नामवरी कहते हैं। किसीको अच्छी नौकरी पाकर नाम पानेकी भूख है, किसीको अच्छे कपड़े पहनकर अच्छे माने जानेकी भूख है, कोई अपने रूपको संभालनेमें ही घंटों बिता देता है। एक नामकी भूख पूरी नहीं हो पाई और दूसरीने अड्डा जमा लिया। अगर थोड़ा पैसा हाथमें हुआ या कमानेका जरिया मिल गया तब तो कहना ही क्या है? आज एक साइकिल चाहिए तो कुछ दिन बाद एक फट-फट गाड़ी चाहिए, रेडियो चाहिए, फिर घरमें या दुकानपर लाउडस्पीकर (ध्वनि विस्तारक यंत्र) चाहिए। बढ़िया रहनेको मकान, फर्नीचर, जेवरात, मोटर, घड़ी, आलमारियाँ आदि न जाने कितनी इच्छायें दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती ही जाती हैं। उनका शमन नहीं। इन पदार्थोंकी कुछ अंशोंमें पूर्ति हो गई तो फिर निज चेतनकी खबर न लेकर दूसरे चेतनोंकी पानेकी या उन्हें संभालनेकी पड़ती है। यदि स्वयंकी स्त्री है तो पुत्र चाहिए, उसे ऊँची शिक्षा दिलानेकी धुनि सवार रहती है जिससे वह सुखी रहे। उसके शादीके खतराग मिलाने पड़ते हैं, शादी हो पाई, नाती चाहिए। कई माता-पिताओं तथा सास ससुरकी यही इच्छा रहती है कि एक लड़केका मुंह भर देख लेवें। वैसे मुंह तो प्रतिदिन कई लड़कोंका देखते हैं, किन्तु उनसे उतना राग नहीं है। यदि पुत्र या नाती है तो उसके स्वस्थ रहनेकी चिन्ता दिन-रात सवार रहती है। यह चक्र सर्वथा जीवनभर चलता ही रहता है।

वस्तुका नाम होता ही नहीं—यह सब होते हुए फिर भी नाम नहीं है, वह तो विशेषणोंके द्वारा बना दिया गया है। सम्पूर्ण दुनियामें किसीका नाम नहीं है, सभी निर्नाम हैं। विशेषता दिखानेके लिए नाम रख लिया है। अगर नाम भी लेना है तो ब्रह्म (आत्मा) का नाम लो लेकिन वह आत्मा भी बिना नामकी है। ब्रह्म उसे कहते हैं जो गुणोंसे वर्द्धनशील हो। नामका भी नाम नहीं है। नाम उसे कहते हैं जो प्रचलन करावे, सम्पूर्ण जगत् एवं सम्पूर्ण जगतके पदार्थ निर्नाम हैं। लेकिन हमें उसकी विशेषता बतानेके लिए नाम लेकर बोलना पड़ता है। सब लोगोंने जो पसन्द कर लिया उस नामके द्वारा उसे बोलने लगते हैं और वही विशेषता नाम या संज्ञा बन गई। संज्ञायें बनाई जाती हैं, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इस तरह होते हुए पदार्थ, उनमें विकट मोह चल रहा है। जमीन भी क्या किसीने उपहारमें दी है? वह स्वयं प्रकृतिदत्त है, अनादि कालसे है। उस जमीनके लिए भी एक एक इंचपर मरने मारनेको तैयार हो जाते हैं। वर्षों तक सेसन जज हाईकोर्ट आदिमें मुकद्दमा चलते हैं। बार-बार पंचायतें बैठती हैं। पंच फैसला दिया जाता है। उसपर भी कोई गौर नहीं किया जाता। इस मोह महाराजकी विकट लीला है, इसने कहाँ कहाँ अड्डा नहीं जमा रखा है? मन्दिर, मस्जिद, मठ, त्यागी, आश्रम, साधु-सन्तों आदि किसीको भी निर्मोह नहीं छोड़ा है।

मोहकी बिचित्र लीला—अपने नामका संस्कार सभीमें जमा हुआ बैठा है। अगर किसीके सामने १०० व्यक्तियोंके नाम लिखकर दिये जावें तो वह अपना नाम शीघ्र खोज लेगा, अगर दूसरेका खोजनेको कहें तो काफी समयकी आवश्यकता होगी। रागद्वेष जो दुःखके स्रोत हैं उनमें बौद्धोंने नामको भी एक कारण माना है। पहले जाना तो कर्म बंध जावेंगे, पीछे जानते रहो तो कर्म बंध जावेंगे। नामको ही कर्मबन्धका कारण माना है। यथार्थमें नाम किसीका कुछ नहीं है, जो जिसरूप है वह उसी रूप है। दुनिया नाम रखती है तो शरीरके पिण्डको लक्ष्य करके रखती है, जिस शरीरमें कि आत्मा समाया हुआ है। यदि शरीरका ही नाम है तो मरनेपर याने देह छोड़कर जीवके चले जानेपर शरीरसे वह व्यवहार क्यों नहीं किया जाता? इससे कहना होगा यह नाम साभेका है। जैसे जम्बुप्रसादजी। यह नाम केवल न शरीरका है और न आत्माका ही है। एक तरहसे दोनोंकी साभेदारीकी फर्म चल रही हैं और विशिष्ट नामसे उच्चारण करते रहते हैं। प्राइवेट लिमिटेड इसकी विशेषता है अर्थात् इसकी गुप्त (प्राइवेट) सुरक्षा और परिणामन उसी तक सीमित है, इससे आगे नहीं। आत्मविकासकी अन्तिम लिमिट (सरहद) मोक्ष है। उसे पानेको कुछ भी न उठा रखे तब इससे क्या बाकी रह जाता है? इसकी विशेषतायें अगली अगली पर्यायोंमें जानेपर बदल जाती हैं। पर्यायका नाम भी अपना अर्थ रखता है। मनुष्य, तिर्यञ्च, नारकी, देवगति

की अपेक्षा भी पर्यायोंमें विशेषता रखते हैं। जैसे—तिर्यञ्च, जिनके तिर्यक् टेढ़े-मेढ़े छल-कपट रूप परिणाम (भाव) हों वह तिर्यक् है। मनुष्यों आदिके नाममें व्यक्तिगत विशेषता भी देखने को मिलती है। जैसे राकेश अर्थात् कर्मोंकी जी में चन्द्रमाका स्वामी जैसा निर्मल है। जब यह समझमें आ जाय तो समानताका नाम बने, तब हमें नियमसे उसको उसी रूप आचरण करते देखना चाहिए। इसके बिना समानता आ सके, यह बात बनना कठिन है। स्वामी रामतीर्थने अमेरिका आदि देशोंका पर्यटन किया था। वह जिसे भी देखते, पुकारते थे, उसे राम कहकर पुकारते थे। रामकी आत्माके समान अन्य आत्मामें भी शक्ति है, जो मोक्षगामी बन सके। राम नाम रख लिया तो कुछ विशेषता तो आ गई। जब सत् एक अखण्ड स्वरूप द्रव्यमें आता है तब जाना जाता है। जैसा एक आत्मा है उसी तरह अन्य आत्मार्थें हैं। न वह आत्मा प्रमत्त है और न अप्रमत्त है।

नाम नहीं फिर नाचना बयों—कई मनुष्य तो आत्माका ख्याल रखकर गाली सुनते हुए भी यह कल्पना कर लेते हैं, गाली मेरे शरीरको नहीं दी जा रही तथा आत्माको दे नहीं सकता है या एक व्यक्तिके दो नाम होवें तो सोच लेता है—मेरे नामको नहीं दी जा रही है। जिमे तत्त्वज्ञान हो गया वह किसी भी प्रकारसे अपनी ओर झुकता है। गवाला गायें धराने जंगलमें ले जाता है, वहाँ वह पेट भरती है। जब शामका समय हुआ तो उसने गांवके समीप से उन्हें ढील दिया, छुटकारा कर दिया, तब वह अपने बच्चेके लिए पूँछ हिलाती हुई रंभाकर आती है और अपना प्रेम प्रकट करती है। वह गोल-मटोल पूँछें हिलाती चली आती हैं। कोई बाड़ी याने छोटी पूँछकी गाय हो तो वह भी हिलाती जाती है। इसी तरह गृहस्थको भी विवेक हो गया, सम्यग्दर्शन रत्नको पा चुका तो वह अपना हित करनेके लिए उत्सुक है। मुनिमें और गृहस्थमें यह अन्तर चारित्र मोहनीय कर्मकी अपेक्षा है, दर्शन मोहनीयकी अपेक्षा नहीं है।

सत्ता सत्का मात्र अभिन्न गुण—सत् और सत्तामें प्रादेशिक भेद नहीं है। लेकिन लक्षण छूटकी अपेक्षासे सत् और सत्ता जुदी-जुदी रहती हैं। जैसे इन्सान और इन्सानियत। यहाँ इन्सानियत इन्सानसे अलग नहीं है। लेकिन जो अन्तर है वह अतद्भावका है। जो सत् है वह सत्ता नहीं तथा जो सत्ता है वह सत् नहीं है। जिस तरह सफेद वस्त्र है। यहाँ वस्त्रों सफेदी भिन्न नहीं है तथा सफेदी वस्त्र नहीं है। जब कि वस्त्रसे सफेदी भिन्न नहीं है, इसी तरह सत् और सत्तामें प्रादेशिक भिन्नता न होते हुए अतद्भावका अन्तर है। सत् द्रव्यका आश्रय करके रहता है। सत्ता निर्गुण है, गुणमें अन्य गुण नहीं। यदि हो तो जिस गुणके कारण वह पूर्वका गुण कहलावे, उस दूसरे गुणको और-और गुण होना चाहिए। इस तरह अन्वस्था दोष होगा इसलिए सत्ता गुण है। सत्तामें अन्य गुण नहीं रहते, नहीं तो सम्पूर्ण

अव्यवस्था पैदा हो जायगी । एक गुणके लिए दूसरे-दूसरे गुणोंकी जरूरत पड़ेगी । मनुष्यको गुणोंसे युक्त देखनेके लिए मनुष्यत्व कहते हैं । कुछ लोग और साथमें मनुष्यत्वपना कह देते हैं । जब यहाँ त्व गुणोंका द्योतक प्रत्यय रूप है तब वहाँपर पना और लगानेकी जरूरत प्रतीत नहीं होती । जैसे बोलते हैं—बेफजूलमें 'फजूल' शब्द स्वतः निरर्थक अर्थको प्रकट करता है । साथमें 'बे' कहकर फजूल शब्दकी निरर्थकता दिखाना है । इसका अर्थ हुआ 'ठीक कर रहे हैं' क्योंकि फजूल ही निरर्थक हो गया तब वह कार्य आदि मंजूर है । वास्तवमें उस शब्दका यह अर्थ हुआ । इसी प्रकार निर्गुण गुणरहित है । सत्ता एक गुणसे समुदित है, वह विशेषणरूप है । एडजेक्टिव तो सत् है और नाउन (संज्ञा) सत्ता बन गई । सत्ता संज्ञा है, वह किसीका एक विशेष धर्म है । गुण विशेषण है और वह गुणी उसका विशेष्य । सत्ता एक विधि बताने वाली है । विशेषणोंको बताने वाली है ।

सत्ताके तादात्म्य सम्बंधसे ही तो सत् कहलाया—सत्ता वृत्ति स्वरूपसे पाई जाने वाली है अथवा उसीमें रहने वाली है । सत्ता सत्का ही आश्रय करने वाला है तो सत्ता सत् से जुदी नहीं है । इन्सानियत इन्सानसे जुदी नहीं है । वह इन्सानका आश्रय करके ही रहती है । सत्में साधारण अमूर्तत्व, सूक्ष्मत्व आदि अनेक गुण हैं । वह सब एक गुण कैसे हो जायगा ? फिर भी प्रदेशभेद तो नहीं, यथा अंगुलीका सीधापन तथा टेढ़ापन उससे जुदा नहीं है । अगर केवल सीधापन ही अंगुलीका लक्षण रहे तो टेढ़ापन नहीं कहना चाहिए । लेकिन सीधापन तथा टेढ़ापन एक ही अंगुलीकी अवस्थायें हैं । एक गुणवान् द्रव्य है, वह अनेक गुणों से समुदित है । द्रव्य अनेक गुणोंसे प्रकट हुआ है, अनेक गुणोंसे उदित है । जब कि सत्ता विशेषण है तब सत् विशेष्य है, विधि वाला है, वर्तना वाला है । सत्ता विधायिका व वृत्तिरूप हैं वह सत् कैसे हो जायगा ? इसलिए गुण गुणीमें तद्भाव नहीं है । सत्ता सत् नहीं है तथा सत् सत्ता नहीं है । सत्ता और सत्में सत्ता भावका अभाव है । अतएव इस ही कारणसे सत्ता और सत्में अनर्थान्तर होते हुए भी भिन्नता है, एकता नहीं मान लेना चाहिए, क्योंकि तद्भाव होना तो एकत्वका लक्षण है । सत्ता अस्तित्व तो एक है । सत्ताके जितने भी पर्यायवाची शब्द हैं वह तद्भावमें आ जावेंगे, किन्तु सत् और सत्तामें अतद्भाव आ जायगा । फिर भी वह उसमें होता हुआ नहीं लग रहा है, वह एक कैसे हो जायगा ? इसलिए गुण गुणीमें एकपना कैसे हो जायगा ? इन्सान इन्सानियतकी क्या सर्वास्था एक है ? अगर एक नहीं है तो जिस दिन इन्सानसे काम पड़ा तो उसे बुला लिया जायगा तथा जिस दिन इन्सानियतसे काम हुआ उस दिन उससे काम ले लिया जावेगा । यह बात नहीं है, वह मात्र गुण गुणी रूपमें भिन्न है । अर्थ क्रियाकारी इन्सान है ।

खुद ही में देवत्व प्रकाशमान है—बहुतसे देवी देवता बन गये, वह कुछ तो अलंकार

से बन गये । २४ तीर्थंकरोंके प्रबन्धक यक्ष विरोध हुआ करते थे । प्रायःकर उन्हींमें से माओ जाने वाक अनेक लोगोंके देवी देवता हैं । अब अध्यात्मदृष्टिसे देखो—जिसे अपने निजस्वरूपकी प्रतीति हो गई, उसके लिए वही उपास्य है । क्योंकि आत्माका गुरु आत्मा है, उसके अनुकूल वह चल सकता है, लेकिन वह उच्छृंखल प्रवृत्तिसे चलनेको नहीं कहता । अपनी उपासना की जाय तो कुछ मिलेगा । इसका यह मतलब नहीं कि अपने शरीरकी पूजा की जाय । लेकिन शरीरसे ममत्व छोड़कर आत्मामें आत्माके लिए ही रमण किया जावे । यही निजात्म उपासना है । इसके लिए पञ्चपरमेष्ठीके गुणोंका अनुसरण करना जरूरी है । अरहंत सिद्ध परमेष्ठीका पूजन करते समय यही लक्ष्यमें रहना चाहिए, मुझमें निर्विकल्पता आवे, समता भाव परिणाम आवे, शान्तिका आगार जो मेरा स्वरूप है उसे मैं प्राप्त कर सकूँ, यह सुबुद्धि मुझमें दीजिए । यह भावना क्या कोई कुदेवोंको पूजकर कर सकता है, वह स्वयं रागी द्वेषी है तथा दुःखके साधन गदा आयुध वगैरा समीप रखते हैं । सुखका साधन स्त्री वगैरा रखते हैं । उनकी पूजासे लाभ नहीं होगा, संसार सम्बंधी वासनार्यें ही बढ़ेंगी । दुर्गा २४ तीर्थंकरोंके सेवक देवताओंमें से कोई एक है, जिसकी व्युत्पत्ति इस तरहसे होगी—‘दुःखेन गम्यते प्राप्यते या सा दुर्गा ।’ जो कठिनाईसे पाई जा सके वह दुर्गा है । इस तरहकी स्वानुभूति बड़ी मुश्किलसे प्राप्त होती है । स्वानुभूति प्राप्त करनेपर कितने ही कष्ट कलंक दूर हो जाते हैं तो स्वानुभूतिका नाग दुर्गा है । चन्द्रघण्टा भी कोई एक देवी है, ऐसा रूपक है । ‘अमृतस्नावणे चन्द्रघण्टयति सा चन्द्रघण्टा’ जो अमृतदानमें चन्द्रमासे भी ईर्ष्या करके आगे बढ़ने वाली है, वह स्वानुभूति है, उसको चन्द्रघण्टा कहते हैं अर्थात् चंद्रमासे भी उज्ज्वल आत्मगुण जो हैं उन्हें प्रकट कर सके । भद्रकाली—‘कलयति भद्रे सा काली’ जो भव्य जीवोंको हितमें प्रेरित करे वह काली है । स्वानुभूति ही हितका मार्ग है तथा रागद्वेषादि शत्रुओंको जो भक्षण कर जावे उसका नाम काली है । सरस्वतीकी मूर्ति बनाते हैं तो उसके चार हाथ होते हैं तथा कमल उसका वाहन है । हंस कमलके पास बैठा रहता है तथा तालाबके अन्दर कमल रहता है । सरस्वती शब्दकी व्युत्पत्ति होगी—सरः प्रसरणं यस्याः सा सरस्वती, जिसका सर याने फैलाव हो वह सरस्वती है । वह सरस्वती एक हाथमें वीणा लिए हुए है तथा दूसरे हाथमें पुस्तक लिए हुए है तथा तीसरे हाथमें माला तथा चौथे हाथमें शंख लिए हुए है । मंगलाचरण शास्त्रके शुरूमें करते हैं, उसमें पढ़ते हैं । ‘सरस्वती हस्तु नो दुरितान्’ वह जिनवाणी वही हुई सरस्वती वह पापोंको दूर करे—जिसका फैलाव हो वह सरस्वती है । इस जिनवाणीका भी फैलाव है । सर फैलाव है । इसलिए तालाबको सर बोलने लगे । तालाब इस बातका सूचक है कि इसका क्षेत्र बड़ा भारी है । इसका समस्त ज्ञानपर अधिकार है तथा उस सरस्वतीका कमलपर आसन है याने हृदयमें जिनवाणी बरती है । हंस जैसा स्वच्छ विवेकी आत्मा ही तो ज्ञानी बन सकता है,

अन्य जीव नहीं । क्योंकि इसमें क्षीर-नीरका विवेक होता है तथा यह मानसरोवरसे मोती चुगता है ।

जिनवाणीकी आराधनाका दिग्दर्शन—जिनवाणी भी विशाल हृदय वालेके पास ही आती है । कहते हैं कोई—मिथ्यादृष्टि जीवको जिनवाणी न सुहाय । के ऊँधेके लरपरेके उठ घरको जाय ॥ हंस जैसा स्वच्छ आत्मा होना चाहिए । वही सरस्वतीका उपासक बन सकता है । सरस्वतीके जो चार हाथ हैं वह प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग के सूचक हैं । इस तरहकी पवित्र जो जिनवाणी है, उस सरस्वती देवीकी भव्य जीव आराधना करें । कवियोंने कुछ समय तो अलंकार-अलंकारमें ही लिखा था, वही अब सरस्वती हो गई । ज्ञान कहो, उपासना कहो, उसके साधन हाथ बताये हैं । पुस्तक ज्ञानका साधन है । अर्थात् भव्य जीवोंको स्वाध्याय करना चाहिए, जिससे ज्ञानका विकास हो और चारित्रिकी दृढ़ता हो तथा मालासे अपने निज स्वरूपको ध्यान कर प्राप्त करना है । पंचपरमेष्ठीके वाचक मंत्रोंका जाप करनेसे स्वात्म तत्त्वपर आया जा सकता है तथा एक हाथमें वीणा लिए हुए है जिसका मतलब है अन्तर्ध्वनिकी शक्ति अनवरत ध्वनि प्रकट कर रही है । अगर कोई व्यक्तियों को ही 'सा रे, गा, मा, पा, धा, नि, स' आदि प्रथम स्वरसे बोलना शुरू करें तथा पीछे हटते हटते दूसरे सप्तकके सतक पर पहुँच जावेंगे । तब वहाँ सर्वप्रथम 'स' मिलेगा । वह इतना कोमल स्वर है कि उसका उच्चारण करते रोम-रोम खड़े हो जावेंगे तथा उस समय दुनिया की सारी बातें भूल जावेंगे । लोकोक्तिमें कहा भी है—संगीतसाहित्यकलाविहीनः' संगीत और साहित्यसे रहित जो है उसे सभी कलाओंसे विहीन समझना चाहिए । जीवनकी मुख्य ये ही दो कलायें हैं । जिसमें समता लानेका गीत भरा है वह संगीत है, वह कितने ही विकल्पजालों को मिटा देता है । साहित्य, जिसमें हितका भाव समाया होवे वह साहित्य है । इनको सीख कर आत्मध्यानके संगीतमें रत हो सकते हैं । सरस्वती देवी चौथे हाथमें शंख लिए हुए है । वह शंख बजाकर आह्वान कर रही है । संसारके मायाजाल छोड़ो । शान्तिका स्थान कहीं नहीं है, वह अपनी आत्मामें ही है । यहां वहां भटकनेसे कोई लाभ नहीं मिलेगा । शंख युद्ध के बाजेका भी प्रतीक है । वह जता रहा है विकट भर जो कर्म कलंक लगे हुए हैं उन्हें शीघ्र हटा दिया जावे । वह अपनी आत्मध्यानकी अग्नि द्वारा ही प्रज्वलित होगे । उसके लिए प्रथमानुयोग आदि चारों योगोंका सहारा लेकर अपना उज्ज्वल परिणाम बनाया जाय । वस्तु-स्वरूपके विज्ञानसे मोह दूर होता है । मोह दूर हुआ कि निर्मलता प्रकट होती है । अतः निर्मोहता पानेके लिए, शान्ति पानेके लिए वस्तुस्वरूपका अध्ययन, मनन करना चाहिए । यही प्रथम उपाय है । इस गाथामें यह बताया है कि द्रव्य सत्स्वरूप है । द्रव्यमें और सत्तामें प्रदेश भेद नहीं है सो तो दोनों एक हैं और गुण गुणीके भेदकी दृष्टिसे इनमें अतद्भाव है सो एक

नहीं है, अर्थात् गुणगुणीकी अपेक्षासे अनेक हैं, किन्तु यह सब सावधानीके साथ जानना व सुनना चाहिए, क्योंकि एक ही वस्तुकी यह सब चर्चा है।

धन दौलत ही सब कुछ नहीं है—धनके लिए मोही दर-दर मारे फिरते हैं। कोई धन कमानेके लक्ष्यसे विद्या पढ़ने अमेरिका जाता, कोई इंगलैंड जाता तो कोई किसी निर्जन बनमें धूल छानता हुआ फिरता है। लेकिन उस विद्याके सामने यह उत्कृष्ट जिनवाणी सरस्वतीका अध्ययन कल्याणप्रद हो सकता है। वह आचार्योंकी वाणी हृदयमें धारण करने योग्य है, जो अनादि जन्मसन्ततिके बन्धन काटनेको समर्थ है। यह सौभाग्य जीवोंको ही मिलता है। इसमें छलछिद्र नहीं चलते हैं। यह दूधका दूध और पानीका पानी बताने वाला अद्भुत महारथी है। इसका सहारा लेकर अन्यकी ओर मुँह ताकनेकी जरूरत नहीं रहेगी। श्री कविवर पं० दौलतराभजीके शब्दोंमें 'निज पीजो धीधारी जिनवाणी सुधा सम जानेके।'

अखंड वस्तुको विस्तारसे समझनेके लिये अतद्भावका आविष्कार—पदार्थ है, उसमें अस्तित्व है। सत्में सत्ता है, इस सम्बन्धमें चर्चा चल रही है। वह एक वस्तु है या मिली हुई है। सत् और सत्ता मिली हुई नहीं है क्योंकि उनमें अतद्भाव पाया जाता है। वह एक नहीं है। क्योंकि वहाँ स्वरूपभेद है, इसीको प्रकट करते हैं। अतद्भाव अर्थात् 'अ—नहीं, तद्—वह' तथा भाव—भाव—उसका भाव यह नहीं है। ऐसा जो भेद है उसे अतद्भाव कहते हैं। जैसे चेतन चैतन्यमें प्रदेशभेद नहीं, फिर भी चेतनाका जो भाव है वह चैतन्यका नहीं है तथा चैतन्यका जो भाव है वह चेतनका नहीं है। जैसे बोलते हैं इस चेतनमें चैतन्य है, इस तरह आपसमें एक दूसरेका ज्ञान हो जाता है। होशियारसे होशियारी अलग नहीं है। होशियारीका जो अर्थ है वही होशियारका नहीं है। उत्कृष्टरूपसे फैला हो (समन्तात्) इस तरहका हुआ उदाहरण उसे प्रकट करते हैं, पृथक् करते हैं। यह सब प्रयोजनभूत होनेसे स्पष्ट कहते हैं, घोषणा करते हैं, निष्कर्ष निकालकर कह देते हैं। अभी तो अपनी गोष्ठीकी चर्चा थी अब सामान्य तौरसे प्रकाशित करते हैं।

सद्वत् सञ्च गुणो सच्चेय य यज्जगोति बित्थारो ।

जो खलु तस्स अभावो सो तदभावो अतद्भावो ॥१०७॥

एक ही सत्में द्रव्य गुण पर्यायकी समझ—सत् द्रव्य है और सत् गुण है और सत् ही पर्याय है, यह एक द्रव्यका विस्तार है। अब जो उसका अभाव है (अर्थात् गुणका लक्षण गुणका है, द्रव्य या पर्यायका नहीं; पर्यायका लक्षण पर्यायका है, द्रव्य या गुण नहीं; द्रव्यका लक्षण द्रव्यका है, गुण या पर्यायका नहीं) उसे तद्भाव कहते हैं और इसीको अतद्भाव कहते हैं। इस ज्ञेयाधिकारकी १५वीं गाथा में गुण, द्रव्य और पर्याय यह सत्का विस्तार कहा है। जैसे किसी सेठका बहुत कुटुम्ब है तो कहते हैं, उन सबका एक कुनबा है या सेठजी का इतना

विस्तार है, यह सत्का परिवार है। सत्के विस्तारमें सत् द्रव्य है। सत् गुण है, सत् पर्याय है और जो एकका एवमें अभाव है, उसीको अतद्भाव कहा है। किसीका किसी और दूसरेमें अभाव है वही अभाव है। जो सेठके पोतेका लक्षण है वही क्या सेठजी का लक्षण है? यह कहांका विस्तार है? वह विस्तार कहां है? विस्तार इसलिए कि स्वतंत्र द्रव्य गुण नहीं है, गुण पर्याय नहीं, पर्याय द्रव्य नहीं, पर्याय गुण नहीं, गुण द्रव्य नहीं और द्रव्य पर्याय नहीं है। फिर भी गुण और पर्याय रहित द्रव्य नहीं है। द्रव्यरहित गुण पर्याय नहीं है। यह तीनों सत्के अंश हैं। यहाँ अभेद स्वभावको लेना तथा भेद स्वभावको साथमें ही कह रहे हैं। द्रव्य अभेद स्वभावरूप है तथा गुण भेदस्वभावरूप है एवं पर्याय क्षण-क्षणवर्ती है। ज्ञेयाविकारकी सबसे पहली गाथामें द्रव्य गुणमय तथा गुण पर्यायमय और द्रव्यमय अर्थ, इस तरहसे विवक्षा की थी। इसलिए द्रव्य गुण, पर्याय सम और अर्थ द्रव्य हुआ, यह सब अविवक्षा भेद का नाम है। जैसे एक मोतियोंकी माला है, उसमें तीन तरहसे विस्तार है। उसीका नाम हार है तथा उसके अन्दर ही सूत्र (डोरा) है और उसीमें मोतियोंके दाने हैं। मोतियोंकी माला और हारमें क्या अन्तर है? तीन विस्तार किये हैं। (१) हाररूपमें, (२) सूत्ररूपमें तथा (३) मोतीके दाने रूपमें। हार और दाने जुड़े भावको लिए हुए हैं। मोतियोंकी माला हार रूपमें देखी जाती है। हार मोतियोंके रूपमें देखा जाता है।

सत्का विस्तार द्रव्य, गुण, पर्याय है—जो जो उसकी वृत्ति हैं, कार्य कलाप हैं, वह उसकी विशेषतायें हैं या उसकी दशायें हैं, वे सब उसके विस्तार हैं। सत्का जो स्वभाव है वह विस्तार है। वृक्षका विस्तार क्या है? तना, डालियाँ टहनियाँ, पत्ते, कोपलें यह सब उस वृक्षका विस्तार है। वृक्षमें गुणकी अपेक्षासे भेद तथा एक वृक्ष रूपके ग्रहण करनेसे अभेद स्वभाव भी पाया जाता है। यद्यपि जो हार है वह सूत्र नहीं तथा जो सूत्र है वह हार नहीं तथा धागा माला भी नहीं है। किन्तु हारसे धागा, मोती जुड़े रखे हों सो बताओ। जो बजाज है वह क्या सराफ है? किन्तु उन दोनोंमें अतद्भाव पाया जाता है और उनमें प्रदेश भेद नहीं है। जैसे मोतियोंकी एक माला है, मालाका सफेद गुण है, वह तीन रूपसे विस्तारित है। एक द्रव्यका सत्ता गुण है, उसका सत् द्रव्य है तथा सत् ही पर्याय है। ऐसा तीन तरहसे कहा है। उस मोतियोंकी मालामें जो हार है वह मोती नहीं, शुक्ल गुणहार नहीं है। मोती के दाने सूत्र नहीं हैं। परस्पर एक दूसरेका अभाव है यही अतद्भाव है। यही कारण है वह हार मोती धागा रूप नहीं तथा धागा हार रत्न नहीं है। जो ज्ञानका स्वरूप है वह आत्माका स्वरूप नहीं है, जो आत्माका स्वरूप है वह ज्ञानका स्वरूप नहीं है। यह अन्यत्वका कारण भूतस्वरूप है। जो ज्ञान गुण है वह दर्शन नहीं बन जाता तथा दर्शन गुण चारित्र नहीं बन जाता, न दर्शन ज्ञान बन जाता है तथा न चारित्र दर्शन बन जाता है और न ज्ञान बन जाता

है। वह तीनों हो एक दूसरेका काम नहीं कर सकते हैं। अग्निमें कई गुण हैं, जलानेका गुण है, प्रकाश करना भी उसीका काम है। भोजन सामग्री आदि पकाना भी अग्निका काम है तथा शोषण करना भी अग्निका काम है, लेकिन जो जलानेका गुण है वह प्रकाश करनेका गुण नहीं है तथा जो प्रकाशका गुण है वह शोषण करनेका काम नहीं है तथा शोषण करना पकानेका काम नहीं है। जिस तरह दो तीन भाई इकट्ठे रहते हों अगर वह कारणवश न्यारे भी हो गये हों तो भी वह भाई रूपसे वही कहलावेंगे तथा एक दूसरे पर वज्रा (अधिकार) भी रख सकते हैं, फिर भी एक दूसरेका काम नहीं करता। कभी-कभी मनुष्य इकट्ठे काम करते हैं तो वह उस कामको बन्द भी तो कर देते हैं तथा कहते हैं यह काम हमारी शक्तिके बाहर है अतः करनेमें असमर्थ हैं। यह काम तुम्हीं संभालो। चारित्र्य गुण चाहता है कि ज्ञान इसको जाना करे। परन्तु ज्ञान गुण चारित्र्यकी मानता नहीं। चारित्र्य गुण मनाता है। हे ज्ञान ! तुम उदण्ड मत हो, तुम हमें दुःख मत दो। तुम हमारे साथ ऐसा उपयोग कार्य मत करो जिससे हमारे विकासमें क्षति पहुँचे। लेकिन चारित्र्य गुणने कभी हड़ताल भी की क्या ? तुम मानते नहीं हो तो जानो, हम अपना अकेले काम बना लेंगे, यह भी असंभव है। यहां श्री अमृतचन्द्राचार्य सूरिने इतनी सत्य युक्तिसे समझाया है। ज्ञानमें दर्शनका अतद्भाव रूप भेद ही है। ज्ञान गुणका काम जानना है। ज्ञान गुणमें चारित्र्यकी अपेक्षा अतद्भाव है। ज्ञानगुण और जानना इसमें प्रदेशभेद है क्या ? प्रदेश भेद नहीं है फिर भी अतद्भाव है। द्रव्यका पर्यायमें अतद्भाव नहीं है।

स्याद्वादमें कृष्णता (कंजूसी) की गुंजाइश नहीं—स्याद्वादमें बुद्धिका उपयोग खूब किया गया है, पर कंजूसीसे काम नहीं लिया है। जैसे कि कुछ मनुष्य धन जोड़-जोड़कर खूब रखते हैं, लेकिन उसमेंसे दान नहीं देते और न निजी उपयोगमें ही पूरा खर्च करते हैं तथा धन पड़ा रहता है जिसका उपयोग दूसरे ही करते हैं। यह बात यहाँ स्याद्वादमें नहीं है। स्याद्वादमें दिल खेलकर तत्त्वको स्पष्ट किया गया है। द्रव्यको जितना भी विलक्षण समझा है उसे स्पष्ट कह दिया। जहाँ कुछ भी विशेषता दिखी, गुण कहनेकी जरूरत हुई वहाँ गुण कह दिया तथा जहाँ पर्याय की वहाँ पर्याय कहा है। जहाँ भी अन्तर ज्ञात हुआ वहाँ शीघ्र कह दिया कि अमुक वस्तुका गुण है। वैशेषिक गणेशका चूहा है। उसने खूब द्रव्यको कतरा है। अद्वैतवादी गणेशकी सूंड है। मनुष्यके आकारमें तिर्यञ्च हस्तीकी सूंड एकसी जमानेमें सिद्ध रहे। उनसे इस तरह कथानक है। पार्वती तालाबपर अकेली नहा रही थी। पार्वतीने अपने पुत्र गणेशको आज्ञा दी थी कि तालाबमें जब तक मैं नहाऊँ तब तक किसीको तालाबमें नहीं आने देना। इतनेमें महादेव गणेशकी बिना आज्ञाके तालाबमें घुसने गये, तब गणेशने रोका। इस प्रसंगमें महादेवने उसे खत्म कर दिया। तब पार्वतीकी पता चला तो उसने आज्ञा

दो कि इसे शीघ्र जोड़ो। वहाँपर एक हाथी फिर रहा था। मह देवने उसकी सूँड लेकर गगेश में जोड़ दी। ऐसा फिर द्रव्यको एक करे इसे अद्वैतवाद कहते हैं। क्या ईश्वर कहा जाने वाला इस तरहका कार्य भी कर सकता है? यह अद्वैतवादियोंकी अभेदकी कला है। जिसे वह भेद होते हुए भी फिरसे जोड़ देते हैं। तब भिन्न-भिन्न नहीं मालूम पड़ते हैं। वैशेषिक लोग भी कहाँ तक किसी वस्तुका भेद करेंगे, जितना जैनोंने किया है। जैनोंको बखेड़ा (तितर-बितर) करके मिलाना आता है। वैशेषिकोंको बखेड़ा करके मिलाना याद नहीं है, वह वस्तुभेद मानते हैं। जिसका मूल भेद भी नहीं बढ़ पाता तथा पर्याय भी नहीं जँचती। इस आत्माका कुटुम्ब ही दृष्टिभेदसे बना सकते हैं। ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य गुण है। यह सबका सब यदि परस्परमें भिन्न है तो अतद्भाव रूप है, किन्तु ध्रौव्यपनेसे रहित नहीं है।

कुछ भी करो होता है सबका निजमें परिणामन—घरमें अगर भाइयों-भाइयोंमें लड़ाई हो जावे तो वह एक दूसरेको मार-पीट तक भी देते हैं, क्योंकि जहाँ जितना गाढ़ा मोह रहता है वहाँ उतना विवाद भी किया जा सकता है। जब एक दूसरेके अधिकारोंपर नाजायज कब्जा जमाने लगते हैं वही विवाद उत्पन्न होता है। ममताका परिवार जो बंध गया उसमें ऐसा करना चाहिए। मोहकी व्यवहारमें ही एकता है। इसी तरह वस्तुस्वरूपकी वस्तुमें एकता है। कैसा ही कितना बड़ा मालिक हो, वह अपने आधीन कर्मचारी या सेवकोंके हकको नहीं छीन सकता है। अगर ऐसा किया तो विप्लव मच जायगा। पं० जवाहरलाल नेहरू भारतके प्रधानमंत्री थे। वह सदैव देशकी उन्नति चाहते थे तथा सभीको एक सूत्रमें बंधा देखना चाहते थे, किन्तु यह सब कुछ होते हुए भी जनताको जब किसी वस्तुकी अत्यधिक कमी प्रतीत होती है और उसका मुख्य कारण प्रधानमंत्री या अन्य कोई पड़ता है तो वे आपसमें ही भड़क उठते हैं। कोई किसीके द्वारा नहीं परिणामता यह सब होते हुए भी। अगर एकके द्वारा दूसरा परिणामने लगे या परिणामा देवे तो अंधेर मच जाय। जिस दिन प्रलय होगी उस दिन भी प्रत्येक प्राणी अपने-अपने परिणामन जुड़े ही करेंगे। जहाँ जो चल रहा है वह अपनी योग्यताके अनुसार ही परिणाम रहा है। वस्तुत्वको देखो, संसारमें बेईमानी है ही नहीं। कहीं भी वस्तुस्वरूप में बेईमानी तीन कालमें न आई है और न आ सकती है। बेईमानी तो तब कहलावे जब कषाय करे, पंचेन्द्रियोंके विषयभोगोंमें रत रहे और सद्गति होवे तो बेईमानी है। सारा जगत अपनी ही परिणतिसे परिणाम रहा है। इसका कोई सुधारक या बरबाद करने वाला नहीं है।

अनुभवका आनन्द और उसका प्रदर्शन—श्री अमृतचन्दाचार्यजी सूरि एक-एक गुणका विस्तार जुदा-जुदा बता रहे हैं। अनुभव भी बड़ा भारी कार्य है। वह निर्विकल्प पद्धतिसे हुआ था। उसका आनन्द लेनेके बाद विकल्प अवस्थामें आये उसका विस्तार कर रहे हैं। अपने आपको मौजमें पाकर विस्तार कर रहे हैं। इतनी बढ़िया चीजका अमृतपान आचार्य

महाराज हम लोगोंको करा रहे हैं। वह हम प्राणियोंके बीचमें ही अनुपम तत्त्वका विस्तार कर रहे हैं। आत्माका अनुभव आना प्रथम कार्य है। आत्मामें अनुभवोंका विस्तार करना दूसरा कार्य है तथा उन अनुभवोंको अपने आत्मबलसे सबके सामने प्रकट करना तीसरा कार्य है। स्वयंका अनुभव अन्य जनोंको किसी न किसी रूपमें प्रकट करना कल्याणप्रद है। इन तीन बातोंसे ज्ञानी जीवकी शोभा ही बढ़ती है तथा उसके लिए प्रायः आवश्यक भी हो जाती है। जैसे किसीके यहाँ बढ़िया भोजन बनाया गया और उसको अकेलेने खाया, खते समय भोजनकी ही धुनि रहती है। उस स्वादको किसीके सामने प्रकट न किया। खिलाकर तो वह संतोष नहीं पाता। दूसरे आत्मतत्त्वको जान जावे फिर ऐसा कौन सामर्थ्यवान् होगा जो उसे पानेकी चेष्टा न करे? उसी तरह ज्ञानी जीवोंने जो पूर्वभवके संस्कारसे ज्ञान पाया है उसको उन्होंने अपने आत्मानन्द द्वारा चखनेका मुहावरा प्राप्त कर लिया। अब जब तक अनुराग है तब तक उसको दूसरोंमें बिना कहे रहा जाना असंभव है। भले वह शब्दोंमें कहने में कठिन प्रतीत होता हो, फिर भी उसको विशेषतायें बताकर सबके सामने प्रकट किया है। आचार्योंने जो स्वयं आस्वादन किया वह दूसरोंके लिए भी स्रोत प्रकट किया है। वह भरने का जल विभिन्न प्रवाहोंसे निकलकर हम सबको पान कराता है तथा कभी-कभी पूर्णतया अवगाहन करना जरूरी हो जाती है। जब वह एक बार भी अनुभवमें आ जाता है फिर उसे छोड़े बिना नहीं रहा जा सकता। यह आत्मानुभवका आनन्द अनुपमेय है।

अभिन्न धर्म धर्मोंमें स्वरूपभेद—एक ही द्रव्यमें जो सत्ता गुण है वही उसका द्रव्य स्वरूप भी है। द्रव्यमें सत्ता रहती है वह सत्के बिना नहीं रह सकती है। फिर भी दोनों एक स्वरूप नहीं हैं। अगर किसी एक व्यक्तिने भोजन किया तो वह दूसरे भाईके पेटको संतोष नहीं दे देगा। वही दोनों लड़ने भिड़नेको भाई-भाई हैं। उसी तरह एक अनुभवके लिए सत्ता और सत् एक है। प्रकृत बातको समझनेके लिए जो भी बात लेंगे उसे लक्षण भेद से जुदा कहते हैं। जीव सिद्ध करनेके लिए उसीका दृष्टान्त दे दिया तो समझनेमें कठिनाई होती है। जीवको सिद्ध करनेके लिए अजीवका उदाहरण भी देना पड़ेगा। कुछ वस्तुएं इस तरहकी होती हैं जो देखनेपर एकसी मालूम पड़ती हैं। फिर भी उनके लक्षण जुदे-जुदे होते हैं। उसी तरह द्रव्य गुणोंके सहित भी हैं तथा उसमें अर्थ भी पाया जाता है। वह तीनों इकट्ठे रहते हुए भी एक ही वस्तु नहीं हैं। अभावमें दो दार्शनिक पद्धति गर्भित हैं, न के दो अर्थ होते हैं। अभावके भी दो अर्थ होते हैं। व्याकरणमें यह दृष्टान्त बहुत चलते हैं। जैसे 'अब्राह्मणाः भुज्यन्ताः' अर्थात् ब्राह्मणको न खिलाओ। इसका एक यह भी अर्थ हो सकता है ब्राह्मणको न खिलाकर दूसरोंको खिलाया जावे तथा यह भी भाव निकलता है कि ब्राह्मणों को भी न खिलाओ। इस भिखारी को मत दो, दूसरे को दे दो तथा दूसरा अर्थ भिखारीको

भी मत दो ।

तुच्छाभाव कैसे जाना जा सकता है—जैनसिद्धांतमें सर्वथा अभाव तो नहीं है । जिसे दूसरे शब्दोंमें तुच्छाभाव कह देते हैं । जैसे कहें कमरेमें से समयसार ले आओ । तब जिससे लानेको कहा था वह आकर कहता है कि हमने कमरेमें समयसार देख लिया, वह वहाँपर नहीं है । लेकिन वहाँ समयसारका सर्वथा अभाव तो दिखता नहीं । पूछा—दिखाओ तो, समयसार नहीं होनेपर वह चौकी लाकर दिखाता है कि चौकीपर समयसार नहीं है । यहाँ समयसारका अभाव चौकीरूप पड़ा । जैनसिद्धान्तमें निरर्थक बातोंको स्थान नहीं दिया जाता है । जैसे वहीँ से ईश्वरको ग्रहण कर लिया, कहीं जगतको लिया तथा कर्तापनको सम्मिलित करके कहने लगे—‘ईश्वरने जगतको बनाया या वह कर्ता है । इसीको कहते हैं । ‘कहींकी ईंट कहींका रोड़ा भानुमतिने कुनबा जोड़ा’ इससे वह विवश हैं । यद्यपि ईश्वर भी है, जगत भी है, कर्तृत्व भी है, किन्तु इस रूपमें नहीं । कुछ न कुछ तो उनके लिए कहना आवश्यक हो गया । इसलिए जहाँ तक जैसी बुद्धि चली वैसा जिस किसी उनके मुख्य पुरुषने कह दिया उसीपर आगे भी कहने लगे । उन्हें हितकी भी बात समझाई जाय तो समझमें नहीं आती । क्योंकि वह तो कहते हैं कि जो हमारे शास्त्रोंमें लिखा वह झूठ नहीं है । इसीसे वह ईश्वरको जगतका कर्ता मानने लगे । लेकिन ईश्वर तो उसे कहते हैं जो अपने स्वादके भोगमें अत्यंत स्वाधीन हो, जिसे वैभवमें दूसरेके मुंहको न ताकना पड़े । जिस तरह कुछ जमींदार इस तरहके होते थे या राजा लोग जो सभी पूर्ति अपने यहांसे कर लेते थे, अनाज अपने खेतसे पैदा कर लिया, फल साग-सब्जी भी । कपास उगाकर कपड़ा बनवा लिया, नमक भी बनवा लिया, रस वाले पदार्थ गुड़, शक्कर आदि भी स्वयं बना लिये । धातुएं भी उन्हींकी जमीनोंसे निकल सकती हैं । इनको कहते हैं ऐश्वर्यवान । अपने भोगके अर्थ किसी अन्यका मुंह न ताकना पड़े । जिसे दूसरे का मुंह ताकना पड़े, उसे ‘ऐश्वर्यवान’ नहीं कहते । यह स्वाधीनता नहीं कि नौकरसे कहा—पानी लाओ पीनेको । तो नौकर कहता है कि जो काम मैं कर रहा हूं, उसे पूर्ण कर लूं, बाद में लाऊंगा या शरीरके सहारेसे काम करना, मुंहसे बोलना, यह भी तो पराधीनता है । क्योंकि शरीर तो पुद्गलसे निर्मित है । तब दुनियामें ऐसा कौनसा ऐश्वर्य है जो स्वतः मिलता है ? वह ऐश्वर्य भगवानमें है, उसे निहारना चाहिए । द्रव्यदृष्टिसे अपनी आत्मा और भगवान समान हैं, पर्यायदृष्टिसे भिन्न-भिन्न हैं । मनुष्योंमें भी सर्वोत्कृष्ट प्रशंसनीय नारायण माना जाता है । नारायण = नरके समान जिसका आचरण हो । मनुष्य प्रायः कहा करते हैं—किस जगह अचानक नारायणके दर्शन हो जावें ? एक गरीब पुरुष, विद्वान, त्यागी आदिमें भी उस नारायणके दर्शन हो सकते हैं तब किसीके भी प्रति खोटा भाव क्यों रखा जाय ? जिसमें उत्कृष्ट ज्ञान पाया जावे, उसे भगवान कहते हैं ।

अपराधका व्यग्र होते ही पवित्रता आ जाती है—बंगालमें द्रोपदी नामकी एक लड़की थी। पिता सम्पन्न घरानेका था। उसने बचपनमें लड़कीकी शादी कर दी। वह बचपन में ही विधवा हो गई। लड़कीका पिता जमींदार था, इसलिए उसने लड़कीको बुलाकर काफी जमीन, बगीचा, कुँआ आदि दे दिया। वह कुछ समय बाद व्यभिचारिणी हो गई। सभीमें उसकी अपकीर्ति फैल गई। कुछ समय बाद उस लड़कीके मनमें ज्ञान जगा। तब पिताके पास आकर कहने लगी कि मैं तीर्थयात्राको जाना चाहती हूँ। पिताने समझाया—जीवन काफी बड़ा है, अभीसे क्यों इतनी व्यग्र होती है? तब उसने कहा—मेरा जीवन अभी तक पापोंमें सना रहा, अब मैं उन्हें छोड़कर आत्मारोधना करूँगी। बड़े पिताकी पुत्री, अतएव गाँव वालों को बुलाया गया। सभी मनुष्य आये, लड़कीने सबमें घोषणा की मैं अब अपना जीवन पवित्र ढंगसे बिताऊँगी, इसलिए सबसे क्षमा माँगकर तीर्थवन्दनाको जाती हूँ। तब सभी मुंह बन्द करे कोई हाथ लगाकर, कोई कपड़ा लगाकर हंसने लगे। यह देखकर लड़कीने कहा—भाइयो! मैंने विषयलोलुपी बनकर जीवनके इतने भागका पतन कर दिया अब मैं उसे घृणाकी दृष्टिसे देखती हूँ तथा उसका महान् प्रायश्चित् लेनेके लिए प्रयाण कर रही हूँ। इसलिए तुम्हें हंसना हो भले हंसो, क्योंकि मेरे अब तकके कार्य ही ऐसे थे, जो कि आप सबकी दृष्टिमें इस तरह जंच रहे हैं—‘नौ सो चूहा मार बिलैया हज को रूठी’। उसके पहलेके पापसे बगीचेके आम आदि फल कड़ुवे हो गये थे, बावड़ीका जल दुर्गन्धित कीड़ीसे युक्त हो गया था। उसके विरक्त होते ही उस लड़कीने यकीन दिलानेके लिए कहा कि आप सब बगीचेके फल चखकर देख लो, वह सभी मीठे हो गये तथा बावड़ीका जल सुगन्धित निर्मल हो गया। तब वह फल वगैरा कहेके अनुरूप ही निकले। उस लड़कीने तीर्थमें जाकर देवताके ऊपर जल चढ़ाया एकाग्र मनसे तथा बादमें ध्यानमें लवलीन होकर उसीमें समा गई। इससे ज्ञात होता है पूर्वमें किसीने कितना भी पाप किया हो वह आधा तो स्वयंके पश्चात्ताप करनेसे छूट सकता है तथा उस पश्चात्तापमें जो ज्ञान होगा वह भी विशुद्ध होगा। लेकिन यह चेष्टा सच्ची आत्मकल्याण की भावनासे होनी चाहिए। इसका भाव यह नहीं है कि जानकर पापकार्योंमें प्रवृत्त हो जावे और सोचे मैं भक्ति, दान पश्चात्तापसे उन पापोंसे छूट जाऊँगा। इस तरह सोचकर पापकार्य करनेसे अधिक पतनके कारण बनते हैं।

वस्तु स्वपरकी अपेक्षा सत् सदात्मक है—सत् और सत्ता दो का आधारभूत एक ही वस्तु है। वही सत् अन्यका असत् रूप है। अज्ञान भिटा वह सर्वथा अभावरूप नहीं है। हममें दुनियाभरके अभाव हैं तो क्या कुछ भी नहीं है? हममें दुनियाभरका अभाव है। आत्मजन्य सत्यको देखनेसे शरीर व कर्म हममें नहीं हैं। जब आत्मजन्य लक्ष्य नहीं है तब कर्म व शरीर मानना ही पड़ेगा। अभाव सर्वथा शून्य रूप नहीं होता है। अभाव द्वारसे प्रत्येक पदार्थ ४

तरहसे जाना जाता है—(१) प्राग्भाव, (२) ध्वंसाभाव, (३) अन्योन्याभाव, (४) अत्यन्ताभाव । आगे होने वाली अवस्था नहीं है । इसे दिखानेके लिये पहलेकी अवस्था पेश (उपस्थित) कर दी । यहाँ पहलेकी अवस्था पेश करके उत्तर अवस्थाको दिखाया है, यह प्राग्भाव है । उत्तरावस्था दिखाकर पहिली अवस्थाका अभाव बताना प्रध्वंसाभाव है । कपड़ोंमें चौकी नहीं है और चौकीमें कपड़ा नहीं है, फिर भी यह एक दूसरेके परमाणु समय बीतनेपर दूसरे रूप भी बन सकते हैं । कपासके परमाणु सड़गलके खेतमें पहुँचनेसे कपासमें भी जा सकते हैं, यहाँका अभाव अन्योन्याभाव है । जीवमें पुद्गल नहीं है तथा पुद्गलमें जीव नहीं है, यह अत्यन्ताभाव है । कोई पदार्थ दूसरे रूप परिणम गया या एकके नहीं होनेपर दूसरा है । इस तरह पदार्थ का सर्वथा अभाव नहीं है ।

भिन्न-भिन्न पदार्थोंका भिन्न-भिन्न व्यवहार—मनुष्य एक दूसरेसे स्वार्थकी प्रीति करते हैं । जब तक हित सधता है तब तक प्रेम करते हैं । यहाँ तो अगर सुबह प्रीति है तथा कुछ समय बाद स्त्रीने ही पतिको भोजन अच्छा नहीं दिया तो वही पति प्रेम नहीं करेगा । क्षणमें वैमनस्यता हो जाती है । दूसरे भवमें भी कौन किससे प्रेम करता है ? सेठ जिनदत्तका अचानक स्वर्गवास हो गया । वह मरकर मेढक हुआ तो उसकी स्त्रीको मुनि द्वारा पता चला जो तेरे घड़ेमें बार-बार मेढक आ जाता है वह तेरा पति था, जिनदत्त ही मरकर मेढक हुआ है । तब उसकी पत्नीने मेढकको लाकर छत्ते जलमें रखा व उसको भोजन दिया करे । क्या इस तरहके भी प्राणी कोई मिल सकते हैं ? भैया ! वहाँ भी पत्नीने मेढकका कुछ नहीं किया । पत्नीने अपना भाव ही पोषा । संसारमें अनादिसे भ्रमण करते हुए इस जीवका प्रायः सभीसे किसी न किसी रूपमें परिकरताका नाता हुआ । कौन किसका भाई कुटुम्बीजन नहीं हुआ ? उन्हींको हम देखकर घृणा कर देते हैं । एक पैसा भी गरीब भाईके लिए हाथसे देना कठिन हो जाता है । जैनधर्मकी रक्षा करते हुए आत्माका जो लक्ष्य है वही सच्चा स्वार्थ है । खुदगर्जी छोड़कर आत्माका स्वाद ग्रहण करा लिया जावे, यह कल्याणप्रद है । कोई बुरा है तो वह अपने लिए तथा भला है तो वह अपने लिए ही है । कोई भला है तो मुझपर क्या ऐहसान कर रहा है ? वह अपने ही भलेमें तो मस्त है । कोई बुरा है तो क्या मेरा बुरा कर रहा है, वह अपना बुरा करनेमें प्रयत्न है ।

द्रव्य, गुण, पर्यायमें पृथक्त्वका अभाव—द्रव्यके स्वरूपकी समझ निर्मोहता उत्पन्न करती है । इस गाथामें बताया है कि द्रव्य एक शुद्ध सत्ताक है उसमें व्यवहारनयसे भेद किये हैं । यहाँ दृष्टान्तपूर्वक समझा दिया गया है कि देखो—जैसे एक मोतियोंकी माला है, उसका तीन प्रकारसे विस्तार है—हार है, डोरा है, मोतीदाना है । इसी प्रकार एक द्रव्य (पदार्थ) का तीन प्रकारसे विस्तार है—द्रव्य है, गुण है, पर्याय है । जैसे उस एक मालाके शुबल गुण

का तीन प्रकारसे विस्तार है—शुक्ल हार है, शुक्ल सूत्र (डोरा) है, शुक्ल मोतीदाना है, इसी प्रकार एक द्रव्यके सत्ता गुणका तीन प्रकारसे विस्तार है—सत् द्रव्य है, सत् गुण है, सत् पर्याय है। जैसे एक मोतीमालामें जो शुक्ल गुण है, वह न हार है, न सूत्र है, न मोतीदाना है और हार है, सूत्र है अथवा मोतीदाना है, वह शुक्ल गुण नहीं। ऐसा जो एकमें दूसरेका अभाव है, उसे तद्भाव लक्षण वाला अतद्भाव कहा गया है। इसी प्रकार एक द्रव्यमें जो सत्ता गुण है वह न द्रव्य है, न अन्य गुण हैं, न पर्याय है और जो द्रव्य है अथवा अन्य गुण है अथवा पर्याय है वह सत्ता गुण नहीं। ऐसा जो एकमें दूसरेका अभाव है वह तद्भाव लक्षण वाला अतद्भाव कहा गया है। यही अतद्भाव अन्यताका कारणभूत है, अन्य प्रकारसे अर्थात् प्रादेशिक पृथक्त्व उनमें नहीं है।

वीतराग महर्षियोंकी अपार करुणा—वीतराग प्रभुने संसारमें रलते हुए जीवोंपर मानो अलौकिक करुणा की है। उन्होंने आत्म-प्रेरणासे प्रेरित होकर संसारी जीवोंको भी कल्याणमार्गकी ओर उन्मुख किया है। उन्होंने ज्ञानका उपदेश दिया है। सत् द्रव्यका लक्षण है। 'है' बिना समझे एक तिल भी बढ़नेकी गुंजाइश नहीं है। 'है' का मर्म जाने बिना आत्मा की बात जानी जाय, यह असंभव है। आगे जानेके लिए मौलिक सत् जानना आवश्यक है। जगत्के पदार्थ न्यारे-न्यारे हैं। यह सत्के द्वारा जाना जाता है। सत्के परिज्ञानसे अज्ञानका आवरण हटाया जा सकता है। यहाँ अमृतचन्द्राचार्य सूरिने सत्का ही विस्तार किया है, जिसे बहुमुखी प्रतिभासे स्पष्ट दर्शाया है। पूर्वमें जो ज्ञान कराया जाता है उसमें कर्मप्रवादपूर्व तथा आत्मप्रवादपूर्व भी है। इन दोनों पूर्वोंमें से मुख्यतया कर्मप्रवादपूर्व वाले धवल, महाधवल सिद्धान्त ग्रन्थ हैं। उनकी कितनी विस्तृत टीका है, वह विशालकाय ज्ञानकोषसे भरे हुए हैं। उनको पढ़ जानेपर भी नयी-नयी उत्कंठा उत्पन्न हो जाती है। उनके भी पढ़े जानेपर कुछ और जाननेकी अभिलाषा बनी ही रहती है। उन्हींका कुछ सार भाग सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्यने गोमट्टसार (जीवकांड, कर्मकांड) की रचना की है। अगर यह धवल महाधवल (षट्खण्डागम) लुप्तवस्थामें ही पढ़े रहते तो बड़ा भारी शास्त्र-प्रवाह रुक जाता। इससे कुछ अधिक जिनवाणी समयके प्रवाहमें कालकवलित हो गई है। लेकिन जितनी भी आजकल जिनवाणी उपलब्ध हैं उन्हें ही सुनकर थकित हो रहे हैं। आत्मप्रवादविषयक बातका भी बड़ा विस्तार है, यह तो अति संक्षेप है। प्रतिदिन नया-नया भोजन किया जाता है तथा बुभुक्षा शमन की जाती है, फिर भी भोजनके प्रति नया-नया राग उत्पन्न होता रहता है अथवा प्रतिदिन उसकी आवश्यकता बनी रहती है, उसी तरह हम जिनवाणी प्रतिदिन सुनते हैं, उससे नयी-नयी वस्तुओंका ज्ञान मिलता है, उस ज्ञानकी हृदयमें कोपलें फूटती हैं, जो ज्ञान को हरा-भरा करके मन्द-मन्द वायुसे सुगंधित किये रहती हैं। यह ज्ञानका भोजन है, इसका

स्वाद बेजोड़ है। शुरूसे अपने ऊपर भी यही बात चल रही है। कोई क्षण नहीं है जहाँ ज्ञान की बात नहीं मिलती हो। जैनियोंको जीवनमें अनेक अवसर आते हैं ज्ञानपथमें आगे बढ़नेके, लेकिन उन अमूल्य क्षणोंको प्रमादमें खो देते हैं। जिससे हम पूर्व जैसे तथा उससे भी ज्यादा गिरे हुए रह जाते हैं। इन ज्ञानकरणके क्षणोंमें लाभ लेवें तो वह विस्तृत नहीं होना चाहिए।

अनुभूत तत्त्वके स्मरणमें भी आनन्द—जैसे किसीको गोमटेश्वर बाहुबलिकी मूर्तिका आश्चर्य हुआ। तब उसकी दर्शन करनेकी भावना बलवती हुई। भावना करते-करते साधन जुटाकर दर्शन करनेके लिए पहुंच गया। दर्शन करनेसे दृढ़ प्रतीति हो जाती है जो लोगोंसे सुना वह पूर्ण नहीं है। बाहुबलिले महान पराक्रमशाली होते हुए भरतसे सभी युद्धोंमें जीतकर भी इन विषयोंको धिक्कारते हुए दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण की थी। उन्होंने घोर तपश्चरणा किया था जिससे उनके शरीरके पास सर्पोंने बामी भी बना ली थी तथा बेलें उनके शरीरपर लिपट गई थीं। यह सब होते हुए भी तपस्यामें अटल रहे थे। भरतने आकर बाहुबलिकी भक्ति एवं प्रार्थना की थी। तब बाहुबलि निःशल्य तप करके मोक्ष पधारे थे। वह अनुपम मूर्ति आत्म-विस्मृत कर देती है तथा विरोधीसे विरोधी जीवका भी माथा वहाँ जाकर चरणोंमें श्रद्धासे नत हो जाता है। अब उस मूर्तिके प्रति कोई कितना भी बहकावे, लेकिन वे बहकानेके कारण हमारी श्रद्धाको अटल बनानेके ही कारण बनेंगे। हम किसी भी तरह उस मूर्तिकी मनोज्ञता को भूल नहीं सकते। उसी तरह जिसने अपनी आत्माकी एक बार खबर ले ली वह क्या उसे भूल सकेगा? धर्म करना स्वभाव ही आत्माका है। हम अपने मुंहसे भी जैन न कहें, किन्तु हमारे आचरण आत्माका कार्य करनेमें ही संलग्न होवें तो कौनसी भव्य आत्मा हमारी ओर आकर्षित होकर पद-चिह्नोंपर चलनेका प्रयास न करेगी? इसके विपरीत हमारा आचार ऊंचा न हो, अपनेपर ही एवं धर्मपर विश्वास न हो तथा जैन-जैन चिल्लाते रहें, अखबारोंमें छपवाते रहें, आम जनतामें भी प्रचार करें तो उसका प्रभाव उतना नहीं पड़ेगा। बिना आचरणके कौन किसके पास जाता है? आत्मश्रद्धा होनेपर कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्र कितने ही बहकाते रहें, चमत्कार दिखाते रहें, फिर भी वह हमपर लेशभर भी अधिकार न जमा सकेंगे। आत्माकी प्रतीति जो करेगा वह आनन्द पावेगा।

तू स्वयं आनन्दमय है, अन्तरमें अपनेको तो देख—हरिणकी नाभिमें कस्तूरी रहती है। उसकी सुगंधसे वह आकृष्ट होकर जंगलमें खोजता फिरता है, किन्तु वह अपनी सुगंधसे बेमुध है। इसी तरह हमारा आनन्द हममें असीमित समाया हुआ है, उसे पानेके लिए यहाँ-वहाँ मुंह ताकते फिरते हैं। लेकिन इस समय गुरुदेव कहते हैं कि तू जरा भी तो अपनेमें शांति से बैठ, बाहरी कल्लोलोंको ज्ञानरूपी मन्द हवासे शान्त कर दे, तब फिर अपनी आत्माका आनन्द ले। तब तेरे ऊपर कोई भी आक्रमण क्यों न होवे, वह बेमुध नहीं कर सकेगा। जब

तक तुझे 'मैं कौन हूँ' का भान नहीं है, तभी तक तू यहां वहां भटक रहा है। तू दर्पणके समान निज ज्ञेयाकारका भोक्ता है। दर्पणमें कुछ भी झलकता रहे, किन्तु दर्पण पदार्थोंके झलकनेके पदार्थस्वरूप नहीं होता है। सुख दुःख जो झलक रहा है, उस रूप मैं नहीं हूँ। विकल्प मुझमें झलके वह तो मैं हूँ तथा विकल्प जो आये वह मैं नहीं हूँ। विकल्प आनेका जानकार तो मैं हूँ, यह दृष्टि आत्मामें आनेपर बाहर नहीं देखेगा ? सिद्ध प्रभुके समान शुद्ध स्वभावमय इस प्रभुकी क्या दशा हो रही है ? कानी लड़की भी हो गई तो सोचता है कि सर्वस्व यही है। परपदार्थपर तो दृष्टि जा रही है, किन्तु अपने आपका पता ही नहीं। जिसे सर्वस्व समझ रहा है उसमें तो लेश भी अपना नहीं है। बाह्यको स्पर्श करनेसे भी क्या तेरा लाभ होगा ? अन्तरङ्गकी ओर तो झुको, अन्तरङ्गकी आवाज पहिचानमें आ जावे तब कितने दुःख नहीं टल जावें। सबमें पाया जाने वाला 'है' का स्वरूप चल रहा है। एकका उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य दूसरेका नहीं बन सकता। वह 'है' किसी न किसी रूपमें परिणमन बनाये रहता है। अपना जो बन रहा है वह दूसरेका नहीं हो सकता है। तब फिर ऐसी स्थितिमें कौन कर्ता है, कौन स्वामी है ? परपदार्थ जो भी जितना प्यारा लग रहा है वह उतना ही घातक है। वस्तुतः तो हमारी प्रीति ही घातक है। निमित्तमात्र यह तुम्हें मिले हैं, और कोई स्थायित्व समझमें नहीं आता है। बाह्य पदार्थसे दृष्टि हटनेपर आत्मलाभ नियमसे मिलना चाहिए। जो महापुरुष हुए हैं उन्होंने जीवनके पूर्वभागमें खूब संग्रह किया। पश्चात् उत्तरावस्थामें उन सबकी निःसारता जो समाई हुई थी, उसे प्रकट करके एक क्षणमें सभीमें लात मार देते हैं। हम मोहियोंको तो मिला क्या है, वह तो हममें ठोकर ही लगा रहे हैं। हमने ऐसा अलौकिक पाया क्या ? जिसपर फूल जावें। सत्य तो यह है कि बाह्यपदार्थ कैसा भी हो वह तीन काल में भी सुख देनेको समर्थ नहीं है। जिसके पास जितना वैभव है, क्या उसपर पूर्ण कब्जा बना रहता है, उन सबमें क्या वह लिपटा रहता है ? धन वैभव, हाथी, घोड़ा, मोटर एक तरफ खड़े रहते हैं, उन्हें देख-देखकर झूठा हर्षित होता है। तीन लोकका जो भी वैभव है वह मेरा नहीं है। यह विश्वास हो गया तो सत्का ज्ञान समझमें आ जायगा। सत्के ज्ञान बिना मौलिक वैराग्य होता भी नहीं है।

हे पदार्थों ! तुम स्वतन्त्र-स्वतन्त्र ही परिणामो—जो भी जिससे खुश होता है वह उसे आशीर्वाद देता है। एक भिखारी सेठके पास आता है, सेठ उसे रूखी-सूखी चार रोटियां दे देता है। सेठका उतना वैभव है, मौजसे रहता है। कहाँ भिखारीका दर्जा, तब भी वह कहता है—'तुम खूब फूलो फलो।' वहां वह छोटा बड़ा नहीं देखता है। द्रव्यस्वरूपसे जिसका ज्ञान पवित्र हो जाता है वह कहता है कि हे द्रव्यो ! तुम स्वतन्त्र-स्वतन्त्र परिणामो, एवम्के द्वारा दूसरे का परिणामन मुझे मत पंचो। उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे युक्त रहते हुए भी प्रत्येक द्रव्य स्वतन्त्र-

स्वतंत्र परिणामन कर रहे हैं। सत्में और भी विलास है, जो द्रव्य है वह गुण नहीं है, जो गुण है वह तत्त्व नहीं है तथा तत्त्व अर्थ नहीं है। तत्त्वमें और द्रव्यमें अन्तर है। तब अन्तर सहित तत्त्वको द्रव्य कैसे बना सकते हैं ? यहां यद्यपि यह सब अनर्थान्तर है तब भी अतद्भाव है। वस्तुको ४ तरहसे देख सकते हैं—(१) द्रव्य रूप, (२) तत्त्व, (३) पदार्थ तथा (४) अस्ति-काय। जैसे जीवद्रव्य, जीवतत्त्व, जीवपदार्थ और जीवास्तिकाय। व्यवहारमें भी हम मनुष्यादि को कई रूपोंमें देखते हैं तथा जिस रूप जब देखते हैं, तब वह अपना जुदा-जुदा महत्त्व रखते हैं। कभी भक्त रूपमें, कभी नेता रूपमें, कभी समाजके समान स्तरमें, कभी सेठ रूपमें, कभी दानीके रूपमें आदि। इनमें अर्थान्तरका अन्तर है। जो त्रिकाल पर्यायोंको ग्रहण करे ऐसा चेतन द्रव्य है। इस तरहसे देखा गया वह चेतनद्रव्य है। एक पिण्डरूपसे अथवा जिसे कहते हैं—कोई वस्तु (ऐनी थिंग) इस रूपसे देखा गया चेतन चेतनपदार्थ है। प्रदेश अथवा क्षेत्र-विस्तारकी दृष्टिसे देखा गया चेतन चेतनअस्तिकाय है। भावरूपसे देखा गया याने गुण अथवा चैतन्यस्वभावकी दृष्टिसे देखा गया चेतन चेतनतत्त्व है। यहाँ कहेंगे जो द्रव्य है वह गुण नहीं है। सो गुण और तत्त्व दोनों भावदृष्टिसे मुकाबलेके हैं, तथापि यहाँ तत्त्व शब्द द्रव्यके लिये दिया है। जो द्रव्य है वह तत्त्व नहीं है। जो गुण है वह द्रव्य नहीं है। जो अंगुली है वह हाथ नहीं है। सत्का सत्त्वका परस्परमें अतद्भाव है। यह एक ही वस्तुमें होकर अतद्भाव है। जब उसके भेद करने होते हैं तो विस्तार करना होता है। यहाँ सभी सत्के भेद किये हैं। सर्वथा अभाव हो ऐसा नहीं कहा है। जैसे पुस्तकका अभावमात्र घड़ी कहा और घड़ीका वर्णन या निर्देश या लक्ष्य भी नहीं किया तो फिर रहा ही क्या ? लेकिन घड़ीका वर्णन नहीं किया, लक्ष्य नहीं किया तो उसका लोप तो नहीं हो जायगा। किसीके अभावको भगवानने सत्के सद्भावका निर्देश किया है, तुच्छाभावका निर्देश नहीं किया है। सर्वथा अभावरूप कोई चीज नहीं होती। जो भी शब्द है उसका वाच्य है और जिस किसीका भी अभाव कहो वह अन्यके सद्भावरूप है। यदि पूछो कि तुच्छाभाव किसके सद्भावरूप है ? उत्तर यही होगा कि तुच्छा-भाव तुच्छाभाव सोचे जाने वाले विकल्पके सद्भावरूप है। यह तुच्छाभाव तुम्हारे विकल्पके सद्भावरूप है। तुम्हारे विकल्पमें जो बात समा रही है उसका निर्देश यहाँ नहीं कर रहे हैं। कोई पदार्थ है वह सत् है, सत्ता उसका गुण है। यह समझनेमें काम आने वाला भेद है, अन्य तरहका भेद नहीं है। यह जाननेपर समझो जिनेश्वरके लघुनन्दन हो गये तथा जब यह अनु-भूत है तब यह भेद नहीं है तथा कहें कि यह मेरा पुत्र है, यह मेरी स्त्री है, मैं इनका स्वामी हूँ, पालन-पोषण करता हूँ। इस तरहके भावोंसे ग्रस्त होवें, तब समझो कि वह मोहेश्वरके पिता हैं। घरमें रहने वाला लड़का भी अपना कुछ नहीं है। वह तो इसलिए पिताजी, बाबू जी मान रहा है कि उसके मनोनुकूल हम नाचते हैं। विद्या पढ़ानेमें कारण पढ़ते हैं। जिस-

जिसका राग है वह सब ऐसा करते हैं। सबका पुण्य पाप सबके साथमें लगा है। तब कहें मैं इसका कुछ करता हूं, कहां तक उचित है? प्रत्येक कार्य अपने-अपने परिणामसे हो रहे हैं। हम या आप कोई भी जो कुछ कर रहे हैं वह तो हम निमित्तमात्र पड़ गये हैं तथा जो भी कुछ कर रहे हैं उसमें अपने ही भलेकी या सुखकी इच्छा समाई हुई है।

अपना-अपना आनन्द तत्त्वज्ञानपर निर्भर है—अपना जीवन सुरक्षित अपने हाथमें है। परपदार्थका मोह कितना भी करें, जब तक हमारा इस तरहका पुण्य नहीं होगा तब तक वह मिलनेका नहीं। मिला भी तो उसने तृष्णायें ही बढ़ा दीं और कुछ नहीं किया तो पुण्य समागमसे निराकुलता तो नहीं हुई, यह समझकर उनके प्रतिसे निर्मोह रहना ही श्रेयस्कर है। दिलमें यह अच्छी तरह समा जाना चाहिए, सब पदार्थ अपना-अपना परिणामन कर रहे हैं, मैं कुछ भी नहीं करता हूं। मैं तो केवल ज्ञातादृष्टा मात्र हूं। यही प्रयत्न सदैव चलता रहे जो जीवनका सारभूत तत्त्व और मोक्ष पानेका सरल उपाय है। इति शम्।

ज्ञाता और सत्में प्रदेश भेद तो है ही नहीं, अतः उनमें पृथक्त्व रूप भेद तो पाया नहीं जाता। हां विशेष्य विशेषणरूप व लक्षणरूप व अतद्भाव रूप भेद पाया जाता है। सो अतद्भावका तात्पर्य सर्वथा अभावरूप नहीं है, किन्तु एकका वाच्यार्थ दूसरेमें नहीं है, इतना ही अतद्भावका मतलब है। इस ही मर्मको श्री कुन्दकुन्द आचार्य महाराज कहते हैं—

जं दब्बं तण्ण गुणो जोविगुणो सो ण तच्च मत्थादो।

एसो हि अतब्भावो एव अभावोत्ति णिदिट्ठो ॥१०८॥

जो द्रव्य है वह गुण हैं और जो गुण हैं सो द्रव्य नहीं है। वास्तवमें ऐसा ही यह अतद्भाव है, किन्तु अभाव है ऐसा अतद्भाव नहीं निर्दिष्ट किया गया है। जो एक द्रव्यमें या एक वस्तुमें गुण है वह द्रव्य नहीं है। जो द्रव्य है वह गुण नहीं है। जैसे आत्मामें ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख गुण हैं। ज्ञानका स्वरूप जानना है, ज्ञान न हो तो किसीको जानेंगे भी कैसे? आत्मा अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतसुख और अनंतवीर्य गुणों वाला है। तब द्रव्यका स्वरूप दूसरा मानना पड़ेगा तथा गुणोंका स्वरूप दूसरा मानना पड़ेगा। जैसे आम स्पर्श, रूप, रस, गंध वाला है। वह अनेक गुणोंसे सहित है, किन्तु रंग एक ही तरहका है। उसमें फिर भी प्रदेशभेद नहीं है, क्योंकि आमका रूप तथा आम भिन्न नहीं है। तो द्रव्यका जो एक गुण है वह द्रव्य नहीं है तथा गुणका द्रव्यरूपसे अभाव है और गुणका द्रव्यरूपसे अभाव है। जैसे आप व्यापक हैं तथा आपका रंग व्याप्य है या जब हम कहें चौकीको कि एक फुट ऊँची है तथा कहें चौकी है। यहाँ चौकी और एक फुट ऊँची इन दोनोंका अर्थ एक नहीं है। यहाँ विशाल क्या है? चौकी कठोर, लम्बी-चौड़ी, अमुक रंग वाली, साफ, चिकनी, काठ या पीतल की आदि कई विशेषतायें लिये हुए हैं, किन्तु एक फुट ऊँचीमें और दूसरा अर्थ क्या है? यहाँ

चौकी अंशी है और एक फुट ऊँची अंश है। अंशअंशीका भेद है और दूसरा भेद नहीं है। इतने ही मात्रसे अन्य व्यवहारकी सिद्धि है। दृष्टान्तसे चौकी और एक फुट ऊँची लिया है, किन्तु वह एक फुट ही रहे, यह बात नहीं है तथा चौकी भी भिन्न-भिन्न तरहकी हो सकती हैं।

जितने शब्द हैं उतने स्वरूपभेद हैं—किसीका नाम घसीटेमल है, वह किसीका बाप, किसीका बेटा, मामा, चाचा, भानजा, भाई भी हो सकता है। लेकिन जब कहें मुन्नीका बाप तथा घसीटेमल—यहाँ इन दोनोंका एक अर्थ नहीं है। इसी तरह द्रव्य तथा गुण भी भिन्न भिन्न अर्थ रखते हैं। अगर घसीटेमल पुजारी, व्यापारी, रिश्तेदारी, इन्जीनियर, डाक्टर, मास्टर आदिके रूपमें देखे जावें तो उस समय उनके भिन्न-भिन्न अर्थ होंगे। एक व्यापक दूसरा व्याप्य है। जैसे मुन्नीके बाप कहनेपर कुछ और मतलब निकलता है तथा घसीटेमलसे कुछ और मतलब निकलता है। अगर अन्य प्रकारसे अभावरूप अन्तर करोगे तो गुणका अभाव द्रव्य हो गया तथा गुणका अभाव द्रव्य हो गया, कहना होगा। इस तरह नहीं है। एक फुट ऊँची चौकी स्वरूप नहीं है तथा चौकी एक फुट ऊँची मात्र हो, सो नहीं है। कोई कहे हमें तो बिल्कुल अन्यत्व सिद्ध करना है यह भी करना असंभव है। जैसे सत् और सत्ता जुदी-जुदी होते हुए भी एक ही वस्तुमें रहती हैं। धर्म और धर्मीका भेद पाया जाता है। सीधा तथा सीधापन एक होते हुए भी दोनोंमें भेद है। सीधापनका अभाव सीधामें है तथा सीधाका अभाव सीधापनमें है। ऐसे लक्षण वाले अन्यत्वका नाम अतद्भाव ही है, सर्वथा अभावका नहीं। ऊँचाईके न होनेका नाम चौकी नहीं है तथा चौकीके न होनेका नाम ऊँचाई नहीं है। ऊँचाई और चौकी जुदी-जुदी कर लो। ऊँचाई अलग तथा चौकी अलग है। कोई कहे ऊँचाई लाओ तो दो वस्तुएं भिन्न-भिन्न हो जावेंगी। इस तरह होनेपर ऊँचाईके अभावका नाम चौकी कहना होगा तथा चौकीके अभावका नाम ऊँचाई कहना होगा।

हमें अपनेको सही समझना है—यह सब प्रकरण इसलिए चल रहा है कि आत्मा मात्र निज स्वभावमय मैं हूँ, सत् स्वरूप अखण्ड हूँ, चिदानन्दमय हूँ। इनमें गुणगुणीका भेद है, सर्वथा भेद तथा अभेद नहीं है। अपनी आत्माकी बात अपने लिए समझना है। मैं चैतन्य आत्मा हूँ। आगमें गर्मी कहीं अलगसे नहीं आई है। इसी तरह जगतके जितने पदार्थ हैं वे स्वयं सत् हैं। वे सब उत्पाद ध्रौव्य वाले हैं। कोई किसीको न उत्पन्न करता है और न नाश करता है। अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ क्या है? वस्तुका स्वरूप समझमें न आना, यही अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ है। यह वस्तुका समझमें न आना अपने आपपर डबल क्रोध करना है। कोई तो एक घंटा ही क्रोधसे रलेगा, किन्तु इसकी सीमा नहीं है। पर्याय वृद्धिमें मीठा क्रोध सभीको अच्छा मालूम पड़ता है। अपनेको भूलकर क्रोध करता है तो सुहाता है। अगर किसीकी दूसरेसे लड़ाई हो गई, उसी बीचमें कोई समझाने आया तो

क्रोध कुछ कम होनेपर उसे फिरसे लानेकी चेष्टा करता है। क्योंकि क्रोध चला गया तो बदला कैसे लेंगे ? हमारे मनमें यह ठेस लगी रहेगी, यह सोचकर फिरसे तावमें आकर बौखला पड़ता है। कभी-कभी समझाने वालेपर भी आफत आ जाती है। वस्तुस्वरूपको न जाननेसे इस तरह का क्रोध होता है। वस्तुस्वरूपको न जाननेसे ही अभिमान आता है। सम्पूर्ण दुनियाकी डेढ़ आँख मानना। सबमें विभाग करें तो एक आँख अपनी और आधी आँख बाकी दुनियाकी मानना। इस तरहका कोई भी व्यक्ति नहीं मिलेगा जिसे गाना और रोना न आता हो। अपना गाना सभीको अच्छा लगता है। कोई ज्ञानके मदमें चूर है, कोई धनके मदमें चूर है, कोई ताकतके मदमें चूर है, कोई अपने रूप लावण्यके सामने दूसरोंको कुछ भी नहीं समझता। दिलका ताप (दुःख) निकालनेके लिए रोना एक शस्त्र है, वह दुःख हल्का जैसा हो जाता है, उसी तरह चिन्तातुर मनुष्यके लिए गाना रामबाण औषधि है, जो भीगे दिलमें हर्षका संचार करता है। पद्य या गीत परम्परा आदिकालसे मिलती है। हिन्दी साहित्यकी रचना शुरू-शुरू में प्रायः पद्यमें ही हुई थी। वह काफी समय तक चलती रही तथा बादमें हिन्दी गद्य साहित्य का प्रादुर्भाव हुआ। जब हम इन कारणोंको देखते हैं तो पद्य साहित्य शुरूसे आगे बढ़ा पाया जाता है। अपनी कविता किसीको भी बुरी नहीं लगती है। उसमें भले ही स्वर, मात्रायें, तुकबन्दी, दोहा आदि छन्दोंका यथोचित निर्वाह न हो, फिर भी वह उसे खराब नहीं लगती है। जैसा कि कहा है—‘निज कवित्त केहि लगे न फीका, सरस होय चाहे अति नीका।’ इसी तरह कुछ मनुष्योंको अपने मनगढ़ंत विचार बड़े उत्तम लगते हैं। वह सबको अपने विचारोंके अनुरूप ही देखना चाहता है। यदि कोई किसीके विचारोंके अनुकूल चलने लगे तब तो ‘भिन्नरुचि हि लोकः’ मनुष्य जुदी-जुदी रुचिके होते हैं। यह सिद्धान्त ही उठ जाना चाहिए। यहाँ प्रकरण सत् और सत्ताका चल रहा है। प्रसंगवश यह कहना पड़ा।

मोही जीवोंको पर्याय ही रुचती है—मोही पर्यायमें आसक्त होकर सुख मानते हैं। उन्हें अपने परिवार भाई, बान्धवों, स्त्री, पुत्रके सामने कुछ अच्छा नहीं लगता है। क्या जितनी बढ़िया उसकी स्त्री है उतनी बढ़िया विदेहमें भी नहीं होगी। उसी तरह उस जैसा पुत्र भी क्या विदेह क्षेत्रमें भी नहीं होगा ? इतना सब सोचते-सोचते आँखें मिचनेको आ जातीं तब भी नहीं चेत पाता। आँखें मिचनेपर सब छोड़कर चले जाते हैं। मोहमें ही सब कुछ दिखता है। पूरा गाँवका गाँव जल जावे तथा आना घर बच गया तो सोचता है कि अभी कुछ नहीं जला तथा अपना घर जल जाय, गाँव भले ही बचा रहे तो सोचेगा सब जल गया। यह मोहकी दशा हो रही है। पर्याय बुद्धि रहने तक यह विचारधारा चलती ही रहती है। बचपनमें किसे धन कमानेकी इच्छा थी ? अपनी मौजमें अमय निकालते थे। शुरूमें यहाँसे वहाँ, वहाँसे यहाँ गोद-गोद लिए फिरे, कुछ बढ़े होनेपर पिताके आश्रित हो विद्या उपार्जन की, खूब ठाठसे खर्च

किया। मित्र-मण्डलीमें प्रभाव जमाया। बादमें शादी हुई तो धन कमाएकी चिन्ता सवार हो गई। घरकी व्यवस्था बनानेकी धुन सवार हुई। उसी तरहका राग पैदा हुआ तथा वैसे कार्यों में प्रवृत्त हो गया। बचपनसे जिन्होंने गृहस्थीका राग नहीं देखा उन्हें बचपनके विरुद्ध चिन्ता महसूस करनी पड़ती है। वह बचपन जैसी अवस्था न आ पाई तो कुछ न कुछ शल्य चलती ही रहती है। पढ़नेके लिए बड़े आदमी भी आवें तो उनमें पुस्तक लेते ही बच्चा जैसे भाव पैदा हो जाते हैं, परिणामोंमें शुद्धि आने लगती है, कषायें हटने लगती हैं, पुस्तकके ज्ञान की तरंगें उठने लगती हैं, उस विषयको मन छूने लगता है। जैसे विषयका ग्रन्थ हाथमें है उसी तरहके उत्कृष्ट भाव बार-बार टक्कर लगाने लगते हैं। जिस तरह गांधीजी ने चर्खें चलाने में उपयोगको परिवर्तन करके रोटी खानेके समान उसे प्रति दिन कातना जरूरी बताया था। क्योंकि उससे मन एकाग्र होकर पंचेन्द्रियाँ वशमें होती हैं। गरीबोंकी बात सामने आ जाती है। सूत न टूट जाय—इसपर दृष्टि रहती है। उससे समुज्ज्वल यह ज्ञानरूपी धागा न टूट जाय यह प्रयत्न सदैव रहना चाहिए। क्योंकि एक बार टूटा ज्ञानका क्रम फिर उसमें गाँठ लगाना पड़ेगी जो कि खटकने वाली रहेगी। ज्ञानकी उन्नति जीवनमें सदैव सुख देती है। ज्ञानार्थीको पुस्तक सदैव साथ रखनी चाहिए। समय मिलते ही उससे ज्ञान प्राप्त करनेकी लगन रहे। कल्याणार्थीको पग-पगपर ज्ञान बढ़ानेकी बात मिल रही है। वह उस रसको पीकर संतुष्ट है।

यथार्थ ज्ञान तो कर लो फिर जो चाहे करना—किसीके एक दामाद थे। वह बिना पढ़े लिखे थे। एक समय ससुरालमें गये। वहाँ सभी इन्हें आदर करते तथा इनका चित्त बहलावा करते थे। दामाद साहबके पिता जी कुछ समयसे बीमार हो गये थे। सबको पता चल गया था। ससुरालमें पिताकी अर्थात् इनकी पत्नीके ससुरकी चिट्ठी आई। उसमें लिखा था, अब तबियत अच्छी हो रही है, चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं। सभीके सामने पत्र गया, औरतें नहीं पढ़ सकीं, तब कहा लाला जी साहब (दामाद) से पत्र पढ़ा लाओ। उन्हें दिया गया, तो वह पढ़े न होनेसे पश्चात्ताप कर पत्रको हाथमें लेकर रोने लगे। तब किसी स्त्रीने सबके बीच कह दिया, बेचारेके पिता मर गये। क्योंकि बीमार तो थे ही, अब क्या था सब में रोना-धोना शुरू हो गया। तब वहाँसे एक आदमी निकला, वह बोला क्यों रो रहे हो? तब उन्होंने कहा इनके पिता मर गये, इससे सब रो रहे हैं, क्योंकि पत्र आया है। तब मुसafirने कहा--देखें चिट्ठी। चिट्ठी पढ़कर कहता है--अरे बेवकूफों, तुम्हें तो खुश होना चाहिए। इसमें तो यह लिखा है कि पिताजी बीमारीसे अच्छे हो रहे हैं। तब सभी इस अज्ञानपूर्ण कार्य पर पछताये। इसी तरह पहले पदार्थके स्वरूपको तो जान लो, फिर रोओ, हंसो, कुछ भी करो। इसके बिना प्रमादपूर्ण घूमना लाभदायक नहीं है। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपमें परिणम

रहे हैं, यह दृष्टिमें जंच जावे ।

स्याद्वादका अवलम्बन लेकर विज्ञान प्राप्त करो—सत् और सत्ता जुदी-जुदी वाच्यता वाली होते हुए भी एक द्रव्यमें ही पाये जाते हैं । सत् और सत्ता लक्षण भेदकी अपेक्षा भिन्न-भिन्न हैं । वह दोनों अन्य तो हैं, किन्तु पृथक्-पृथक् नहीं हैं । किसीने हठ किया, हम तो सत्के अभावको सत्ता मान लेंगे तथा सत्ताके अभावको सत् मान लेंगे । इस तरह मानने में क्या दोष है ? क्योंकि हमारा अभाव तुममें है और तुम्हारा अभाव हममें है । आप और हम अलग-अलग होते हुए सद्भाव जुदा-जुदा है । इसी तरह माननेपर सत् और सत्ता दो वस्तुएँ हो जावेंगी । जैसे चेतन द्रव्यका अभाव अचेतन तथा अचेतन द्रव्यका अभाव चेतन है । इस तरह अनेकता आ जावेगी । एक शब्दके कई अर्थ होते हैं । एकका मतलब समान होता है । जैसे कहें यह तो तुम्हारी बिरादरी वाले ही हैं, सब एक ही हैं । यह समानताका अर्थ हुआ । दूसरा अर्थ एकका संख्या भी है । जैसे एक मनुष्य, एक मुनि, एक प्रधान मंत्री आदि । तीसरा अर्थ अनुपम भी है । जैसे यह अपने नियमके एक ही हैं या अपनी शानके एक बेजोड़ ही हैं । अमुकका उपदेश लासानी है । दूसरे मत वालोंने माना है, ब्रह्म एक है, क्योंकि सभीमें आत्मद्रव्यकी अपेक्षा समानता पाई जाती है । उसे तो वे भूल गये और संख्यारूपमें एक मान लिया । जैन भी कहते हैं कि ब्रह्म एक है, अर्थात् आत्मद्रव्य सभीका स्वतन्त्र स्वतन्त्र है, किन्तु है समान स्वरूप वाला । उनकी दृष्टिमें ब्रह्म अद्वैत है तथा जैनोंने स्वतन्त्रताकी अपेक्षा जुदा-जुदा माना है । यहाँ दोनोंका कहना सही है । उनकी दृष्टिमें भी ब्रह्म एक ही है । अब रहा दृष्टि भेद, जिससे भेद आ गया । तब दोनोंमें खटपटकी नौबत आई । जैन सिद्धान्त मानता है कि आत्मा सर्वव्यापक है तथा वह कहते हैं कि ब्रह्म सर्वव्यापक है । यहाँ हमारी दो दृष्टियाँ हैं—(१) ब्रह्मका ज्ञान एक आत्मस्थ होकर भी सबको जानता है । (२) लोकाकाशका एक भी प्रदेश बताओ जहाँ जीव न हो । यह लोक ३४३ राजू लम्बा चौड़ा है, उसमें ऐसा कोई भी एक स्थान नहीं है जहाँ जीवद्रव्य नहीं पाया जाता हो । तब सर्वत्र जीव है सो व्यापक कहा जा सकता है । वर्तमानमें वैज्ञानिकोंने जितनी दुनिया बताई है यह लोक उससे असंख्यात गुणा है । कुछ लोगोंका कहना है ब्रह्म एक है, वह सब जगह व्यापक है । तब यही तो मानना पड़ेगा कि यह जीव शरीर जहाँ जायगा वहाँ ब्रह्मका सम्बन्ध मानना ही पड़ेगा । मन अचेतन है किन्तु ब्रह्मके चेतनसे चेतनता आ गई । सत् सत्ताको यदि जुदा सर्वथा मानो तो यहाँ अनेकता आ गई । पुस्तकका अभाव घड़ीमें है, घड़ीका अभाव पुस्तकमें है, यह दो वस्तु हो गई । द्रव्यका अभाव नहीं किया जा सकता । जब एक वस्तुका किसी अपेक्षासे अभाव कहोगे तो दूसरेका सद्भाव होगा ही । 'द्रव्यस्य अभावः गुणः, गुणस्वाभावः द्रव्यम्' । द्रव्यका अभाव कहना या होना गुणका सद्भाव कहना या होना है तथा गुणका अभाव द्रव्य

का होना है। इसी तरह सत् और सत्ता दो चीजें हैं, आपत्ति आ गई, अगर सत्से सत्ताको जुदी मान ली जाय तो यह दोष आ जायगा। कुछ लोग 'है' पना भी भिन्न मानते हैं। यदि उनसे पूछो तो कभी सत् व सत्ता जुदे भी रहे या रहेंगे तो कहते हैं इनका समवाय शुरूसे चल रहा है। स्वरूपभेदकी भिन्नता दिमागमें ज्यादा जम गई। अपने शुद्ध वितर्क स्वरूपभेद की भिन्नता नयसे मानते हैं।

निष्पक्ष होकर एक बार भी तो वस्तुस्वरूपका परिचय पा लो—देखो तो कुछ मोही जन सिद्धान्तमें एक द्रव्यकी अनेकता माननेको तैयार हो जाते हैं तो कुछ मोही अनेकको एक बनाये फिरते हैं। यह व्यवहार अपने अनेक विराट रूप दिखा रहा है। व्यवहारकी बातोंमें तो अनेकताकी चर्चा कठिनाईसे हृदयमें स्थान पाती है। जब सिद्धान्तमें तथा स्वरूपमें भेद डालकर यह बात लाते हैं तब व्यवहारमें मोह ममता करके एकत्व ही स्थापित करते हैं। पर्याय व द्रव्यमें हम और आप सभी एक नहीं हैं। लौकिक व्यवहार तकका भी विश्वास नहीं है, क्योंकि आपसमें उन्हें एक दूसरेकी बोल-चाल, रहन-सहन नहीं सुहाया तो अलग-अलग हो जाते हैं। सब रागद्वेषके कार्य चल रहे हैं, इनमें विश्वास क्या? इनकी दोस्ती निभती ही रहेगी यह कौन कह सकता है? आपसमें कषाय पुष्ट हुई तो मित्र बन गये। कषाय नहीं मिली तो वही राग मन-मुटावमें बदलकर शत्रुताका रूप धारण कर लेता है। जिनके कषाय की पकड़ नहीं है तो हजारों मुनि एक साथ इकट्ठे रहते थे। सिखर सम्भेदजीसे करोड़ों मुनि मोक्ष पधारे हैं तो उनके संघ भी तो भिन्न-भिन्न समयपर विराजते होंगे। आपसमें धर्मचर्चा होती होगी, शिक्षा लेते होंगे। जिन्हें कषायकी पकड़ है उनको जीवनभर क्या एक दिनको भी निभना मुश्किल हो जाता है। कषायकी ग्रस्ततामें कभी-कभी क्षणभरके लिए एक दूसरेका आचार-विचार, रहन-सहन नहीं सुहाता है तथा मन ही मन घृणा एवं नफरत करने लगते हैं तथा उसे पेटमें नहीं रख पाते तो उस विषका बीज बाहर वमन करने लगते हैं। जो रागी हैं वह मित्रताकी पकड़ करते हैं। ज्ञानी जीव सबको अन्य-अन्य गिनते हैं। ज्ञानियोंकी भक्ति तथा मोहियोंकी भक्तिमें बड़ा अन्तर है। बहुत तेज भक्ति मोहीकी मिलेगी। वह भक्तिमें पसीना बहा देगा, चिल्लावेगा तथा दूसरोंको अपनी ओर आकर्षित करनेके लिए अनेक तरहके हाव-भाव बनावेगा। ज्ञानीकी भक्ति समताकी गलीमें से चलती है। वह गम्भीरता मिली हुई होती है। समता रसका पान करते हैं। उनकी भक्ति जमीन आकाशको एक न करके स्वयं में शान्ति पानेके लिये है। अज्ञानी लोग विसंवाद कलह करेंगे, तड़क-भड़क दिखावेंगे, ममता बतावेंगे, अंगोपाङ्ग चलावेंगे।

ज्ञानी अपने स्वरूपमें सावधान रहता है—ज्ञानी सहज स्वभावका आनन्दका भोक्ता है। भक्तिसे भी ऊँची बात निज स्वरूपावलोकनमें मिलती है। यहाँ तो निज प्रभुके स्वरूपका

आनन्द समाया हुआ है। दो लड़के एक साथ पढ़ते हैं। उनमें एक होशियार है तथा दूसरा पढ़नेमें मन्द है। उन दोनोंको एक सवाल मास्टरने करनेको दिया। मन्दगति वाला तो डरते-डरते करता है तथा होशियार चटसे कर देता है। दोनों सवाल करके मास्टरके पास ले जाते हैं। मास्टर होशियारके उत्तरको सहीका विश्वास करके दोनोंका सवाल मिलानेको कह देता है। मिलाते समय मन्दगति वाले छात्रका सवाल मिलता जाता है। वह अपने ही अन्दर बड़ा खुश होता जाता है। जब पूर्ण सही उत्तर निकल आता है तो उसकी खुशीकी सीमा नहीं रहती। यह प्रभु जिसमें किसी तरहका दोष नहीं है जब उपयोगमें आ जाता है तब यह अपने विकल्पोंको हटाता हुआ निर्मल भाव बनानेका प्रयत्न करता है। इस समय हम अपना सवाल उस परमात्म प्रभुके स्वरूपसे मिला रहे हैं। ज्यों-ज्यों हमारा स्वरूप मिलता जाता है, तब उसका आनन्द एक विलक्षण जातिका होता है, किन्तु मोहीका आनन्द किस तरहका होता है? वह कहता है कि पहलेसे हमारे यहाँ यह कार्य चलता आया है, उसे करना चाहिए। वह पितरोंको तर्पण न करे, फिर भी उनमें देवत्व मानकर उनका दिन मनावेगा, दुःखी होगा। वह कहेगा कि पुरखे ऐसा करते थे। उसकी दृष्टि सदैव बाहरपर ही जाती है। मोही मोहमें बड़े-बड़े कठिन काम कर डालते हैं। समझदार आदमी समझते हैं, यह बड़ा दृढ़ लगनसे कार्य करने वाला है, किन्तु उसके निजमें कुछ भी बात नहीं जगती। ज्ञानी जीव अपनेमें ही बैठता है। दुनियाकी भ्रष्टोंको तिलाञ्जलि देता है। ज्ञानी मन ही मन निर्णय करता है, हमारा काम ठीक हुआ या नहीं? अच्छा हुआ ये मालूम होनेपर सोचता है, हमारा कार्य ठीक चल रहा है।

आत्माकी बात इतनी सुगम है कि वह स्वयं देखी जा सकती है—आत्मा आत्माके द्वारा आत्मासे ही कुछ पा सकता है। मिलान करके कुछ पाना है तो अरहंत सिद्ध परमेश्वरीके गुणोंसे अपनी तुलना करनी चाहिए। कोई चाहे कि अपने गुणोंका मिलान आकाशसे कर लूँ तो वह वहाँ नहीं मिलेंगे। परको अपना मानना, अहंकार करना दुःखका कारण है। अहंकार शब्दके पर्यायवाची शब्द और भी हैं। स्मथ, घमंड, अभिमान करना, मान करना तथा अपनी नाक रखना। जब तक यह बातें रहती हैं तब तक हितबुद्धि कुछ भी नहीं दिखेगी। दीक्षार्थी यह सोचे कि मैं सबसे कोई अनोखा थोड़े ही हूँ जिसपर गर्व करूँ? गर्व याने नाकपर ही से परमात्मा नजर नहीं आता। एक नकटा था अर्थात् उसकी नाक कटी थी। उसे कई मनुष्य चिढ़ावें। तब उसने औरोंको भी नकटा बनानेका चक्र रचा। अतएव चिढ़ाने वालोंसे कहने लगा कि तुम क्या समझो नाक कटे रहस्यको? तुम्हारी जो नाक है उसकी नोककी आड़में शंकर भगवान छिपे हुए हैं, वह नहीं दिखते हैं। मेरी नाक कटी होनेसे मुझे साक्षात् शंकर भगवान दिखते हैं। तब उस चिढ़ाने वालेने नाक कटवा ली। तब वह बोला भगवानके दर्शन

तो होते ही नहीं। तब वह पहला नाक कटा व्यक्ति बोला—तुम तो देवदूत हो, जो कहते हो कि भगवान नहीं दिखते। तुम तो सबसे कहना कि हमें तो भगवान साक्षात् दिखते हैं, नकटे तो हो ही गये। तब दूसरोंने उसे भी चिढ़ाना शुरू किया तो वह भी बोला कि तुम इस नाक कटेके स्वादको क्या समझो? तुम्हें भगवान नहीं दिखते नाककी ओटमें। हमें साक्षात् भगवान दिखते हैं। तब नाक उसने भी कटवा ली और पहलेने उससे भी कहा कि तुम सबसे कहना कि हमें साक्षात् भगवान दिखते हैं। इस तरह एक दूसरोंसे कह-कहकर सभीने नाक कटवा ली। अब केवल एक मुखिया बच रहा। एक दिन सभीकी सभा भरी थी। सबकी नाक कटी देखकर मुखियाने इसका कारण पूछा। तो सब बोले कि नाकके कट जानेसे हमें भगवानके साक्षात् दर्शन होते हैं। तब मुखिया जी भी नाक कटानेको तैयार हो गये। इतनेमें शुरूके मूल नकटेके मनमें दया आई। उसने सोचा कि सब तो मेरे पीछे मूर्ख बन गये, इसे तो बचने दूं। इसलिए उसने मुखियाको एकान्तमें बुलाकर कहा कि यह तो सब हमारी सृष्टि है। भगवान वगैरा कुछ नहीं दिखते, मनुष्य मुझे चिढ़ाते थे, इसलिए ऐसा किया गया। जो अपनी नाक रखनेका घमंड करते थे उसका मजा उन्होंने चखा है। इसी तरह अहंकार जो करते हैं उन्हें इसी तरहकी सूरतपनेको इस लोकमें विपदायें उठानी पड़ती हैं तथा परलोक भी बिगड़ता है। अमूर्त आत्मा है, इसकी तरंगें चल रही हैं। बाहरसे समझते सुन्दर लग रहे हैं। भीतर भी तो जरा देखो तो सबके भद्दा खुल जावेगी, हाड़-मांसके ऊपर चमड़ीका वेषन चढ़ा है। आनन्दका घात बाहरके पदार्थका अभाव नहीं कर रहा है और न संयोगका ही दुःख है। दुःख तो विकल्पोंका है। सत् समझमें आनेपर विकल्पजाल बिखर जाते हैं।

धर्म और धर्मो जुदी-जुदी चीज नहीं है—सुवर्णका अभाव सुवर्णत्व नहीं है और न सुवर्णत्वका अभाव सुवर्ण है। अगर इस तरह मानोगे तो सुवर्णत्व व सुवर्ण—इन दोनोंका अभाव हो जायगा। अगर सत् नहीं है तो सत्ता क्या तथा सत्ता नहीं है तो सत् क्या रहेगा? दोनोंका अभाव हो जायगा, उभय शून्यत्व आ जायगा। जैसे इन्सानियतका अभाव इन्सान नहीं है। इन्सानियतके आधारके बिना इन्सान कहाँ रह सकता है तथा इन्सानसे रहित इन्सानियत नहीं है। अगर यह मानोगे तो दोनोंका अभाव हो जायगा, उभय शून्यता आ जावेगी। द्रव्यके अभावका नाम गुण तथा गुणके अभावका नाम द्रव्य मानना चाहते हैं यह उन्मत्त वचन है। घड़ीमें क्या सभी पदार्थोंका अभाव है? कहेँ घड़ी लाओ, घड़ी अतिरिक्त सबका अभाव लाओ, तब वह क्या लायगा? शायद पुस्तक ले आवे। सत् और सत्ता दुनियामें दो पृथक् ही हैं। उनका परस्परमें अभाव हो, ऐसा माननेपर सत्का अभाव है तो सत्ता निराधार हो जायेगी तथा सत्ता न मानें और सत् मानें अर्थात् सत्ताका अभाव सत् मानें और सत्का अभाव सत्ता मानें तो उभयशून्यता दोनोंमें आ जावेगी। पहला दोष आया था अनेकपना। अनेक-

पना भले हो जाओ, किन्तु कोई स्वरूपसे नष्ट तो नहीं हुआ। तुम कहते हो कि अनेक हो जाओ, किन्तु वहां तो कोई एक ही नहीं है। जैसे यह मानो कि घड़ीका अभाव पुस्तक तथा पुस्तकका अभाव घड़ी। ऐसा कहनेपर पुस्तकका जो अभाव है वही घड़ी मानना पड़ेगा। वस्तुभूत मनमें न लाओ तो ऐसा होनेपर तुच्छाभाव हो जायगा।

वस्तु स्वद्रव्य, क्षेत्र, काल, भावात्मक है—अब प्रकृत विषयका अर्थ लेते हैं। पटका अभाव मात्रको घड़ी माननेपर कहीं भी घड़ीका सद्भाव हो जाना चाहिए अर्थात् घड़ी पटवो त्यागकर रहती है तथा पट खड़ीको त्यागकर रहता है। ऐसा माना जावे तो क्या दोष उत्पन्न हो जायगा? यह बता रहे हैं। सत्के बिना सत्ता रह जावे तथा सत्ताके बिना सत् रह जावे तो अपोहत्व आ जायगा तथा नकारपना आ जायगा। पटके अभावमात्रसे क्या समयका पता चल जायेगा कि इस समय इतने बजे हैं? इसका तो संकेत घड़ीसे मिलेगा, अपोहसे नहीं। तुम सद्भाव बिल्कुल नहीं मानते तो वहाँ सब अभावोंके लड़नेसे शून्यत्व हो गया तथा यहाँ अपोह हो जावेगा। सुगतोंमें अपोह चलता है। उन्होंने कहा कि घड़ी दिख रही है तो यह कुछ नहीं। अन्य सबके अभावका नाम घड़ी है। वह तो क्षणिक है, इसलिए उनमें ध्रुवता आनी ही नहीं चाहिए, क्योंकि 'न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी।' नील रंगकी व्याप्ति, उसे छोड़कर सब रंगोंका न रहना ही व्याप्ति है या वही अपोह नीला रंगका होना है, किन्तु ऐसा है नहीं। संव्यवहार प्रत्यक्षमें मालूम भी पड़ता है कि यह एक नीला द्रव्य है। उसमें भी प्रदेशभेद होते हैं। सुगत कहते हैं कि घड़ी तो कोई चीज नहीं है। घड़ी छोड़कर सबका अभाव ऐसा कह दिया वही घड़ीका वाच्य है अर्थात् घड़ीका सद्भाव ही नहीं है वह तो अन्यापोह रूप है। जैसे एक घरमें दो लड़के हों, उनमें एकपर अधिक स्नेह किया। इसलिए उसे कोई खानेकी वस्तु दे दी तथा दूसरेको नहीं दी। यह देखकर जिसे खाद्य वस्तु न मिली वह क्रुद्ध होकर भाईकी चीज छुड़ानेको जाता है। पहला चीज पाने वाला देना नहीं चाहता, इससे लड़ाई होती है। तब दोनोंमें से पहला खाद्य वस्तुको तोड़-मरोड़कर मसल-कुचलकर फेंक देता है। तब वह किसीके खानेको नहीं रहती। इसी तरह सुगतोंका सिद्धान्त है। उनके सिद्धान्तसे कुछ चीज है ही नहीं, तब मोह किसपर करोगे? यही तोड़-मरोड़कर सुगतोंने बताया है। जो निर्विकल्प शुद्ध स्वरूप है वह द्रव्यस्वरूपको निरपेक्ष मानकर चलते हैं। यहाँ तो कुछ है ही नहीं। हाँ की तरह तो तब होवे जब कुछ जंचे। दुनियाकी दृष्टिमें अपोह रूप तो कुछ जंचता भी नहीं है। दुनियामें तो विकल्पत्व जंचे तब कुछ है। इनको तो 'न' अर्थात् जो कहते हो वह कुछ भी नहीं है, फिर भी हठात् इस तरहसे बना डालो तो क्या सुगत (अच्छी गति वाले) बन जावेंगे? यह सब प्रतिभास मात्र है और कुछ नहीं है। अचेतनको तो इस तरह मिटा दिया, अब तो चेतन द्रव्य सीधा-साधा रह गया। वह भी एक कोई नहीं है, रागद्वेषादि मिटा

दिये । सीधा-साधा यह निर्विकल्प है ।

जिसकी समझमें जो आया उसीमें वह संलग्न है—सभी मिटा दो तब किससे रागद्वेष करोगे ? इसी तरह सत् और सत्तामें मान लो तब कुछ चीज ही 'न' रहे, न 'न' का नाम सत् है । इस सिद्धान्तमें वस्तुत्व नहीं । अपने भी तो न करके सत्पर पहुंचते हैं, किन्तु वस्तुपर तो पहुंचते हैं । तुम विधि मत कहो केवल नेति-नेति-नेतिपर डटे रहो, क्योंकि अगर कहो ज्ञान वाला आत्मा है । तो ज्ञान जुदा रहा तथा आत्मा जुदा और वाला (सहित) जुदा रहा । फिर कहो ज्ञानमय आत्मा है । तो इसे भी कोई बिना भेद देखे नहीं बोल सकता । तुम ज्ञानमय आत्मा जिसे कहना चाहते हो वह भेदरूप है नहीं, इसलिए ज्ञानमय आत्मा भी नहीं है । तब फिर कहो ऐसा भी नहीं, और ऐसा भी नहीं, यह भी नहीं । तब तुम्हें यही कहना होगा नेति नेति । नेति करके जो दृष्ट हो जाय वह आत्मा है । कैसा है आत्मस्वभाव ? परपदार्थों से जुदा है । परपदार्थोंके निमित्तोंसे होने वाले जो भाव हैं उनसे भी जुदा है, इतनेपर भी नहीं समझे । जो मति श्रुत ज्ञान हो रहे हैं, उनसे भी जुदा है । यह कैसे ? खण्डरूप आत्मा हो तो समझे आत्मा खण्डरूप नहीं । पूर्ण जाने तो आत्मा है । जैसे केवलज्ञान आत्मा है, ज्ञानपूर्ण आत्मा है । नहीं, आत्माका तो आदि, मध्य, अन्त नहीं है । तब केवल ज्ञानकी तो आदि है, मध्य भी है । आत्माकी जितनी शुद्ध अशुद्ध परिणतियाँ हैं उनपर दृष्टि न देकर आत्मा एक है । अभी भी यह समझमें नहीं आया । तब फिर कहते हैं कि आत्मा एक है, जब तक सोचोगे तब तक आत्मा जाना नहीं जा सकता । फिरसे भेद मिल जायगा, वह आत्मा ही क्या रहेगा ? आत्मा तो प्रतिषेधगम्य है । नेति नेति है तो सुगतोंने ऐसी प्रभेदता बढ़ाई कि वह अन्यापोह रूप है, कुछ ही नहीं है । अगर ऐसा कहोगे तो अपोहत्व, शून्यता आ जायगी । ये दोष आ गये इसमें । यह सही है क्या ? यह दोष नहीं रहना चाहिए ।

गुण गुणोंमें व गुण गुणीमें अतद्भाव है प्रदेशभेद नहीं—अगर द्रव्यमें अनपोहत्व, अशून्यत्व तथा एकत्व आ जावे, ऐसा चाहो तो तुम्हें अतद्भाव रूप ही अभाव मानना चाहिए । जैसा पूर्व गाथामें कह आये वैसा मानना चाहिये, वह अतद्भाव ही (वह यह नहीं है) शरणा है । तीर्थप्रदत्तिके लिये सत्का लक्षण जो है वह सत्ताका नहीं है तथा सत्ताका जो लक्षण है वह सत्का नहीं है । घड़ीमें पुस्तकका अगर थोड़ा भी सद्भाव हो जावे तो आपसमें दोनों लड़ेंगे और लड़ते-लड़ते दोनों मर मिटेंगे । तब फिर रहेगा ही क्या ? इसलिए द्रव्यमें एक दूसरे द्रव्यका सद्भाव न हो जाय, यह जरूरी है । इसलिए द्रव्य और गुणको इसी तरह जैनाचार्यों की अमृतमयी चिरंजीवी अमर वाणीको ही सही मानना चाहिए । लेकिन ऐसा कहनेपर गुण गुणोंमें, धर्म धर्मोंमें, अंश अंशोंमें तथा सत् सत्तामें एकत्व नहीं हो गया । अगर मित्रता सीमा के बाहर हो जाय तो नुवसान है तथा लड़ाई भी सीमाके बाहर हो जावे तो हानिकारक है ।

यह दोनों सीमा उल्लंघन करनेपर नियमसे दूटेंगी। किसी दूसरे द्रव्यका एक दूसरेमें सद्भाव आ जाय, ऐसा नहीं है। इसलिए द्रव्य गुणमें ऐसा ही भेद व अभेद मानना चाहिए याने प्रदेश से एक है, स्वरूपभेदसे भेद है। जब सत् स्वरूपका ज्ञान हो गया, मैं इतना ही हूँ, तब दूसरेके बारेमें विकल्प करके दुःखी होना बुद्धिमत्ता नहीं। यह विकल्प सर्वथा त्याज्य होना चाहिए।

यहाँ पूज्य श्रीमद् अमृतचंदजी सूरिने यह स्पष्ट किया है कि एक द्रव्यमें (पदार्थमें) जो द्रव्य है वह गुण नहीं है, जो गुण है वह द्रव्य नहीं है ऐसा जो द्रव्यका गुणरूपसे न होना है और गुणका उस द्रव्यरूपसे न होना है वह अतद्भाव है। इतने मात्रसे ही उनमें अन्यपनेका व्यवहार सिद्धि है, किन्तु ऐसा अतद्भाव न सोच लेना कि द्रव्यका अभाव तो गुण है और गुण का अभाव द्रव्य है, क्योंकि ऐसी दोदापट्टी वाला अतद्भाव मान डालनेपर एक द्रव्यके अनेकपना आ जावेगा व उभयशून्यता आ जावेगी, अपोहरूपता आ जावेगी। इसका तात्पर्य यह है कि जैसे चेतन अचेतन पदार्थोंमें अनेकता है न कि चेतन द्रव्यका अभाव अचेतन व अचेतन द्रव्यका अभाव चेतन बन जाता, इस तरह यदि यह कहोगे कि द्रव्यका अभाव गुण है, गुणका अभाव द्रव्य है तो उस द्रव्यमें अनेकता आ जावेगी, स्वतंत्र-स्वतंत्र कई बातें हो गईं। उभयशून्यता कैसे आवेगी, सो सुनो—जैसे सुवर्णके अभावमें सुवर्णत्वका अभाव व सुवर्णत्वमें सुवर्ण का अभाव; इस तरह न सुवर्ण ही रहा, न सुवर्णत्व ही रहा, दोनोंका अभाव हो गया; इसी प्रकार द्रव्यके अभावमें गुणका अभाव व गुणके अभावमें द्रव्यका अभाव; इस तरह तो न द्रव्य ही रहा, न गुण ही रहा, दोनोंका अभाव होना था। अब अपोहरूपताके प्रसंगकी बात सुनो—जैसे घटका अभावमात्र पट है और पटका अभावमात्र घट है, इस तरह तो अपोहरूपता हुई, चीज कुछ न मिली; इसी प्रकार द्रव्यका अभावमात्र गुण है और गुणका अभावमात्र द्रव्य है। इस तरह तो अपोहरूपता हुई, वस्तु कहीं भी कुछ न विदित हुई। इसलिए भैया ! यदि निर्दोष तत्त्व देखना है तो जैसा अतद्भावका लक्षण कहा गया है वही मानो।

ज्ञानीका आहार ज्ञानोपयोग है—तत्त्वज्ञानका भोजन तत्त्वरससे भरा हुआ है। उसे बाहरी भोजन कुछ भी नहीं रुचता। तत्त्वज्ञानीका सम्बंध ऐसा है कि वह तत्त्वज्ञान और वैराग्यके अर्थ उत्साह पानेका निमित्त है। ज्ञानीके यह विचार है जिनके निमित्तसे अपना घात और संक्लेश होता हो तो उनसे क्या प्रयोजन पड़ा ? उसे तो सत्का ज्ञान हो गया तो उसकी निजात्माका घात करने वाला कौन है ? वह तो अपना ही उपयोग बनाकर अपनेमें ही मग्न है। यह शुद्ध उपयोग जन्म-जन्मके पाप काट देता है। इस जीवके साथ पापकर्म संख्यात असंख्यात भवके चिपटे हुए हैं। उन सबको नाश करनेकी जीवमें ऐसी योग्यता है कि कुछ सेकेण्डोंमें समूल विनाश कर दें। अन्तर्मुहूर्त इतने बड़े नहीं हैं कि ४८ मिनट की। अल्प सेकेण्ड या सेकेण्डोंका अन्तर्मुहूर्त है। जैसे होलीके लिए ईंधन (लकड़ी, कंडे) १५ दिन

या माह भरसे पहले इकट्ठा करते हैं तथा उसमें अग्निकी चिनगारी लगाई तो एक रातमें जल जाता है सब ईंधन । कर्मोंके जलनेमें इतनी भी देर नहीं है । वहाँ तो सेकेण्डों या और भी कमका काम है, लेकिन करे क्या ? यह पर्यायबुद्धि न छोड़े तो विवश है । निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध चल रहा है, उसमें आसक्त होनेकी जरूरत नहीं है । निमित्त अपने आधीन परिणम रहा है । मैं ही उसे अपना मान लूं, यह बुद्धिका दिवाला निक्कल जाके समान है । गीली धोती है, उसके धरतीमें गिर जानेसे धूल लग जाती है तथा सूखनेपर थोड़ी-थोड़ी हवाकी लपटोंसे वह थोड़ी भर जाती है । बादमें उस धोतीको एक ताकत भरके फटकार दिया तो सब धूल भर जाती है । उसी तरह विषय कषायोंका पूर्णतया शमन होकर आत्मध्यान अग्नि के द्वारा कर्मरूपी ईंधन शीघ्र कुछ सेकेण्डोंमें जल जाता है । केवली भगवान क्या करते हैं ? चार अघातिया कर्म बाकी रह गये उसके लिए आयु बराबर सब कर्मोंकी स्थिति करनेके लिए दंडाकार, कपाटीकार तथा प्रतराकार लोकपूरण एवं पुनः प्रतर कपाटाकार और दंडाकाररूप समुद्रघात किये । इस समुद्रघातके भटकासे सम्पूर्ण कर्म भर जाते हैं । इसी तरह संसारकी असारता जानकर आत्मामें एकाग्र होकर कर्म-कालिमाको भरा सकता है ।

ज्ञानी कर्म भरानेके लिये आडम्बर इकट्ठे करनेकी जरूरत नहीं है—भगवानकी शान्तिमुद्रा बार-बार अवलोकन कर जरा अपनेसे तो मिलान कर । मैं कितने घरातलपर हूं । वह शान्ति छवि मैं भी तो पानेका अधिकारी हूं । उनका अवलोकन तथा वही स्थिति अपनेमें पैदा की तो उन जैसा बननेमें देर नहीं है । स्वभाव दृष्टिका यह विलक्षण गुण है । स्वभाव गुण परखनेपर फिर क्या आपत्ति हमारे सामने रह जाती है ? संसार-उम्र हमारे द्वारा ही बढ़ा है । उसे हटानेकी शक्ति भी हममें है । जीवनके अमूल्य क्षण व्यर्थमें खोने वाले को यह मिलना असंभव है । पदार्थोंका स्वरूप न जाननेसे परमें नाटक रच रहे हैं । निज स्वरूपकी लगन वाला यह कारण पानेको व्याकुल है । वह अपना निमित्त जुटाता-जुटाता अन्तमें स्वयं सिद्ध स्वरूप हो सकता है । कोई कहे जिनेन्द्रचन्द्र जिसका नाम है वही जिनेन्द्रचन्द्र है । इससे क्या कुछ समझे, नहीं । यह अतद्भाव होगा तो काम नहीं चलेगा । प्रदेशभेद नहीं है । सत् और सत्तामें यह तो ठीक है किन्तु असद्भावकी क्या आवश्यकता है ? यह अतद्भाव तीर्थप्रवृत्तिके लिए है जिससे समझनेमें सहायता मिले । सत्ता वह है जिससे सत् पहिचाना जावे । इसलिए समझनेको अतद्भाव आवश्यक हुआ । प्रदेशभेद नहीं है, किन्तु स्वरूपभेद है । इस तरह सर्वथा अभावरूप सत्ताका खण्डन करके अब गुण-गुणीको सिद्ध करते हैं । पदार्थमें गुण-गुणीभाव स्वयं सिद्ध नहीं था क्या ? क्या वह स्वयं नहीं साध सकते थे ? जिसको कहते हो गुण-गुणीको सिद्ध करते हैं । जो जाना जा रहा है वह दूसरोंको भी समझ में आ सके, इस उद्देश्यसे सत्ता और द्रव्यमें गुण-गुणीभावको साधना की गई है, इसे अब

सिद्ध करते हैं ।

जो खलु दव्वसहावो परिणामो सो गुणो सदवसिट्ठो ।

सदवट्ठियं सहावे दव्वत्ति जिणोवदेसोयं ॥१०६॥

द्रव्यका स्वभाव ही परिणामन करना है—जो द्रव्यस्वभाव है वह परिणाम है और वह परिणाम सदवशिष्ट (सत्में अवशिष्ट याने सत्त्वसे पृथक् नहीं) गुण ही तो है । स्वभावमें अवस्थित सत् ही तो द्रव्य है ऐसा यह जिनेन्द्रदेवका उपदेश है । 'यः खलु द्रव्यस्वभावः' जो द्रव्यका स्वभाव है वह परिणाम है । जो उत्पाद, व्यय, ध्रौव्यसे सहित है वह परिणाम है । अगर ऐसा नहीं है तो परिणामन कैसे कह सकते हो ? क्योंकि वह द्रव्यस्वभाव तो अकेला ध्रौव्य याने अपरिवासो है उसे परिणाम बोलते ही नहीं । वह उत्पाद भी नहीं है, क्योंकि परिणामनका अर्थ ही यह है जो परिणामन हो । समाधान—द्रव्यस्वभाव उत्पादव्यय-ध्रौव्यात्मक है । यह परिणाम शब्दसे प्रकट हो जाता है । परिणामन करे वहाँ तीनों बात स्वयं सिद्ध हो जाती हैं । अतः जहाँ उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य हो वह परिणाम है । परिणामन शब्दसे नहीं बोला जा सकता है क्या ? परिणामन शब्दमें परिणाम शब्दका मर्म विशेष है । परिणामन करके उत्पाद व्ययकी सन्तान मानी है, जिन्होंने उनके परिणामनसे परिणामनका अर्थ भी ध्रौव्य माना है ।

परिणामनके लिए एक दृष्टान्त ले लें । एक आत्मा बड़े विकल्प-जालमें चल रहा है, यकायक अपने ही बलपर उसे निरपेक्ष स्वभावकी खबर पड़ जाय तो चिदानन्द स्वरूपका अनुभव होने लगता है तथा जितने विकल्प-जाल थे उन सबका व्यय हो जाता है । इन दोनों अवस्थाओंमें रहने वाला एक जीव है । जब विभाव व्ययका संस्कार बन जाता है तब बिना बाह्य निमित्तके यकायक निरपेक्ष स्वभावकी ओर मुड़ जाता है । जैसे कोई बैल खूब घास, बांट आदि खा लेनेसे संतुष्ट हो जाता है तथा ठंडा पानी पीकर एक जगह बैठता है, वह उस समय जुगाली (येंथना) करता है, उस समय उसके विकल्प-जाल (खानेकी चिन्ता) नहीं रहते हैं । उसकी मुद्रा देखकर जान जाते हैं शान्त भाव मस्त बैठा है । कदाचित् उसे निजकी खबर पड़ जाये तो वहाँ भी वह ज्ञानभावका उत्पाद, अज्ञानभावका विनाश करता है । ध्रौव्यमें उसकी एकता है ही । इसी तरह ज्ञानी जीवका पूर्व भवका भी संस्कार हो सकता है । जिस का पूर्वभवाका संस्कार चल रहा है वह उससे प्रेरित होकर जुगाली करते करते बैल भी चेतन स्वभावमें जाता है, वहाँ वह अपनी अनन्त शक्तिका अनुभव करता है । उन संस्कारोंकी वजह से ही वह निज समताका आराधन करता है । वह बाहरी पदार्थोंको अप्रयोजनभूत समझकर निज अमृत रसपानमें तन्मय हो जाता है । तत्त्व समझनेपर अन्तःदृष्टि खुलनेपर आत्मामें प्रकाश हो जाता है तब निराकुलता हो जाती है । नटुल, बानर, रीछ, बैल आदि चार पैर वाले

पशुओंकी भी यह अवस्था हो सकती है तब उत्तम कुलमें जन्म लेने वाले मनुष्य क्यों नहीं अपना कल्याण कर सकते हैं अर्थात् जरूर कर सकते हैं। उपशम होनेसे पहले निर्मल परिणाम होते हैं तथा निर्मल परिणामोंको निमित्त पाकर कर्मका उपशम होता है। इसीसे औपशमिक सम्यग्दर्शन होता है। सबमें भी यथायोग्य जानना। यह विचित्र बात देखो अपने जो संस्कार चलते हैं, उनमें पूर्वभवका कारण भी रहता है। यदि यहाँ तत्त्वाभास किया और उसकी सफलता नहीं पाई तो अगर कहीं अगला भव खोटा भी मिल जाय तो वहाँ भी सफलता पाई जा सकती है। निसर्ग सम्यग्दर्शन जीवोंको पूर्वके संस्कारोंसे ही होता है। इस ज्ञानाभ्यासकी तत्त्वचर्चामें जो चलता है, कदाचित् वह इस भवमें पूर्ण पारंगत नहीं हो सका या सफल न हो सका तो वह उसे अगले भवमें तो काम आवेगी। इसलिए—

जितना भी ज्ञान कार्य सतत् चालू रहे उतना हितप्रद है—रागद्वेष शुद्ध निश्चयसे आत्माके नहीं हैं, अशुद्ध निश्चयनयसे आत्माके हैं। वह दर्पणके समान उपयोगमें झलकते हैं। यदि उन्हें न लावें तो उनका आना सम्भव नहीं है, क्योंकि इनसे शान्ति नहीं मिलती है और न कल्याणका मार्ग ही हाथ लगता है। ज्ञानी तो विपदाओंका स्वागत करता है—

“प्यारी विपदाओं आवो। रति निद्रामें सोये जनको बार-बार जगावो। संपत्तिका छल जान न पायो याने बहुत रुलायो। आशहि आशहि ज्ञान गमायो, आशहि अश ठगायो। प्यारी विपदावो आवो।”

विपदायें आनेसे एकदम मान होता है। ओह ! मैं इन दुःखोंमें पड़ा हुआ भी आज तक नहीं संभल रहा हूँ। इन विपदाओंकी अपेक्षा कर्म-कलंक काटनेकी ही विपदायें ही क्यों न भेल लूँ ? भोगभूमिया जीवोंपर तथा देवोंपर यहाँ जैसी विपदायें नहीं आती हैं जिससे यह बेवकूफ ही बने रहते हैं। भोगभूमिमें स्त्री पुरुष साथ-साथ रहते हैं तथा देवोंके भी हजारों देवाङ्गनायें रहती हैं। उनकी क्षुधा तृषाका हाल तो सुना ही होगा, इससे उनके कोई विपदा पैदा नहीं होती है। विपदायें उपकारके लिए ही हैं। जिन क्षेत्रोंमें विपदायें नहीं आती हैं वहाँ के जीव मुक्त नहीं होते हैं तथा जहाँ विपदायें आती हैं वहाँ अढ़ाई द्वीपसे मनुष्य मोक्ष जा सकते हैं। लोक कहते हैं ना कि यह क्षेत्र अकालग्रस्त घोषित कर दिया। हम कहते हैं जो जो क्षेत्र विपदाग्रस्त घोषित कर दिये उनमें जन्मे मनुष्य मुक्त हो सकते हैं। यह मनुष्य उन संकटोंसे जूझता हुआ यही सोचता है कि कर्मोंको इसी तरहका फल देना था, हमारा काम तो ज्ञाताद्रष्टा रहना है। कर्म व कर्मफल मेरा स्वभाव नहीं है। अतएव इन कर्मोंको क्यों न निर्मूल कर दिया जाय या शुभरूप बदले जावें, यह विचार हितके मार्गमें प्रवृत्त कराता है। अढ़ाई द्वीपका मनुष्य ही कल्याणमार्गमें लग सकता है। धन कमानेमें भी विपदायें हैं। परिवारका भरण-पोषण जिसका लक्ष्य रहता है उसके अनेक विकल्प उठते रहते हैं। एक दुःख उठावे तथा

दूसरे उस दुःखका लाभ लेवें, यह इस संसारकी हालत है। यह सब बाह्य व्यवस्था है, जो यहीं रहती है। लेकिन जिसे केवल अपने शुद्ध स्वरूपास्तित्वकी खबर है वह विपदायें महसूस करता ही नहीं है। प्रश्न—तो जान-जानकर विपत्ति लाना चाहिये, विपत्तिके कारण पाप हैं उन्हें भी करना चाहिये? उत्तर—जिसे विपत्ति मिले उसका भला ही हो, यह नियम नहीं है। पूर्वकर्मके उदयसे विपत्ति आती हो तो आओ, वह स्वयमेव आती है। इसके विपरीत जो विपदाग्रस्त जीवन स्वयं बनावेगा उसके भाव निम्न ही रहेंगे। इससे उसकी योग्यता जागृत नहीं हो सकेगी। वह स्वयं कारण है दुःख देनेकी, ऐसेमें जिसका शुभ उदय होगा वह चेत भी सकता है। सम्पत्तियाँ भी आवें तो वह भी तो आपत्तियाँ हैं। संपत्ति तथा विपत्ति दोनोंमें विपत्तिका सामना करना पड़ता है। भव रहनेके कारण अनेक जोखिमें उठानेसे भय ही रहता है। चोर, डाकुओंका भय, रास्तेके संकट, प्रतिस्पर्धसे मुकाबला करनेका भय आदि अनेक कारण रहते हैं। जो संपत्ति और विपत्ति दोनोंमें समान रहता है, उसका ज्ञाताद्रष्टा बना रहता है, उसकी योग्यता आत्मसाधनाके लिए ऊँचे दर्जेकी कहनी चाहिए।

जीवका नाता स्वपरिणामोंसे है—जब रावण बहुरूपिणी विद्या सिद्ध कर रहा था, उस समय अगर रामचन्द्र जी के पक्षके कुछ लोग उपद्रव मचाने नहीं जाते तो विद्या सिद्ध होनेमें देर हो सकती थी, किन्तु उनके आनेसे वह संभल गया और विद्या जल्दी सिद्ध हो गई या तो विघ्न आनेपर कार्य जल्दी सिद्ध हो जाता है अथवा पूरा कार्य बिगड़ जाता है। लौकिक अधिकतम उदाहरण उपसर्ग वालोंके कार्य सिद्ध हुए ही मिलेंगे। मुनियोंपर चौथे कालमें जहाँ भी उपसर्ग हुआ, वहाँ कुछ समय (३-४ दिन या घड़ी) तक रहा, बादमें केवल ज्ञानलक्ष्मीकी प्राप्ति हुई। देखनेको उपसर्ग मिला और जब केवलज्ञान हुआ तो उपसर्ग नहीं रहता। आठवें गुणस्थानमें आनेपर उपसर्ग नहीं रहता। वहाँ ध्यानमें दृढ़ता आ जाती है। एकाग्रताके द्वारा पहले भावमें उपसर्ग न आना, ऐसा अभाव हो जाता है। फिर द्रव्य शरीरमें भी उपसर्ग नहीं आता। परिणामोंका प्रकरण चल रहा था। यह आत्मा चिदानन्दमय शुद्ध ज्ञायकस्वरूप है। द्रव्यका स्वभाव ही परिणामन करना है। वह सत्से अविशिष्ट है, उससे भिन्न नहीं है। जैसी कोई मित्रता अविशेषता तक रहती है, उसके बाद मिट जाती है। स्वार्थसिद्धिका भाव जहाँ पर आ जाता है वहाँ मित्रता नष्ट हो जाती है। जब तक समानता रही तब तक वह चलती रहती है।

सत् सत् है उसमें अनेक विशेषतायें हैं—सत्ता गुण है। सत् गुणी है। जो स्वभाव में स्थित है वह द्रव्य है, उसीका नाम सत् है। द्रव्य इसी तरहका है, यह जिनेन्द्र भगवानका उपदेश है। सत्ता अर्थात् परिणामन, सत्ता कहो या परिणाम ये पर्यायवाची हैं तो भी इन दोनोंसे अलग-अलग बात आती है। उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यका नाम सत्ता है। परिणाम ही परि-

रणमन है। द्रव्यमें रहने वाला स्वभाव परिणाम कहलाता है, वह बना रहता है। द्रव्य स्वभावमें सदा रहने वाला है, स्वभाव द्रव्यमें सदा रहता है। इसलिए द्रव्य स्वभावमें अवस्थित ही है। उस परिणामका नाम स्वभाव है। जो ही द्रव्यका स्वभावभूत परिणाम है वही सत् अविशिष्ट गुण है, सत्से पृथक् न रहने वाला गुण है। उसका परिणामन सदैव होता रहता है। परिणामन होते समय एक बनता है और एक मिटता है तथा मूल द्रव्य ध्रौव्यरूप बना रहता है। यह उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य तीनों परिणामनमें गर्भित हो गये। बदलना ऐसा कोई रूप कहने पर मालूम पड़ा, किसी रूप था। अब वह इसरूप बन गया। सत्ता, परिणाम, परिणामन कुछ कहो वह द्रव्यका ही स्वभाव हुआ। परिणामन शब्द जहाँ बोला वहाँ तीनों बातें दिमाग में आजाती हैं। परिणामन कहते ही समझमें आ जाता है। जो द्रव्यका स्वभाव पहले था वही अब है ऐसा द्रव्यका स्वभाव है। सब जीव अपने आप बदलते हैं। वहाँ कर्तृत्व बुद्धिको अवकाश नहीं है। कोई अपनेको बदले तथा दूसरेको भी बदल देवे, इस तरह कहना बुद्धिहीनता सिद्ध करना है। सभी केवल अपना ही परिणामन करते हैं। कदाचित् विकल्पके अनुसार परका भी परिणामन हो और यह कहो मैंने बदल दिया तो काकतालीय न्याय मानना पड़ेगा। कौआ पेड़पर से उड़ा जा रहा था और पुल गिर गया तो क्या कौआने गिरा दिया? अथवा जिस समय कौआ रास्तेमें जा रहा था उसी समय कोई छोटा फल गिर कर कौवे की चोंचमें आ गया। सोचा ऐसा हो जाय तो वह आकस्मिक है। ऐसा भी हो जाय तो भी कोई किसी अन्यको परिणामा नहीं रहा है। वैसे कौआ आकाशमें भी नहीं ठहर सकता क्या? वह फल कौआके मनकी भावना होनेपर ही गिरा है, ऐसा नहीं है। कोई सोचे मैं जो करूंगा वही होगा। इसके विरुद्ध नहीं तो कर्तापन हो जायगा। कोई कुछ भी जोड़े बनावे उसके पास कुछ स्थायी नहीं हो जानेका। यह सब होनेपर उनका परिणामन तुममें नहीं आया और तुम्हारा परिणामन उनमें नहीं गया। तब मनके विकल्पमात्र करनेके अलावा और कुछ नहीं है। वैभव पुत्र, स्त्री, महल, गाय, भैंस, घोड़े, मोटर कुछ स्थिर नहीं रहनेके। यह सब चकाचौंधी देने वाला खेल है।

आत्मस्वरूपास्तित्वकी प्रतीति करके थोड़ी देर परमविश्रामसे रह जाय, यह लाभदायक है। जितना अपनी आत्माके पास रहे उतना जानना चाहिए कि हमने लाभ किया तथा जितने समय बाहरके विकल्पोंमें घूमा उतना खर्च किया, समझना चाहिए। अगर कोई नित्य की रोकड़में जमा न करके और खर्च करता जावे तो रोकड़ जमा खाते शून्य रह जायगा तथा नामका खाता अब भी चालू है तो जितना दूसरोंका माल या नकद रोकड़ ली होगी उतना कर्ज चढ़ जायगा। इससे भिन्न-भिन्न स्वरूपास्तित्वकी प्रतीति हो गई तो सब कुछ पा लिया। वस्त्रों की खोजते समय शेयर आदि इकट्ठे करनेमें शुरूमें कुछ माह या वर्ष परेशानी उठानी

पड़ती है। बादमें इकट्ठा मुनाफाका उपभोग करते हैं।

द्रव्यके तथ्यको जाननेसे होने वाली निर्मोहता ही सर्वोपरि लाभ है—लौकिक लाभ तो अपनी हानि व बरबादीका कारण है। द्रव्यस्वरूपके ज्ञानके द्वारा जो उपेक्षाभाव होता है उसमें आकुलता नहीं रहती, वही सत्य लाभ है। द्रव्य स्वयं सत् है, इसके ज्ञान होते ही यह पता पड़ जाता है कि सर्व द्रव्य सुरक्षित हैं, अपना-अपना ही परिणामन करते हैं, कोई किसीके आधीन नहीं। इस ज्ञानमें मोहको फिर अवकाश कहाँ? स्वभावमें नित्य अवस्थित रहनेसे द्रव्य सत् है, यह पहिले कहा ही है। वह स्वभाव क्या है? द्रव्यका परिणाम ही द्रव्यका स्वभाव है, सो यह द्रव्यका स्वभावभूत परिणाम है वह सद्विशिष्ट गुण ही है अर्थात् द्रव्यमें त्रिकाल रहने वाला और गुण पर्याय आदि द्रव्यके समस्त विस्तारोंमें अविशेष रूपसे रहने वाला एक गुण है। जो ही द्रव्यके स्वरूप रूप रहने वाला अस्तित्व द्रव्यके प्रधान निर्देशसे सत् ऐसा निर्दिष्ट होता है। वह अस्तित्व अविशिष्ट गुणभूत होता हुआ ही द्रव्यका स्वभावभूत परिणाम है, क्योंकि द्रव्यकी वर्तना (वृत्ति) भूत, भविष्यत्, वर्तमान तीनों कालोंमें रहती है सो वह प्रतिक्षण उस ही स्वभावसे परिणमती है। अतः वह परिणाम द्रव्यका स्वभावभूत गुण है। वह परिणाम अस्तित्वभूत द्रव्यका वृत्तिरूप होनेसे द्रव्यका विधायक (प्रसाधक) सद्विशिष्ट गुण ही है। इस तरह सत्ता और द्रव्यमें गुणगुणीभाव सिद्ध होता है। इनमें प्रादेशिक भेद नहीं है। जिनमें प्रादेशिक पृथक्त्व होता है वे स्वतंत्र-स्वतंत्र परिपूर्ण द्रव्य ही होते हैं। सो ऐसी पृथक्ताकी बात सत्ता और द्रव्यकी है ही नहीं। द्रव्य है, इस बातको विषाद करनेके लिए 'हैपना' और द्रव्यमें गुणगुणीभाव प्रसिद्ध किया है। द्रव्य तो स्वतः सत् है।

वस्तुस्वरूपका विस्तार आशयविस्तारके द्वारा है—सत् और सत्ताका विषय चल रहा है। इन दोनोंका लक्षण भिन्न-भिन्न है। अशुद्ध निश्चयसे रागद्वेष आत्माके माने हैं। शुद्ध निश्चयनयसे ज्ञान, दर्शन गुणके शुद्ध परिणामन आत्माके हैं। परम शुद्ध निश्चयनयसे दोनों आत्माके नहीं हैं। अमुक व्यक्तिके अमुकसे प्रश्न किया कि तुम्हारा कौन है? वह उसका नाम बताता है। यहाँ पर्यायकी अपेक्षा नाम बताता है। लेकिन प्रश्नकर्ताका निश्चयपर लक्ष्य हो तो वह पिताका नाम भी नहीं बता सकता है। इसलिए प्रश्नकर्तासे ही इसके विगरीत कह सकते हैं। तुम्हारा लक्ष्य जिस आशयको लेकर प्रश्न करना है, उसीसे तुम हमसे समाधान पा सकते हो।

आकुलताका मूल कारण रागद्वेषकी बीमारी है। इस बीमारीके निदानपर दृष्टि हो, इसके लिए ज्ञानका विस्तार है। उस ज्ञानको जानकर अपना आचरण उसी तरह किया जाय। परदृष्टि आत्माका विकृत परिणामन है। परपदार्थोंका विकल्प शान्तिसे शून्य रखता है। जो विकल्प सताते हैं वह विवेक बलसे दूर किये जा सकते हैं। उनको अपनेमें प्रवेश पानेका निषेध

किसीको आज्ञा देना मात्र नहीं है कि तुम हमारा इस तरहका कार्य कर दो या यहाँसे चले जाओ आदि । वहाँ तो निजकी तर्कणा बुद्धि काम देगी । विकल्प अच्छे या बुरे ध्यानके लिए दोनों बाधक हैं । शुभ विकल्प पुण्यके कारण हो सकते हैं, जिससे क्षणिक पदार्थ अच्छे मालूम पड़ते हुए भी सच्ची शान्ति नहीं दे सकते हैं । अशुभ विकल्प, परपदार्थोंके प्रति चाह संसारकी परिपाटी भी नहीं हटा सकते, किन्तु उसमें घूमनेके सहायक हैं । परको अपनेमें न आने दें, यह सहज उपाय प्रयत्नसे प्राप्त किया जा सकता है । अपनेको ही जानें, आत्माके समीप ही ठहरें, परपदार्थोंसे रुचि स्वतः हट जायगी । विचारोंका तारतम्य भी अपना-अपना अस्तित्व रखता है ।

जब तक प्रमादकी संभावना है तब तक निज आत्माके ही उपयोगमें यत्न करें—जिस तरह युवा स्त्री अगर स्वच्छन्द प्रवृत्तिसे दूसरेके घर आवे जावे तब वह शुद्ध भावसे भी क्यों न आवे जावे तब भी घरके मनुष्य उसे जानेसे रोकते हैं तथा बाहरके मनुष्य भी उस पर कुदृष्टि करते हैं । इसके विपरीत जो अवस्थाकी अपेक्षा वृद्ध हो चुकी है, विकार भावनायें जिसकी मर चुकी हैं उसके लिए आने-जानेको कोई भी मना नहीं करता है । इसी तरह ज्ञान में अप्रमत्त दशा हो गई वहाँ तो कुछ भी जानो, किन्तु जहाँ प्रमादबहुलता है वहाँ परको जाननेमें जो यत्न करते हैं उसमें रागद्वेषकी तरंगें उठे बिना नहीं रहतीं । इसीलिए उसका निषेध किया है । परपदार्थ जाननेमें न आओ । अगर आओ भी तो जो जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व हैं वही मेरे जाननेमें आओ, क्योंकि वह आत्माको जाननेमें निमित्त हैं । शास्त्रज्ञानके द्वारा आत्माके परिणामोंको विशुद्ध किया जा सकता है । साधर्मी जनका सत्संग जाननेमें आओ । सत्संगके द्वारा निजपरिणति सुधारी जा सकती है । यह चार मार्ग कल्याणके प्रमुख द्वार हैं । कोई व्यक्ति अगर उपवास किए हुए है, अगर वह भी हलुवा आदि सुगंधित मिष्ठान्नके समीपसे निकल जावे तो उसका विकल्प या विशिष्ट जानना उस हलुवेके प्रति हो ही जायगा । साधर्मी जनकोंका साथ कुछ अन्य प्रकारका है । यथार्थमें हमारी इतनी कमजोर दुकान है जैसे कि जब हम १) ६० गजका कपड़ा २) ६० गजसे बताना शुरू करते हैं । इससे ग्राहक १) ६० गजके भावपर ही आ जाता है । इसी तरह जीवनमें जितने भी ऊँचे-ऊँचे धार्मिक उपदेश सुने जावें, सत्संग किया जावे तो उनकी सुवासना अपनेमें यथायोग्य आकर ही रहेगी । जिसकी निज-कल्याणके प्रति भावना है वह वैसा समागम, सत्योपदेश पाकर कुछ न कुछ कल्याण करेगा ही । मन रुकनेकी दो स्थितियाँ हैं—एक स्वानुभूति होना और दूसरी प्राणायामके द्वारा मन वशमें करना । स्वानुभूतिमें सूक्ष्मतासे मन रुक जाता है । यहाँ विवेकमय अन्तःकार्य होता है अथवा बुद्धिपूर्वक स्थूलतासे मन रुक गया, यह कहना चाहिए । यहीं परसमता लक्ष्मीके दर्शन होते हैं । इसीका नाम समाधि है । प्राणायामके द्वारा रुका मन स्वानुभूतिका अबाधित कारण

नहीं हो सकता, क्योंकि यहाँ तत्त्वका निर्णय करके कार्य नहीं किया गया।

यथार्थ तत्त्वनिर्णय बिना समाधि नहीं हो सकती—ज्ञानी जन तत्त्वका निर्णय करके समाधिमें स्थित होता है। वह आत्मकल्याणके लिए कार्यकारी भी है। एक साधु थे। वह चार-चार दिनकी समाधि लगा लिया करते थे। अपना चमत्कार दिखाने एक राजाके समीप पहुंचे। राजाने कहा कि आपकी समाधिकी ख्याति काफी सुन रखी है, उससे मैं काफी प्रसन्न हूं। मैं भी प्रत्यक्षमें तुम्हारी समाधि देखना चाहता हूं। यह राजाकी बात सुनकर अब तो उन्हें अपनी कला बतानेका अवसर मिल गया। राजा साहबने कहा कि अगर तुम पांच दिनकी समाधि लगा दोगे तो जो चाहोगे वह इनाम मिल जायगा। साधुको मंजूर हो गया। पांच दिन की समाधि लगाई गई। यहाँ राजाके पास एक बहुत बढ़िया काला घोड़ा था। वह अपने गुणोंसे एवं चाल-ढालसे सबके मनमें चमत्कार उत्पन्न करता था। यह उसके मनमें समा गया। साधुकी समाधिके पांच दिन हो गये। वह एकदम समाधिसे निकले और राजासे बोले—‘काला घोड़ा लाओ।’ यहाँ भी मन रोकनेपर पदार्थ मनमें बसा रहता है। इसे भी समाधिका नाम मिल जाता है। तत्त्वज्ञानीको तो केवल आत्माकी खबर रहती है।

जिसकी जिस ओर श्रद्धा है उसकी उस ओर रुचि है—अगर किसीके कोई संकट आ जावे तो उसका मन उसी ओरको लगा रहता है। वह खाते-पीते व्यापार करते भी उस संकट को हटानेकी सोचा करता है। इसी तरह ज्ञानीको तो ज्ञानधन, आत्मधनकी संपत्ति मिल चुकी। वह जो कुछ भी कार्य करेगा उसमें आत्मज्ञान झलकता रहेगा, उसीके बारेमें विकल्प होगा। अन्य किसी सम्बंधमें उसे सोचनेसे लाभ नहीं मिलता है। तत्त्वज्ञानीका ढलाव आत्माकी ओर ही रहता है। वह समाधिमें आत्माको ही आत्मामें बसाता है। अगर कोई बलपूर्वक आँख बंद करेगा तो उसके मनमें आँखका विषय समाया रहेगा। ज्ञानी आँखोंको जबरदस्ती बन्द नहीं करता, उसका स्वाभाविक झुकाव आँखोंकी ओरसे नासा दृष्टिपर रहता है। वहाँ इन्द्रियोंका दमन नहीं किया जाता, किन्तु उनमें स्वतः शिथिलता आ जाती है। इस क्रियामें नेत्र बंद रहने पर भी अंधेरा नहीं रहता, किन्तु प्रकाश ही रहता है। यहाँपर प्रकाश जड़ है, जो जड़का अनुभव करता है वह जड़ है। चेतन चेतनका ही अनुभव करता है। तत्त्वज्ञानीको मुख्यतासे प्राणायामविधिकी समाधि लगाना कहीं भी नहीं लिखा है, फिर भी उसका अभ्यास आत्मध्यान में सहायक है। अन्य सिद्धान्तोंमें प्राणायाम वगैराको मुख्यतासे लेकर लिखा गया है। जैसा सिद्धान्तमें उसका कोई महत्त्व नहीं, वह यदि आत्मज्ञान नहीं तो स्वास्थ्यके लिए उत्तम साधन है तथा स्वास्थ्यके सहारे धर्मसाधनमें सहायता मिल सकती है अर्थात् किसी तरहका विकल्प शरीरके बारेमें न रहनेसे इच्छित कार्य निर्विघ्न किया जा सकता है। अगर शरीरके स्वास्थ्य रहनेको ही धर्म मान लिया जावे तो पहलवानोंको अच्छा धर्मात्मा होना चाहिए था। जहाँ

कि कहीं-कहीं धर्मकी बू भी नहीं रहती। जैसा कि कालिदास कविने कहा है—‘शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्’ अर्थात् शरीरका स्वस्थ रहना ही धर्मका साधन है। इसका तात्पर्य इतना ही है, धर्मसाधनके लिए शरीर स्वस्थ भी रखना चाहिए। क्योंकि जिसका स्वास्थ्य ठीक होगा उसे अनेक प्रकारके विकल्प नहीं सतावेंगे। एक कहावत है—‘आंत भरी सो माथ भरी।’ कब्जियतका न रहना अनेक बीमारियोंसे छुटकारा पाना है। जितनी भी बीमारियोंका मूल कारण रहता है उनमें कोष्ठबद्धता ही पाई जाती है। शरीर स्वस्थ रहे, इसके लिए प्रकृतिस्त पदार्थोंपर जीवन निर्भर रखना चाहिये तथा रोग हो जावें तो उन्हें प्राकृतिक उपचारोंसे रीस्त-नाबूत कर देना चाहिए। आत्मज्ञानके प्रसंगवश स्वास्थ्यपर संक्षिप्त ध्यान रहे, मुख्यता आत्मा की है। किसी हिचकीसे वाले अचानक कह दिया जावे कि तुम अमुकके घर क्यों गये थे ? तो उस समय सुनने वाला ताज्जुबमें पड़ जायगा और उसका हिचकी बोलना बन्द हो जायगा। यह इतना कहने मात्रका यह प्रभाव पड़ सकता है। तब सदैवसे जो नाना गतियोंमें घूम रहे हैं उनके लिए हम यह कल्याणकारी जिनेन्द्रदेवकी वाणी सुनते हैं। तब हम अपने बारेमें सुनकर स्तब्ध न होवें, यह विचारणीय है। उसी समय एक आघात जैसा होनेपर सोच सकता है। मैं कितनी गलतियोंपर हूं ?

जिसे आत्मीय आनन्द मिला वह किसीको बताता नहीं फिरता—जो आनन्दको नहीं जानते वह अपनी मुँहसे प्रशंसा करते हैं—हमारी समाधि ठीक हो गई, मैंने मन एवं इन्द्रियों को वशमें कर लिया, मुझमें ज्ञानज्योति जग गई, हमारे द्वारा दूसरे जीवोंको सत्पथपर लगाया जा सकता है आदि। जिसने जबरदस्ती इन्द्रियोंपर काबू किया तथा मन वशमें उसका कहाँ रहा कहलाया, जो कि दुनियासे अपनी प्रशंसा पानेके लिए इस तरह करता है। सच्चा आनन्द सहजगम्य होता है, वह वचनातीत होता है। निर्विकल्पता उसकी सहगामिनी होती है। वह दुनियाके भ्रमोंसे परे स्वात्मरमणमें सुखी रहता है। अलौकिक महापुरुषोंकी आत्मा के समीप भी विचार चलते थे। उन विचारोंमें निजहित रहता था, किन्तु परहित अनायास ही हो जाता था। वह परहितके लिए ही अपना कदम नहीं उठाते थे। उन्हें तो मुक्तिके आनन्द प्राप्त करनेका लक्ष्य सर्वोपरि रहता था। जिसमें कुछ भी तरङ्ग न उठे उसे निश्चल समाधि कहते हैं। वह सत्से अवशिष्ट गुण है। जो द्रव्यके स्वरूपकी वृत्तिभूत द्रव्यके स्वरूपमें रहने वाला अस्तित्वगुण है। द्रव्यको प्रधान दृष्टिसे देख कर बोला जाय उस सत्में रहने वाला जो अस्तित्व है उसे सत् बोलेंगे। जैसे पुरुष प्रधान कहनेपर इन्सान कहना तथा स्वभावको प्रधान लेकर कहेंगे तो इन्सानियत कहेंगे। जब उपयोग एक बनाओगे तब सत् ऐसा बोला जावेगा। जब द्रव्य प्रधान तो नहीं बनाते, किन्तु सत्की अपेक्षा स्वभाव ही मुख्य रहता है। स्वभावको प्राप्त करना, उसीमें बार-बार जाना परमकल्याणकारी है। उक्त प्रकार

से सत्ता और सत्में गुणगुणी भाव सिद्ध किया। इससे गुणगुणीमें नानापन आ गया अर्थात् ये दोनों भिन्न-भिन्न हो गये, ऐसा आशय कभी नहीं करना, क्योंकि यह तो एक तो एक सत्का कथन है, जैसे समझमें आवे वैसे हमारे तीर्थनेताओंने भेदव्यवहारका आश्रय कर समझानेकी कृपा की है। अब उसी गुणगुणी भावके नानापनको यहीं समाप्त करते हैं—

एतत्थि गुणोत्ति य कोई यज्जाओत्तीह वा विणा दव्वं ।

दव्वत्तं पुण भावी तम्हा दव्वं सयं सत्ता ॥११०॥

ऐसा कोई गुण नहीं है व ऐसी कोई पर्याय नहीं है जो द्रव्यके बिना हो। द्रव्यत्व क्या कोई द्रव्यसे पृथक् भाव है? नहीं। इस कारण द्रव्य स्वयं सत्ता है अथवा सत्स्वरूप है। यहाँ सत्ता और द्रव्यमें गुणगुणी भावको सिद्ध करते हैं तथापि प्रदेशभेद कभी नहीं समझना। गुणगुणी भाव सिद्ध करनेके लिए एक-एक पृथक् जान लिया जाय तो भिन्न-भिन्न पदार्थोंमें गुणगुणी भेद तो नहीं होता। दो पदार्थोंमें भिन्न-भिन्न गुणगुणी होता है। अतः भिन्न पदार्थों में गुणगुणी व्यवस्था नहीं है। अविभक्त प्रदेशमें ही गुणगुणी होता है। यहाँ वस्तुका एकपना सिद्ध करते हैं। जो ही द्रव्यका सत् स्वरूप अस्तित्व है वह सत् है, सत्ता है, द्रव्य है। जबसे द्रव्य प्रधानताकी विवक्षा है तबसे सत्ता नहीं कहो और न बोलो। वह तो उसमें गुणभूत बनाये जानेका परिणाम है। सत् नामसे जो बोला गया वह उसका अविशिष्ट गुण है। एक ही द्रव्यमें यह गुणगुणी भाव बताया जाता है। एक ही द्रव्य उसमें रहने वाला अस्तित्व द्रव्य प्रधानसे देखा जाय तो सत् प्रधानसे कहा जाता है। उसी सत्का अस्तित्व उस गुणसे पृथक् नहीं है, वह द्रव्यका स्वभावभूत परिणाम है। द्रव्यकी जो वृत्तियाँ हैं वे तीन कोटिकी पर्यायें हैं, चलती हैं। वही एक अस्तित्व तीन तरहसे सिद्ध किया जाता है। तीन नयोंमें क्या वह बनकर परिणामता है? वही स्वभाव बनकर परिणामता है।

वस्तुका स्वरूप त्रयात्मकत्व सर्वत्र रहता है—गुण व गुणीमें सत्ता व द्रव्य भी कहे, इनमें त्रयात्मकता आ जाती है, बदलना कहनेपर उत्पाद व्यय ध्रौव्य मौजूद है या नहीं। कोई नई वस्तु बनी, पुरानी खत्म हुई तथा बनने व खत्म होनेमें ध्रौव्य वस्तु मौजूद ही है। इसके साथ ही बदलना पुराने भावमें तथा अगले भावमें भी रहना यह स्थायित्व दर्शाता है। कोई कहे हमारे दर्शनमें यह लिखा है।

एक ही वस्तु नई पर्यायमें आई, पुरानी गई, यह क्रम चलता ही रहता है। किसीकी जबान जबरदस्ती बंद करके रखे तो कब तक रखेगा? एक क्षणके बाद दूसरी वस्तु आ जाती है। वहाँसे उठनेके बाद नई बात आ ही जाती है। वस्तुका स्वरूप है वह तो प्रकट होगा ही। इसलिए त्रयात्मकता वस्तुका स्वभाव है। ध्येयमार्गपर जाना, वस्तुकी प्रतीति करना, चारित्रमें लगना यह शिवमार्ग है। यह उत्पाद व्यय ध्रौव्य सहित है। समझमें आवे तो सब

हल हो जावे । आत्माको जाननेके लिए बड़े-बड़े यत्न किये जाते हैं । वे यत्न असफल इसलिए होते हैं कि तत्त्वको सूक्ष्म समझ नहीं पाते हैं । जो परंपरासे व्यवहार कार्य चले आये हैं उन्हीं पर प्रतीति रखना आत्मकार्यके लिये साधक है । वह सोच ले कि मुझे आत्माको जानना है ।

पिण्ड छोड़ो मैं अपना प्रबन्ध स्वयं कर लूंगा—आत्मा ज्ञानमय है, यह सुनते ही लगता भी ऐसा है कि कोई जानने समझने वाला है । अब मैं तो इसीके भरोसे सबको छोड़ता हूं । बाहर देखनेपर नजर आ जाता है । जैसे तीर्थयात्राको जाते समय इलाहाबाद, बनारस आदि जाता है तो वहाँपर पंडे लोग आ-आकर घेर लेते हैं । सभी अपना-अपना जोर लगाते हैं, 'आप हमारे यहाँके निवास स्थानपर चलो, वहाँ उत्तम प्रबन्ध रहेगा' आदि बातें कह-कह-कर फुसलाते हैं । तब यात्री सभीसे तंग आकर कहता है कि मैं अपना प्रबंध स्वयं अपने आप कर लूंगा । मुझे किसीकी भी सहायताकी जरूरत नहीं है । इसी तरह यहाँपर हमें कई दर्शनों ने घेर लिया है । कई प्रकारके गुरुओंकी विचारधारा हमारे ऊपर पड़ रही है । कहींपर जैन गुरुओं विद्वानोंमें घिरा पाता हूं, कभी दूसरे धर्मावलम्बी भी मिल जाते हैं जो सभी धर्मोंको समान कहते हैं । कभी कोई कहता है कि आप तो अमुक धर्मके संस्कारोंमें पैदा हुए हो, इसलिए उन बातोंकी पुष्टि करते हो । तुम्हें तो अपने संस्कार ही सुहाते हैं । किसीकी सुनना नहीं चाहते । इसी तरह अनेकों पुटें रख-रखकर फुसलाते हैं । तब चेतार्थी भ्रममें पड़ जाता है । मुझे क्या करना योग्य है ? यह सब सुन समझ लेनेपर अपना मार्ग निर्धारित करता है । ठहर जावो, मैं अपनेमें आप समझूंगा । मुझे अपना कल्याण अपने द्वारा करना है । कोई किसीका रक्षक नहीं है । मैं केवल अपना ही भाव बनाता हूं, अपना ही उपकार करने वाला मैं स्वयं हूँ । मैं केवल अपनी आत्माके भरोसे रहता हूँ । मुझे अन्य कुछ नहीं सुनना है । मैं किसीको देखकर भक्त बनूँ, स्तुति करूँ । यहाँ अविवेक भक्ति यथार्थ मार्गपर नहीं लगा सकेगी जब तक अन्तरङ्गकी प्रेरणा काम नहीं करती होगी । लेकिन दूसरे महापुरुषोंका निमित्त व प्रभाव कल्याणार्थीके लिए कल्याणप्रद सिद्ध होते हैं । मुझे विकल्पोंका त्याग करना ही श्रेयस्कर है । मैं इतना त्याग करता हूँ, इतना हितके मार्गमें चल रहा हूँ, इसे आत्मा स्वयं परिणमनके द्वारा जान रही है । जाननेमें आत्मा स्वयं प्रतीत होता है । वह आत्मा स्वानुभव प्रत्यक्षसे प्रमाण कर लेना चाहिए । यहाँ स्पष्ट कह रहे हैं, केवल कहने मात्रसे ही विश्वास नहीं कर लेना चाहिए । अगर यों ही बिना जाने, समझे दूसरोंकी नकल उतारने मात्रको कष्ट सहा तो क्या लाभ निकलेगा ? इसीसे पूज्याचार्य अमृतचन्द्रजी सूरि भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यके वचनोंको खुलासा करते हुए कह रहे हैं कि वह आत्मा प्रत्यक्षसे दिख जावे तो तत्त्वोंपर आकर आत्मा का सत्य श्रद्धान कर लेना । शब्द मैं तो बोलता नहीं हूँ । वह तो नयको लिए हुए बोले जाते हैं । कुछ भी क्यों न कहना पड़े, बिना नयके नहीं बोला जा सकता है । शब्द ही एक उपाय

है। शब्दोंसे ही सम्पूर्ण वाङ्मय भरा हुआ है। शब्दोंकी ओरसे वकालत करते हुए कह रहे हैं आचार्य जी। अगर कहीं हम चूक भी जावें या तुम्हें समझमें न आवे तो इस तरहसे न समझना या कहना कि आत्मा कुछ नहीं है या फिजूलका बवण्डर है।

तुम तो हो ही, उसे जाननेका यत्न कर ही लेना—यहाँ समझमें नहीं आवे, बुद्धिसे ग्रहण न हो सके तो उसे ग्रहण करनेकी आगे जाकर कोशिश करना। पूज्य गुरुओंके पास जाकर अपनी शङ्का प्रकट करके समाधान कर लेना। यहाँ भी तो इसीलिए आये हो कि जिनवाणीमें आत्माका स्वरूप मिलेगा। बिना श्रद्धाके तो कोई भी कार्य नहीं किया जाता। यदि पराधीनतावश किया गया तो उसमें कोई रस नहीं आवेगा और न उसका फल ही मिलेगा।

अगर आत्माकी बात समझमें न आवे तो भी छल करना योग्य नहीं है। स्वच्छन्द प्रवृत्ति किसको सुखकर रहती है? स्वच्छन्द प्रवृत्ति वाला आगे बढ़नेसे रुक जाता है। उसे किसी न किसीकी आज्ञामें चलना ही श्रेयस्कर है।

मुनि महाराज स्वयं शास्त्रकी आज्ञाके साथ दीक्षा गुरु पूज्याचार्योंकी आज्ञामें चलते हैं। आगमकी आज्ञा सर्वथा शिरोधार्य होती है। सत्याग्रहसे और उपदेशसे जो जाना तब सब आलम्बनोंको छोड़कर किसी भी तरहके संस्कारोंमें नहीं जाकर आत्माके आस्वादनका पथिक बन रहा है। आत्मासे ही प्रश्न करे एवं समाधान करे कि यह क्या अनुभव कराता है? सत्याग्रहसे बैठ जावे तो वस्तुस्वरूपका विकास कहाँ जायगा? यहाँ लौकिक सुख या पदार्थोंके पानेका अथवा राज्यलक्ष्मी आदि पानेका सत्याग्रह नहीं कर रहा है, किन्तु सर्व विकल्पजालोंको छोड़ आत्मापर विश्वास जमानेका, अनुभवमें लानेका सत्याग्रह (सत्यके प्रति आग्रह) कर रहा है। ऐसा करे तो इस आत्माको वैसे साथी भी मिल जावेंगे। पवित्रात्माओंकी परख आ जावेगी तथा उनमें श्रद्धा भी जागृत हो जायगी। ऐसी ही बातकी परिपूर्णताका रूप इसने समझ पाया, तब आत्माकी प्रतीति कहीं छिपी नहीं रहेगी।

जिसे अन्तरङ्गकी प्रतीति हो चुकी उसे देव शास्त्र गुरुकी भी श्रद्धा यथार्थ होगी। इसको जाने बिना उनपर दृढ़ता नहीं हो सकती, वह विचलित ही होती रहेगी। जहाँ मन्द कषाय हो वह मार्ग अपनाता श्रेष्ठ है। जब तक आत्मज्ञान नहीं है तब तक सब बेकार ढको-सला ही है। आत्माको शुद्ध करनेकी आवश्यकता है। उसपर अनादि कालकी धूल चढ़ी हुई है, फिर भी उसकी योग्यता अनंत, अपरिमेय है। उसके समय आनेकी देरी स्वयंमें हो रही है। भीतरसे प्रेरणा मिली तथा उसीके अनुरूप बाह्य निमित्त मिल गया तब वह दृढ़तासे आत्मकार्यमें अग्रसर हो सकता है। आत्माकी बात जानना तथा उसीकी चयनमें चलना, यह तो हुआ आत्मसिद्धिका कार्य, अगर अवलुमें चले गये तो निज प्रतीति होना भी असंभव हो

जायगी ।

आत्मार्थिता बढ़नेपर परिग्रह बिदा हो जाता है—आत्मार्थी स्वल्प परिग्रहसे कार्य चला सकता है । वह अपनी मर्यादायें बनाता जाता है । वह अपनी प्रयोजनभूत वस्तुओंमें भी दर्जे बनाता जाता है । जितने-जितने पदार्थ कम होते जावें तथा विवेकका आश्रय लिया जाये तो शांति ही मिलेगी । इसके लिये श्रावकके ११ दर्जे (प्रतिमा) निर्धारित किये हैं । जिसका जितना ऊँचा दर्जा होगा वह उतना ही ममत्व हटा सकेगा । उत्कृष्ट मुनि अवस्थामें [जीवोंकी रक्षाके लिये पीछीकी जरूरत पड़ती है तथा शुद्धिके लिये कमंडलकी आवश्यकता मात्र रह जाती है । इसके अतिरिक्त और क्या प्रयोजनभूत रह जाता है जिसके बिना चल ही न सके ? ज्ञानवृद्धिके लिये शास्त्रोंका मनन करना है । अब निष्परिग्रह अवस्थामें महाव्रत धारण करके जीवनरूपी नौकाको सफल बनाया जा सकता है । ध्यानके समय पीछी कमंडल भी आवश्यक नहीं, किन्तु चलना पड़ता है, इसलिये जीव-रक्षार्थ पीछी रखी जाती है तथा भोजन स्वाध्याय आदि करना पड़ता है, इसलिये शुद्धिको कमंडलकी जरूरत होती है । ध्यानमग्न रहा जाय तो शास्त्रों का भी कोई प्रयोजन नहीं रह जाता है । जिन कार्योंसे शान्ति आवे उन कार्योंको करना चाहिये । शास्त्रोंको मनन करते समय यह विचार उठें व दीखें—जो मैंने सोचा था, पढ़ा था, जिसके लिये इच्छा थी, वही मैं आज अन्तः पढ़ रहा हूं । खुदकी दुकान होनेपर व्यवहारसे भी काम चल सकता है । जिसकी निजी पूँजी लगकर भी दुकान है उसे दूसरोसे भी उधार मिल सकता है । इसी तरह निजका आत्मविश्वास तथा दृढ़ श्रद्धा होनेपर, आत्माका स्वाद आनेपर व्यवहार या उपदेशकों तथा शास्त्रोंके पढ़ने व सुननेसे भी काम चल जाता है । स्त्री, पुत्र आदि कोई भी अपना कुछ नहीं कर देगा । कर्तापनकी बुद्धि दुःखका मूल है । मैं अपनेके अलावा और किसीका कुछ नहीं कर पाता हूं । भेदविज्ञान जीवनका मूल मंत्र होना चाहिये । भेदविज्ञान रूपी छैनीके द्वारा कर्म शत्रुओंको हटाया जा सकता है ।

यह द्रव्य प्रतिक्षण स्वभावसे परिणामता रहता है । इसलिये परिणाम ही द्रव्यका स्वभाव है, उससे पृथक् नहीं है । वह परिणाम क्या है ? अस्तित्वभूत जो द्रव्य हैं उसकी जो वृत्ति उसी स्वरूप परिणाम है । अस्तित्वभूत द्रव्यत्व रहे अर्थात् वह सत् रूप है । परिणामन जुदा नहीं, सत्ता जुदी नहीं, सत् भी जुदा नहीं है । सत्से अविशिष्ट पृथक् न रहने वाला सत्ता गुण है । जैसे कि आत्माके अविशिष्ट याने पृथक् न रहने वाला चैतन्य गुण है । इसका यह अर्थ है—जो बात इस द्रव्यमें है वह औरमें भी है । वह द्रव्यका विधान करने वाला एक ही है । गुणीका ख्याल करा देने वाला है । सत्ता और द्रव्यमें गूणगुणी भाव सिद्ध होता है । कहीं पृथक् भेदसे ये सिद्ध नहीं है । सत्ता स्वभाव है और सत् स्वभाववान है । यहाँ यह धन वा धनवान जैसा नहीं है । धनवानका धन उससे जुदा रहता है । यहाँ तो द्रव्यमें गुणका सम्बंध

बनाया है, क्योंकि गुणगुणी तो त्रिकाल तन्मय हैं ।

बहुतसे सिद्धान्त जो अपने यहाँ कहे हैं वे अन्य दर्शन वालोंके यहाँ भी मिलते हैं, किन्तु अनेकान्त अन्य दर्शनोंमें नहीं मिलता है जिसके आधारसे तत्त्वकी पूरी भित्ति पड़ी हुई है । सत् और सत्ता अनर्थान्तर (भिन्न पदार्थ नहीं है ।) है । द्रव्य द्रव्यका जो सम्बंध है वह संयोग सम्बंध है । द्रव्य और गुणका समवाय सम्बंध है । जैन सिद्धान्तमें द्रव्य गुणका नित्य तादात्म्य माना है और द्रव्य व पर्यायका अनित्य तादात्म्य माना है, क्योंकि पर्याय जिस समय में है उस समय द्रव्य उस पर्यायमें है ।

आत्मा अमूर्त है तथा शरीर मूर्त है । यह दोनों सम्बंधको कैसे प्राप्त हो गये हैं ? अनादिकालकी परम्परासे चले आये हुये निमित्तनैमित्तिक सम्बंधसे मेल है । हमें इसपर अफ-सोस होना चाहिये कि चैतन्यमय प्रभु किस दशामें बद्ध है ? आत्माका और रागद्वेषका जो सम्बंध है उस समय वही विकृत पर्याय है । एक आत्मामें स्वभाव और विभाव दो पर्यायों नहीं होती हैं । हाँ ऐसा हो सकता है कि कोई पर्याय ऐसी हो जिसमें दो दृष्टियाँ बनती हों । इतना तो विभाव रहा, इतना नहीं रहा ।

स्वरूपमें आशयवश भेद बताया जाता है—कषाय तो एक ही है, किन्तु अमुक अंशमें इतनी है, अमुक अंशमें इतनी नहीं है, यह भेदविवक्षासे होता है । किन्तु एक ही पर्यायमें बातें ग्रहण की गईं । जीवके आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा चारों एक साथ होते हैं । जिस समय आस्रव, बन्ध हैं उसी समय संवर, निर्जरा भी हैं । इन सबका आश्रयभूत वही परिणाम है । चारोंका कारण एक साथ हो रहा है । पर्याय तो एक है उन सबकी विशेषतायें परखना चाहिये । जितने अंशमें राग नहीं है उतने अंशमें वैराग्य है तथा जितने अंशमें वैराग्य नहीं है उतने अंशमें राग है । मानो एक यह मिथ्यात्व भूमि है । इसपर उठते उठते ऊपर पहुँच सकते हैं । रागभूमिके भी अनेक स्थान होते हैं । जैसे मान लो नीचे रागभूमि है और उसके कितने ही ऊपर विराग पद है । उसकी कोई भी मध्यकी अवस्था, नीचेके तीव्र रागोंसे रहित है और ऊपरके मन्द रागोंसे सहित है, ऐसी स्थितिमें जितने अंश राग नहीं हैं उतना तो संवर निर्जराका कारण है तथा जितने अंश राग है वह आस्रव, बन्धका कारण है । किसी भी गुण की पर्याय एक समयमें एक होती है । वह परिणाम आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा सबका कारण हो रहा है । जितने अंश राग चल रहा है उतने अंशमें विरागता नहीं है तथा जितने अंशमें वैराग्य चल रहा है उतने अंशमें राग नहीं है । जो पर्याय चल रही है वह स्थिर नहीं रहती है । वह नियमसे नष्ट होगी । चाहे स्वभावपर्याय हो या विभावपर्याय हो, इतनी विशेषता है कि स्वभावपर्यायके नष्ट होनेपर वैसी ही स्वभावपर्याय बनती जाती है । कोई अन्तर नहीं आता है, किन्तु विभावपर्यायमें विषमता रहती है । उसका कारण यह है कि विभाव

पर्याय औपाधिक होती है ।

विज्ञानमें यह नियम है बद्धावस्था विकार भावमें होती है । अबद्धता एक एक क्षेत्रमें होती है, एक कालमें होती है, एक द्रव्यमें होती है तथा एक ही भावमें होती है । जैसे रागादिक हुए वह दो के बन्ध बिना नहीं हुए । उस जीव और कर्मका सम्बन्ध रहता है, एवं जीव और पुद्गल बिना नहीं हो सकता है । बद्ध विकार भाव दो कालके बिना नहीं होता । यद्यपि एक पर्याय एक समयमें होती है दूसरे समयमें नहीं होती है तथापि अनेक समयके भाव बिना उपयोगमें चलता नहीं । कोई संततिगत राग ऐसा नहीं होता है जिसमें विकारका अनुभव न होता हो । जिस जीवको रागका अनुभव न होता है, वह ऐसा नहीं है जिसकी सन्तान न चले, वह समझमें आ जाय, हम उसे बुद्धिमें ला सकें, उसके लिये तड़फ सकें, ऐसा राग अनवच्छिन्न अनेक समयके बिना नहीं । करणानुयोगमें इसकी अच्छी चर्चा है । दसवाँ गुणस्थानवर्ती जीव के क्षपक श्रेणी चढ़ते समय जो कषाय भाव रह जाता है उसका जो जघन्य समय है वह भी उसे समयसे कुछ अधिक रागका जघन्य समय है । कोई भी (भाव) ऐसा भी हुआ करता जो एक समय हो और अगले समय न भी हो, किन्तु चर्चा करते हुए हट्टे-कट्टे बैठे हुए यह मनमें रखे, वह एक समयका परिणाम होता है जो कि राग विकारका अनुभव कराता है तो वह असमझ है । राग पर्याय एक समयकी जरूरत होती है । अगर एक समयकी पर्यायपर दृष्टि डालता है तो वह ठहर नहीं सकता है ।

विकार बन्धनकी जो बात है वह कई कालमें होती है । विकासमें स्वच्छता और विकार एक साथ नहीं हो सकते । स्वच्छताके कारण विकार आया तथा जो स्वच्छ है उसीमें विकार आनेकी योग्यता है । दर्पणकी स्वच्छतामें विकार आ सकता है, भीतमें नहीं आ सकता । जिस तरहका जो कार्य होता है वह उसीमें हुआ करता है । विषमभावका होना भी अनेक भाव है । समभावका नाम एक भाव है । विषयभावका एक नाम है । जो भी बन्ध होता है वह विषम होता है ।

एक समयकी स्थिति जानना उत्कृष्ट ज्ञान बिना नहीं बन सकती है । गुण-गुणीका सम्बन्ध दोनोंमें रहता है । सम्बन्ध उसीको कहते हैं जो पहले न हो तथा बादमें हो, किन्तु यहाँ यह बात नहीं है । वैशेषिक कहते हैं गुण गुणीका समवाय सम्बन्ध है । जो विघट जाय उसे कहते नहीं । मत्ता और द्रव्यका तादात्म्य है, किन्तु उनके स्वरूपभेदसे बड़े । स्वरूप भेदसे उठकर इतने बड़े कि गुण-गुणीको भिन्न ही मान डाला । भेदमें तो विवक्षावश जैन दर्शन भी बढ़ता है । वह तो इतना बढ़ता है कि गुण व पर्यायके अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद दिखाता है, परन्तु भेदाभेदका मर्म जानना आवश्यक है । वह जैनवर्मके तो तत्त्व स्वरूपभेद आगे भी नहीं पहुँच पाये ।

जैनधर्म तो एक गुणमें भी अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद दर्शाता है—दूसरे दर्शन वालों को भेद करके अभेद करना याद नहीं है तथा अभेद बताकर भेद करना भी याद नहीं, किन्तु जैन खूब तोड़ मरोड़कर भेद करना जानते हैं तो भेदोंका अभेद करना भी जानते हैं जब अभेद व अभेदका प्रतिपक्षी वह दोनोंको युगपत् देखनेकी दृष्टि होती है। एक साथ एक वस्तु को लक्ष्य कर कहना तो यह है क्या, अवक्तव्य तथः एकको स्थापित करके सबको युगपत् कहें तो इसे अस्ति अवक्तव्य कहते हैं तथा जब एकका लोप करके सबका युगपत् वर्णन करना नास्ति अवक्तव्य है। एक-एकको प्रधान करना जिसको वक्ता कहना चाहे तथा सबको युगपत् कहना इसे अस्ति नास्ति अवक्तव्य कहते हैं। एक दृष्टिसे देखने वाले कहें यह सर्वथा नहीं है। वह ठीक नहीं अवाक गोचर जब कहें, जब उसे पहिचाना वह एक दृष्टिके विषयसे अवस्थित रहे। वह वस्तुतः विधि निषेधसे अवस्थित नहीं है।

कोई कहे यह घड़ी है तो क्या घड़ीको देखकर उसे पत्थर, पुस्तक, चौकी, लैम्प तो नहीं मान लेगा। हमें तो 'है' की सनक है। वह रुचता है। कोई घड़ीको दिखाकर कहे यह रोटी है तो उत्तर मिलेगा नहीं, कपड़ा है, नहीं। पर वह नहीं हो ऐसी बात नहीं है। स्वभावतः यह बात है घड़ीमें अन्यका अभाव है। यह अनेकान्त ऐसा नहीं है जैसे कि वृद्ध नारी आदि छोटी बच्चीसे कहे—'दुमो मायके जावोगी, दुमो सासरे जावोगी ? तब सबको हाँ ही हाँ ही।' यहाँ दोनोंका अर्थ निम्न है। मातृ गृहको मायका कहते हैं तथा पितृ गृहको पीहर कहते हैं। कोई कहे बच्ची कैसी बेवकूफ है, दोनोंको हाँ भरती जाती है, तो यहाँ अज्ञान दृष्टि का भेद है। घड़ी व्यतिरिक्तकी अपेक्षा है या नहीं। नास्तिकी बात कह रहा है, कोई-कोई इस सिद्धान्तपर उतरे हैं। घड़ी व्यतिरिक्त संसार भरके पदार्थोंका नाम घड़ी है। यह दृश्य तो भ्रम है।

घड़ी व्यतिरिक्त संसार भरके पदार्थोंका अभाव कोई धर्म दिखता है क्या ? अरे इसी पर तो सारा तानाबाना चल रहा है। सत् और सत्ता गुण और गुणी—इनमें स्वरूपभेद तो है किन्तु प्रदेशभेद नहीं है। चेतनसे आत्मा भिन्न हो तथा ज्ञान भिन्न हो यह बात नहीं है। भेद विवक्षा करो यहाँ संख्याकी कंजूसी नहीं है। अभेद विवक्षाके उत्कृष्ट भावमें भी कंजूसी नहीं है। 'अनेके अन्तः यत्र स अनेकान्तः।' अनेक है अन्त अर्थात् धर्म जिसमें ऐसा वह अनेकान्त है। कठिन बात की गई फिर भी सरल है। अनेकमें भी एक शब्द है व 'नञ्' प्रत्यय है। न एक अनेक, जहाँ एक भी धर्म नहीं है उसे कहते हैं अनेकान्त।

यह जिनवाणी सब अनेकान्तका प्रसाद है—तत्त्व ज्ञानके लिए ज्ञानी उठे तो अनेकान्तका सहारा लेना पड़ा। तब वस्तुके निरपेक्ष स्वभाव तक पहुँचे। पूर्व वस्तुपर पहुँचे, यहाँ पहिले वाला अनेकान्त घट रहा है। ऐसी द्रव्य स्वभावमें लीन हुआ कि एक ही दृष्टि न

रही। यहाँ दूसरे अर्थ वाला अनेका त घटता है। अनेकतया अंत, 'अनेकस्य अंतः यत्र विद्यते स अनेकान्तः।' गुणगुणी भाव जो बताये जा रहे हैं वह स्वरूपभेदकी अपेक्षा बताये जा रहे रहे हैं।

ज्ञानमय आत्मा समझमें आ गया वहीं तक अनेकान्त समझने समझानेके लिए हैं। यह नहीं बनता तो कौन समझता? निसर्गज क्या है, तीर्थ प्रवृत्ति क्या है? सत्, असत्, द्रव्य, गुण, पर्याय, भेद, अभेद किस तरह समझमें आते? अगर अनेकान्त नहीं होता तो तो वस्तु प्रवाह नहीं चल सकता था। वृत्ति, वृत्तिमान् है, स्वभाव, स्वभाववान् हैं।

इस प्रकार सत्, सत्ता याने द्रव्य व गुण सिद्ध हो जाते हैं। जिन विकल्पोसे तत्त्वोंमें विवाद भलक रहा था वह समाप्त हो जाता है। हम एक आत्मा हैं, मुझमें होने वाले यह गुण पृथक् पृथक् नहीं हैं। वह हमारे ही गुणकी दशामें बनती है। हमारा कर्तृत्व कहीं नहीं है। हम अपने ही कर्ता हैं, अन्यके कर्ता नहीं हैं तथा अपने ही भोक्ता हैं। यहाँ जिनवाणीका पवित्र प्रवाह जो है उसमें कहीं भी चले जाओ आत्मतत्त्वकी बात पग पग पर मिलेगी। वह प्रत्येक जीवकी कल्याणमाता है। उसकी गोदमें आश्रय लेने से अपूर्व शान्ति मिलती है। स्याद्वादके द्वारा ही अथाह संसार-समुद्र चुल्लूमें पानी लिए के समान मालूम पड़ने लगता है।

गुणगुणीका नानापन कैसे समाप्त हो? जब उनमें इतना अन्वय, सम्बंध तथा तादात्म्य व एकपना है तब नानापन समाप्त हो है। द्रव्यके बिना गुण कुछ नहीं और गुणके बिना द्रव्य कुछ नहीं। द्रव्यकी स्वयं सत्ता है। द्रव्यमें सत्ता रहती है, यह तो एक व्यवहार वचन है। द्रव्य स्वयं सत्तासे सहित है। भाव भाववानका फर्क जानना है। सत् और सत्ताका नानापन खत्म कर दिया है।

खंडन-मंडन विकल्पका ही हो सकता है—जो भी स्थापित किया जाता है उससे विकल्पोका खण्डन होता है तथा विकल्पोका ही मण्डन होता है। वस्तुतः खण्डन-मण्डन इन दोनोंसे युक्त नहीं होता है। खण्डन-मण्डन सद्भूत असद्भूतमें नहीं होता है। वस्तुसे कोई काम नहीं पड़ता है, किन्तु विकल्पोसे ही काम पड़ना है। काम तो अन्वय वस्तुके वस्तुत्वसे नहीं पड़ना, वह तो अपने भावसे ही पड़ना है। इसलिए अपने भावोंका ही खण्डन-मण्डन करना है। पदार्थका कुछ भी खण्डन-मण्डन नहीं करना है। किसीने कहा कि खरगोशके सींग होते हैं। तब सींग जो कहे हैं वह वस्तुभूत चीज है या नहीं? अगर वह वस्तुभूत चीज नहीं है तो उसका खण्डन क्या करना है तथा वस्तुभूत चीज है तो उसका खण्डन क्या करना है? जब कोई वस्तु होगी तो उसीका ही तो टुकड़ा करा जावेगा।

खरगोशके ही सींग तो नहीं हैं, तब खण्डन किसका करते और हैं तो खण्डन किसका करते? यह प्रश्न किया तो उत्तर देने वाला बोलता है कि हम तो विकल्पका खण्डन कर रहे

हैं। विकल्प सत् है तो उसका खण्डन क्या किया जायगा तथा विकल्प असत् है तो उसका मण्डन क्या किया जायगा? यह प्रश्न हो सकता है? उत्तर—विकल्प हो रहा, इससे तो प्रतीति सत् है और यह वस्तुस्वरूपके अनुरूप नहीं बैठता। इसलिए असत् कहा है। वैशेषिक सिद्धान्तने नानापन ला दिया था कि गुण और गुणी पृथक् सिद्ध है। उस नानापनको खत्म किया गया वह विकल्पमें था। यहाँ आचार्यजी ने उपहन्ति शब्दका प्रयोग किया है। अगर वह 'हन्ति' ही लिखते तो 'मारता है' अर्थ होता, जिसे कि देहाती लोग लट्ट मारनेको कहते हैं, किन्तु उपहन्ति अर्थात् अपने आपके उत्तर पर्यायमें वह भेदविकल्पक विकल्पको प्राप्त हो जाता है। गुणीगुणी भिन्न नहीं है, इसके दृष्ट भेदरूप पूर्वपर्यायका विलय हो जाना यही उपहनन है। द्रव्यसे पृथक्भूत गुण तथा पर्यायसे पृथक् गुण इस तरह कुछ भी नहीं है। द्रव्यको छोड़कर गुण नहीं है तथा पर्यायको छोड़कर गुण नहीं है या द्रव्यसे अलग गुण कुछ नहीं, गुणसे अलग पर्याय कुछ नहीं, द्रव्यसे पृथक् कुछ भी तुम्हारा दिमाग बन रहा है, यह कुछ नहीं है। यह भ्रममात्र है। पर्याय कुछ नहीं है। द्रव्यसे पृथक् गुण, गुणसे पृथक् पर्याय नहीं है। ऐसा विकल्प जो समाया रखा है वह कुछ भी नहीं है। जैसे सुवर्णसे पृथक्भूत सुवर्णत्व नहीं है और नया तत्त्वगुण ही पृथक् है याने सुवर्णसे पृथक् हो जाने वाला, सत्ता वाला यह पीतत्वादिक गुण नहीं है। 'भू-सत्तायाम्' की मूलभूत धातुका अर्थ अस् है। सत्तोभावः सत्ता, सत्ता वाली धातुका क्या अर्थ है? 'अस् भुवि' भू का अर्थ सत्ता तथा सत्ताका अर्थ 'भू' है। यहाँ संस्कृतमें अन्तर नहीं आता है। जब कहते हैं—'होता है' तब इसका अर्थ 'है' तथा 'है' का मतलब 'होता है।' तात्पर्य क्या हुआ? ध्रुव कहो तो उत्पाद व्यय सिद्ध, उत्पाद व्यय कहो तो ध्रौव्य सिद्ध है। हिन्दी तथा अंग्रेजीमें क्रिया आदिके द्वारा स्पष्ट भाव नहीं खुलता है। हुआ अर्थात् कुछका कुछ हुआ। होना अर्थात् उत्पाद, व्ययका अर्थ, आता है ध्रुव अर्थमें। भुवि सत्ता अर्थ में प्रयोग किया जाता है। अगर वह निकाल दिया जाय तो उसका प्राण ही निकल जायगा। उत्पाद व्यय सापेक्ष है, यह धातु प्रकरण बोल रहा है।

ज्ञानयुगमें प्रायः सब ज्ञानी अनेकान्तके उपासक थे—इस अनेकान्त व स्याद्वादका इस भारत खण्डमें बड़ा भारी डंका बज रहा था तथा प्रायः सभी उसके उपासक भाई-भाई थे। समय पाकर वह न्यारे-न्यारे हो गये, जिससे मतमतान्तर बढ़ते गये। आगे जाकर उन सबके कई घर बस गये। उनमें भी झगड़ा हुआ तो भाई-भाईकी उपासना जुदी-जुदी बनने लगी। तब वह सभी भिन्न-भिन्न विचारधारा वाले हो जाते हैं। सबसे पहले एक ही घर था (सबका एक स्याद्वाद भत था)। झगड़ा होनेसे दिल फट गये। उनको जोड़ने वालोंकी सामर्थ्य स्वल्प थी तथा जोड़नेकी अपेक्षा अपनी नेतागिरीका खिताब पानेका लालच बढ़ गया और अनेकों धर्म में से शाखा प्रशाखामें निकलते ही गये, किन्तु पीछे नहीं हटे। इसका परिणाम हम आज देख

रहे हैं। उसका नंगा तांडवनृत्यका भी रूप कहीं-कहीं देखनेको मिलता है। यह विशेषतायें अनेकों जगह दृष्टिगोचर होती हैं।

जैनियोंके धर्मके अनुयायियोंके सभी साहित्यके अन्तर मर्म विशाल हैं। जैन व्याकरण तथा अन्य व्याकरण देखनेपर विवाद स्थलपर किसकी सच्चाई उतरती है? जो प्राकृतिक चीज है उसको नियमों (सूत्र, वार्तिकादि) के घेरेमें ऋषिकी इच्छाका बंध कर दिया जाता है। अनेक व्याकरणोंकी वार्तिकें बनाकर भी शब्दसिद्धिको कहीं-कहीं ऋषिकी इच्छाके बंधनमें डाल दिया, किन्तु उसके लिए वह बन्धन उनका निजी नहीं था, वह उसपर लागू होता था, इसलिए ऐसा किया गया है। जैन व्याकरणमें प्रथम सूत्र आता है—‘सिद्धो वर्णं समाप्नायः’ वर्णं स्वयं परंपरासे सिद्ध हैं। शब्द कहींसे बनाये नहीं गये और न कहींसे लाये गये हैं, लेकिन पाणिनीकी इच्छा प्रधान मानी जाती है। तब वह शब्दोंको लाये तथा वार्तिकें आदि रची गईं। जैन व्याकरण पढ़नेपर अनेकान्तके दर्शन अनेक स्थलोंपर होते हैं। जैनोके अनेक ग्रंथ (व्याकरणादि) तिरोहित हो गये हैं, फिर भी जो बचे उनमें बल है तो जैनसाहित्यमें विशेषता मिलेगी। ज्ञानकी दृष्टिसे जैनसिद्धान्त समाप्त नहीं होता है। जिन्होंने इस साहित्यको पढ़ा है उन्हें यथार्थ आस्वादन मिला है। जैन ज्योतिष, आयुर्वेदिक ग्रंथ, दर्शन ग्रंथ आदि सभीमें अलौकिक स्याद्वाद छिपा हुआ है। बड़े-बड़े महान दर्शनके ग्रन्थ बन जानेपर भी मालूम होता है, अभी तो इसके कुछ और तत्त्वकी सूक्ष्मता है। धवला, महाधवला (षट्खण्डागम) तथा जपधवलाको पढ़नेपर भी ज्ञानकी उत्कण्ठा, क्षुधा बढ़ती ही जाती है। नई-नई ज्ञान अभिलाषायें पैदा होती जाती हैं।

जैन वाङ्मयमें स्नान करने वाला विज्ञ शीघ्र कल्याण कर सकता है—जिसने अपना जीवन अन्य अनेकमें लगा दिया था, इस तरहके महाविद्वान पात्रकेशरीको जब जैनधर्मके तत्त्वों का ज्ञान होता है तब वह इस धर्मका अनुयायी व उपासक बन जाता है। इस तरहके एक नहीं अनेक उदाहरण मिल जावेंगे व वर्तमानमें यत्र तत्र खोजनेपर दृष्टिगोचर होते हैं। चौथे कालमें गौतम महान धुरंधर विद्वान जैनधर्मसे घृणा करने वाला कट्टर विरोधी था, किन्तु जब उसे त्रिनेन्द्रदेव महावीरकी वाणीको पानेका अवसर आता है तो सारे विकल्पोंको छोड़ जैनधर्म को क्या अपना परमहितैषी वह गौतम प्रथम गणधरके पदको सुशोभित करता है? जैन वाङ्मयी विभूतिकाका शब्दों द्वारा वर्णन करना असंभव है। उसे समझनेके लिए पवित्र जिन-वाणीके समीप ही अपनेको पहुंचा देना होगा। इसकी कलायें विशिष्ट अवर्णनीय हैं। जिसमें कि जिन विकल्पोंको स्वयं बनाया है उनका ही खण्डन किया गया है। उन्हीं विकल्पोंको समाप्त करते हैं। अतएव ‘उपहन्ति’ शब्द दिया गया है। पीतत्वादि, कुण्डल पर्याय सुवर्णसे भिन्न नहीं है। वही वस्तु इस पर्यायात्मकपनेको प्राप्त है।

अब इस द्रव्यका स्वरूपवृत्तिभूत अस्तित्व नामक जो द्रव्यत्व है वह स्वरूपवृत्तिभूत कहलाता है। अगर इसे अलग कर दिया तो कुछ भी नहीं रहा। इस तरह प्रतीतिमें आनेपर वह जीवन ही उसी रंगमें रंग जावे, तब ज्ञानबिन्दु मिल पाती है। अगर उष्णता अलग कर दें तो अग्नि ही क्या रहेगी? द्रव्यका गुण द्रव्यसे अलग नहीं रहता है। यहाँ अस्तित्व, सत्, द्रव्य, गुण, सत्ता आदि पर्यायवाची शब्द होते हुए भी अन्तरको दिखलाते हैं। जैसे वर्तते, विद्यते, अस्ति, भवति, समान अर्थको लिए हुए भी भिन्न-भिन्न भावको प्रकट करते हैं। 'पुस्तक वर्तते' अर्थात् पुस्तक समय-समयपर वर्तना करती हुई है। भवति = सत्ता अर्थको प्रकट करता है। विद्यते = मौजूदगी हालतको दिखाता है तथा 'अस्ति', 'है' इस सीधे अर्थको जताता है। अस्ति तथा भवति दोनोंका आपसमें आदान प्रदान है। जैसे दो बहिनें अपने-अपने लड़कोंको लिए बैठी होती हैं, तब वह अपने-अपने लड़केको न खिलाकर दोनों एक दूसरेके लड़केको खिलाती हैं। इसी तरह भू धातु और अस् धातु एक दूसरेके वाच्यको स्वीकार करती हैं। जैसे भू सत्तायाम्, भू धातुका सत्ता अर्थ है, "है" अर्थ है और अस् धातु (जो "है" अर्थमें याने सत्तामें प्रसिद्ध है) का भुवि अर्थमें है अर्थात् अस् का 'होना' अर्थ है। इससे यह सिद्ध होता है कि 'है' की व्याप्ति होनेके साथ है और होनेकी व्याप्ति 'है' के साथ है। इसी तरह उत्पाद व्ययसे ध्रौव्य बन जाता है। ध्रौव्यसे उत्पाद व्यय बन जाता है। भू सत्ता कहो या अस्तित्व कहो ये दोनों 'किं पृथक् भूतत्वेन वर्तते?' क्या पृथक्पनेके भूतसे अलग होकर वर्तन कर रहा है? इस तरह नहीं है। 'द्रव्य सत्ता अस्तु' अतएव द्रव्य सत्ता ही होवे। द्रव्यको सत्ता ही रहने दो। भाववाच्य पाकर अर्थ हो गया। द्रव्यको तोड़ो मत, उसे सत्ता ही रहने दो। अधिक या कम कहने सुननेसे कुछ काम नहीं चलेगा। हमारे कहनेसे बात बनी यह कुछ नहीं है। इसलिए द्रव्य ही स्वयं सत्ता स्वरूप होवे। एक-एक परमाणु, जरा जरा स्वयं सत् सिद्ध हुआ है। यह आत्मा परमाणु मात्रको भी कुछ कर सकता है, यह पूर्णतया असत्य है। जो यह सोचते हैं मैं अमुकका यह करता हूँ, अमुकने मेरा काम बना दिया, यह कर्मबन्धका मेल चढ़ाना है।

परिणामोंकी सतत् सावधानी रखो—कोई सोचे चलो अच्छा कार्य (धर्म) तो सदैव करता हूँ तब एक क्षणको खोटे भाव या पापकार्यमें भी चला जाऊँ। वहाँ एक क्षणका भी खोटा भाव कोड़ाकोड़ी सागर कर्मबन्धका कारण हो सकता है। थोड़ीसी भी गलती यहाँ माफ नहीं हो सकती। कर्मोंका न्याय कहीं खोजने नहीं जाना, वह तो भावके अनुसार शीघ्र बंध जाता है। वहाँ विलम्बकी आवश्यकता नहीं। यहाँ यह मनुष्यभव पाकर भी स्वच्छन्द हो शिथिलाचारमें प्रवृत्त है तो खूब करो, पर बन्धन तो करने वाला ही भोगेगा। अगर धर्मका अवसर आया, तब कहते हैं—आगे कर लेंगे, किन्तु पापवार्य चल रहे हैं या मनमें आया तो

सोचता है चलने दो, इनको तड़फन इनकी खुजली कु... तो खुजा लूँ, किन्तु यह ज्ञात नहीं, यही खुजली शरीरको विदारण कर दारुण दुःखका कारण बनेगी तथा तड़फन भी अनन्त हो जायगी, यह कर्मोंका न्याय है। इसे विवेकी ही टाल सकता है।

एक अखण्ड शुद्ध सत्ताक ही तो अपनेको जानना है—धर्म तो आत्माका स्वभाव है उसको जानना और उसके अनुरूप कार्य करना सो धर्म है। आत्माका स्वभाव है जानना और उसके अनुरूप कार्य है मात्र जानना अर्थात् रागादि विकल्प न करके मात्र जानना। सो भैया ! जब जानना मात्र ही धर्म है तब धर्मके पालनमें कठिनाई क्या ? जो उल्टा चले उसको तो कठिनाई क्या अज्ञानदशामें असम्भव ही है। हे आत्मन् ! तुम अखण्ड शुद्ध सत्ताक हो। देखो द्रव्यसे पृथक्भूत न कोई गुण है और न कोई पर्याय है। इससे तुम अखण्ड हो और सभी द्रव्य ऐसे ही परिपूर्ण हैं। सो किसी भी द्रव्यका तुममें कुछ आता ही नहीं, इस कारण शुद्ध सत्ताक हो। अब देख लो उस द्रव्यका स्वरूपवृत्तिभूत अस्तित्व नामक जो द्रव्यत्व है तद्भावा (तस्य भावः तद्भावः द्रव्यस्य भावः द्रव्यत्वम्) नामका गुण ही तो है। वह द्रव्यत्व क्या द्रव्य से पृथक् रह सकता है ? नहीं रहता। तब द्रव्य ही सत्ता होओ, स्वयं ही होवो।

त्रितयात्मक अर्थ ही द्रव्य, गुण, पर्यायमें व्यवस्थित है—वह द्रव्यमें पाया जाता है, गुणमें पाया जाता है तथा पर्यायमें भी पाया जाता है। अर्थके आशयसे द्रव्य, गुण तथा पर्याय तीनों अंश हैं तथा अर्थ अंशी है। जो भी जानते हैं वह अर्थ रूपसे ही जानते हैं। बिना अर्थके कुछ भी नहीं जाना जा सकता है। अर्पते निश्चयते इति अर्थः, जो निश्चय किया जाय वह अर्थ है। तत्त्वार्थ सूत्रकार श्री उमास्वामी जी ने सूत्र कहा है—‘अर्थस्य’ जो ज्ञान होता है वह अर्थका होता है। उस अर्थको द्रव्यकी मुख्यतासे जाना जाता है, गुणकी मुख्यतासे जाना जाता है तथा पर्यायकी मुख्यतासे जाना जा सकता है। जब इन सबका आश्रय साथ रहे तब भी जानना अर्थका होता है। वस्तुमें ही जानना होता है, अवस्तुमें जानना नहीं होता है। अस्तु, जैसे गधेकी सींग तथा आकाशके फूल हैं। भेदनयसे गुणगुणी भाव है। गुणगुणीमें नानापन नहीं है। द्रव्य, गुण, पर्याय सत्तासे अलग कुछ नहीं है। द्रव्यका नाम ही सत्ता है। जैसे सोना है, उसमें पीतत्व सुवर्णका गुण है तथा कुण्डलादि पर्याय है और सुवर्ण स्वयं एक पुद्गल पर्याय है। यहांपर एक बात और कहनी है, जब तुम अचेतन पर्यायको द्रव्य बनाकर ही दृष्टान्त पेश करते हो तो एक उदाहरण हमारा भी मान लो, जिसमें मुक्तात्मा द्रव्य हो जायगा, केवलज्ञान गुण हो जायगा तथा मोक्ष पर्याय हो जायगी। क्योंकि घड़ा, वस्त्र, मिट्टी, सोनाके उदाहरणोंमें कोई रोक-टोक (रूकावट) नहीं आती है। दृष्टान्तमें समझानेके लिये तो दृष्टान्तके लिए चेतन मुक्तात्मा तो और ही उत्तम रहेगा, लेकिन उसके केवलज्ञानादि गुण मुक्तात्माको छोड़कर और कुछ नहीं हैं। मुक्तात्मा हुआ कैवल्य भाव तो कैवल्य स्वभाव ही अभेद मुक्तात्मा

कहला । जो गुण गुणी है वह सत्ता ही है, इन दोनोंसे भिन्न नहीं है ।

वस्तु अपने स्वभावमात्रमें है—मैं स्वभावमात्र ही हूं । 'एक स्वभावमात्रं वस्तु' स्वभावमात्र वस्तु है । ज्ञान होनेका स्थान आत्मा है तथा आत्मामें ही क्रोध होता है । लेकिन क्रोधका होना, यह आत्माका स्वभाव नहीं है । क्रोध केवल वर्तमान कालावच्छेदेन होता है तथा ज्ञान आत्मामें त्रिकालावच्छेदेन होता है । क्रोधका होना ज्ञानका होना नहीं है । ज्ञानका होना ही क्रोधका होना नहीं है । मैं ज्ञानमात्र हूं, क्रोधमात्र नहीं हूं । भेद करते-करते एक पदार्थ का दूसरा पदार्थनहीं होता है, क्योंकि एक पदार्थकी अपेक्षा दूसरेके दो प्रदेश होते हैं—'प्रदिश्यते उपदिश्यते ज्ञायते' जिसके द्वारा उपदिष्ट जाय उसका नाम प्रदेश है । क्रोधका निमित्तके साथ अन्वयव्यतिरेक है । कर्मणि सति भवति, कर्मणि असति न भवति । क्रोधको निमित्तको ही सौंप दिया । एक दम्पति (पति, पत्नी) के दो बच्चे होवें या लड़का तथा एक लड़की होवे तो उनमें आपसमें इस तरह तय कर लेते हैं । लड़का पतिका तथा लड़की पत्नीकी, तब वह उन दोनों पर प्रेम भी उसी तरह करते हैं । वह दोनोंमें जुदे-जुदे बंटे हुएसे प्रतीत होते हैं तथा दोनों में अर्थक्रिया भी भिन्न-भिन्न होती है । अतएव हमें जिन-जिन बातोंसे प्रयोजन सिद्ध हो वह तथ्य है तो क्रोध ज्ञानमय नहीं और ज्ञान क्रोधमय नहीं है, दोनों जुदे-जुदे हैं । एक त्रैकालिक अभेदस्वभावसे दृष्ट होता है, उसका नाम द्रव्य है । जो भेदस्वभावसे त्रैकालिक दृष्ट होता है उसका नाम गुण है तथा नियत कालसे विवक्षित कालावच्छेदेन हो वह पर्याय है । इन तीनोंमें जो व्यवस्थित है उसे अर्थ कहते हैं । मुख्यतासे बहुत-बहुत जगह अर्थका वर्णन नहीं आता है; द्रव्य, गुणका वर्णन आता है । द्रव्यको छोड़ गुण तथा गुणकी छोड़ पर्यायों नहीं हैं तथा इन तीनोंके ज्ञानसे अर्थका अनुभवन होता है । जो देखकर जाना गया वह गुण है । एक गुण अर्थ नहीं है । अर्थ स्थानीय द्रव्य है, यह कहा जाता है । अनुभवकी दशामें पर्याय विषय नहीं, गुण विषय नहीं । अर्थकी ज्यादा टीका नहीं हो सकती है तथा द्रव्य व गुणकी व्याख्या विशेष हो सकती है, पर्यायकी और विशेष द्रव्यके बिना गुण तथा पर्याय नहीं है । 'द्रव्येषु गुणेषु पर्यायेषु व्यवस्थितोऽर्थः तर्हि द्रव्य स सत्ता अस्तु स्वयमेव ।' द्रव्य गुण पर्यायोंमें पाया जाता है । इसलिए द्रव्य सत्ता हो, स्वयं ही हो ।

यहां तर्क किया जाता है । द्रव्यका सत्का उत्पाद है या असत्का उत्पाद है । उत्तर—सत्तुत्पाद भी है व असदुत्पाद भी है । अब सत्का उत्पाद रहे व असत्का भी उत्पाद रहे, विरोध न रहे, इसको सिद्ध करते हैं । सत्को एक दृष्टिसे कहा है तथा असत्को एक दृष्टिसे कहा है । जो वस्तु है उसका उत्पाद क्या तथा जो नहीं है उसका भी उत्पाद क्या ? एक द्रव्याधिकनयको सिद्ध करता है तथा दूसरा पर्यायाधिकनयको सिद्ध करता है । इसीको गाथामें कहते हैं—

एवं विहं सहावे दव्वं दव्वत्थ पज्जत्य त्थेहि ।

सद् सव्भावणिबद्ध पादुव्भावं सदा लभदि ॥१११॥

इस प्रकार स्वभावमें वर्तमान द्रव्य द्रव्यार्थिकनय व पर्यायार्थिकनयकी अपेक्षासे सद्भाव व असद्भावमें निबद्ध प्रादुर्भावको सदा प्राप्त करता है । द्रव्य जो है वह स्वभावमें कैसा है ? द्रव्यार्थिकनयसे सद्भाव निबद्ध है । पर्यायार्थिकनयसे असद्भाव निबद्ध है । ऐसा द्रव्य विकास पर्यायको प्राप्त होता है । द्रव्य जो है उसीका उत्पाद कहा जा रहा है तथा जो नहीं है उसका भी उत्पाद कहा जा रहा है । जैसे आत्मद्रव्य अनादिसे है, किन्तु वह समय-समयपर अनेक पर्यायें बदलता रहता है, 'है' वही एक, यह द्रव्यका उत्पाद हो गया और कोई आत्मा तिर्यच-गतिमें था वह वहाँसे मनुष्यगतिमें आ गया तो यहाँ मनुष्यगतिमें मनुष्यपर्यायका नवीन उत्पाद हुआ है । यह असत्का उत्पाद हो गया । लेकिन द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा आत्मा जो पूर्वमें था वही अब है । यहाँ एक द्रव्य जो था वही नया रूप लेकर बन गया तथा दूसरा द्रव्य को आश्रय करके ऐसी पर्याय नहीं होते हुए भी बन गई । यहाँ इस तरहसे भाव आया, सदुत्पाद तथा असदुत्पाद । तब उत्पाद तो सत्का ही होता है, असत्का उत्पाद होता ही नहीं है । उन सब पर्यायोंका नाम ही द्रव्य है, क्योंकि द्रव्य अनेक पर्यायोंका उत्पाद करता है या उत्पादको प्राप्त होता है ।

अभेद वस्तुके भेद आशयवश होते हैं—यथार्थमें यहाँ मूलमें कुछ भेद नहीं है किन्तु नय (द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक) लगाकर सत् असत्का उत्पाद कहना पड़ा है । किसी आलमारीमें चार पुस्तकें रखी हैं । वह कपड़ेसे ढकी होनेसे दृष्टिगोचर नहीं होती हैं । वहाँ उनका उत्पाद नहीं किया गया है, किन्तु द्रव्यार्थिकनयसे उनका उत्पाद तो है ही । केवल रूपमुखेन कोई वस्तु नहीं जानी जा सकती । जैसे एक पका आम है, उसका बिना जिह्वाइन्द्रियके द्वारा स्वाद नहीं जाना जा सकता है । तब उसको रसमुखेन जानना होगा । उसे केवल पर्यायमुखेन नहीं जान सकते । द्रव्य गुण पर्याय सत् है । यह सब एक एक उपलक्षण है । जब द्रव्यार्थिक दृष्टिसे देखा तो सत् उत्पाद है तथा पर्यायार्थिक दृष्टिसे देखा तो असत् उत्पाद है । यह द्रव्य जैसा-जैसा भी ऊपर कह चुके हैं उस-उस प्रकारसे समस्त अकलंकका लांछन (चिह्न) है । अर्थात् एक अभेद वस्तुको भेदकर सम्पूर्ण चर्चा (प्रकरण) चल रही है । प्रयोजनवश द्रव्यको लाञ्छित कर रहे हैं । यह द्रव्यके समझनेके लिये दोषोंको बता रहे हैं । चिह्न और अवगुणों के मध्यकी बात है । द्रव्यको चिह्नित कर रहे हैं । उसकी सभी विशेषतायें बता रहे हैं ।

द्रव्यका सही लक्षण यहाँ दर्शाया गया है । इस प्रकार यह निर्दोष दोष लगाया है । विशेषता यह है कि दोष भी लगाया है वह भी निर्दोष है । अवलंक, कलंकसे रहित यह लांछन है, क्योंकि कलंक वाला कालिमा (मैलेपनसे) युक्त होगा । वह द्रव्य समस्त रूपसे अनादि

निधन है। जिसका न आदि है और न अन्त है। वह स्वभावमें प्रादुर्भावको प्राप्त होता है। परिणामका अर्थ उत्पाद व्यय ध्रौव्यका होना है तथा परिणामनमें भी यही बात आती है तथा द्रव्यका स्वभाव कहने पर भी उत्पाद व्यय एवं ध्रौव्य जाहिर होता है। उत्पाद असत्का भी होता है। वह प्रादुर्भाव विकार प्रकट करता है। वह द्रव्यकी अभिधेयतामें द्रव्यके लक्ष्यसे देखो तो सत्का उत्पादक है। जो द्रव्य है वही विकासमें आया तथा उसीका उत्पाद हुआ, यह सत् निबद्ध प्रादुर्भाव है तथा पर्यायको देखनेसे असत्का उत्पाद प्रतीत होता है। यह यकायक नया नहीं बन गया अथवा यहाँ नवीन द्रव्यकी उत्पत्ति हो गई हो, यह नहीं है। आधारपर दृष्टि रखकर नहीं कहते हैं तो असदुत्पाद हो जाने नई बात बनी है। उसी असदुत्पादमें द्रव्याभिधेयतामें सत् है तथा पर्यायाभिधेयतामें असदुत्पाद है। द्रव्यकी अभिधेयतामें सत्का उत्पाद होता है।

जिस समय द्रव्य ही अभिधान किया गया तथा द्रव्य ही चर्चित किया गया जहाँ असदुत्पाद है वह सब पर्यायोंकी ही चर्चा है। अगर द्रव्यका दर्शन होता है वहाँ कहो सत्का उत्पाद होता है, जहाँ पर्यायका दर्शन है वहाँ कहो असदुत्पाद ही है। यहाँ द्रव्यदृष्टिको स्थान ही नहीं है, किन्तु द्रव्यकी गौणता है। पर्यायकी मुख्यता तथा द्रव्यकी गौणता है। पर्यायको देखकर ही बोलता जायगा तब यहाँ असदुत्पाद का उत्पाद किया जायगा। अन्वय शक्तियोंका न तो उत्पाद है और न विनाश है। वह अन्वय शक्तियाँ एक साथ प्रवृत्त भी होती हैं। वह द्रव्यको सिद्ध करने वाली हैं, द्रव्यको ठीक ढंगसे बताने वाली हैं। उन गुणोंके दर्शन द्वारा पर्यायोंका संक्रमण कर दिया। प्रभव और अवसान जिनका लाञ्छन है ऐसी पर्यायें उत्पन्न होती हैं और विलीन होती हैं। वह पर्यायें क्रमप्रवृत्त होती हैं, किन्तु क्रमप्रवर्तन भी उनमें पाया जाता है। इसका अर्थ है कि वह युगपत् प्रवर्तन नहीं है। इसके बाद ही वह होती हैं। तात्पर्य मात्र इतना है सब पर्यायें एक साथ नहीं होती हैं। एक समयमें एक ही पर्याय होती है। किन्तु द्रव्यमें गुण योगपद्य प्रवृत्त होते हैं। द्रव्य सिद्धि चलनेपर गुणोंका अक्रम प्रवर्तन, योगपद्य प्रवर्तन होता है। भिन्न-भिन्न समयोंमें जिनका विकास होता है उन पर्यायोंमें उत्पादन कर दिया। योगमपद्य प्रवर्तन हो यह तो द्रव्यका निष्पादन करने वाली शक्तियाँ हुईं तथा व्यतिरेक व्यक्तियाँ पर्यायको निष्पन्न करने वाली हैं।

पदार्थोंका विष्कम्भ विस्तार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षासे देखा जाता है—पदार्थोंको द्रव्यदृष्टिसे देखा जाय तो अनंत शक्तियोंका पिण्ड है। क्षेत्रकी अपेक्षासे देखनेपर इतने प्रदेशात्मक है, यह कहना होगा। वह तीन तरहसे जाना जाता है—क्षेत्रदृष्टिसे एक प्रदेशी, असंख्यात प्रदेशी और अनंत प्रदेश वाला है। पुद्गल संख्यात प्रदेशी, असंख्यात प्रदेशी और अनंत प्रदेशी नहीं है। यह तो दृष्टिसे क्षेत्र अपेक्षा देखकर सोच। कालदृष्टिसे देखनेपर द्रव्य

अनंत पर्यायात्मक है और भावदृष्टिसे देखनेपर एक स्वभावयुक्त ही है। जैसे यह एक चौकी है, इसके चार पैर हैं। द्रव्यदृष्टिसे उसे इतनी आकार-प्रकारकी तथा इतनी लम्बी-चौड़ी है, इस तरहके काठकी या पीतल आदिकी है, यह कहना होगा। क्षेत्रदृष्टिसे चौकी इतना स्थान विशेष घेरे है, इस तरह कहना होगा। कालदृष्टिसे कहेंगे यह चौकी इतने समयकी पुरानी है या नवीन है अथवा जीर्ण-शीर्ण हो चुकी है। भावदृष्टिसे शक्ति मात्र देखनेमें आवेगा। द्रव्य इस तरह चार प्रकारसे निरखा जाता है। कौनसी दृष्टिसे देखें जिससे हमारा प्रयोजन सिद्ध हो जाय या सहायता मिले तो वह भावदृष्टि है। चैतन्य स्वभावमय ही आत्मा है और उसके बाद आत्मा अनंत गुणोंका पिण्ड है, जिससे कर्तृत्वबुद्धि हटानेमें मदद मिलती है। अन्वय शक्तियाँ द्रव्यका निष्पादन करने वाली हैं। यहाँपर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावमें से द्रव्यका आश्रय लेना है। पदार्थ अस्तिकाय आदिमें पदार्थ आश्रय लेता है और बाकीको तिरोहित कर देते हैं। तब हम द्रव्यदृष्टिसे बोलें तो सत्का उत्पाद हुआ। यह सद्भाव निबद्ध कहलाया तथा उसका विकास हुआ कहलाया।

द्रव्यदृष्टिसे जो था वही पैदा हुआ, पर्यायदृष्टिसे जो न था वह पैदा हुआ—जैसे सुवर्ण है, वह पीला है। उस सुवर्णका दस्तबन्द या इमरतीके चूरा (कड़ा विशेष) बनवाये। उसमें सत्का उत्पाद है या असत्का? द्रव्यदृष्टिसे देखनेपर सत्का उत्पाद है और पर्यायदृष्टिसे विचार करनेपर दस्तबन्द आदि असत्का उत्पाद है। जब सुवर्ण ही कहा जाता तब पर्यायदृष्टि गौण हो जाती है, क्योंकि सुवर्ण पर्याय जब तक हम हैं तब तक जिन्दा रहने वाला है। 'उत्पत्ति और विनाशसे रहित' शब्द नहीं दिया है, किन्तु जब तक वह सुवर्ण है तब तक उसकी अन्वय जीवित शक्तियाँ हैं। जो देखा गया वह सीधा इन शब्दोंके द्वारा जान लिया गया है। कभी प्रभाववसान उनका होता ही नहीं। यह सिद्ध न हो, इसलिए हेमसमान जीवित कहा। जब तक सुवर्ण है तब तक जीवित रहने वाली शक्तियाँ हैं। अगर उन शक्तियोंको कहें हटो तब भी क्या वह इस कहनेसे अलग हो सकती हैं? नहीं। पीला रहना सुवर्णका गुण है। किसी दृष्टि से न पीला ही गुण है और न सुवर्ण ही गुण है। क्योंकि पीला कहना जो गुण है वह इमरतीके कड़ोंमें है। सुवर्णके दस्तबन्द, करदोनी, इमरतीके चूरा, कर्णफूल, शशिफूल, गलेका हार, बालियाँ, छन्नियाँ आदि कई गहने बदल-बदलकर बनवाते जावें, और उसमें टाँका भी हर समय लगता रहेगा, किन्तु सुवर्णका गुण जो पीलापन है वह दूसरे रूप नहीं बदल सकता। वह सुवर्ण नदियों, जमीनके अन्दर, नालियों और राख आदिमें पड़ा रहनेपर भी अपने गुणको नहीं छोड़ता है। उन शक्तियोंके द्वारा व्यतिरेक जो शक्तियाँ हैं वे पर्याय तक ही जीवित हैं। दस्तबन्द तभी तक जीवित है जब तक वह है। फिर दूसरी पर्याय अर्थात् दूसरा गहना घड़ा जानेपर उस नामको पा लेता है। इन पर्यायोंके समान जीने वाला यह क्रम प्रवर्तमान है।

सुवर्णके द्वारा जो आभूषण बनने वाला है वह एकदम प्रकट नहीं हो जावेगा। लेकिन द्रव्यके गुण एकदम प्रकट हो जाते हैं। सत्भावनिबद्ध ही प्रादुर्भाव है अर्थात् सत्से सहित ही पर्याय की उत्पत्ति है तथा वह सत्तामें ही रहने वाला विकास है। अभेद कर दिखाया है, असद्का उत्पाद नहीं है। यह न होने योग्य कार्य नहीं किया गया। यह सत् निबद्ध ही कार्य किया है।

शब्दोंसे आत्माका सुधार बिगाड़ नहीं—अगर किसीने गालियाँ दीं तो ये गालियाँ देना आत्माका काम नहीं है और न शरीर ही दे सकता है, क्योंकि शरीर पुद्गलका पिण्ड है और न वह भाषाका ही काम है। तीनों जुदा-जुदा परिणमन हैं। अगर यहाँ किसी देहाती अनपढ़से कोई 'डेमफूल' कहे तो वह नहीं समझ सकेगा। उसी तरह इंग्लैंडमें किसीसे 'मिथ्यादृष्टि' कहा जाय तो वह भी उसका मतलब नहीं समझेगा। तब भाषाके द्वारा बोला हुई गाली भी कुछ अनिष्ट नहीं कर रही है। किन्तु चारित्र्य गुणका ही ऐसा प्रवर्तन चल रहा है, अपनी रुचि माफिक मान रखा है। अमुकने मेरा यह अपकार किया, यह गन्दे शब्द कहे, इनके द्वारा मेरा अपमान हुआ आदि। यह सब स्वयं विचार करनेसे ऐसा मान लिया है, किन्तु वह इस रूपसे नहीं है। कोई किसीसे लुच्चा कहे तो लुंचन केशोंका किया जाता है। इतनी शुद्ध अवस्था होनेके लिए वह कह रहा है। 'लफंगा' अर्थात् लफ गये हैं अंग जिसके, इस तरहका वह नम्र पुरुष। 'धीट = धियां तिष्ठति इति धीष्ठः।' स्थिर है बुद्धि जिसकी वह हुआ धीट पुरुष। यथार्थमें सुनने वाला गालियोंका स्वयं निर्माण करता है। अगर कोई किसीको लक्ष्य लेकर गाली देता भी है तो वह शरीरसे चिपकती नहीं, आत्माका कुछ अहित करती नहीं, किन्तु वह तो कर्मोंके बन्धन शिथिल करनेका एक उपाय हाथ लग रहा है। उस सम्बन्धमें सोचना शुरू कर दें, जब तक यह शरीर है तब तक अनादिकालसे दूसरोंके द्वारा इसकी निन्दा हो रही है, गालियाँ मिलती हैं। मुंह पर निन्दा नहीं करता कोई तो परोक्षमें वह भरपेट निन्दा करता है। दूसरोंमें खिल्लियाँ उड़ाई जाती हैं। इस निन्दासे नेता, सेठ, विद्वान्, त्यागी, मुनि भी नहीं बच सकते। इसलिए गालियाँ देने वालेका बुरा विचारनेकी जगह स्वयंके कर्म-कलकोंको हटानेका उद्यम क्यों न किया जाय ?

प्रश्न किया गया कि असत्को सिद्ध किस कारणसे किया जा रहा है तब समाधान करते हैं, चिन्तित मत होओ किन्तु यह सत् निबद्ध ही है। क्योंकि अचानक कोई कार्य नहीं होता है। जिसका मूल नहीं है वह क्या बनेगा ? पहलेसे जरूर कुछ था अर्थात् पुद्गल स्कन्धों तथा जीव द्रव्यके मेलसे मनुष्यादि पर्याय प्राप्त होती है।

संपत्ति व विपत्ति भी अमिप्रायकी कल्पना है—मानलो (१००), (१०००) या और भी अधिकका घाटा आया तो क्या विपत्ति आई ? विपत्ति वेवल जो मिथ्या आशय बना रखा

उसकी है। जिसका जैसा गलत सही विचार बनता है वह वैसी ही विपत्ति मानकर दुःखी होता है। अगर कोई बालक विसी शहरसे २-४ मील गांव पर जाने वाला हो, जाते समय किसीने अचानक कह दिया, रास्तेमें अमुक स्थानपर बड़के ऊपर हौआ (भूत-प्रेतादि) रहता है, जिसके बड़े-बड़े दांत, नख हैं। यह सुनकर बालक भयभीत हो जाता है या तो उसका जाना असंभव हो जायगा या फिर रास्तेमें डरता हुआ हौआका चित्र दिलमें बसाये हुए जावेगा। इसी तरहका दुःखका चित्र स्वयं बना रखा है। आत्माको क्या दुःख होता है, शरीर पौद्गलिक है उसका भी कुछ नहीं बिगड़ता। जिस तरह बेवकूफके सिरपर अनेकों फजीहतें (दुःख) लगी रहती हैं, यही दशा अज्ञानमें प्रत्येककी हो रही है। जिन्होंने अपना आशय ठीक बना लिया है, वह नरकमें रहते हुए भी दुःख नहीं मान सकते तथा स्वर्गके वैभवशाली सुखोंमें मदोन्मत्त नहीं हो सकते। फिर मनुष्य क्या कम विवेकवान् है ? फिर क्यों दिन-रात परिश्रम करता दिमाग जुटाता रहता है जो भी कुछ हो रहा है वह निमित्त और नैमित्तिकतासे हो रहा है। भाव जिस तरहका बनाया वैसा निमित्त आश्रय हो जाता है। फिर भी बाह्यका परिणामन बाह्यमें है तथा अन्तरङ्गका परिणामन अन्तरङ्गमें है।

द्रव्य परिणामनशील है अतः सदुत्पाद व असदुत्पाद दोनों सही बातें हैं—सत् तथा असत्का उत्पत्तिका विषय चल रहा है। जब किसी पर्यायपर लक्ष्य किया जाता है तब असद्की उत्पत्ति कहना होगा तथा जब मूल द्रव्यपर ही लक्ष्य रखा जायगा उस समय सद् की उत्पत्ति ही कहना होगा। केवल जब सुवर्णको कहेंगे तब सद्का उत्पाद कहना होगा तथा उसके बने हुए आभूषण उसकी पर्याय कहलावेंगी। व्यवहारमें भी बनावटी चीजको, बनावटी पुरुष, स्त्रीको, बालकको जो कि कपड़ोंके बनाव-ठनावसे सुसज्जित है, विचित्र-विचित्र आभूषणोंको धारण किये हुए है उसे मनुष्य कह देते हैं। आज तो आप बहुत बन रहे। वाह क्या कहना तुम्हारी शानका ? तो यहां भी प्रकट होता है कि मूल चीज कुछ और है किन्तु उस पर मुल्लमा (कचरा या पलस्तर) चढ़ाया गया है। यह सब पहलेका ही रूप बदल रहा है। सत्की उत्पत्तिपर दृष्टि रखना यह द्रव्यार्थिक नय है। इसके विपरीत जब पर्याय लक्ष्यमें आई तब असत्का उत्पाद कहना होगा। उत्पाद और व्यय ही है चिन्ह जिनका, इस तरहकी वह पर्यायें उत्पाद और विनाशके बिना नहीं जानी जा सकती हैं। ऐसी पर्यायकी व्यतिरेक व्यक्तियां ही भिन्न-भिन्न विकास हैं तथा व्यक्त (प्रगट) हो गया है पर्यायका निष्पादन जिसमें इस तरहकी वह अवस्था विशेष है। इन विकासोंसे ही पर्याय बनता है। जब पर्यायको गौण किया तथा द्रव्यको मुख्य किया तब सत् प्रधान रहेगा तथा पर्याय गौण रहेगी और जिस समय ध्यान नहीं देकर पर्यायका ही वर्णन करेंगे उस समय पर्याय ही पर्याय नजर आवेगी। इस समय सत्का उत्पाद हुआ या असत्का ? पर्यायको देखनेपर असत्का उत्पाद हुआ तथा

जब जो था वही उत्पन्न हुआ, यह सत् ही रहा। जब अंगद अर्थात् (सुवर्ण आदिके आभूषण) आदि ही पर्यायें होवें, उस समय पर्यायें बोलनेपर सुवर्णको नहीं जाना, किन्तु सुवर्ण तथा उसके बने आभूषण व्यतिरेक विकास हैं। जितने आभूषण बने वह पूर्व-पूर्वकी पर्यायोंको मेट कर बनते गये।

वस्तु प्रति क्षण एक पर्यायमात्र है—अगर हम वस्तुवर्णको देखने लगें तो पर्यायका व्यतिरेक विकास ही नजर आवेगा। वह क्रमसे प्रवृत्त हुई। अगर यह न हो सके तो सोनेकी डली लानेपर उससे शरीरमात्रको स्पर्श करनेसे दस्तबन्द, बाजूबन्द, लल्लरी, तिदानी, गोप, ठुसी, गुञ्ज, करदोनी (तांगड़ी-कमरसूत्र) आदि बन जाना चाहिए तथा सुवर्णकार (सुनार) को भी काम नहीं करना पड़ेगा जिससे उसकी रोजी मारी जायगी। अंगदादि पर्यायोंका निष्पादन करने वाली पर्यायें ही हैं। सुवर्णके विकासने दस्तबन्द, कर्णफूल, शीशफूल, छन्नियां, चूरा आदिको ही उत्पन्न किया। इस सुवर्णके विकासने ऐसा बनाया, किन्तु दस्तबन्द, मुरकियां, भेला, उघरकना, बालियां, बिजली, काँटा आदिने क्या बनाया? जो परिचायक है वह उत्पादक है तथा परिचयमें आने वाला उत्पाद्य है। तो इस सुवर्णके विकासने पर्यायको बनाया। जैसे अपनी अंगुलीको गोल-मटोल, टेढ़ी आदि करो तो वह सब अंगुलीकी दशायें होंगी, वह अंगुलीसे भिन्न नहीं होंगी। भिन्न-भिन्न पर्यायोंके विकास द्वारा गौण हो गया है सुवर्ण, इस तरहका वह पर्यायोंमें भी वही मूल शुद्ध रूपको झलकाता हुआ प्रकट कर रहा है। उसमें किसी तरहकी विवर्णता नहीं आ सकती है।

पर्यायबुद्धिके परिणामन विचित्र होते हैं—इस सम्बंधमें वर्तमान अवस्था अत्यधिक शोचनीय हो रही है। एक तरफ गरीब जनता गरीबीसे तड़फ रही है। यहाँ तक कि भूखकी वेदना न सही जानेपर, बच्चोंके दुःखसे विह्वल होकर पति-पत्नी तथा चार बच्चोंको पति रोटियोंमें शंखिया (जहर) मिला स्वयं खा जाता तथा बच्चे स्त्री भी खाकर सदैवको मृत्युकी गोदमें सो जाते हैं। इसके विपरीत धनवान मनमाना मुनाफा उठाकर, घूसखोरी करके मनमाना मुनाफा उठा रहे हैं। सहारनपुरके बारेमें ही सुना था कि किसी प्रमुखने यह सूचना दी अगस्त १९५८ में कि ४-५ दिनमें गल्ला महंगा होगा। तब उनके परिचित व्यापारीने ५००० बोरी गेहूँका स्टॉक कर लिया। इस तरहके और भी अनेक उदाहरण खोजनेपर मिल जावेंगे। धनवान या पैसे वाले कहे जाने वाले मन माफिक जेवरात बनवाकर पहिनते हैं तथा वह कपड़े जिनमेसे शरीरकी आभा दिख जाय, उन्हें पहिना जाता है। वह कपड़े भी इसीलिए पहिने जाते हैं कि दूसरे प्रशंसा करें। लेकिन पितनोंके द्वारा वह प्रशंसा नहीं मिलती होगी, जब कि उससे ज्यादा अनेकोंके द्वारा निन्दा होती होगी तथा दीन गरीब भूखोंकी आहें निकलकर अश्रुपात उगलती होगी। क्या उनके मनमें इतनी निर्दयता सवार हो चुकी? उनके पालन-

पोषणके वातावरणसे लेकर आज तक वह इस योग्य बन गये कि दुःख जानना उनकी सामर्थ्य के बाहर हो गया। आजकी महंगाईमें गेहूं ८०) ६०, ६०) ६० मन और चावल ८०) ६०, ६०) ६० मन बिक रहा है। इस समय गरीब मानव या साधारण परिस्थितिका व्यक्ति परिवारके भरण-पोषणमें भी कुटाई करता है। धनवानोंका प्रभु उनकी आत्मासे ओझल हो गया। उन्हें कैसे कह दें, वह आत्मदेव प्रभुकी खबर लेते होंगे। उन्हें तो सुननेमें ही मजा लेना है तथा सुनाने वालेकी सूरत देखनेमें ही सब कुछ समझ लिया है तथा जिस सोने आदि के जेवरात बनवाये और उसकी दुर्दशा न करके शोभा प्राप्त करना चाहो, किन्तु हो रहा है इसके विपरीत। वह सोना, चाँदी आदिका जेवर आज बननेपर कुछ दिनमें ही एक रुपयेके बारह आने या दस आने मूल्य कठिनाईसे पा सकता है। यह तो ठीक है कि अगर यह भी न किया जावे तो मजदूरीकी मंजूरी ही नहीं मिल सकेगी। अगर आभूषणोंको दिखानेका भाव नहीं होता तब उन्हें इतने चटकीले-भड़कीले बनवाकर सादा कड़ा मात्र ही क्यों नहीं पहन लिया जाता? आजका त्यागी वर्ग भी कुछ मनचला बन गया। जो कि मलमलके धोती दुपट्टे आदि बहुमूल्य कपड़ोंके द्वारा समाजमें अपना आदर्श उपस्थित करते हैं। यह बात सभीमें न होकर थोड़ोंमें होनेपर भी सबके लिए दोषकारी बन जाती है। ऐसी अवस्थामें वह दूसरोंको धन वैभवसे मुख मोड़नेका उपदेश दें तो उसे कौन अंगीकार कर लेगा?

विकल्पोंके आवरणसे स्वभावका घात कर लिया—एक समयकी बात है कि मुझे घर वालोंने बन्धनरूप गुंज सांकर व अन्य चीजें पहननेको कहा। हमने काफी मना किया, लेकिन वह नहीं माने, क्योंकि उन्हें तो शोभा रखनी थी। यह भावना घर कर बैठी थी। तब हमने कहा कि अगर ऐसी ही बात है तब इस गुंजको हाथमें लेकर चलते हैं जिससे सभी देखते चलेंगे। तब उन्हें भी मालूम हो जायगा कि अमुकके घरमें गुंज सांकर आदि हैं। यह विकल्प-बंधन स्वतंत्र विचरने वाले चेतनको कैसे सह्य हो जाता है? चेतनकी शक्तिपर जो आवरण डाल रखा है वह व्यक्त हो जाय तब मोक्ष पाना दुर्लभ नहीं रह सकता।

जिसने पर्यायपर ही ध्यान दिया तब सुवर्ण (हेम) गौण हो गया। सुवर्णके समान जिन्दा रहने वाली शक्तियाँ और गुण हैं। उन्हें गौण करनेसे मूल द्रव्यको किस तरह कहा जायगा? पर्यायदृष्टिको गौण कर दिया तब द्रव्यदृष्टिपर प्रधानता रहेगी एवं जब द्रव्यदृष्टिको गौण कर दिया जावेगा तब पर्यायकी मुख्यता रहेगी, यह दोनों अपनी-अपनी विशेषतायें बता रहे हैं। पर्यायदृष्टिमें रहनेपर असत्का उत्पाद स्वीकार करना पड़ेगा। इस अपेक्षासे जो न था वही बन रहा, यह वर्णन असत्का हुआ और जो था वह बना, यह वर्णन सत्का हुआ। जैसे सुवर्ण।

इसी तरह आत्मापर भी घटाया जा सकता है। जैसे कोई आत्मा देवगतिमें था।

वह वहाँसे चयकर मनुष्यगतिमें आ गया। यह चेतनकी ही दशा है लेकिन पर्यायकी अपेक्षा देवसे मनुष्यपर्याय प्राप्त की तब मनुष्यपर्याय कहना पड़ेगी। यहाँ एक पर्यायका व्यय हुआ तथा मनुष्यका उत्पाद हुआ। तब असद्का उत्पाद हुआ कहलाया। किन्तु जब हम पर्यायको दृष्टिमें न रखें और द्रव्यको (आत्माको) लक्ष्यमें लेवें तो वही आत्मद्रव्य है जिससे सद्का उत्पाद हुआ कहलाया। इस तरह सत्का उत्पाद तथा असद्का उत्पाद दोनों बातें सिद्ध होती हैं।

द्रव्यमें पर्यायें उन्मग्न निमग्न हो जाया करती हैं—पर्यायकी विवक्षामें असद्की उत्पत्ति मानी गई। जिसे दूसरे शब्दोंमें पर्यायकी अभिधेयतामें असदुत्पाद कह सकते हैं। यह भी द्रव्यका व्यतिरेक विकास है। जिन्होंने पर्यायोंका निष्पादन किया तथा दूसरी ओर द्रव्य भी साथमें अपने सच्चे सही रूपको लिए हुए है। 'निष्पन्न उत्पन्न', इनमें थोड़ा अन्तर हो जाता है। निष्पन्नमें कुछ उत्पाद होने पर भी जो दृष्टि शिथिल रहती है तथा एक सिद्धि करनेकी दृष्टि बनी रहती है। किन्तु कुछ भी नहीं है, उसे खड़ा कर देना उत्पाद है। उन व्यतिरेक विकासोंमें जो पर्यायोंका निष्पादन किया था वह गुणोंसे जुड़े हैं, वे प्रदेशसे जुड़े होकर नहीं रहते हैं। भेदविवक्षामें पर्यायें योग्य प्रवृत्तिको प्राप्त करके रहते हैं। दृष्टान्तमें एक समय की अनेक पर्यायोंको लेना चाहिए। वह सब एक साथ ही है। एक गुणकी अनेक पर्यायें एक साथ नहीं होती हैं। वह पर्यायें जितनी हैं उनका उत्पत्ति आधार भी सोचें, वे पर्यायें गुणके विकास हैं। यह सोचनेपर गुणपर दृष्टि गई वह अन्वय शक्तियोंको छोड़ती नहीं है। इस कारणसे उन विकासोंने पर्यायोंको द्रव्य रूप कर दिया अर्थात् वह उनसे भिन्न नहीं है, किन्तु द्रव्य-रूप ही है। सुवर्णके आभूषण बनें। वह विकासको प्राप्त हुआ है। वह क्या सुवर्णसे पृथक् है अथवा सुवर्णरूप ही है? दस्तबन्दको, छन्नको सुवर्णरूप ही तो किया है। वह सुवर्ण अलग नहीं बैठा है।

इस गाथाके विवरणमें यह कहा गया है कि जब द्रव्य ही विवक्षित होता है, पर्यायें विक्षित नहीं हैं तब उत्पाद व्ययरहित, एक साथ प्रवृत्त होने वाली, द्रव्यकी निष्पादिका अन्वयशक्तियोंके द्वारा उत्पादव्ययलाञ्छित, क्रमप्रवृत्त पर्यायकी निष्पादिका उन उन व्यतिरेक व्यक्तियोंका संक्रमण कराते हुए द्रव्यका सद्भाव निबद्ध ही प्रादुर्भाव (उत्पाद) जानना। जैसे कि जब हेम ही विवक्षित है, अङ्गदादि पर्यायें नहीं तब हेमके समान (जबसे सुवर्ण है तभीसे व जब तक सुवर्ण है तब तक) जीवित रहने वाली, एक साथ प्रवृत्त, हेम (सुवर्ण) की निष्पादिका अन्वयशक्तियोंके द्वारा अङ्गदादि पर्याय समान (जब तक जो पर्याय है तभी तक) जीवित रहने वाली, क्रमप्रवृत्ति, अङ्गदादि (बाजूबंद आदि) पर्यायोंकी निष्पादिका उन उन व्यतिरेक व्यक्तियोंका संक्रमण कराते हुए सुवर्णका सद्भाव निबद्ध ही प्रादुर्भाव है।

इसी प्रकार पर्यायप्रधान आशयका विलास देखो—जब पर्याय ही विवक्षित होती है, द्रव्य विवक्षित नहीं तब उत्पाद व्ययचिह्नित, क्रमप्रवृत्त, पर्यायकी निष्पादिका उन उन व्यतिरेक व्यक्तियोंके द्वारा उत्पाद व्यय वर्जित, एक साथ प्रवृत्त द्रव्यकी निष्पादिका अन्वय शक्तियों का संक्रमण कराते हुए द्रव्यके असद्भावनिबद्ध ही प्रादुर्भाव है। जैसे कि जब अंगदादि पर्याय ही विवक्षित हैं, हेम नहीं, तब अंगदादि पर्यायोंके समान (पर्यायके काल बराबर) जीवित, क्रमप्रवृत्त, अंगदादि पर्यायोंकी निष्पादिका, उन-उन व्यतिरेक व्यक्तियोंके द्वारा हेम समान जीवित एक साथ प्रवृत्त, हेमकी निष्पादिका अन्वयशक्तियोंको संक्रान्त करते हुए सुवर्णका असद्भाव निबद्ध ही प्रादुर्भाव जानना।

तात्पर्य यह है कि जब यह सोचा कि वही वस्तु तो निष्पन्न हुई जो थी, इस दृष्टिमें सत्का उत्पाद समझा गया व जब यह सोचा कि नई बात हुई जो पहिले न थी, इस दृष्टिमें असत्का उत्पाद समझा गया।

अहङ्कारकी बू से दूर रहना ही ठीक है—शास्त्रोंमें कर्तृवाच्य तथा कर्मवाच्यमें से कर्मवाच्यको ही प्रधानता दी जाती है। उसी तरह लोकमें भी कर्तृवाच्य और कर्मवाच्यका प्रयोग होता है। जब कहा जाता है, मैं समझता हूँ 'तब कर्तृवाच्य हुआ और जब कहें' 'मेरे द्वारा समझाया जा रहा है, यह कर्मवाच्य हुआ। इन दोनोंमें विशेष अन्तर है। कर्तृवाच्यमें 'मैं' पनेका अहंकार भरा हुआ है। कर्मवाच्यमें कर्मभूत वस्तु अपना कार्य कर रहा है, वहाँ कर्ता निमित्त है जो कि अहंकारकी बू से काफी दूर है। 'मैं पुस्तक लिख रहा हूँ' और 'मेरे द्वारा पुस्तक लिखी जा रही है' यहाँ पहले वाक्यका प्रयोग अहंकारकी चूरतासे प्रकट किया जा रहा है और दूसरा वाक्य 'अन्तरंगकी प्रेरणासे प्रेरित होकर रहा है' ध्वनित हुआ, उसमें वह अपना निमित्तमात्र बता रहा है अर्थात् मैं तो कुछ नहीं लिखता हूँ। किन्तु जो पूर्वके प्रचलित शब्द हैं उन्हींका संग्रह कर सेवारूपमें आप सबके समक्ष उपस्थित हो रहा हूँ। अगर आपको हितप्रद सामग्री ही ग्रहण कर लेना तथा अन्यपर ध्यान नहीं होना, यह भाववाच्य नम्रताको द्योतित करता हुआ सरलता ज्ञापित कर रहा है। कर्तृवाच्यमें सम्बंधको ढीला करने की गुंजाइश कम है जब कि कर्मवाच्यमें सम्बंध, संयोगमें रंगनेका पूर्णतया भाव जाहिर नहीं होता है। इसी तरह सभीके बोलचालमें इसी प्रकारकी भाषाका प्रयोग होता है। इसमें भी कर्मवाच्यके प्रयोग अधिक होने से ज्ञानरूप शब्द निकलते हैं, किन्तु जहाँ अपने को मुख्यतासे कहनेका आशय होता है वहाँ कर्तृवाच्यका प्रयोग होता है। जैसे 'मैं अमुक काम करता हूँ' यहाँ तत्त्व नहीं ग्रहण किया जा रहा है। जिन्हें तत्त्वज्ञान होता है उनका कर्तृवाच्य शिथिल हो जाता है। कर्मवाच्यको जो भी बात कहनी होगी वह इस ढंगसे कही जावेगी जो दूसरेको अखरे नहीं। अगर वह कहेगा कि 'यह पुस्तक मैंने लिखी है' तो उसका

यही भाव रहेगा, इस पुस्तकको सब कोई समझे कि इसने लिखी है। ज्ञानीको बोलना पड़े तो इसे वह कर्मवाच्यमें बोलता हुआ नभ्रताको भलकाता है। यहाँ बनावटपनका काम नहीं रहता है। घुमा-फिराकर बोलने वालेकी तथा छलसे फंसाने वालेकी कलाई तभी तक छिपती है, जब तक वह ज्ञानियोंकी दृष्टिमें नहीं आती। व्यवहारमें ऐसा कह देते हैं कि यह पुस्तक किसने लिखी है? तब शान्तप्रकृति वाला कहता है—‘लिखी गई है।’ यह कर्मवाच्यका प्रयोग कर्णमें मधुर लगने वाला है और कर्तृवाच्यमें कहे—‘मैंने लिखी है।’ इसपर ध्यान देनेसे उसकी अहंकारता प्रकट होता है। साथ ही जिन्हें इस बातका ज्ञान नहीं है वह १० जगह अपना नाम छपवायेंगे, लोगोंमें प्रचार करेंगे। ख्याति पानेके लिए जगह-जगह इस सम्बंधी बातको प्रकट करेंगे तथा कहेंगे ‘यह पुस्तक मैंने लिखी है, इसे पढ़ना चाहिए।’ यह चर्चा उस व्यक्तिके लिए दिल खुश करने वाली मालूम पड़ती है, किन्तु परिणाम भयंकर है। इन सबको छोड़कर बोलने का अवसर आवे तो कर्मवाच्यका प्रयोग उत्तम है। कर्मवाच्यसे बढ़िया प्रयोग भाववाच्यका है। इसमें अहंकारका तो पूर्णतया अभाव है और भाववाच्यकी भाषा मधुर एवं कोमलतासे सहित होती है। भू और अस् धातुओंका प्रयोग अधिक जगह होता है। अस्से एक वचनमें अस्ति बना, जिसका अर्थ—है। ‘भुवि तथा भू सत्तायाम से भवति’ अर्थात् होता है। जिसका अर्थ है—‘है’। इन दो धातुओंको लेकर वर्षों बोलो, बड़ेसे बड़ा ग्रंथ लिख डालो, तब भी वाक्यों के प्रयोगमें कोई कमी महसूस नहीं होगी। इच्छानुकूल अच्छेसे अच्छे संस्कृत या अन्य भाषाके ग्रंथका अनुवाद कर डालो, कुछ भी बोलते जाइये, इस ‘है’ और ‘होने’ में काम चल जावेगा। यहाँ इस तरह कह सकते हैं कि कुछ बोलिए या आपका भी कुछ इस विषयपर बोलना हो जाय। मैं तरसों (परसों) वहाँ जाऊँगा या मैं वहाँ गया, मेरा वहाँ जाना हुआ था या जाना होगा। यहाँ है और हो रहा है में कोई भी विषय बोल लो, कहीं परेशानी नहीं आनेकी और जब कहा जाता है कि मैं लिख रहा हूँ, पढ़ रहा हूँ आदि बोलनेपर कड़ाईका प्रयोग लिए मालूम पड़ते हैं। कर्मवाच्यसे शान्तिकी गुंजाइश हो भी सकती है या संभावना की जा सकती है। यहाँ कर्मवाच्यका प्रयोग किया है कि जब द्रव्य ही कहा जा रहा है अथवा पर्याय ही कही जा रही हैं।

पदार्थोंमें पर्यायें होती हैं उसका अहंकार क्या—पदार्थ है और वह परिणामता रहता है। जो परिणामन होता है वह पहिले न था, किन्तु जो पदार्थ पहिले किसी रूप परिणत था वही तो अब इस रूप परिणाम रहा है। वहाँ असद्भावकी उत्पत्ति है, जब कि पर्यायदृष्टि बनाई गई तब उसीका वर्णन किया जायगा। उस समय द्रव्य नहीं कहा जा रहा है। पर्यायकी दृष्टि मुख्य बनाकर कहा जावे और पर्याय समझमें आवे, वहाँ जितने भी व्यतिरेक विकास हैं उनमें क्या अन्वय शक्तियोंका आश्रय छोड़ा? नहीं। जो पर्यायोंकी निष्पादिकाएँ हैं उनमें अन्वय

शक्तियोंका सम्बंध पाया जाता है ।

आगे इसीको स्पष्ट करते हैं । दार्ष्टान्त पहले वह आये और दृष्टान्त बादमें कहा जा रहा है । वह जो सुवर्णका विकास उन विकासोंके द्वारा सुवर्णकी शक्तियाँ थीं उन्हींको प्राप्त किया है । क्या अंगद पर्याय पीतत्वगुण सुवर्णको प्राप्त नहीं करती है ? अंगद (आभूषण) पर्याय सुवर्ण तथा पीतत्वको छोड़कर नहीं पाई जाती हैं । तो लो, उन विकासोंने अंगद आदि पर्यायोंकी द्रव्य रूप कर दिया । पर्याय गुणको प्राप्त हैं, गुण द्रव्यको प्राप्त है, द्रव्य गुणको प्राप्त है । उन्हीं पर्यायोंको सुवर्णरूप कर दिया । अगर उन पर्यायोंमें सुवर्ण नहीं रहता तो उन्हें कौन बनवाता ? सुवर्णका विकास दस्तबन्द टकआउर, हार (जंजीर) मुद्रिका आदि आभूषण रूप न करें उसके लिए कौन ललचावेगा ? अतएव द्रव्यदृष्टिसे सुवर्ण सद्का उत्पादक है तथा पर्यायदृष्टिसे वहाँ असद्का उत्पाद है तथा पर्यायों भी सद् रूप हो रही हैं और असद्का विकास द्रव्यरूप ही रूप हो रहा है । विकासोंने पर्यायोंको द्रव्यरूप कर दिया । जब द्रव्यकी विवक्षा की जाती है तब सत्की उत्पत्ति होती है । द्रव्यको निष्पादन करने वाले उन गुणोंने क्रमप्रवृत्ति प्राप्त की, वे व्यतिरेक व्यक्तियोंको प्राप्त क्या गुण नहीं हैं ? तब अन्वय शक्तियोंने द्रव्यको पर्यायरूप कर दिया । यहाँ पर कोई भी कर्ता निर्माता नहीं है, सब ही अपनी-अपनी सामर्थ्यसे परिपूर्ण हैं । सब ही कार्य स्वतः बम रहा है । सत् ही इस वजहसे हो रहा है ।

सबका अस्तित्व अपना-अपना काम करता है, चिन्ता विकल्प व्यर्थ है—अगर कोई पिता पुत्रका ध्यान न रखे, तब क्या उसमें कोई कमियाँ रह जावेंगी ? लड़केके पुण्यसे पिता अपने आप उसकी सेवा खुशामदमें लगा रहता है । उसके स्वास्थ्यकी चिन्ता रखता है । पिता सारी आपत्तियोंको सिर पर न भी उठाये फिरे, तब भी लड़केमें कोई कमी नहीं आनेकी । उसे तो निमित्त सम्बन्ध उसी रूप मिला है जिस रूप उसका भवितव्य होना है । उसे कुपूत जानकर भी छोड़ देने पर कभी-कभी उसका भाग्य पिता तथा घरके कुटुम्बियों से भी अच्छा चमक जाता है । उसके अन्तरङ्ग व बहिरङ्ग काम कोई भी बाकी नहीं पड़े रहते हैं । जंगलके वृक्ष बिना पानी दिये भी लहलहाते रहते हैं । जब कि बगीचाके वृक्ष थोड़ेसे भी पानीकी कमी से मुरझा जाते हैं । दोनोंने अपनी-अपनी सामर्थ्य व पुण्यके अनुसार उपयुक्त स्थान पाया है । इतने पर कोई सोचे मैंने इसे ऐसा कर दिया या अमुक गरीब घरानेकी लड़कीको भी ब्याह कर उसको ऊँचा उठा दिया, मनुष्य बना लिया, दशा सुधार दी आदि । यहाँ उसका पुण्य ऐसा ही था, तब वह स्वयं वैसे स्थानको पा सकी । पाप उदय हो तो रईस घरानेकी लड़की भी दुखोंमें फँस जाती है । तब वहाँ उसका पाप ही मानना होगा, तथा जिसे ऊँचा उठा दिया उस कारणसे स्वयंकी ही उन्नति, तरक्की की । दूसरेका कुछ किया हो यह असत्य एवं

असंभव है। मेरे भले बुरे सोचनेसे न कोई बन सकता है और न बिगड़ ही सकता है तथा चेतनका जड़से कोई सम्बन्ध भी नहीं है। यहाँ कर्तृत्व बुद्धि तथा संयोग बुद्धि बनानेसे कोई कार्य भी सिद्ध नहीं होता है। जो भी धन वगैरा मिला है या कुटुम्बी जन मिले हैं वह भी मेरे बड़प्पनकी बात नहीं है। भारतमें ही अनेकों विभिन्नतायें नजर आती हैं। एक ओर दीन दरिद्रीका समूह है तो दूसरी ओर धनी मानी हैं। लेकिन क्या वह धनमें सबसे बड़ा माना जाता है? लेकिन वह भी उस धनके दुःखसे ऊब चुका है। उसे शान्तिका मार्ग दिखाने वाला कोई नहीं है। वह कितनी ही आत्माकी आवाज सुनें, किन्तु वह सब बिना सच्चे ज्ञानके सांसारिक कार्योंमें फंसाने वाली ही है। एक मोटरकम्पनीका मालिक अपने नौकरोंके जीवन को देखकर ईर्ष्या करता था। लेकिन यहाँ उस धनको पानेके लिए सदैव लालायित रहता है जो दिन रात हवाई जहाज, रेल, मोटर आदिमें दौड़ा दौड़ा फिरता है, वह क्या शान्तिका अनुभव करेगा?

यथार्थ ज्ञान होनेपर अज्ञान या भ्रमका क्लेश दूर हो जाता है—वस्तुका सही ज्ञान होनेपर अनेक चिन्तायें दूर भाग जाती हैं। किसी बालकसे कोई गणितका सवाल पूछा जाय, जब तक वह उत्तर नहीं दे लेता तब तक अशान्ति उद्भिन्नता महसूस करता है तथा उत्तर दिमागमें आया और चटसे उसे प्रकट करके सन्तोषकी सांस लेता है।

जो जल्दी-जल्दी बोलनेसे रूपक बन जावे वह पक्की सन्धि कहलाती है और अलग-अलग शब्द बोलनेसे कच्ची सन्धि कहलाती है। जैसे कच्ची सन्धिमें जिन + इन्द्रः, राम + ईश्वरः, इन्हींको जल्दी-जल्दी बोलनेपर पक्की सन्धि इस तरह होगी—रामेश्वरः, जिनेन्द्रः। बालकको आठ अठे पूछा गया था तब उसने आठ अठैया ६४ उत्तर दिया। यहाँ आठ गुणित आठ हैं। उत्तर देनेपर बालककी समस्या सुलभ जाती है। वह प्रसन्नतासे भर जाता है। यह अनुभवसे समझमें आता है। जब बात दिलमें समा गई, पूर्ण समझ चुके तब विलक्षण जाति का आनन्द उत्पन्न होता है, किन्तु राग लगा रहनेपर बाधा आती है। आनन्द ज्ञानका होता है। कोई चाहें ज्ञानसे उपेक्षित होकर आनन्द पा लेवे, यह असंभव है।

महत्त्वकी बात विशेष होती है या सामान्य—तब सामान्य ही महत्त्वप्रद होता है। व्यापक विशेष होता है या सामान्य। समता विशेषसे होती है या सामान्यसे। सभी जगह सामान्यको मुख्यता दी जाती है। यहाँ इतने सज्जन भाई बैठे हैं, इनमें किसीको सेठ, राय-बहादुर, मंत्री जी, मजिस्ट्रेट आदिकी विशेषता दी जावे तो सोचने वालेके मनमें क्षोभ उत्पन्न होगा और मनुष्य सामान्य माननेपर क्षोभ नहीं होता है। समान दृष्टियोंमें समता रहती है, विशेषको महत्त्व देनेपर क्षोभ होता है।

मायाचारीपर क्षोभ इसलिए करते हैं कि वह विशेष तौरसे दूसरोंके प्रति मायाजाल

फैलाता है। वह प्रकट हुए बिना रहता नहीं। यदि उसे साक्षात् भले प्रकट न करे, किन्तु दिल ही दिल उसके अंदर क्षोभके अंगारे दहकते रहते हैं। लेकिन वही जब सबके प्रति समान दृष्टि रखकर अपने जैसा समझकर सरल स्वभावसे आचरण करता है तब उसके प्रति श्रद्धासे माथा झुक जाता है। यह सब सामान्यकी विशेषतायें हैं। रागद्वेषका नाम ही विशिष्ट परिणाम और विशुद्ध ज्ञानका नाम अविशिष्ट (सामान्य) परिणाम है। अनन्त ज्ञानका आनंदके साथ अविनाभाव है, निरपेक्ष वृत्तिमानके साथ है। विशेषकी अपेक्षा सामान्य महत्त्वप्रद है। वह सामान्य विशेष परिज्ञान बिना नहीं समझा जा सकता। पहले ज्ञानको धीरे-धीरे प्राप्त किया जाता है। बादमें उसका भी आलम्बन मुख्य नहीं रह जाता। शुरूमें सागारधर्माभृत, रत्नकर-ण्डलश्रावकाचार, मोक्षप्रकाशक, जीवकाण्ड, कर्मकाण्ड (गोमट्टसार) षट्खण्डागम, पंचलब्धि, लब्धिसार, पंचाध्यायी, सर्वार्थसिद्धि, समयसार, प्रवचनसार, योगसार आदि अनेकों ग्रन्थ पढ़ गये और कहते कि बादमें सबको भूल जाओ। इससे अच्छा शुरूसे ही क्यों परिश्रम करते? शुरूसे ही न पढ़नेसे कल्याणका मार्ग नहीं मिलता, अब उन विकल्पोंके छोड़नेमें भी कल्याण है। विशेषके द्वारा सामान्यका समझना लाभदायक है।

यहाँ यह बताया है कि द्रव्यदृष्टिके सत्का उत्पाद है, पर्यायदृष्टिसे असत्का उत्पाद है सो यह बिल्कुल भिन्न-भिन्न बात नहीं समझना। पर्यायकी विवक्षामें भी असत्की उत्पत्तिमें पर्यायनिष्पादिका वे-वे व्यतिरेक व्यक्तियाँ (प्रतिसमयके विकास) एक साथ प्रवृत्तिको प्राप्त कर अन्वयशक्तिपनेको प्राप्त होती हुई पर्यायोंको द्रव्यरूप करती हैं। जैसे कि अंगदादि पर्यायोंकी निष्पादिका वे-वे व्यतिरेकव्यक्तियाँ योगपद्ध प्रवृत्तिको प्राप्त कर अन्वय शक्तियोंको प्राप्त होती हुई अंगदादि पर्यायोंको भी हेमरूप करती हैं।

द्रव्यकी विवक्षामें भी सत्की उत्पत्तिमें द्रव्यनिष्पादिका अन्वय शक्तियाँ क्रमप्रवृत्तिको प्राप्त कर उन-उन व्यतिरेक व्यक्तिपनेको प्राप्त होती हुई द्रव्यको पर्यायरूप करती हैं। जैसे कि हेम निष्पादिका अन्वयशक्तियोंके द्वारा, जो कि क्रम-प्रवृत्तिको प्राप्त करके उन-उन व्यतिरेक व्यक्तियोंने प्राप्त हुई, हेम अंगदादि पर्यायमात्र ही किया जाता है।

पर्याय द्रव्यका विकास है, द्रव्य उस-उस पर्यायमय है। यहाँ बिल्कुल भिन्नताकी बात नहीं है। इसलिये एक अर्थमें ही ये दो बातें देखना द्रव्यार्थिक आदेशसे तो सदुत्पाद है और पर्यायार्थिक आदेशसे असदुत्पाद है। यही निर्दोष निर्देशन है।

चेतना सामान्यविशेषात्मक है इस कारण दो आशय हो जाते हैं—जब द्रव्यका वर्णन मुख्यतासे किया जाता है तब द्रव्यार्थिक नय कहा जाता है और वह सत्का उत्पादक है और जहाँ पर्यायार्थिक नयसे वर्णन करेंगे वहाँ असत्का उत्पाद कहना पड़ेगा। द्रव्यकी जो शक्तियाँ हैं, द्रव्यका जिन्होंने निष्पादन किया है वह ध्रुव रहती हैं या उनका क्रम भी चलता है। गुण

को परिणतियां चलती हैं। जब वे गुण क्रमप्रवृत्तिको प्राप्त हुए तब व्यतिरेक विकास होता है। वहां उन अन्वयशक्तियोंने द्रव्यको पर्याय रूप कर दिया। सुवर्णमें जो पर्याय विकास है वह क्षेत्र-विकास हुआ और आभूषण मिट-मिटकर दूसरे-दूसरे बनाये जाते हैं। यह पर्यायोंमें परिवर्तन होकर असत्का उत्पाद होता रहता है। उस सुवर्णमें जो पीतत्वादि गुण है वह क्रमप्रवृत्तिको प्राप्त है। वह गुण इस तरहसे चलते हैं तब उन अन्वयशक्तियोंने पर्याय रूप कर दिया। (सुवर्णका डला भी पर्याय है) और अन्वयशक्तियां किसी न किसी रूपमें रहीं। वह पर्याय और द्रव्यकी अन्वयशक्तियां (सम्बंधित) हमेशा परिवर्तित होती रहती हैं। असत्का उत्पाद होनेपर भी सत्को पृथक् नहीं किया। इसलिए सिद्ध है कि द्रव्यार्थिक नयसे सत् होने पर भी पर्यायार्थिक नयसे असत्का उत्पाद होता है। यह अन्वय स्पष्ट किया गया। यह सुवर्ण में घटाया गया।

चेतन द्रव्यमें एक आत्मा है। वह देवपर्यायसे मनुष्यपर्यायमें आया, यह दृष्टान्त कहलाया। जब द्रव्यमें सत् असत् दोनोंका उत्पाद चल रहा है तब दृष्टान्त कहलाया। आत्मामें द्रव्यदृष्टिसे सत्का उत्पाद कहलाता है और पर्यायसे असत्का उत्पाद होता है। जैसे रामचन्द्र जी गृहस्थावस्थामें जब थे तब वह गृहस्थका निर्वाह करते थे। कुटुम्बीजनोंका ख्याल रखते हुए राज्यव्यवस्था भी राजा होनेपर संभालते रहे। बादमें विषयोंसे ऊबकर धन वैभवको हेय समझकर शिवपथकी ओर प्रयाण करनेके लिए मुनिदीक्षा ले ली थी। तब महाव्रत अवस्थामें भव्य जीवोंको उपदेश देते हुए विचरण करते रहे। उनकी बाधायें भी कम नहीं थीं, किन्तु बाधाओंमें अपनेको भूल नहीं गये थे और न बाधाओंके प्रति खुदको ही सुपुर्द कर दिया था। वह जानते थे कि बाधायें अपने कृत-क्रमोंकी हैं उनसे विचलित क्यों होना? बाधायें तो उनकी परीक्षायें लेने आई थीं। बाधाओंपर विजय पाने वाला ही सन्मानका पात्र होता है। गौरव रूपी गन्ध उसीके माथेसे विकसित होती है जो कि आदर्श बनकर जन-जनके मनको प्रमुदित कर सच्चे मार्गके राहीका आह्वान देता है। मुनि अवस्थामें विचरण किया, उसके पश्चात् ध्यानकी अन्तिम दिव्यज्योति प्रकट हुई, जिसे केवलज्ञान कहा जाता है या अरहंत अवस्थामें रहे। यहाँ भी इतने विकासमें अरहंत अवस्था तक मनुष्य ही रहे।

इसके पूर्व जो गृहस्थावस्था चल रही थी वह न रही, अब केवली हो गये। इस पर्यायदृष्टिमें असत्का उत्पाद था, क्योंकि कितनी अवस्थाओंको वह पार नहीं कर आये होंगे, वह नई नहीं बन गई थी। जो आत्मा अज्ञानमें था वही ज्ञानका सम्बंध पाकर अपने विकास को करता है। सम्यक्त्वका उत्पाद हुआ, यह भी सत्का उत्पाद है। पर्यायदृष्टिसे असत्का उत्पाद कहा जाता है। इस तरह यह निर्दोष कथन सर्वग्राही है तथा अब सत्का उत्पाद जो है वह अनन्य है। यह अन्वय शक्तियों द्वारा निश्चय किया जाता है।

सब दृष्टियोंसे समझ लेनेपर सच्चा निर्णय होता है—निश्चय तब होता है जब सब ओरसे जानकर सर्व संग्रह कर लिया जाता है। अपने ज्ञानमें सब प्रकारका संग्रह हो जावे उसे निश्चय बोलते हैं। निश्चय और निर्णयमें अन्तर है। निश्चय जो पूरी तौरसे लक्ष्यका ज्ञान करा दे उसे कहते हैं। निर्णय उसे कहते हैं जो ज्ञानपदमें ले जावे तथा निःशङ्ककी ओर जिस का इशारा रहता है वह निर्णय है। इसके अतिरिक्त जो पूरी तौरसे किसी काममें दृढ़ कर देवे वह निश्चय है। इन दोनोंमें निर्णयको मुख्यता दी जाती है। निश्चय बिना निर्णयपर भी नहीं जा सकते हैं। बिना निर्णयोंके कोई भी कार्य पूर्ण नहीं हो सकता है। इसी तरह निक्षेप शब्द भी अपना बड़ा भारी महत्त्व रखता है। नि = निर्णयमें, क्षेप = फेंकना अर्थात् जो अपने दिमागको किसी निर्णयमें फेंक देवे। निर्णयमें फेंकनेका अर्थ मजबूत था दृढ़ विश्वास दिला देवे। इसके अतिरिक्त तुम कुछ भी नहीं कह सकते हो।

सत्का उत्पाद अभिन्नतासे संग्रह करते हैं। उसको यथा स्थान जमाते हैं। इसीको आचार्यप्रवर भगवान् कुन्दकुन्द कहते हैं।

जीवो भव भविस्सदि एरोऽमरो वा परो भवीय पुणो ।

किं दव्वत्तं पजहदि ए जहं अणो कं होदि ॥११२॥

जीवद्रव्य होता हुआ मनुष्य, देव अथवा अन्य रूप हो होकर फिर होगा। इसमें क्या जीव द्रव्यत्वको छोड़ देता है? नहीं छोड़ता है तो फिर अन्य कैसे हो जायगा?

जीव हमेशा परिणमता हुआ होता रहेगा। मनुष्य, देव, तिर्यच अथवा नारकी भी होता रहे किन्तु उसका क्या द्रव्यपना मिट जायगा? वह द्रव्यत्वपनेको नहीं छोड़ता हुआ अन्य कैसे हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता है। उसका द्रव्यत्वपना वहीका वही है। क्योंकि वह उसका स्वभाव है तथा वह वस्तु उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य करके रची गई है तथा उत्पाद-व्यय ध्रौव्य कर रच रही है। वह प्रति समय इस कार्यमें संलग्न है। कोई कहे काम बन नहीं पाया। तब क्या आगे रची जावेगी? वह सदैव रच रही है, ऐसा नहीं है कि आगे रची जावेगी। मकान बन चुका, तब भी उसमें रचना होनेका कार्य प्रति समय चल रहा है। जिसे कहते हैं 'भूत्वा भवन' होकर भी हो रही है। उसका होना बन्द नहीं है। वस्तु इस तरह चल रही है। वह इस रूप भी नहीं, अब बनकर इस समय तैयार हो गई, आगे नहीं बनेगी। जैसे चावलोंका भात बनानेके लिए अग्नि तैयार की और उसपर पानीसे भरी डेकची बटलोई या कांसिया चढ़ा दी, उसका पानी खौलने लगनेपर चावल डाल दिये जाते हैं। उनके पकनेमें अगर पूरा समय २० मिनट लगेंगे तथा १० मिनटमें अधपके हो जावेंगे तो वहाँ पच्यमान पक्व कहेंगे अर्थात् वह पच रहे, पक रहे हैं। यदि उसमें से पक्व हटा देते हैं तो कुछ भी नहीं रहेगा। हालांकि यहाँ चावल पूर्ण पके भी नहीं हैं तथा कच्चे भी नहीं हैं। यह अधपके

दोनोंका सम्मिलित शब्द है ।

एक समयका राग कैसा है—उस रागको रज्यमान रक्त कहेंगे । अनुभवमें जैसा आवे वह तो रक्त हुआ । एक समयका राग विकार अनुभव करा दे, ऐसा नहीं होता है । एक एक समयकी जो पर्याय है वह केवलज्ञानीके ज्ञानमें आती है । हमारा ज्ञान इतना उज्ज्वल नहीं बन पाता कि एक समयकी पर्यायको ज्ञेय बना लेवें । यह प्रत्यक्ष ज्ञेय अवस्थामें होता है । एक समयकी जो पर्याय है वह विकारका अनुभव नहीं कराती, किन्तु मात्र ज्ञेय हो सकती है । वैसे तो अगुरुलघुकी पूरी षट्गुण हानि वृद्धि १२ समयोंमें होती । लो, उन १२ समयोंकी भी बात नहीं जानते, एक समयकी हम क्या प्रत्यक्ष करें ? खैर ! पर्यायदृष्टिसे तो विकास अस-दुत्पाद है और द्रव्यदृष्टि मुख्य करें तो वह सदुत्पाद है । पर्यायके बहुत-बहुत भेद हुए तब भी क्या, उनमें द्रव्य ही तो देखेंगे । अनादिकालसे रहने वाले सत्को देखेंगे तो सभी अनन्य बन जायेंगे । पर्यायदृष्टिसे कहेंगे तब एकको स्वीकार करना होगा । जैसे लोग कहते हैं कि बड़े चलो । गिरते हो तो गिरकर भी उठो । द्रव्यमें भी यही बात देखी जाती है कि 'भूत्वा भवनम्, हो करके होना' याने एक पर्यायसे गिरना अन्य पर्यायसे उठना । इस तरह प्रत्येक द्रव्यो ! पर्यायरूपसे विलीन होकर अन्य पर्यायरूपमें उठे चलो । उन्नति वालेकी ऐसी दशायें होती हैं । द्रव्यका यह स्वभाव ही है । इस रूप हुआ काम अनादिसे चला आ रहा है तथा अन्त तक चला जायगा । छुटकारा नहीं मिलनेका, किन्तु अमुक पर्याय न हो तो शान्ति है एवं अमुक परिणामन न परिणामें तो शान्ति है, किन्तु पर्यायें न हों यह भी नहीं बन सकता है । वह पर्यायें हो होकर होवेंगी । क्या ऐसा होनेपर द्रव्यपना छोड़ दिया ? द्रव्यपना सदैव साथ रहता है । बहुत पर्यायें हुई जिसमें विकासोंने पर्यायोंको द्रव्य रूप कर दिया । लेकिन द्रव्य वही अनादिकालीन चल रहा है ।

द्रव्य जो है वह द्रव्यत्वभूत जो अन्वय शक्तियाँ हैं उनमें तन्मय है । द्रव्यमें जो-जो पाया जावे वह नित्य है । जैसे अन्यको छोड़ता हुआ जो सहजभाव है उसे आत्मा कहाँ छोड़ता है ? सर्वत्र वही चैतन्य है । उसकी महिमा ही निराली है । काफी घूमनेके बाद विकास नजर आने लगता है । ग्यारहवें गुणस्थानमें आनेके बाद भी निगोदको जा सकता है । यह जीव कहीं भी चला जावे अपने स्वभावघनको नहीं छोड़ता है । वह अपने विकासको करता रहता है । जितनी भी पर्यायें हैं वह सब द्रव्यका विकास है ।

द्रव्य कभी भी अपनी द्रव्यत्वभूत अन्वय शक्तिको नहीं छोड़ता । इस कारण द्रव्य सत् ही होता है और जो द्रव्यकी पर्यायभूत व्यतिरेकव्यक्तिका प्रादुर्भाव है उसमें भी तो द्रव्यत्व अन्वयशक्तिका प्रच्यवन (परिहार) नहीं होता है । इस कारण द्रव्य नहीं है, अनन्य है । इसलिये अनन्य होनेके कारण द्रव्यका सदुत्पाद ही निश्चित किया जाता है ।

देखो जीव तो द्रव्य है ना । है तो वह नारक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव, सिद्धत्वमें से किसी भी पर्यायरूपसे हो, किसी न किसी पर्यायरूपसे ही होगा । द्रव्य पर्यायिके बिना क्या है ? पर्यायोंसे ही द्रव्यकी द्रव्यता कायम है तो अब फिर देखो, जीव उस पर्यायरूपसे होकर क्या द्रव्यत्वभूत अन्वय शक्तिको छोड़ देता है ? नहीं छोड़ता है । यदि नहीं छोड़ता है तो वह अन्य कैसे हो जायगा ? सर्व पर्यायोंमें वही तो है । इस प्रकार अनन्य होनेसे सत्का ही उत्पाद है, ऐसा निश्चय किया जाता है ।

द्रव्य नया-नया पर्यायरूप होकर भी पुराण है—द्रव्य प्रतिसमय नया-नया विकास करता है, किन्तु वह अपने एकत्वपनेको नहीं छोड़ता है । पर्यायों अविच्छिन्न होकर नहीं रहती हैं । वह सदैव चलती रहती हैं । उसमें आत्मद्रव्य एक ही तत्त्व है, अन्य नहीं । इसलिए सत् का ही उत्पाद है, अन्यका नहीं । जो जाननेमें आ रहा है वही बन रहा है, दूसरा नहीं बन रहा है । उस द्रव्यमें जो विकासका प्रादुर्भाव है, भिन्न-भिन्न समयमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी अवस्थायें होती रहती हैं । उसमें व्यतिरेक उत्पाद वह पर्याय रूप है, उसका प्रादुर्भाव चालू रहता है । उसके होनेपर भी द्रव्यत्वभूत जो अन्वय शक्ति है उससे वह नहीं गिरता है । अन्वय शक्ति जो सब पर्यायोंमें एकसी रहे, वह दूसरी नहीं है । हम एक ही हैं और आगे भी रहेंगे । जैसी करतूत करेंगे वैसा आगे-आगे भोगेंगे तथा करतूतके अनुसार विकास करते जावेंगे । व्याकुलता अधिक रहनेपर दुःख भोगेंगे और निराकुलता आनेपर स्वयं सुखी हो जावेंगे । जीव पुद्गलको छोड़कर चला जाता है । जिस पुद्गलकी पुष्टईके लिए दिन-रात पाप किये जाते हैं उसे स्वयं उसकी आत्मा ही देख सकती है, दूसरा उसे कौन देख सकता है ? यह जीवन समय से लेकर चौथे समयमें नियमसे दूसरा शरीर पा लेता है और जीव सदैव अपना योग और उपयोग ही करता है । इसके सिवाय वह कुछ भी नहीं कर सकता है । बाह्य पदार्थ अपनी सत्ता रखते हैं । हम भी अपनी सत्ता रखते हैं । हमारी सत्तामें कौन खलल डाल सकता है और उन बाह्य पदार्थोंकी सत्तामें भी हम क्या कर सकते हैं ? सुखका रास्ता दूर नहीं है । वह तो पाने वालेकी कमी है । हम उपयोगसे इतनी दूर हटे हुए हैं कि सुखका रास्ता ही भूल चुके हैं । छोटी-छोटी चीजोंमें सुख मान रहे हैं । दूसरे पदार्थमें अपने कर्तृत्वपनकी बुद्धि को नहीं छोड़नेसे दुःखी हैं । दूसरे द्रव्यको कुछ भी करनेकी सामर्थ्य नहीं है । तब भी जबर-दस्ती पिछलग्ना बनकर चल रहे हैं । यह सूत्रपाद हो जाय, प्रत्येक पदार्थ अपनी-अपनी परिणति करता है तब काफी दुनियाकी भ्रष्टाई रफूचककर हो जावे । जीवमें अनेक तरहके विकार लगे हुए हैं । उनकी वजहसे सब स्वरूपकी याद ही भूल गया । इस विचित्र दशाको देखकर कोई ज्ञानी जीव तरस करता है, उद्धारकी सोचता है । वह अपने सुखोंको लात मारकर आगे सेवाके लिए बढ़ जाता है । वह अपना आत्मकल्याण पहले लक्ष्यमें रखता है, किन्तु साथ ही

दूसरोंकी सेवा होती जाती है। उसे भले भान नहीं है। जिस तरह दर्पण अपनेमें प्रतिबिम्ब झलकानेको किसीको बुलाता नहीं है, किन्तु जो भी उसके सामने आया वह स्वतः ही झलक जाता है।

अपनी गलती हो तो निमित्तका आरोप भी होता है—यह दूसरेके निमित्त पाकर रागभाव करता है और कभी द्वेषभाव करता है, कभी स्नेहसे सिक्त होता है, कभी क्रूरताका नंगा नाच दिखाता है। इस अमूर्त आत्माकी क्या-क्या दशायें सामने आती हैं ? क्या-क्या विलक्षण दशामें चल रही हैं ? कभी यह किसीके लिए जान अर्पण करनेको तैयार हो जाता है और कभी जान लेनेको तैयार हो जाता है। बाह्य पदार्थका विस्तार हो गया तब तो फिर कहना ही क्या ? जैसे कोई नदी सूलमें किसी झरनेसे सकुचाती हुई निकलती है तथा और नालों, नदियोंका साथ पाकर मस्तीसे सिर उठाकर भागती है और समुद्रके पास पहुंचते ही सारा मद चूर हो जाता है। बाह्य वस्तुओंका आश्रय पाया है वह इतना फैल गया है, इसमें तत्त्वज्ञानकी गन्ध भी नहीं आ पाती। तत्त्वज्ञान परिपूर्ण होनेपर सारे मद भी नदीसे समुद्र में पहुंचनेके समान भूल जाते हैं। स्वरूपास्तित्व होनेपर सभी पदार्थ समान भिन्न जंचने लगते हैं। परपदार्थोंसे कोई ज्ञानानंद नहीं मिल सकता है। ज्ञानानंदका स्रोत गुप्त रूपसे अपने आपमें मन्द रीतिसे भर जाता है। घरमें रहने वाली स्त्रीसे क्या मिलना है और जब घरकी स्त्री से कुछ नहीं मिलना है तब दुनियाकी स्त्रियोंसे भी क्या मिलेगा ? अपने पुत्रसे भी कुछ नहीं मिलनेका है। तब संसारके पुत्रोंसे भी कुछ नहीं मिलनेका है। तब औरोंके पुत्रोंसे भी क्या मिलेगा ? घरके या परके पुत्रोंको खूब खिलाओ, आखिर अपने ही समयपर खर्च करना होंगे। घरके धनसे क्या कभी शान्ति मिली ? यदि नहीं तो दूसरोंके धनसे, देशके धनसे, विदेश के धनसे भी कहाँ शान्ति मिलेगी ? जो भी सुख मिलेगा वह निजसे मिलेगा। केवल निमित्त-नैमित्तिक भाव चल रहा है। मोक्ष भी जो जाता है वह ठाट-बाटसे जाता है। ये तो अपवाद रूप दृष्टान्त है कि अमुक मुनि घानीमें पेले गये, सांकलोंसे बाँधे गये, समुद्रमें गिराये गये आदि, किन्तु वहाँ भी कितनी परिणामोंकी निर्मलता थी कि वहाँ कुछ पता भी नहीं है। चक्रवर्ती, तीर्थंकर जो भी हुए उनका वैभव सुनकर दांतों तले अंगुली दबानी पड़ती है। वर्तमानमें भी इस तरहके घर छोड़ने वाले मिल जावेंगे। जहाँ कि अदृष्ट शान्तिकी प्यास रहती है, वहाँ इस विनश्वर धनमें क्या रखा ? कहाँ शान्ति मिलनेकी है वहाँ ? आत्मा धर्मभावमें आया तो तब से सर्वदा लाभ ही लाभ है, कदाचित् धर्मभाव हो तब जो कषाय बीचमें रहे, उससे पुण्य ही बंधा करता है, किन्तु परम्परासे मुक्ति का कारण निज शुद्ध भाव होता है। धर्मभाव वालेको विपत्तियाँ महसूस नहीं होती हैं। वह तो अपने निज आत्मकल्याणके अलावा कहीं नहीं देखता है। सत् स्वरूपको जाने, यह जीवका सार है। बाह्य समागममें कोई सुख मिला हो, इसे कौन

कह सकता है ? वह तो संसारमें रूलानेका ही कारण था । वहाँ भटकानेके लिए आया था । जब चेतन तत्त्व समझमें आ गया, तब यहाँ वहाँ भटकनेकी आवश्यकता नहीं रह जाती है ।

कुछ भी काम हो वहाँ योग उपयोग ही बनाया जाता है—इस जगत्में कोई किसी की बूझ करने वाला नहीं है, फिर भी भ्रमसे मान रहा है मेरी बूझ है, मेरा आदर सत्कार है । वह भी न मिले तो वैसा प्रयत्न किया जाता है । अनेक प्रकारकी चिकनी चुपड़ी बातें बनाई जाती हैं । बड़ी-बड़ी लीडरशिप की जाती है, सेवा करनेकी कसमें खाई जाती हैं । खुले आम प्रण किया जाता है, थोड़ेसे चन्द चाँदीके टुकड़ोंके लिए । उस समय भी कषायके तीव्र भाव चलते रहते हैं । जो जैसे भाव करता है वैसा ही परिणामन करता है । लाख उपाय करो तब भी कुछ कर सकनेमें समर्थ नहीं हैं । स्वयं कल्याणमार्गपर चलनेपर सर्वसिद्धियाँ पीछे लग जाती हैं । यह जगत् बेबूझ ही है । बाहरमें बाह्य निमित्त हो रहे हैं तथा अन्तरङ्ग में अपना ही कार्य चल रहा है । सम्यक्त्वके बराबर कल्याणकारी तथा मिथ्यात्वके समान भव भ्रमण करानेवाली कोई औषधि नहीं है । मिथ्यात्व संसारका सर्वश्रेष्ठ जहर है, जो यहाँ से उबारने का नाम नहीं लेता है । मनुष्योंकी इच्छायें स्वतः नहीं बढ़ती हैं । जितनी कि दूसरोंकी देखादेखी बढ़ जाती हैं । दूसरोंके चटक मटक वाले कपड़े, गहने, वेषविन्यासका शृङ्गारके प्रसाधन देखे और मन ललचा आया तथा उन्हें पानेके लिए कटिबद्ध हो गये । शुरू से संस्कार ही इसी तरहके चल रहे हैं । विद्या अध्ययनके संस्कारोंके साथ ही यह बला साथ में आ जाती है । अध्यापकोंकी नेकटाई तथा बढ़िया पेन्ट, कमीज, जूते देखे तब छात्र जो समर्थ होते हैं वे अध्यापकोंको लजा देने वाला वेष धारण करके जाते हैं । यह एक कम्पनी है जिसमें विद्या अर्जनके साथ वेषभूषाके अच्छे पुतले बन जाते हैं । ज्ञानीकी संगति मिलना दुर्लभ हो रही है । कदाचित् सज्जन पुरुषकी संगति मिल भी जावे तो उसका लाभ लेनेकी क्षमता इसमें नहीं है । ममताके लोभसे वह सज्जन पुरुषसे भी प्रशंसा कराना चाहता है । यह सब होनेपर प्रत्येक द्रव्य स्वयं सत् है । संसारकी असारता जान कर्तव्य-मार्गपर जुट जाना साध सिद्ध होगा । 'चार दिनकी चाँदनी फिर अघेरी रात है ।' जो कुछ थोड़ासा पाया उसपर इतरा लो, दूसरोंको अपना रूप दिखा लो, फिर पीछे तो उन्हीं दूसरोंकी आँखोंमें से अर्थीका साज सामान जायगा तब वह भी कह लेंगे, यही थे जो किसीको अपने सामने कुछ भी नहीं समझते थे ।

यहाँकी मौजका फल परभवमें क्लेश है—एक साधु था, राजाने उसे बुलाया । कई मनुष्य उसे मनानेके लिए गये । तब इस साधुने न जानेकी बहुत सोची, किन्तु वहाँ नहीं चली । तब इसने सोचा वहाँ तो लक्ष्मीका भंडार भरा है । कहीं उस चमक-दमकमें मैं न फंस जाऊँ । यह सोचकर वह अपना खूब गाढ़े रंगसे काला मुँह बनाकर पहुँच गया । राजाने जब

रहेगा और धन जोड़कर भी खर्च न करना, लोभके परिणाम रहना देवमें जानेका कारण है। सामग्री मिलनेपर भी देवोंमें लोभकी कमी नहीं हुआ करती है। वह तो दूसरोंका ऐश्वर्य देखकर मन ही मन कुड़ते हैं। तिर्यचगतिमें जानेके पहले मायाचार हुआ करता है और मनुष्य-गतिमें जानेके पूर्व अन्तर्मुहूर्त तक मान रहता है। जीवने अन्वयशक्ति नहीं छोड़ी और जीव तो वही रहा, जिससे तीनों कालोंमें सत्ता प्रकट होती है। यह वही न बने अर्थात् वही है। इस द्रव्यशक्तिको नहीं छोड़ता है। इस तरह इस गाथामें मैं हूं, होकर होता रहता हूं, प्रति समय होता रहता हूं। मेरा परिणामन मेरे आधीन है। किसीके सोचनेसे मेरा परिणाम नहीं बनता है। इससे अजर-अमर हूं। अनादिसे चला आ रहा हूं और अनंत तक चला जाऊंगा और पर्याय दुर्ललित है। अब मुझे कौनसी पर्याय इष्ट है? उसी तरहका प्रयत्न करना चाहिए। किसी कविने कहा है—‘यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी।’ जिसकी जैसी भावना होती है, उसको वैसी सिद्धि होती है तथा उसी भावनाके अनुसार आचरण करता है।

पर्यायपदमें आत्मबुद्धि न हो वही साधुता है—जो कोई त्यागी मुनि हो जाता है, उसकी अन्तरङ्गमें भी तो पवित्र निज आत्मतत्त्वकी भावना रहती है। वह किसीको दिखानेके लिए नहीं हो जाते हैं। सो मैं से कोई एकाध ऐसा निकल सकता है कि जिसकी वजहसे दूसरों के ऊपर भी दोष लगा दिये जाते हैं। यहाँ सभी धान बाईस पंसेरोकी कहावत चरितार्थ होती है। जीव आठों कर्मोंसे मुक्त हो जाय इससे बढ़िया और क्या हो सकता? इससे बढ़िया न कोई वैभव है और न इससे बढ़िया कोई मिठाई ही है। वर्तमान स्वभावको देखो तथा आठ कर्मोंसे मुक्त होनेका प्रयास प्रशंसनीय है। जैसा कि त्यागी लोग करते हैं। निश्चयनयसे देखा जाय तो यह जीव द्रव्यकर्म, नोकर्म तथा भावकर्म रहित है। शुद्ध भावका परिणामन ही मोक्ष-मार्ग है। निरपेक्ष स्वभावका आलम्बन तथा परिणामनमें अन्तर है। शुद्ध विकास करना ही मोक्ष है। स्वरूपाचरण चारित्र चौथे गुणस्थानसे लेकर १४वें गुणस्थान तक होता है। सिद्ध परमेष्ठी भी स्वरूपाचरण चारित्रमें लीन रहते हैं। वहाँ सामायिक व यथाख्यात चारित्र नहीं रहता है। आत्मस्वभावमें रत होनेका नाम स्वरूपाचरण चारित्र नहीं है। जितने अंशोंमें राग मिटता है वह स्वरूपाचरण चारित्र है। मैं आत्मस्वभावका चिन्तन करूँ, यह शुभ राग है और बन्धरूप है। कषायोंके जानेसे जो ज्ञान हुआ है उसका नाम स्वरूपाचरण चारित्र है। कर्मस्वभावसे होनेके माने यह हैं कि परसे सम्बंध पाकर द्रव्योंसे द्रव्यान्तरका कारण पाना है। वह भी ज्ञानस्वभावसे होता है और कर्म उदयके कारण जो बात होवे, उसे द्रव्यान्तर पर्यायमें रहना कहते हैं।

आस्रव पहले गुणस्थानसे लेकर तेरहवें गुणस्थान तक होता है और बन्ध पहलेसे दसवें गुणस्थान तक होता है। निर्जरा प्रथम गुणस्थानसे चौदहवें तक होती है। संवर सिद्ध

हैं। जिस तरह बंध्या स्त्री प्रसूतिके दुःखको नहीं जान सकती है, उसी तरह धनलोलुपी गरीबी की तड़फनको क्या जाने ? उनके दरवाजेपर कोई भिखारी भी पहुंच जाय तो बड़ी चतुराईसे उसे टिसका देते हैं, क्योंकि जो अपने दिमागकी खूबीसे हजारों लाखों रुपया कमा सकता है वह दो रोटिके भूखे भिखारीको भी हटानेमें सफल नहीं हो सकेगा। यह छल-कपट कहाँ ले जायगा, इसे जानना दुर्लभ है। मनुष्य मननशील माना गया है। समझदारीसे जो काम लेवे तभी ऋषियोंकी सन्तान कहलाती है, क्योंकि वह कुलकरोंके द्वारा सम्बंधित है। पिता भी दो तरहके माने गये हैं—एक जन्मपिता अर्थात् जन्म देने वाला और दूसरा शिक्षा देने वाला। रक्षा करने वालेकी अपेक्षा शिक्षा प्रदान करने वालेका महत्त्व अधिक है। तो जिन्हें ऋषि संज्ञा दी जाती है वह मनु कहलाते थे। उन्होंने तत्त्वज्ञान लौकिक ज्ञानकी शिक्षा प्रदान की है। पिताने तो बुद्धिपूर्वक दया नहीं की है। उन्हें अपना ऐश विषय विलास करना था, इसलिए पुत्र पैदा हुआ। उसे उन्होंने कहींसे आज्ञा देकर नहीं बुलाया है। पालन-पोषणकी आधीनतासे स्नेह कर रहा है। परमात्माको धर्मपिता बोलते हैं और इसका मूल अरहंत भगवानकी दिव्य ध्वनि है। धर्मका उपदेश जो जिनेन्द्रदेवकी दिव्यध्वनिसे गिरा था, वही है।

पर्यायमात्र प्रतिक्षणवर्तनी रहती है—देव वह हैं जो दिव्यन्ति क्रीडन्ति। जो मन-मानी क्रीड़ा करें, मौज करें वह देव हैं। यह तो चार गतिमें का देव है, किन्तु जो निर्मोह, वीतराग है, वह देवाधिदेव है अथवा जिनेन्द्रदेव है और जो एक ही समयमें ऊपर चल जावें व अनन्तकालको अनन्तसुखमें लीन रहें वह देव सिद्ध परमेष्ठी हैं। जहाँ आत्माका पूर्ण विकास हो चुकता है वह सिद्धगति है और जिन्होंने अष्टकर्मोंको दग्ध कर दिया है वह सिद्ध है। इस तरह इन पाँच गतियोंमें से एक अवश्य कोई होगा। इन पर्यायोंको छोड़कर कहीं रह नहीं सकता है अथवा वह जीव होकर उस पर्यायके कारण, जीव द्रव्यभूत अन्वयशक्तिको छोड़ देता है क्या ? जीव द्रव्यभूत अन्वयशक्ति कभी भी नहीं छोड़ता है। मरते समय जैसे भाव होंगे वैसे ही स्थानपर जाकर यह जीव पैदा होता है। मरते समय दुःख तो मोहका रहता है। मरते समय भी यह भाव रहें कि यह पर्याय नहीं सही, दूसरी पर्याय मिलेगी अर्थात् दूसरा घर सही तो क्लेश कम हो, वेदना तो रहती है कि मैंने इतना कमाया, जोड़ा, सब छोड़कर चला। सबसे बड़ी परेशानी इन्हीं भाव वालेकी है। यह कुटी इस जीवको मिली है, नये-नये इकट्ठे होते जा रहे हैं और पुराने-पुराने चले जा रहे हैं। जिन्हें इष्टसे इष्ट पदार्थ भी मिलें तो सुखी होकर मत्त नहीं होते और बिछुड़ जावें तो दुःख नहीं होता है। मिलिट्टीको निशाना लगाना इसलिए सिखाया जाता है कि वह युद्धमें जाकर सफल हो सके। इसी तरह ब्रतनियम, संयम, तप आदि इसीलिए पाले जाते हैं कि हम उस अतिम ध्यानाग्निके युद्धमें सफल हो सकें और मरते समय भी शुद्ध परिणाम बनते रहें। जिसे नरकमें जाना होगा वह अत्यंत क्रोधमें सना

मर्थता प्रकट करते हैं। इसमें समझता है कि हमारा तो जीवन ही यह है। कामके वशीभूत होनेसे कोई खबर भी नहीं रहती। कभी-कभी तो इस तरहके पुरुष या स्त्रीको बेसुध या पागल मान लिया जाता है। कामकी पीड़ा शरीरके अनेक प्रकारके हाव-भाव बनाती है और उस समय अपनेसे बड़ोंको तिलाञ्जलि देकर लोक-लाज भी खो दी जाती है। इतनेपर भी दूधके धुले बननेके लिए अपनी शेखी एवं सफाईमें इतनी पटुता रहती है कि सच्चा शीलवान या शीलवती ऐसे ही विरले मिलते हैं। कहाँ तो अपनी स्त्रीमें अति आसक्त होना ही खराब है। तब दूसरी स्त्रियोंकी तो बात ही भिन्न है। गृहस्थ एक स्त्रीको रखकर कितने ही अधर्मसे बच रहे हैं, किन्तु वहाँ भी बन्धनसे रहित नहीं हैं। यह काम भोजन पानीकी भी सुध भुला देता है। इसके आधीन हो पशुओं तकसे रमण करनेके भाव मनमें लाता है और पशुओंसे रमण करनेके विरले उदाहरण भी सुने जाते हैं। इस कामको योगी जन धिक्कार देते हैं। यह महापुरुषोंकी दृष्टिमें निम्न माना जाता है। इसके होनेपर मनमें भव स्थान बनाये रखता है। शरीरका भी पतन हो जाता है। परलोकके भी दुःख भोगना पड़ते हैं। इसलिए यह छोड़ने योग्य है। सर्वप्रथम जिह्वाइन्द्रियपर काबू रखना जरूरी हो जाता है। उसकी बुराइयों पर दृष्टि करके वह त्याज्य होना चाहिए। पाँचों इन्द्रियाँ चंचल घोड़ेके समान हैं, इसलिए उन्हें काबूमें करनेके लिए मनरूपी लगामको वशमें करना आवश्यक हो जाता है। अगर लगाम वशमें न रखी तो यह चंचल घोड़े कहींके कहीं ले जाकर पटक देंगे। हिताहितका विचार इसमें सर्वोपरि है।

मोहकी तो लीला ही विचित्र है—मोहके वशीभूत होनेसे निन्द्य निन्द्य कार्य कर डालता है। मोहका ठीक अर्थ है मिथ्यात्व। प्रेमका अन्तर्भाव रागमें है। मोह, अज्ञान, मिथ्यात्व ये सब मोहके पर्यायवाची हैं। मोहमें वस्तुस्वरूपसे विपरीत विश्वास रहता है। मोहमें जगतको ही अपना मान रहा है। मोहमें अचेतन तस्वीर आदिमें चेतनकी कल्पना कर लेता है। मोह रुलता-फिरता है, यह तो सर्वविदित ही है। मोहमें आकर ज्ञानी भी अनेक प्रकारकी चेष्टायें करने लगता है। तब इस तरहके मोहीको ज्ञानी संज्ञा नहीं दी जाती है। उस लौकिक ज्ञानीसे भोला अज्ञानी अच्छा जो कि अपनी अज्ञानकारीमें बन्दर जैसे नाच नाचता है। क्रोध, मान, माया और लोभ सर्व विदित ही हैं। जो मायाचारी भावमें सने रहें, छल-फट करना ही जिन्होंने अपना पेशा बना लिया हो, उनके सामने बृहस्पति भी एक बार समझानेको आ जाय तो असर नहीं होता। वह तो मक्कारी ही उत्तम समझते हैं और उन्हें तो घी गक्कड़ खानेसे ही मतलब रहता है। जैसे कि आजकल अन्नकी महंगाईका नंगा नाच मचा हुआ है। गरीब भूखों तड़फते हैं और कोई कृपण धनाढ्य अपनी गोदामें, कोठियाँ भरे रखे हैं। उन्हें तो पैसा इकट्ठा करना दिखता है। उनकी दृष्टि ही इस ओरसे बन्द हो जाती

साधुको देखा तो ताज्जुब हुआ और कहा—यह भेष किसलिए बनाया है ? इसपर साधुने कहा—आपके विलास मुझे न बहलावेंगे, मैं उनपर न ललचा जाऊं, इसलिए अगले भवमें काला मुख होनेकी अपेक्षा अभी सबसे अच्छा था, क्योंकि सबसे बढ़िया मुंह माना जाता है। जबकि मुंहके पास ही गन्दगी भरी पड़ी है। नाकसे लुबाव बहता रहता है। आँखोंमेंसे कीचड़ निकलता है। तब इसकी सुन्दरता कहाँ रह जाती है ? यह मुंह रागभावसे अच्छा मालूम पड़ता है। चेहरेको देखनेसे पहले नाककी गन्दगीपर विचार तो किया जाय। तभी तो यह वैराग्यका कारण है। अगर देवों और भोगभूमिया जीवोंका बराबर सुन्दर शरीर होता तो इससे विरक्त होनेके भी भाव नहीं होते। जो भी विरक्तिमें आयागा वह अपने ज्ञानसे ही होगा। समोशरणमें जानेपर भी अगर शुद्ध भाव नहीं बन सके तो अपना ही पापकर्मका उदय था। खुदको समझना था, खुदको ही न समझ सके तब कोई हस्तावलम्बन देकर नहीं समझा देगा। विवेकामृत इस जीवका सच्चा सहायक है। अन्य अभी तक दिखनेमें नहीं आया और न वह दिख सकेगा।

पर्याय रूप होते रहना ही द्रव्यकी ध्रुवता है—जीव द्रव्य होता हुआ किसी पर्याय रूप हो गया है। इनमेंसे किसी पर्यायमुखेन अवश्य होगा। सतः भूत्वा भवनं सद्भावः। होकर होना, होकर होना, होकर होना, यह क्रम चलता ही रहता है। जो हुआ है वह होकर हुआ है। होकर होनेका नाम भाव है। सीधी-सी बात यह है, द्रव्य न हो तो पर्याय क्या रहे ? द्रव्यस्य पर्याय दुर्ललितवृत्तिः।' द्रव्य पर्यायोंसे सहित दुर्ललित वृत्ति वाला है। जिस तरह कोई बच्चा मिठाईके लिए मचल जावे और कहे हम तो जाते ही नहीं हैं। अमुख वस्तु लेकर ही रहेंगे। कोई भी समय ऐसा नहीं कि पर्याय हट जावे, क्योंकि द्रव्य दुर्ललित वृत्ति वाला है। व्यञ्जनपर्यायोंमें चार पर्याय हैं। धवला ग्रन्थमें नारकियोंका वर्णन किया है। नैगम नयसे जो किसी प्रकारका प्रारम्भिक खोटा प्रयत्न करे, खोटा अभिप्राय बनावे, वह मनुष्य या तिर्यचगतिमें रहता हुआ भी वैसा बन्ध कर रहा है। पाप कार्योंको करनेमें प्रवृत्त रहे, उन्हींमें जुट जावे, वह संग्रहनयका नारकी हुआ तथा जो आपसमें नारकी जैसा व्यवहार करे वह व्यवहार नयका नारकी है तथा जो नारकियों जैसा तीव्र खोटे भाव करे, उन भावोंको ग्रहण कर लेवे वह ऋजुसूत्र नयसे नारकी है तथा जो नरकोंके ही दुःख भोग रहा है वह नरकमें ही रहने वाला नारकी एवं भूत नयसे नारकी है। जो मनुष्योंको दुःख देवे वह नारकी है। जो अपनी पर्याय विशेषमें रत न रह सके वह नारकी है।

जीवके मुख्यतया छः शत्रु हैं—यह प्रायः सभी मजहब व धर्मोंमें भी बताये गये हैं। काम, क्रोध, मोह, मान, माया और लोभ ये भयंकर छः शत्रु हैं। जो भी परेशान है वह इन्हीं की वजहसे है। अज्ञान अंधकारमें इन्हींकी वजहसे पड़ा है। इनके वशीभूत होकर अपनी अस-

परमेष्ठी तक रहता है और वह अनन्तानंत काल तक रहता है। ऐसा शुद्धोपयोग रहना कि कभी कर्म आ ही न सकें। धर्मका मूल संवरसे है और पूर्ति भी संवरसे है। जीवका सच्चा मित्र संवर ही है, जो कि नावमें आते हुए पानीके समान कर्मोंका आना बन्द कर देता है।

आत्माके सर्वथा असंग रहनेमें सुख है—सच्चा सुख मोक्षमें है। वह अपनेसे काफी दूर इस पंचम कालमें हो चुका है। अब यहाँसे मुक्ति नहीं, किन्तु परम्परासे उसे पाना सरल है। अतएव वैसा प्रयत्न स्तुत्य माना जाता है। वैसे कर्मोंकी निर्जरा प्रतिक्षण होती रहती है, लेकिन साथ ही बन्ध चल रहा है। यह सोचकर चुप बैठा रहना धर्म नहीं कहता है। दैवके साथ पुरुषार्थका लक्ष्य भी सर्वोपरि है। अगर पुरुषार्थके द्वारा कर्मकलंक हटानेका निश्चय नहीं होता तो कौनसा विवेकी घर छोड़ता? जिनकी अच्छी जायदादें थीं, इस तरहके श्वेताम्बर साधु लाखों तककी संपत्ति छोड़कर साधु हुए पाये जाते हैं। दिगम्बरोमें भी इस तरहके हैं। खोजनेपर मिलना दुर्लभ नहीं है। अगर पहले निधि भी नहीं थी तो अबकी ज्ञान-निधिकी तुलना कौन कर सकता है? जीवका शरण तो तत्त्वज्ञान ही है। नियमसे सत्का ही उत्पाद होता है द्रव्यदृष्टिमें, किन्तु पर्याय अपेक्षा असत्का उत्पाद कह दिया जाता है। असत्का भी कहनेके साथ सत् कहीं जाता नहीं है। यथार्थमें सत्से असत्का उत्पाद न आज तक हुआ और न होगा। केवल पूर्व और पर (आगे) को विशेषता दिखानेके लिए आचार्य अमृतचन्द्रजी सूरिने भगवान् कुन्दकुन्दके वचन प्रकट किये हैं। जब बालक छोटा होता है तब वह माँ के पास सोता है, गोदमें खेलता है, काटता है, प्यारमें थप्पड़ भी मार देता है। लेकिन वही बालक जब २०, २५ वर्षका हो जाता है तो वह स्वयं अवस्थाकी अपेक्षा बोलने-चालनेमें एवं बात करनेमें मर्यादाका ख्याल रखता है। वह इस अवस्थामें माँ के स्तनोंको नहीं छूता है तथा माँ भी स्वतन्त्र नहीं रहती है। बच्चा जब गोदमें खेलता था तब नंगे सिर, पैर पसार कर बैठना भी अच्छा मालूम होता था। अब वही माँ यथोचित बात करती है, मुन्ना न कहकर अब भैया, साहब आदि शब्दोंका अयोग करने लगती है। इस तरह असत्का उत्पाद अन्य अन्यपने से निश्चय करते हैं। जो पहले था वही अब है। उसमें परिवर्तन नहीं हुआ जंचता है। सो आगे असत्का उत्पाद अन्यपनेसे निश्चय करते हैं।

मणुवोणो होदि देवो देवो वा मणु सो व सिद्धो वा ।

एवं अहोज्जमाणो अणण भावं कधं लहदि ॥११३॥

पर्यायोंमें परस्पर अनन्यताका अभाव—जो मनुष्य है वह देव नहीं है। जो देव है वह मनुष्य अथवा सिद्ध नहीं है। इस प्रकार एक दूसरे रूप न होता हुआ वह अनन्यभावको कैसे प्राप्त हो सकता है? जो मनुष्य है वह देव नहीं होता है तथा जो देव है वह मनुष्य वा

सिद्ध नहीं होता है। एक ही आत्मामें यह व्यवहार चलता है अथवा मनुष्य सिद्ध पर्याय नहीं होती है। देव मनुष्य नहीं होता है। वह वह नहीं है, वह वह नहीं है—इस तरहकी व्यवस्था पाई जाती है। मनुष्य देव नहीं है, देव मनुष्य नहीं है तथा मनुष्य या देव सिद्ध नहीं है। यह नानापन चलता रहता है, फिर यह अनन्य कैसे हो जायगा? अगर तिर्य्यचगतिसे आकर जो मनुष्य बन गया है उसे भूसा, बढ़िया हरी घास, कुट्टी, खल, बिनौले खिलाना चाहिए। तब वह काफी पुष्ट होगा। यह व्यवहार नहीं किया जाता है, उसे मनुष्य योग्य खुराक दूध, साग, अन्न ही खानेको दिया जाता है। अधिक विकल्पमें न पड़कर बच्चा जो छोटी अवस्थामें दूध पीता था, वही अब बड़ा होने पर स्तन तक नहीं छूता है तथा माँ भी बड़े बच्चेके सामने बचपन सरीखी नहीं रहती है। पहले बच्चेको माँ डाँट देती थी, वही अब प्रेमसे बोलती है, उसकी आज्ञामें चलती है। यह सब अनन्य कैसे बन जायगा? वही आत्मा है जो पूर्वमें थी। अगर २५ वर्षका लड़का बीमार हो जाय तो माँ कहेगी, 'हमारा वही तो लड़का है तथा सेवा शुश्रूषा भी बचपन सरीखे बच्चे जैसी करेगी। जब जैसी-जैसी विशेषपर दृष्टि डाली जायगी वैसा-वैसा कारण उपस्थित होता जायगा। जो अभी सुखी है, कुछ ही क्षणमें वह दुःखी दिख सकता है।

परवस्तु राग करनेकी वस्तु नहीं है—परवस्तुके प्रति जितना राग किया जायगा उतना ही दुःखका भागी होना पड़ेगा। हो सकता है कि आज आप धर्म कर रहे हैं जिसके पुण्य प्रतापसे अनेक तरहकी सुख सम्पदायें मिलती होवेंगी, किन्तु थोड़ासा धर्म किया और अधिक फल मांगा जावे तो मिलनेका नहीं और ज्यादा धर्म करके छोटी वस्तुकी याचना कर ली तब वह मिल भी जावे, लेकिन उसके बदले जो हजारगुना फल (संपदायें) मिलना था वह व्यर्थमें ही चला गया। ज्ञानभाव अपने पास रहनेसे चित्त उद्विग्न नहीं होगा। व्यर्थकी वाञ्छायें नहीं की जावेंगी। कभी देखनेमें यह भी आया कि जिन स्त्री, पुरुष या पुत्र, पिता आदिमें अत्यंत गाढ़ा प्रेम था, उसकी मरणवेला उपस्थित होनेपर कहा जाय, 'आप हमारे आग्रहसे एक माह, एक वर्ष, एक दिन, एक क्षण भी तो और रुक जाओ, फिर चले जाना।' तब क्या यह संभव है? उस समय कुछ भी रियायत नहीं की जायगी। यह शुरूसे ही विचार कर राग करनेमें सावधान रहा जाय। उन विषयभोगों एवं शरीरकी चमड़ीपर विचार करता रहे तो दुःख नहीं होगा और कर्मबन्धसे भी बच सकेगा। यहाँ तक कहनेमें नहीं चूकते 'हमारा तुम्हारा आत्मा ही एक है।' क्योंकि अब तो यहाँ गाढ़कषायका कषैला रंग (कत्था) चढ़ रहा है। अतएव जिस तरह उसे पुष्ट किया जाय वैसा करते हैं। उस मूर्खतामें धर्म एक ओर छोड़ दिया जाता है और जो सुयाकु चेष्टायें की जा सकती हैं, वह करता है। सम्भवतया शरीरके खत्म होनेके बाद किसी लम्बे असेमें दोनोंके शरीरके पिण्डके स्कंध जरूर इकट्ठे हो सकते हैं,

लेकिन आत्मा आज तक इकट्ठी हुई न होगी। इस तरह [देव मनुष्य नहीं होता, मनुष्य देव नहीं होता और देव सिद्ध परमेश्वरी नहीं होता तब अनन्य भावको कैसे पैदा कर सकेगा ?

द्रव्य जब जिस अवस्थामें हो वह उसकी पर्याय है—पर्यायमें जो है वह व्यतिरेक दशाके साथ अन्वित है। आत्माकी पर्यायें आत्माके व्यतिरेक विकासके साथ हैं। विभिन्न विकासका नाम ही व्यतिरेक विकास पर्याय है। मनुष्य तिर्यञ्च भी हो सकता है जो कि पर्यायभूत नहीं है। वह विकासके कालमें है, अन्यमें नहीं है। आत्माकी प्रत्येक व्यतिरेक व्यक्तियाँ होती रहती हैं। जितने भी आदमी बैठे हैं उन सबमें व्यतिरेक विकास है। वह सब भिन्न-भिन्न हैं, यही व्यतिरेक विकास है। देवपर्याय गई, उस पर्यायका समय पूर्ण हो गया। तब असत् हो गया। यहाँ असत् उत्पादका कथन चल रहा है। असत्का उत्पाद नहीं हुआ तो क्या हुआ ? पर्यायोंका अपने कालमें उत्पाद है। पर्यायोंका जो अपने कालमें विकास है वह क्रमवान है। वह एक साथ मौजूद नहीं है, किन्तु क्रमसे गिरता है तथा क्रमसे उठता है। वह पर्यायें अन्वयशक्तिसे प्रसूत हैं। वह अन्वय शक्तिको छोड़कर कहीं नहीं जाती हैं। जिस तरह सोनेके आभूषण अदल-बदलकर बनते रहते हैं। वहाँ अन्वयशक्तिका विकास है। ज्ञात हुआ है कि एक तरहका सफेद सुवर्ण निकला है, जो कि इस पीले सुवर्णसे मूल्यवान होता है। आचार्योंने भी जो कार्तं स्वर, कांचन, हेम, सुवर्ण आदि सोनेके पर्यायवाची शब्द दिये हैं वह उनसे मिलते-जुलते दूसरे तरहके सुवर्णकी विशेषता बताते हैं। जो पर्यायोंका अपने काल में प्रादुर्भाव हुआ है। सूक्ष्म पर्यायोंकी बात तो यों नहीं जंचती है। यह लाइट जल रही है, इसने ८ बजे भी जलनेका काम किया था और अब भी कर रही है। साढ़े आठ बजे और इसी तरह आगे भी करती जायगी, तो यहाँ वह परिणाम-परिणामकर भिन्न-भिन्न काम कर रही है। उसी तरह आत्माकी या पुद्गल द्रव्यकी पर्यायें परिणाम-परिणामकर भिन्न-भिन्न काम रही हैं। भूत, भविष्यत और वर्तमानका चक्कर उसके उपयोगी नहीं है। जैसा-जैसा प्रतिभास हुआ है वही-वही अगले-अगले भवमें या अगले-अगले समयमें क्रम जायगा। जैसे यथाजात बालक धीरे-धीरे विकासको प्राप्त करता जाता है। एक कमरेमें बहुत-सी वस्तुयें रखी हैं, वह लाइट (बिजली) के प्रतिभासमें सब प्रकाशको प्राप्त हो रही हैं। तब भी बच्चेके ज्ञानमें यह नहीं है कि किस तरह उन्हें जाना है। उनके ज्ञानमें विकल्प नहीं है। वहाँ भूत, भविष्यत्, वर्तमानका भेद नहीं है। द्रव्यका स्वभाव ही परिवर्तन करना है। हम तो निश्चयनयसे परको जानते ही नहीं हैं। दर्पण सामने रखा है, उसे हम या अन्य कोई देख रहे हैं। हमारे आजु-बाजु और पीछे भी बहुतसे लड़के गुलगपाड़ा कर रहे हैं और हाथ आदि मटका रहे हैं, उन सब गड़बड़ियों को ऐनकमें देख रहे हैं। उसी तरह बाहरके दृश्योंको देखते हुए आत्माको जान रहे हैं। आत्मा के बाहर सब कुछ हो रहा है उसे जानते रहते हैं, फिर भी लक्ष्य आत्मापर हो सकता है।

निमित्तनैमित्तिकको देखकर ही कहा जाता है, इसका ऐसा प्रभाव है। एक बड़ा प्रभावक मनुष्य है। वह साधारण अधिकारीके सामने जाता है। लोग कहते हैं प्रभावकका प्रभाव गिर गया है तो यहाँ प्रभाव न गिरकर निमित्तको पाकर वह इस रूप परिणाम गया है। साधारण व्यक्ति प्रभावशालीके सामने अपनी बात जमाता है। पर्यायों जिस कालमें हैं वह उसरूप होती हैं।

वस्तुतः जीव अपने आपपर ही राग कर सकता है—श्रीराम और सीता जिन्दगीमें काफी साथ रहे। दोनोंमें बड़ा स्नेह था। सीता रामकी तन-मनसे सेवा करती थी, जिस कारण वह वनमें भी साथ गई थी। लेकिन जब सीताकी विषयभोगोंसे अरुचि जग गई, तो यकायक विरक्त हो गई। रामचन्द्रजी हाथ जोड़े फिरे, सीताको विरक्त होनेसे रोक रहे, किन्तु सीता अब आँख उठाकर भी नहीं देख रही है। राम सोचते हैं कि सीताको क्या हो गया है? राम व सीता आदि अपने जैसे ही तो थे। अगर इन दोनोंका नाम बदलकर शुरुका चरित्र वर्णन किया जाय तो सीताकी अग्निपरीक्षा आदिको घृणाकी दृष्टिसे देखेंगे। बादका जीवन उनका अति उज्ज्वल रहा। इससे वह महान कहलाये। सब मोहके वशीभूत हो अपना पति, अपनी पत्नी मानते हैं, जब मोह नहीं रहता है तब पति-पत्नीको छोड़कर चला आता है या घरमें से निकाल देता है। कई पत्नियाँ पतियोंके द्वारा बहिष्कृत कर दी जाती हैं। जिससे उनका जीवन भी अति संकटमय हो जाता है। वह भूखों जिन्दगी बितायें या पथभ्रष्ट हो जावें, इसकी वह चिन्ता नहीं करता है। इसी तरह, कहीं-कहीं स्त्रियोंके द्वारा पति हेयदृष्टिसे देखा जाने लगता है और वह निज पतिसे उपेक्षा कर अन्यसे सम्बंध कर लेती है या घर तक छोड़ देती है। इससे यह स्पष्ट है कि सभी मोहके वशीभूत होकर अपना काम निकलता देखकर आसक्त हो रहे हैं। मोह गया, परिणाम बदले, अब कोई रोकनेमें समर्थ नहीं है। अपने-अपने भावोंके अनुसार प्रवृत्ति हो जाती है। जब सप्तपदी होती है उस समय पति-पत्नी प्रतिज्ञा करते हैं कि हम दोनों आपसमें जीवनभर साथ निभायेंगे, किन्तु बादमें विरक्त हो जावे और कहे, प्रतिज्ञा खण्डन कर दी। यह प्रतिज्ञा खण्डन नहीं करी। वहाँ तो मोहभावमें प्रतिज्ञायें ली थीं। जब तक मोह रहा, निभाया। अब अपना-अपना रास्ता अंगीकार करते हैं। तत्त्वज्ञान प्रकट हुआ, तब बिना एक दूसरेकी आज्ञा लिए जंगलकी ओर चल दिये। कोई मूर्ख सोचे कि मैंने स्त्रीके साथ जीवनभर निभानेका वचन दिया था। तो वह मत्त पुरुषके रूपमें मोहमें दिया था। मोह गला तो दूसरा ही दीक्षा जन्म हो गया। ऐसी दशामें पहले जन्मके वायदे कोई भी अगले भव में निभा सकता है? नहीं। यदि मोह छूटा तो मोहके संसर्गसे चलने वाले रिश्ते भी छूट गये। कोई बहाना करे तो वह भी नहीं चलता, निभता भी नहीं। तत्त्वज्ञानका ही वैराग्यके साथ अविनाभाव है। यहाँ द्रव्यस्वरूपके वर्णनमें आत्माका दृष्टांत दिया जा रहा है और यह निर्दिष्ट

किया जा रहा है कि अब असत्का उत्पाद होता है। इसमें पर्यायदृष्टि रखकर ही सोचना है। पर्यायों पर्यायभूत आत्मव्यतिरेक व्यक्तिके कालमें ही है, उससे अन्य कालमें वे नहीं हैं, अतः असत् हैं। अब देखो—जो पर्यायोंका द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्तिसे अनुस्यूत क्रमानुपाती (क्रमसे व आने वाला) अपने कालमें प्रादुर्भावि है, उसमें पर्यायभूत आत्मव्यतिरेक व्यक्ति पूर्वमें (उत्पाद से पहिले) नहीं है, अतः पर्यायों अन्य-अन्य ही तो हुई। इससे यह कहनेमें तो कोई हिचकिचाहट तो नहीं भैया ! कि असत् पर्यायका उत्पाद हुआ। जरा गहरा सोचते होगे तो इस बातको सोचते होगे कि द्रव्यका असदुत्पाद कैसे ? सो सुनो—द्रव्य पर्यायोंसे पृथक्भूत है कि अपृथक्भूत ? पृथक्भूत तो है ही नहीं, क्योंकि द्रव्य व पर्यायमें प्रादेशिक भेद नहीं है और पर्यायस्वरूपका कर्तृभूत, करणभूत, अधिकरणभूत तो द्रव्य ही है, इससे द्रव्य पर्यायोंसे अपृथक्भूत है। अतः द्रव्यका असदुत्पाद कहनेमें पर्यायार्थिकनयका आदेश समर्थ है।

जो है वही हो रहा है, उसके ज्ञाता रहो—जो द्रव्य पहले था, उसीका उत्पाद अब हुआ है। वह दूसरा नहीं आ गया है, किन्तु पर्यायकी अपेक्षा असत्का उत्पाद हुआ है। कोई यह नहीं कह सकता है कि वह द्रव्य ही न था। वे पर्यायों भी इस तरह अन्य नहीं हैं द्रव्य अपेक्षासे। पर्यायको ही माननेसे अन्य मानना पड़ेगी। निश्चय किया जा रहा है कि द्रव्यमें असत्का उत्पाद है। इस समय वह पर्याय पृथक् है। जिस समय पर्यायमें देख रहे हैं उस समय द्रव्यके स्वरूपसे पर्यायका स्वरूप पृथक् है और अपृथक्भूत भी है। वह अतद्भावकी अपेक्षा है। पर्यायका स्वरूप द्रव्यसे भिन्न प्रदेशोंमें नहीं बना; पर्यायका कर्ता, करण, आधार कोई अलग नहीं है, पृथक्भूत भी है। द्रव्यका अतद्भाव यहाँ दिखाना है। पर्यायदृष्टिसे जब देखते हैं तब अतद्भाव है। पर्यायका जब असदुत्पाद है तो द्रव्यका द्रव्यके साथ असदुत्पाद है, ऐसा व्यवहार होता है। पर्यायसे अपृथक्भूत है। इसलिए उसमें द्रव्य लगाना पड़ता है। कोई भोजन कर रहा है, उस समय कोई स्त्री भोजन परोस रही है। उस समय दूसरी महिला कहती है कि दूसरी तरहकी वह अच्छी साग परोसो इन्हें, क्योंकि वह अच्छी जायकेदार है। इस परोसनेका नाम लेते ही अच्छापन वाक्यमें अन्डर स्टुड है। साग कैसी जो अच्छी छुंकी है उसे परोसो तो यह बात आती है। वाक्यमें कुछ ऐसे शब्द होते हैं जो पंचमी विभक्ति (अपादान) रूपसे नहीं कहे जाते हैं, किन्तु उसका भाव वही निकलता है। जिस तरह कहा जावे 'शिखर सम्मेलन की चतुर्दशीको वन्दना करेंगे' यहाँ क्योंकि शब्द छिपा हुआ है। चतुर्दशी १४ गुणस्थानोंकी प्रतीक है। वह अनादिकालीन पर्व भी है। यह व्रतविधान नियमों आदिमें अधिक पवित्रता लानेमें कारण होता है। द्रव्यका उत्पाद है तो असत्का उत्पाद है, यह बात घटती नहीं है। उत्पाद तो पर्यायका होता है फिर सत्का उत्पाद हुआ, यह बात भी घटित नहीं होती। किन्तु अपनी-अपनी दृष्टिमें दोनों बातें घटित होती हैं। विशेषण भी पंचमी

विभक्तिके रूपमें ही जाया करते हैं। पर्याय परदृष्टि बनानेपर द्रव्यका उत्पाद नहीं है, इससे असत्का उत्पाद है। जो मनु है तथा मनुसे उत्पन्न हुआ है वह मनुष्य है। कोई मनुष्य देव बन जावे तो देवकी जो निष्पत्ति है वह असत्की ही तो हुई, यही असदुत्पाद है, किन्तु जीव द्रव्य वही है जो मनुष्य पर्यायमें था, वही देव पर्यायमें हुआ है। इस तरह देखनेपर सत्का ही उत्पाद हुआ, क्योंकि अत्यन्त असत्का उत्पाद ही नहीं हो सकता।

पदार्थ अनादिसे हैं, परिणामते चले आ रहे हैं—कोई शंका करे शुरूमें कौन होगा ? साराका सारा विश्व इसी तरह चला आया है। सब हैं और परिणामते चले जा रहे हैं। जो मनुष्य है वह त्रिदश तो नहीं है। जिसकी तीनों दशायें एकसी रहें वह त्रिदश है, अर्थात् बचपन, युवावस्था और वृद्ध अवस्था—यह तीनोंमें युवा ही बना रहे, इस तरहके वह त्रिदश अर्थात् देव हैं। मनुष्य देव नहीं बन जायगा और देव सिद्ध नहीं हो जायगा। इसी प्रकार त्रिदश और सिद्ध मनुष्य नहीं बन जायगा। जब नहीं बन सकते तो अनन्य कैसे हो जायेंगे ? इससे असत् ही तो रहे। वह अन्य नहीं कहलावेंगे। बात तो एक ही है, इसीमें एक और अनेक तथा नित्य और अनित्य घटा सकते हैं। जो अनेक है वह अन्य ही अन्य तो होगा। जीवद्रव्य भी अन्य-अन्य हो गया। पर्यायकी प्रधानतामें पर्यायको देखा। जब वह व्यतिरेक ही है तो जीव ही भिन्न-भिन्न हो गया। जिसमें मनुष्यादि पर्याय हो रही हैं वह पर्याय क्यों भिन्न नहीं हो जायेंगी ? किसीको दस्तबन्द पहिनना है और उसके लिए बहुतसे उठाकर छन्न (छन्नी) दे दिये तो वह औरत उन सबको उठाकर फेंक देती है। उसे संख्यामें छन्न १५ भी दे दो तो उनसे मतलब नहीं है। उसे तो डिजाइनदार दस्तबन्द आभूषणसे मतलब है। इसके विपरीत जिसे सुवर्णका संग्रह करनेकी रुचि है वह सुवर्णके बलय (कड़ा) को ही ले लेगी और उसे छन्न, दस्तबन्द, बाजूबंद आदि कुछ भी मिलें, वह कहेगी—‘इस बलयको लाओ, छन्न लाओ’ जो भी हो लाओ, लाओ उसे मनाई नहीं करना है। जिसे शरीरकी शोभा बढ़ाना ही प्रधान लक्ष्य है वह अच्छेसे अच्छे आभूषणमें नखरे लगाकर समय-समयपर नवीन डिजाइनके निकलने वाले आभूषण मंगावेगी। अभी तक देवरानी, जेठानी सभी इकट्ठी रह रही थीं, किन्तु जब वह अपना उत्कर्ष चाहती है और दूसरी भी चाहती है। अपना उत्कर्ष और साथमें रहनेसे कोई कमी प्रतीत हुई तो न्यारे होनेका मौका आ जाता है। न्यारे होते समय सुवर्ण आदिके आभूषणोंका बंटवारा किया जा रहा है। तब किसीकी रुचिसे विरुद्ध हिस्सेमें आ रहा है। उस समय वह लेकर फेंक देती है, क्योंकि न्यारे होते समय दृष्टिमें फर्क पड़ चुका है।

पर्याय पर्यायके प्रति प्रयोजन भिन्न-भिन्न है—उसी तरह जिसे पेटके गड्ढे मात्रको भरनेसे प्रयोजन है वह अनेक तरहके खाद्य स्वाद्य, लेह्य, पेय न मंगाकर थोड़ेसे सीमित भोजन में काम चला लेता है और जिसे अपनी जिह्वाइन्द्रियकी लोलुपता पूरी करनी है, वह अनेक

तरहकी चटनियाँ मिर्च मसाले, मिठाइयाँ, पकवान, दूध, लस्सी, कॉफी, घी आदि खावेगा, क्योंकि उसे तो जायका लेनेसे मतलब है। इस समय वह सच्ची भूखका ख्याल न रखकर खाता ही जायगा। ऐसा व्यक्ति भोजन कर चुकनेके बाद भी पेटमें बाजारकी बिकने वाली चीजको जगह निकाल लेगा। हमारा भाव तो यह है कि वर्तमानमें अन्नकी महंगाईको देखकर धनिक सेठ लोग भी एक समय भोजन करें और दूसरे समय फल खा लिया करें। फल भी अन्नके भाव हैं, इससे स्वास्थ्य अच्छा रहेगा, सुस्ती चली जावेगी, काम करनेमें मन लगेगा, वैद्य, डाक्टरोंकी बार-बारकी फीसों भी देनेसे बचेगी और जो अन्न बचेगा उसे गरीब भाइयों को मुफ्तमें दे देना चाहिए। यह सच्चा त्याग होगा। तुम्हारे व्रत नियम भी ठीक पल जावेंगे और जनतामें जैनियोंका त्याग भी जाहिर हो जायगा, जो कि गौरवका विषय होगा। ऐसा पाया गया है कि जरूरतसे ज्यादा भोजन करनेपर उसका पूर्ण रस नहीं बन पाता और अनेकों को बादी, गठिया, अपेन्द्रिय टसाइटिज आदि रोज घेर लेते हैं। जिसकी दृष्टि मात्र जीवनपर है, इस तरहके साधु एक तरहके भोजनसे संतुष्ट हो जाते हैं और दैनिक कार्यक्रम भी सुचारु रीतिसे चलाते हैं। आजकी स्थितिमें यह आवश्यकसा बन गया है, क्योंकि यहाँ तो पेट भरने मात्रका प्रयोजन है। जिसकी पर्यायपर दृष्टि है वह कैसे छोड़ सकेगा इस तरहके भोजनको, वह तो अपने ऐशआराम तक ही सभी सीमायें रखता है। दूसरेकी अपेक्षा वह कुछ भी नहीं करता है। जब द्रव्य सामान्यपर दृष्टि रहती है तब वह एक तत्त्व समझता है। इस एकत्वको समझनेपर पर्यायदृष्टि शिथिल हो जाती है। पर्यायदृष्टिके शिथिल होनेसे विषयाभिलाषायें भी शिथिल हो जाती हैं। पर्यायदृष्टिके अनेकत्वके संस्कारका प्रताप संसारमें विलक्षण है तो द्रव्य-दृष्टिके एकत्वके ध्यानका प्रताप मोक्षमार्गमें विलक्षण है। द्रव्यमें अन्यत्व व अनन्यत्व दोनों धर्म हैं।

अब एक द्रव्यमें अन्यत्व और अनन्यत्वका विरोध धुनकर फेंके देते हैं—पर जो है उसकी परवाह नहीं करना है। धुनना दो तरहसे किया जाता है। एक मोटे-मोटे प्रहारोंसे जल्दी-जल्दी धुना जाता है और दूसरी बड़ी चतुराई कलाकारीसे आधी-आधी छटांक रई लेकर धुनी जाती है। यह कोमल हाथोंसे धीरे-धीरे कष्ट न देकर रईको फीन-फीन किया जाता है। इसलिए एकदम लट्टु न मारकर धीरे-धीरे धुनना अच्छा है, वह काम अच्छा है। इसका सूत भी बारीक निकाला जा सकता है, जिसके दाम अच्छे पैदा किये जा सकते हैं, जबकि लट्टुमार धुनाईसे धुनी हुई पाला आदिके सूतमें यह बात नहीं है। पढ़ना भी इसी तरह महत्व रखता है। जिसे दृढ़ बननेकी दृष्टिसे पढ़ना है वह पाँच पृष्ठ पढ़कर भी अधिक जान सकता है और उसके आधारसे आगेके ग्रन्थका भाव ले सकता है और ज्यादा पढ़नेकी लिप्सा वाला कुछ भी नहीं प्राप्त कर सकता है। कहा भी है—‘विद्या कालेन पच्यते’ विद्या समयके अनुसार परि-

पक्व होती है। ऐसा भी पाया जाता है जो शुरूमें अधिक विद्या हासिल कर लेते हैं, वह विद्या बड़ेमें जाकर विकासको प्राप्त होती है। जीवनका विकास कब किसका होना है? यह कोई निश्चय नहीं है। किन्हींके जीवनका विकास ६० वर्षकी अवस्था तकमें हुआ है और कुछ ऐसे भी पाये गये जो शुरूसे एकदम द्रुतगतिसे बढ़ रहे थे वह आगे जाकर मुरझा गये।

स्वभाव व विकल्पकी सूक्ष्मसंधिपर भेदविज्ञान कुठारका निपात—भेदविज्ञान इस तरहकी कला है जो अति सूक्ष्मतासे होती है। वह अति समीपकी मिली संधि है। क्या दुकान की और आत्माकी सूक्ष्म सन्धि होती है? यह तो धर्मके गलेमें डेंगुर (लाठीका फंदा विशेष) डाल देना है। जैसा कि सुहृदमित्रने ऊँटेके गलेमें गधेको लटका दिया था। तब क्या परिवार की और तुम्हारी सूक्ष्म संधि है? यह नहीं तो क्या शरीर और आत्माकी सूक्ष्म संधि है? यह नहीं तो क्या कर्म और आत्माकी सूक्ष्म संधि है या राग और आत्माकी सूक्ष्म सन्धि है? इन किन्हींमें भी सूक्ष्म संधि न होकर स्वभाव व विभावकी सूक्ष्म संधि है। इससे भी बारीक सूक्ष्म संधि ज्ञानका जो विकल्प किया उसकी और स्वभावकी सूक्ष्म सन्धि है। इन सबपर कुल्हाड़ा मारकर जहाँ सभी सूक्ष्म सन्धियाँ खत्म कर दी हैं वह एक आत्माका विकासमात्र ही उपादेय है। सुवर्णमें बलय (कड़ा) आदिक विकार हुए हैं। बच्चोंको जैसे आभूषणोंसे प्रयोजन नहीं है, किन्तु उन्हें दूसरोंका दुलार चाहिए, अच्छा भोजन चाहिए और मनमाना ऊधम करना चाहिए। इसी तरह जहाँ विकल्पोंको भी तोड़ देना है, सबसे मुंह मोड़ देना है, तब स्वभाव-वृत्ति बनेगी। भेदविज्ञानके द्वारा सम्पूर्ण विकल्पजाल, मोह, ममतायें तोड़ना चाहिए। जो हम भिन्न-भिन्न समयोंमें जानते हैं, वह भी हमारा स्वभाव नहीं है। क्यों, जो भी विकल्प शुरूमें हुआ वह अगले समयमें नहीं चलता है। जो भी परिणमन चलने वाला है वह हमारा नहीं है।

परिणमन किसीकी आधीनतासे नहीं किया जाता है—परिणमन तो प्रत्येक-प्रत्येक द्रव्यका अनादिकालसे चला आ रहा है और वह परिणमन अनन्तकाल तक भी चला जायगा। यह तो द्रव्यका स्वभाव ही है। द्रव्यका तो वह परिणमन है ही, किन्तु वर्तमानकी मनुष्यादि पर्यायमें भी देखा जाता है। जिसके संस्कार पूर्वजन्मके धर्मके प्रति बने हैं और उसी प्रकारके माता-पिताके संस्कारोंमें पैदा होकर विकास हुआ है उसे बलात् विमुख करना चाहे तो नहीं कर सकता है। इसी तरह जिसमें असत्य भाषण, मायाचार आदिके संस्कार पड़े हैं, उसे भी कोई नहीं पलट सकता है। स्वयंके ही भावसे स्वयं सुधर सकता है, ये तो परिणमन है। नवीन परिणमन होता है, पूर्व परिणमन प्रलयको प्राप्त होता है। बदलका स्वभाव तो द्रव्यमें है। हां स्वभावसे स्वभावान्तर नहीं होता। यहाँ दृष्टान्त जो दिया उसे देखो—मनुष्य देव नहीं अथवा नारक, तिर्यञ्च या सिद्ध नहीं है। देव, नारक आदि मनुष्य नहीं। ऐसा जब

असत् है परस्पर तो अनन्य कैसे कहा जा सकता, जिससे अन्य न हो। जिससे कि निष्पद्यमान हो रही है मनुष्यादि पर्याय जिसमें, ऐसा जीव द्रव्य भी प्रतिपर्याय अन्य न हो। तात्पर्य यह है कि पर्यायें अन्य-अन्य हैं, उसके सम्बंधसे वह द्रव्य भी उस प्रवाहमें अन्य-अन्य है। एक अज्ञानी जीव है वह अब ज्ञानी हो गया तो पहिले अज्ञानी था अब ज्ञानी हो गया तो अन्य हो गया ना। हे आत्मन् ! मलीमसता और दुःख लगे हैं, किन्तु पर्याय मिटकर निर्मलता व आनंद का परिणामन भी तो हो सकता है। सोच न करो, तत्त्वज्ञान करो। सब श्रेय आप अपने आश्रयसे स्वाधीन होकर सम्पादित कर सकते हैं। यहाँ तक एक द्रव्यके सम्बंधमें अनेक प्रकार से विवेचनार्थे हुई।

श्री गुरुवर्य मनोहर जी वर्णी 'सहजानन्द' महाराज द्वारा

संशोधित किया गया "प्रवचनसार प्रवचन चतुर्थ भाग" का यह संस्करण समाप्त हुआ।

॥ प्रवचनसार प्रवचन चतुर्थ भाग समाप्त ॥